❀ श्रीश्री गौरांगमहाप्रभुर्जयति ❀

श्रीमद्भागवत भाषा

दशम, एकादश तथा द्वादशस्कन्धः

श्रीश्रीरसजानिवैष्णवदासजीकृता

दूसरा खण्ड

प्रथमावृत्ति १००० }
संवत् २०१०

प्रकाशक :—
कृष्णदास बाबाजी,
कुसुम सरोवर, (गोवर्द्धन)

—: समर्पणपत्रम् :—

भज - निताइ गौर राधेश्याम।
जप - हरेकृष्ण हरेराम ॥

ब्रज में परममान्यगण्य, रसिकप्रवर, वृन्दावन शतक के वक्ता, हमारे पूज्य बड़े गुरुभ्राता (गुरुभैया) श्रीयुक्त बाबा श्रीगौरांगदासजी महोदय के प्रीत्यर्थ प्रकाशित यह ग्रन्थ सादर समर्पित हुआ

चैत्र संक्रान्ति
श्रीश्रीराधारमणचरणदासदेव की
शुभ आविर्भावतिथि

॥ श्री राधारमणो जयति ॥

दशम स्कन्धः (पूर्वार्द्ध)

प्रथम अध्याय

रसिक भूप हरि रूप पुनि, श्री चैतन्य सरूप।
ह्वै कृष्ण अनुरूप रस, उमड्यौ बढ़ै अनूप ॥१॥
कंस कृष्ण ते मीच सुनि, हते तास छः भ्रात।
ध्याय प्रथम ही दसम के, यही कथा विख्यात ॥२॥

श्रीराजोवाच

सूर कौ [illegible] वंश हो जितौ। हे मुनि तुमने बरन्यौ तितौ ॥
वंस के राजा जे पुनि। तिनके अद्भुत चरित कहे मुनि ॥
धर्मग्य यदु वंस में श्रीहरि। प्रगट भए सबही अंसनि करि ॥
मन भावनि किये चरित जे। करि बिस्तार कहौ सब ही ते ॥
पसुघाती बिना अहो मुनि। ऐसौ कौन सुनै नहिं हरि गुन ॥
कान जिनतें सुख पावै। मुक्त हु बार-बार जे गावै ॥
रागहि औषद येई पुनि। ता ते सब कौ सुनिबै हरि गुन ॥
में कौरव सेना जोई। हे मुनि महा समुद्र है सोई ॥
त दुजय भीष्मादि जे। ताही के सु तिमिंगिल हे ते ॥
न आदि पितामह मेरे। ता समुद्र में तिन जब घेरे ॥
भए नाव तरे ताहि ऐसैं। हे मुनि गोखुर कौ जल जैसैं ॥
चलायौ अश्वत्थामा जब। यह मेरौ तन दग्ध भयौ तब ॥
गई हरि सरन हमारी। चक्र लै पैठे उदर मुरारी ॥
कुरुनि कौ बीज हौ मैं मुनि। जरत बचायौ मोहि तिही पुनि ॥
कृपा करि नर बपु धारयौ। भक्तनि कौ अति सुख बिस्तारयौ ॥
सबै जिन मारि पछारे। तिनके चरित कहौ मुनि सारे ॥
तुमनि संकर्षन जोई। कहे रोहनी के सुत सोई ॥
देवकी हू कौ सुत पुनि। और जन्म बिन यह न बने मुनि ॥
घर ते हरि ब्रज क्यों गए। जाति समेत बसत कहाँ भए ॥

ब्रज में बसि हरि कियौ कहा मुनि। जाय मधुपुरी कहा कियौ पुनि॥
अरु साछात मात कौ भ्रात। सो वह कंस हत्यौ किह बात॥
द्वारापुरी जादवनि संग। कहौ कितक दिन कीनौ रंग॥
कितनी तिया बिबाही हैं पुनि। यह सब हम सों कहियै हे मुनि॥
और हू कृष्न चरित कहिये सबं। हमरे सुनिबे चाव बढ़ी अब॥
तुव मुख कमल अमृत से हरिगुन। बार-बार पीवत हों हे मुनि॥
तातें दुसह भूख प्यास जे। तब कहू मोहि सतावत नहि ते॥
यह सुनि महा भागवत सुक मुनि। नृप की बहुत सराह करी पुनि॥
पुनि हरि चरित कियौ आरंभ। जो धोवें कलियुग के दंभ॥

श्री शुक उवाच—

हरि गुन में तुव रति भई जातें। नृप तुम भल निस्चै कियौ तातें॥
वक्ता श्रोता पृछक जो पुनि। सब कौ सुध करत है हरि गुनि॥
जैसें हरि चरनोदक जोई। सबहि तनक में सोधे सोई॥
नृपति रूप बहु असुर बढ़े जब। भूमि निपट बोझल सु भई तब॥
पुनि धर दुर्बल गाय रूप धारि। रोवति अरु डकराति निपट कारि॥
ब्रह्मा जू के सरनें सो गई। जाय के बिथा सबै कहि दई॥
सुनि बिधि ने सिवादि संग लए। छीर समुद्र तीर सब गए॥
जगन्नाथ जगदेव हे जहाँ। अस्तुति करी तिननने ताँ॥
सुनी समाधि माँहि नभ बानी। सो बिधि सबरे सुरनि बखानी॥
पुनि कही सुरनि सु शीघ्र करौ सो। मो सो हरि जू ने भाख्यौ जो॥
धर पीड़ा हरि पहलहि जानी। सुनो देव तुम मेरी बानी॥
तुम सब जाय जादवनि सें अब। अंसनि करि-करि जन्म लेहू सब॥
प्रगटि हैं हरि बसुदेव गृह अब। तिन सुख हित जनमो सुर तियसब॥
काल सक्ति करि धरनी भार। हरि धर बिचरेंगे सुकुमार॥
वासुदेव के अंस सेस जे। सहस बदन करि राजति हैं ते॥
बड़े भ्रात ते हरि के ह्वैहैं। पुनि हरि जू कौ प्रिय सो कैहैं॥

बहुरि जोगमाया हरि की जो। सबरे जगतहि मोहि लेत सो ॥
पुनि सोऊ हरि आग्या पाय। कार्य हेत जनमेगी जाय ॥
धरनि कौं समाधान करि दियौ। पुनि निज धाम गवन विभि कियौ ॥
जादवपति हैं सूरसेंन जो। मथुरा पुर में बसति भयौ सो ॥
सूरसेंन अरु माथुर देसा। ते सब भोगे तिही नरेसा ॥
मथुरा तिनही की रजधानी। जहाँ नित क्रीड़ति हरि सुख दानी ॥
तहाँ वसुदेव देवकी व्याही। रथ चढ़ि चल्यौ परम उत्साही ॥
उग्रसैन कौ पुत्र कंस जो। बहिन कौ भलौ मनाधनि कौ सों ॥
आप ही तास सारथी भयौ। कनक रथनि करि चहूँ दिस छयौ ॥
देवक कौ बेटी सों प्यार। दये दायजे तिह सु अपार ॥
हाथी तौ दीनें सत चार। घोरा दयौ पन्द्रह हज्जार ॥
दये अठारह सैं रथ तानें। सबै जड़ाव साज सों साने ॥
सुन्दर दो सत दासी दीनी। भूषन भूपित सबै नवीनी ॥
दुंदुभि तुरही संख मृदंग। मंगल रूप बजे इक संग ॥
बर अरु वधू चले हैं जबै। उत्सव बड़ौ भयौ है तबै ॥
रथ कौ हाँकैं जात कंस जो। इक नभ बानी सुनति भयौ सो ॥
अरे मूढ़ रथ हाँकति जा कौ। हति है आठौ सुत तोहि या कौ ॥
पापी दुष्ट कंस नें यह सुनि। भगिनी कौ मारन लाग्यौ पुनि ॥
कर में काढ़ि लई तरवार। बहिन के दौरि पकर लए बार ॥
अति निर्लज्ज दया करि हीन। पुनि यह निंद कर्म तिन कीन ॥
ता के सांत करन हित बानी। महाभाग वसुदेव बखानी ॥
सूर सराहति हैं तुमरे गुन। भोज बंस कौ जस तुम तें पुनि ॥
तिया रु बहन समै पुनि व्याह। अहो कैसें तुम हतिहौ याहि ॥
पुनि ये तन धारी जनमे जब। संग ही मृत्यु हू जनमीहै तब ॥
अब अथवा सौ बरषनि माँही। मरिहें सब कोऊ बचिहै नाँही ॥
तन धारी कर्मनि आधीन। मन दै सुनिये अहो प्रवीन ॥

जब यह और देह कौ पावै। तब पहलै तन कौ छिटकावै॥
ज्यौं तृनजोंक तृनहि पावै जब। पहले तृन कौ त्याग करै तब॥
ज्यौं नर अगलौ पग तब धरै। पहले पगहिं ठौर जब करै॥
जैसें नर जागत देखै जो। स्वप्न मनोरथ में तैसो सो॥
होय जाय पुनि भूलै यह तन। हे नृप इतनोई जानौ मन॥
दैव कौ प्रेरयौ मन यह जोई। सब देहनि में भरमें सोई॥
मन कौ मन मानै पुनि जामें। जीव जाय जनमति है तामें॥
जैसे जल घट में ससि जोई। पौन सो कंपित दीसै सोई॥
रचित अबिद्या तन में योंही। मोहित जीव प्रीति सों होंही॥
हे नृप असौ जन यह होई। पुनि मंगल चाहै जो कोई॥
सो काहू सो बैर न करै। बैर सो सोई सब ठां डरै॥
हे नृप यह है वहिन तिहारी। पुतरी सी पुनि दीन है भारी॥
मारन योग्य याहि तुम नाँहीं। बड़ी दया तुमरे हिय माँहीं॥

श्रीशुक उवाच—

यों तानें बहुतै समझायौ। पै न नीच के मन कछु आयौ॥
तब बसुदेव सबै यह टारन। कीने मन में बहुत बिचारन॥
कहौ कि बसाय आपनो जो लौं। मीच ते नरहिं बचावै तौ लौं॥
ताहू पै न बचै नर जो पै। नर कौ कछू दोष नहिं तोपै॥
तातें याहि देन कहि सुत सब। दीन लिया को लेऊं बचाय अब॥
अरु मेरे जब सुत उपजेंगे। तब जानें हरि कहा करेंगे॥
कर्म सों मौत गई हू आवै। कर्म सों आई हू फिर जावै॥
जैसे अगिन ते बन जब जरै। ढिगन द्रुम बचै दूर द्रुम जरै॥
यों बिचार करि मन में राखी। पुनि आदर करि कंसहि भाखी॥
मन में तौ दुःख छाय रह्यौ है। पै निर्लज्जहिं हसति कह्यौ है॥
हे नृप तोहि या ते भै नाँही। सुनी तुम्हू नभ बानी माँहीं॥
हों तोहि देहौं सुत सब याके। हे नृप तुम डरपति डर जाके॥

शुक उवाच—

कंस ने बचन सांच ये माने। बहिनहि छोड़ि दई पुनि ताने ॥
कंस नृपनि की बहु सराह करि। ह्वै प्रसन्न वसुदेव गये घर ॥
सर्व देव मय देवकी जोई। सुन्दर तरुन रूप करि भोई ॥
इक कन्या सुत आठ छए छवि। वर्ष वर्ष में भए ताके तब ॥
प्रथम ही कीर्तिमान सुत भयौ। सो लै जाय कंस कौ दयौ ॥
सत्य प्रतिग्य झूँठ तें डरयौ। जदपि हिय व्याकुलता भरयौ ॥
अहो नीच जन कहा नहीं करे। साधु कौन सो दुख नहीं भरे ॥
जिनके हिये सदा हरि पागे। ते कहो कौन बस्तु नहि त्यागे ॥
यह वसुदेव की निपट सचाई। देखि कंस के अति मन भाई ॥
ह्वै संतुष्ट कंस हँसि कही। या कौ डर मो कौं नहीं सही ॥
निज घर लै जावौ या अर्भहि। दीजौ मोहि आठये गर्भहि ॥
लै गयौ घर पर निपट उदास। दुष्ट कंस कौ नहिं विस्वास ॥
तब नारद जु कंस पै आए। आइके ये पुनि बचन सुनाए ॥
हे नृप जादव वसुदेवादिक। गोकुल में जु गोप नंदादिक ॥
पुनि इनकी जु तिया हैं जिती। बंधु मित्र अरु जाति हू किती ॥
पुनि जे ह्वै रहे दास तिहारे। हे नृप ये सु देवता सारे ॥
भूमि में हे नृप दानव जिते। तिनके मारन को जनमे ते ॥
यह कहि नारद गवन कियौ जब। कंस ने माने यादव सुर सब ॥
देवकी गर्भ कृष्न अवतरि हैं। जानी ते मेरौ बध करिहैं ॥
देवकी अरु वसुदेवहि ल्याय। राखे तिन बेरी पहिराय ॥
जो सुत होय सोई सो मारै। बिष्नु जन्म की संका धारै ॥
निज प्राननि के पोषन हारे। ऐसे जे नृप लोभी भारे ॥
मात पितारु सुहृद पुनि भ्रात। तिने तेऊ मारत बिख्यात ॥
कालनेमि पहले मैं हुतौ। महा असुर हरि मारयौ सु तौ ॥
प्रथम जनम निज कंस सु जान्यौ। वैर जादवनि सों पुनि ठान्यौ ॥

उग्रसेन पुनि पित हो जोई। सबै जादवनि कौ पति सोई॥
ताहि बाँधि दीनौ दुख भारौ। बली कंस कियौ राज सु सारौ॥
इति श्री भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय

दोहा—गर्भ देवकी के सु हरि, ऐहैं दुतिय अध्याय।
ब्रह्मादिक सब देवता, करिहैं अस्तुति आय ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच

द्विविद पूतना केसी धेनुक। तृनावर्त्त चानूर रु मुष्टक॥
अघ बक अरु प्रलंब नर्कासुर। अरिष्ट रु जरासंध बानासुर॥
कंस कों आनि मिले दानव सब। दुख देन जादवनि लग्यौ तब॥
देस विदेसनि ते भजि गए। कोउक अनुग कंस के भए॥
बहिन के हते पुत्र छह कंस। सातए गर्भ माँहिं हरि अंस॥
जाहि अनंत कहत सबरे मुनि। दुख सुख दोऊ देवकी के पुनि॥
कंस जादवनि कों दुख दियौ। हरि ने सोऊ जानि पुनि लियौ॥
कही जोगमाया सों हरि तब। अहो देवि तुम ब्रजहि जाहु अब॥
गोपी गोप गाय करि मंडित। नन्द कौ गोकुल सदा अखंडित॥
तहाँ वसुदेव की त्रिया रोहिनी। सदा बसति है परम सोहनी॥
और तिया वसुदेव की जिती। ठोर ठोर छिप रही हैं तिती॥
गर्भ देवकी कौ तुम लै करि। जाय रोहनी उदर देहु धरि॥
ह्वैहौं हौं सु देवकी अर्भ। तुम जनमौ जसुदा के गर्भ॥
तुमरी सब जन पूजा करिहैं। धूप दीप दै भेट चढ़ैहैं॥
नर तुमरे बहु मंदिर करिहैं। बहुर बहुत नाम बिस्तर हैं॥
दुर्गा विजया बहुर चंडिका। कुमदा ईसानी रु अंबिका॥
माया कृष्ना भद्रा कालिका। नारायनी वैष्नवी कन्यका॥
गर्भ हि तू संकर्षन करिहै। या ते सो संकर्षन ह्वै है॥

सबै रमैं हे याते राम। अति बलि तें ह्वै है बल नाम ॥
हरि की बात मानि तिन लीनी। सीस नाय परिकर्मा दीनी ॥
गर्भ देवकी कौ तिन आय। धरयौ रोहनी के उर जाय ॥
गर्भ देवकी कौ स्त्रै गयौ। नगर में बगर बगर यह भयौ ॥
भक्तनि के सुखदाई हरि जो। पुनि वसुदेव के मन आए सो ॥
तब वसुदेव सूर्य सम लगे। देखति नर सब अचिरज पगे ॥
सर्व रूप सर्वात्म मुरारी। पुनि जे सब जग के हितकारी ॥
तिनकों श्रीवसुदेव सु मन करि। दए देवकी के उर में धरि ॥
हरि हिय धरे देवकी ऐसें। पूरब दिसा चंद्रमहि जैसें ॥
सब जग के निवास हरि गाए। सोऊ देवकी के उर आए ॥
ऐ पर अति न प्रकासे ऐसें। घट के भीतर दीपक जैसें ॥
पुनि ज्यों दुष्ट पढ़ै विद्या जो। बाहर कहूँ न प्रकास करै सो ॥
कंस ने लखी देवकी इक दिन। जगमगाय घर राख्यौ है तिन ॥
अति आनंद भरी पुनि देखी। तिन कही ऐसी कभू न पेखी ॥
अब निस्चै या के उर सोई। मेरौ मारनहार है जोई ॥
अब मैं कहा करौं यो भाखै। अर्थी हू निज जस कों राखै ॥
यह इक तिय रु गर्भनी दूजें। तीजें बहिन ताहि सब पूजें ॥
या कौ बध सब जसहिं बहावै। धन रु आयु बल रहन न पावै ॥
पुनि अत्यन्त क्रूर नर जोई। जीवति ही सु मरयौ है सोई ॥
मरे ताहि सबरे देहिं गारी। नर्क में निस्चै जाय अनारी ॥
यह बिचारि घर कों उठि गयौ। हरि के जन्म माँहि मन दयौ ॥
चलति फिरति सोवत अरु जागति। सब जग ताहि विष्नुमय लागत ॥
बैर भाव हिय बढ़ि गयो जातें। भोजन करत हू डरपति यातें ॥
सदा चिंतवन हरि कौ करै। इत उत देखै थर थर डरै ॥
सिव बिधि और नारदादिक मुनि। दासनि सहित देवता सब पुनि ॥
मात देवकी के ढिग आए। हरि की अस्तुति करी बनाए ॥

देवा उचु :

हे हरि हम सब सरन तिहारी। तुमरी सांच प्रतिग्या भारी॥
पंच भूत के कारन रूप। सत्य सों तुम पैयत सु अनूप॥
तुमही हो सब जीवनि भीतर। तुमही सत्य सत्य हू के पर॥
सत्य हो तीन काल के माँही। तुम सो सत्य रूप कोउ नाहीं॥
तन द्रुम है माया आधार। दुख सुख ताके फल निर्धार॥
ता की जड़ जानौ सु तीन गुन। चार पदारथ रस ताके पुनि॥
ग्यानेंद्री है ग्यान प्रकार। छह ऊर्मी सुभाव निर्धार॥
सात धातु पुनि छाल सु या की। नवौं द्वार पुनि खोंतर ता की॥
पंच भूत मन बुधि हंकार। ये ता के गोदे[1] निर्धार॥
पुनि दस प्रान पात हैं जा में। जीव रु ईस्वर पंछी या में॥
तन द्रुम की थिति उत्पति नास। तुमही एक हेत हौ तास॥
पंडित एक तुमही को देखे। माया मोहित बहुत सु पेखे॥
ग्यान रूप तुम रूप जु धारौ। सब जन कौ मंगल बिस्तारौ॥
तुमरौ रूप सदा है निर्गुन। भक्तहि सुखद दुखद दुष्टहि पुनि॥
एहो कमल नेंन जन धामा। तुम में मन लगाय अभिरामा॥
तुमरे चरन नाव करि तुव जन। तरे भव जलधि खुर समान गन॥
अति दुस्तर रु भयानक महा। तिननि लख्यौ भव सिंधु सु अहा॥
तब तुमरौ पद नौका है जो। संप्रदाय में राखि गए सो॥
ऐसें तुमरे साधु दयाला। तब तुम रीझति रसिक रसाला॥
जे दुर्बुधि मुक्ति मद भरे। तुमरे चरनन हिय में धरें॥
ते तप करि करि ऊँचे गए। गिरे नरक पुनि अति दुख तए॥
हे माधव जे तुमरे प्यारे। ते न कभू तुम तें होंय न्यारे॥
एक तिहारी ही रच्छा करि। बिचरति ते पग बिघन सीस धरि॥
अरु यह तुम जु सुध बपु धरयौ। सो तो नरनि कौ मंगल करयौ॥

१=शाखाएँ।

वेद क्रिया तप जोग समाधि। इन कर तुमें पूजि हैं साधि ॥
हे हरि जौ न प्रगटते ऐसें। तौ पै ज्ञान उलहतौ कैसें ॥
तुम तौ सबही कों परकासित। पै अनुमान ही करि तुम भासित।
इन्द्रिन को चैतन्य करै जो। कोऊ तो ईस्वर है गो सो ॥
तौहू तुमहि भक्त तुमरे जे। करि उपासना प्रगट करें ते ॥
जन्म कर्म तुव नाम रूप गुण। मन वचननि करि कहै कौन पुनि॥
मङ्गल नाम रूप तुमरौ हार। कहै सुनें ध्यावै सुमिरै नर ॥
तुव पद पङ्कज चित्त लगावै। सो न कबहुँ संसार में आवै ॥
धरनी भार जन्म तुम्हरे करि। दूर भयौ यह भली भई हरि ॥
तुव पद अङ्कित धरनि देखिहैं। तुम करि रच्छित स्वर्ग पेखिहैं ॥
जन्म अजन्मा को है जोई। हे हरि इक क्रीड़ा हित सोई ॥
जन्म मरन अरु थिति पुनि जिती। होत अविद्या सक्ति सों तिती ॥
हयग्रीव नरसिंह अरु मच्छ। वावन परसराम अरु कच्छ ॥
हंस वराह राम अवतार। करि तुम प्रथम दिये सुख सार ॥
धरनी भार हरौ तैसें अब। हे हरि हम दण्डवत करत सब ॥
सुरनि कही पुनि देवकी मातहि। अहो मात सुनि हमरी बातहि ॥
तुमरी कूख आए पूर्न हरि। मरै कंस कौं जनि मानों डर ॥
कंसहिं मारि तुमें सुख देहें। पुनि जदुकुल की रछया कैहें ॥

श्रीशुक उवाच

अति अतर्क जो श्री भगवान। तिनकी यों अस्तुतिहिं बखान ॥
सिव विधि को आगे धार लए। सबै देवता स्वर्गहिं गए ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
द्वितीयोऽध्याय: ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय

दोहा—तृतिय ध्याय में जन्म हरि मात पिता स्तुति कीन।
गोकुल धरि आयौ सुतहिं पिता कंस भय लीन ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच

अति सुन्दर जामें गुन सबही। ऐसौ काल आय गयौ तबही॥
पुनि निछत्र रोहनी तामैं। सुन्दर ग्रह तारादिक जामें॥
सब दिसि जगमग जगमग चमकें। अमल गगन में उड़गन दमके॥
खरि करु ग्राम नगर पुनि खानि। सबही ह्वै गये मंगल खानि॥
नदियनि के जल निर्मल भये। सरनि में कमल फूल छवि छये॥
सब द्रुम फूले फूलनि झोंरा। तिनमें किलकनि हैं खग भौंरा॥
मन्द सुगन्ध पवन सुखकारी। तब अगनि प्रजुलित भई भारी॥
सुर साधुनि के मन हरपाये। स्वर्गहि दुन्दुभि के सुर आये॥
किन्नर अरु गन्धर्व सु गावें। अस्तुति चारन सिद्ध मल्हावें॥
विद्याधरी अप्सरा जिती। हरपि हरपि नाचति भई तिती॥
हरपे फूलनि बरपे सुर मुनि। मन्द मन्द जलधर गरजे पुनि॥
सुन्दर अर्द्ध राति जब गई। सब दिसि परम अंधेरी छई॥
सर्व देव मय देवकी जोई। सब के हिय बासी हरि सोई॥
ताछिन ताते प्रगटे ऐसें। पूरब दिसि पूरन ससि जैसें॥
स्याम सरूप पीत पट धरें। मेघ दामिनी को मन हरें॥
कमल नैन सोहति भुज चार। तिनमें संख चक्र सुख सार॥
श्रीवत्सांक कंठ कौस्तुभ मनि। निरुपम भूषन कौन सकै गनि॥
मनिन के कुंडल मुकुट छए छवि। घुंघरारे कच को बरनै कवि॥
ता सुत कों वसुदेव लख्यौ जब। हर्ष सों प्रफुलित नैन भए तब॥
मनसों दस हजार जे गाय। दई द्विजनि कों सुख में न्हाय॥
हरि तन की सुकांत करि छयौ। सोवर घर उजास अति भयौ॥
परम पुरुष वसुदेव सु जान्यों। तासु प्रभाव हिये में आन्यों॥
पुनि अति सुद्ध बुद्धि ह्वै गई। भय संका मन तें उठि गई॥
हाथ जोरि पुनि मस्तक नाय। हरि की अस्तुति करी बनाय॥

वसुदेव-उवाच

अहो अहों अब मैं तुम जाने। प्रकृति तें परे तुम्ही बखाने॥
केवल आनँदमय तुमरौ बपु। द्रष्टा हू बुद्ध्यादिक के अपु॥
तीन गुनन कौ बनौ जगत जो। माया करि तुम प्रथम रच्यौ सो॥
ता में तुम प्रविष्ट से भासौ। पै तुम न्यारे रहौ प्रकासौ॥
जैसे महदादिक हैं जिते। मिलि करि जग उपजावति तिते॥
ते प्रविष्ट से हैं जग माही। पै हैं न्यारे मिले सु नाँही॥
ऐसे ही तुम सबके माही। बाहर भीतर हू पुनि नाही॥
याते इंद्री तुमे न गहैं। सभी तोहि सर्वातम कहैं॥
तुम परमारथ वस्तु रूप पुनि। सब ठां व्यापि रहे अरु निगुन॥
देहादिक में राजति तुम हो। देह कौ न्यारौ लखै अबुध सो॥
नाम मात्र तन है बिचार करि। सांची एक बस्तु तुम ही हरि॥
उत्पति पालन प्रलय सु जिती। तुम तें होत अहो हरि तिती॥
तिनकौ तुमें न लगै बिकार। तुम निगुन अनीह अविकार॥
तुव आधीन सबै गुन यातें। तुम में आरोपित है जाते॥
सत गुन करि उज्जल बपु धरौ। ता करि त्रिभुवन पालन करौ॥
रजगुन करि सु लाल बपु धारि। सबकों उपजावति निर्धारि॥
तम गुन करि सु स्याम वपु धरो। ता करि सबहिं नास तुम करौ॥
तुम जो जनम लियौ मेरे घर। सो सबकी रछ्या हित हे हरि॥
नाम मात्र नृप असुर महा जे। सेना सहित मारिहौ तुम ते॥
मो घर तुमरौ जनम सुन्यौ जब। मम छः पुत्र कंस मारे तब॥
जौ तुव जन्म कहूँ सुनि पैहै। तौ सो खड्ग लिये ही अइहै॥

श्रीशुक उवाच

महा पुरुष सुत देखि देवकी। कस तें डरि स्तुति करि देव की॥
जो अतर्क कारण निर्धार। ब्रह्म ज्योति निगुन अविकार॥
निर्विशेष निरीह तुम ही हरि। देत आत्म तत्वहि प्रकास करि॥

द्वै परार्द्ध पाछें त्रिभुवन जो। नास कौं प्राप्त होत है सब सो॥
पञ्चभूत तन मात्रा में मिल। काल पाय ते आन प्रकृति मिल॥
हे हरि यों सब जात बिलाय। पाछें एक तुमहीं ठहराय॥
निमिष आदि अरु वर्ष प्रजन्त। कालहि रचित है विश्व अनन्त॥
सो तुमरी चेष्टा सब बरनें। हे मङ्गलनिधि हम तुव सरनें॥
काल व्याल यह सबकों खावै। कहूँ जाहु कोऊ न बचावै॥
पूर्न भाग कहुँ उदै होय जो। तुमरे चरन कमल पावै तो॥
तब सुख सों सोवत है सदा। ढिग हू काल न आवै कदा॥
तुम दासनि के भय निरवारौ। दुष्ट कंस तें हमें उबारौ॥
ध्यान जोग यह वपु अपनो जो। चर्म दृष्टि कों जिन दिखवौ हो॥
हे मधुसूदन जनम तिहारौ। जनि जानों सु कंस हत्यारौ॥
मैं अधीर हरि तुमरे लियें। सदाँ कंस ते डरपों हिये॥
हे हरि यह सुन्दर वपु तुमरौ। चारि भुजा मन हरत है मेरौ॥
शंख चक्र आयुध सब आहि। ए परि अब छिपाय लेहु याहि॥
पुनि यह प्रलै समै त्रिभुवन जो। हे हरि तुमरे उदर रहै सो॥
तो तुहि मेरे उर सुनि है जब। हँसि हँसि मोहि निदहैं नर सब॥

श्री भगवानुवाच

प्रथम जनम की कथा सुनों अब। स्वायंभू मन्वंतर भयौ जब॥
तुम हो पृश्नि नाम है मात। सुतया नाम प्रजापति तात॥
तुम दुहुंवनि कों विधि यह कही। अहो तुम प्रजा सृजौ अब सही॥
तब तुम तप कीनों अति भारी। दमन करी पुनि इन्द्री सारी॥
वर्षा पवन धूप जाड़ो जो। तुमने सब ही सहि लीनों सो॥
स्वास रोक मन मैल बहाई। सूखे पात पवन पुनि खाई॥
सान्त चित्त करि पूज्यौ मैं ही। चहे मनोरथ पुनि मोपै ही॥
दिव्य वर्ष बारह हज्जार। दुस्तर तप कीनों निर्धार॥
तप श्रद्धा पुनि भक्ति तिहारी। तातें भयौ तुष्ट मैं भारी॥

तब मैं तुमें मनोरथ देन। यही वपु प्रगट कियौ सुख दैन॥
वर माँगौ मैं तुमें कही जब। मोही मा सुत माँग्यौ तुम तब॥
विषय भोग तुमने नहिं कीन। पुनि दोऊ तुम हे सुत हीन॥
तुम पर कृपा करी मैं जातें। मुक्ति हू तुम नहि माँगी यातें॥
मैं तुमकों सो वर दै गयौ। तुमरौ पूर्ण मनोरथ भयौ॥
तब तुम ग्राम्य भोग हे जिते। ते सब दुहुवनि भोगे तिते॥
सील उदारतादि पुनि गुन करि। निज सम मैं न लख्यौ दूजौ नर॥
तब मैं ही तुमरें भयौ तात। पृश्नि गर्भ भयौ नाम सुख्यात॥
तुम दोऊ भए अदिति कस्यप जब। हम हूँ तुमरे तात भए तब॥
भयौ उपेन्द्र नाम अभिराम। वामन तें भयौ वामन नाम॥
पुनि यह तीजौ जनम तिहारौ। ताही वपु करि जनम हमारौ॥
अब हू तुम में है हे मात। यातें मेरी साँच है बात॥
मैं यह तुमको रूप दिखायौ। तुमरौ पहलौ जनम सुनायौ॥
नर वपु तुम निहारते जौ पै। ईश्वर बुद्धि न करते तौ पै॥
अब मोहि सदा चिन्तवन करौ। ब्रह्म भाव सुत भावहि धरौ॥
पुनि मा में सनेह तुम कैहौ। ता करि मम उत्तम गति पैहौ॥

श्रीशुक उवाच

यह कहि हरि चुपके ह्वै गए। देखत ही बालक से भए॥
वसुदेवहि आज्ञा दीनी हरि। तब पुत्रहिं वसुदेव गोद धरि॥
सोबरि घर में ते निकस्यौ जब। जनी योगमाया जसुदा तब॥
पुरजन और द्वारपालक जे। तिहीं योगमाया रचाये ते॥
साँकर तारे जबर कपाट। छिन में टूटि टाटि गए फाट॥
जैसे सूरज उदै होय जब। छिन में अन्धकार भाजै तब॥
मन्द गरज घन बरसत भयौ। फणनि कौ छत्र सेस करि लयौ॥
यमुना घरघरात गम्भीर। फेंन भोंर करि दुस्तर नीर॥
हरिहित तिन मारग दयौ ऐसैं। समुद्र श्री रामहि दयौ जैसे॥

पुनि बसुदेव नन्दपुर गए। गोप तहाँ सब सोवत गए॥
निज सुत यसुदा के ढिग स्वायौ। लै लारिकिनी घरहि फिरि आयौ॥
सुतौ आनि निज तिय कों दई। आपु पहरि पग बेरी लई॥
जसुदा नाम नन्द की तिया। कछुक भयौ यह जानी हिया॥
पै अति श्रान्त नींद बस महा। जान्यौ नहीं भयौ है कहा॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

चतुर्थ अध्याय

दोहा:—कंस योगमाया वचन, सुनि जिय सङ्का पाय।
छोटे बाल हते सबै, यह चौथे अध्याय॥ १॥

श्री शुक उवाच—

तैसेंहि सब किंवार मुँदे पुनि। उठे पहरुआ बालक धुनि सुनि॥
सुबेगि जाय कंसहिं यह कही। देवकी के सुत जन्मयों सही॥
कंस तौ यही लखत हो बाट। सुनत ही तुरत तजी तिन खाट॥
अपनो काल जानि भै व्याकुल। ऊखट भाज्यौ बार रहे खुल॥
बेगिहि सोवर के घर गयौ जब। दीन देवकी वचन कह्यौ तब॥
यह कन्या तो सुतहिं विवैहों। मारे जिनि तुव जस हों गैहों॥
अहो भ्रात तुम दैव के प्रेरे। हते अगिन सम बहु सुत मेरे॥
मैं तेरी लघु भगनी दीन। दुखित महा पुत्रनि करि हीन॥
यह इक अन्त समें की कन्या। सो तौ देहु अहो नृप धन्या॥

श्री शुक उवाच—

रोवति निपट देवकी दीन। कन्यहिं उर लगाय पुनि लीन॥
खिज कर ताहि झटकि तिन्ह लई। देवकी रोवत ही रहि गई॥
पकरि भानजी के पग दोई। सिल पर पटकनि लाग्यौ सोई॥
स्वारथ माँहि सनि रह्यौ जातें। तनकहु नाँहि सुहृदता यातें॥
सुतौ कंस-कर तें छुटि गई। गगन में जाइ दिखाई दई॥

हरि की यह अनुजा सुखकारी। आठ भुजा सोहत है भारी॥
गदा चक्र असि ढाल कमान। करनि में शंख त्रिशूल रु बान॥
दिव्य अरगजा अम्बर माला। रतननि के आभरण रसाला॥
चारन सिद्ध उरग गन्धर्व। किन्नर और अप्सरा सर्व॥
अस्तुति करि रु भेट ताहि दई। यों कंसहि कन्या बोलति भई॥
अरे मूढ़ तेरा बैरी जो। पूर्व जनम कौ प्रगट भयौ सो॥
तें मोहि मारि लह्यौ का अर्थ। दीन जननि जिनि मारै व्यर्थ॥
इतनी कहि चुप ह्वै गई भाम। भए तासु बहु नाम रु धाम॥
कह्यौ योगमाया तें जोई। विस्मय भयौ कंस सुनि सोई॥
दए वसुदेव देवकी छोरि। बोल्यौ कछुक दुहुनि कर जोरि॥
सुनो बहनि बहनेऊ दोऊ। मो सम और न पापी कोऊ॥
मैं तुमरे सुत मारे ऐसें। अपने पूतनि राछस जैसें॥
मैं अति नीच रु निर्दै भारी। तजे कुटुम्ब बन्धु हितकारी॥
मैं तो जीवत मरयौ सु ऐसें। अहो ब्रह्म हत्यारौ जैसें॥
मैं सु कौन लोकनि में जैहों। जहँ जैहौं तहँ बहु दुःख पैहों॥
नर तौ बहुत झूँठ कह नाहीं। बहुत झूँठ है सुरनि सु माँहीं॥
करि विस्वास वचन जिनके मैं। हते भानजे हों पापी मैं॥
निज अदिष्ट करि मरे पुत्र जो। महाभाग तुम सोचौ जनि सो॥
दैवाधीन जन्तु ये सब ही। इक ठाँ रहत नहीं ये कबहीं॥
उपजै मरै देह यह ऐसें। बनें रु फूटें मटका जैसें॥
इक रस सदा मृत्रिका जैसें। जानि लेहु आतम को तैसें॥
जौ लों नर ऐसें नहिं जानें। तौलों तनहि आत्मा मानें॥
तातें उपजि उपजि यह मरै। दुःख सुख कौ अनुभौ करै॥
तातें मारे सुत तुमरे जे। हे भद्रे जनि यादि करौ वे॥
निज कृत भोग करत हैं सब नर। बँधि सु रहे पूरब कर्मनि करि॥
इन मुहि मारयौ मैं यहि मारयौ। आपहि जब इन यों सुविचारयौ॥

तब लौं देह मरे कों यह नर। आपहि मरयौ लेत हिय में धरि॥
तुमरे हिय में कृपा घनेरी। छमा करौ दुर्जनता मेरी॥
यह कहि रोइ दुहुन के पाँय। राजा कंस लपटि गयौ धाय॥
श्रीवसुदेव देवकी दोई। तिनहि दिखाय सुहृदयता सोई॥
छोड़ि दए सुनि कन्या बानी। कस चित्त में साँची जानी॥
दुख करि तपस कंस लखि सोई। तज क्रोधहिं हँसि बोले दोई॥
हे महाभाग साँच तुम कही। तन धारिन कौं है यह सही॥
अहंकार अज्ञान करावें। सो पुनि भेद बुद्धि उपजावें॥
सोक मोह मद लोभ दोष भय। इन करि व्यापि रहे जे अतिसय॥
तेई परसपर मरें रु मारें। ईश्वर कों तनकौ न निहारें॥
ह्वै प्रसन्न वसुदेव देवकी। कंसहिं बात सुकही भवेकी॥
पुनि दुहुंवनि की आज्ञा लें करि। राजा कंस गयौ अपने घर॥
सो तौ निसि वितीत भई जब। दूजे दिन मन्त्री बुलए सब॥
कह्यौ योगमाया ने जोई। तिनकों सबै सुनायौ सोई॥
असुरनि कंस वचन सुनयों जब। सुररिपु कुपित होय बोले तब॥
हे भोजेन्द्र भई ऐसें जो। पुर बाटनि ब्रज गाँवनि में तौ॥
दश दिन उरे परे के सिसु जे। हम अब मारि डारि हैं सब ते॥
रन में तौ सुर कायर महा। ते अब उद्यम करिहैं कहा॥
तुमरे धनुष की सुनि टंकार। डरपें ते मन माँह अपार॥
धनुष में बान धरत तुम जबै। स्वर्गहि छाँड़ि भजत ते तबै॥
काँछ खोलि कोइ पागनि डारि। सु तुमरे पाय परे निर्धार॥
दीन ह्वै हाथ जोरि तजि शस्त्र। कोउ आवत तुव सरन विवस्त्र॥
औरन लरै अपुन तें नाँहीं। चतुर न सस्त्र चलावनि माँहीं॥
रथ करि हीन भजें रन माहीं। इतननि कों तुम मारत नाँहीं॥
सूर ह्वै घर में गर्जत महा। ते सुर करि सकि हैं हो कहा॥
हार सु कहूँ एकान्त परयौ है। शङ्कर कहूँ बन माँहि डरयौ है॥
इन्द्र नपुंसक करि है कहा। ब्रह्मा बपुरौ तपसी महा॥

ऐ परि बैरी हैं सुर रु बही। इनकों छमा न करियै कबही ॥
हे नृप हमें देहु आज्ञा अब। हम उखारि डारें जर तें सब ॥
पुनि जब रिपु जोरावर होय। तब नहिं जीत्यौ जात है सोय ॥
जैसे तन में रोग बढ़ै जब। तुरतहि दूरि न कियौ जाय तब ॥
पुनि जोगी निज इन्द्री जैसें। प्रबल होंय तब रोकैं कैसें ॥
सु अमरनि की जड़ है भगवान। धर्म में सुतौ रहत यह जान ॥
बेद विप्र तप गऊ जज्ञ जे। हे नृप धर्म की जड़ जानों ये ॥
हे नृप वेद पढ़ैया जे मुनि। तपसी जज्ञ करैया जे पुनि ॥
अरु पुनि दूध की गैयां जितीं। भली भाँति हम हति हैं तितीं ॥
द्विज तप गाय रु सत्य दया दम। श्रद्धा निर्जर यज्ञ छमा सम ॥
दानव द्रोही हरि के ये तन। बसत सदा सो सबही के मन ॥
शिव विधि आदि देवता जेते। सबये ताकों पूजत तेते ॥
हे नृप द्विजनि मरिबौ जोई। हरि हू कौ सु मारिबौ सोई ॥

श्री शुक उवाच—

अति ही दुर्मति असुर प्रसंस। बँध्यौ काल पासनि सों कंस ॥
दुष्ट मन्त्रियनि सों यह कही। भलौ विचार कियौ तुम सही ॥
निज मनमानें रूप धरें जे। निपट दुष्ट ऐसें दानव ते ॥
दुःख देंन सब दिसिनि पठाए। कंस आपने घर उठि आए ॥
रज तम करि दानव सञ्चरें। मूढ़ चित अति गर्वहिं भरे ॥
साधुन कों दुख देंन लगे सब। मृत्यु हू इनके ढिग आई तब ॥
धन जस धर्म आयु कल्यान। दुहूँ लोक पुनि रूप महान ॥
जाय विलाय छिनक में यह सब। नर साधुनि सों दोष करें जब ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

— —

पाँचवाँ अध्याय

दोहा—कह्यौ नन्द उत्सव अहो, यह पाँचें अध्याय।
गए मधुपुरी नन्द पुनि, मिले वसुदेव सु आय ॥ १ ॥

श्री शुक-उवाच

सुत जसुदा जू कैं जन्म्यों जब। नन्द के अति आनन्द भयौ तब ॥
बिप्र जोतिषी सबै बुलाए। आप अन्हाय भूषननि छाए ॥
द्विजन पै मङ्गल पाठ पठायौ। सुत कौ जन्म कर्म करवायौ ॥
पितर देवता हे पुनि जिते। विधि सों नन्द पूजते तिते ॥
पुनि द्वै लाख धेनु सिंगारीं। दईं द्विजन जे निपट दुधारीं ॥
तिल रु रतन के गिरि बहु कीये। जरी उढ़ाय द्विजन कों दीये ॥
काल सों शुद्ध होंय भूम्यादि। स्नान सों शुद्ध होंय देहादि ॥
मल धोए तें इन्द्री तप करि। शुद्ध होय मन सन्तोषहिं धरि ॥
बिप्रनि कों तौ यज्ञ सुधारे। द्रव्यनि कों पुनि दान उधारे ॥
गर्भहिं सोधै संस्कार ज्यों। आत्महिं सोधै आत्म ज्ञान त्यों ॥
चहुँदिशि द्विजवर करें वेद धुनि। सूत पुराण पढ़नि लागे पुनि ॥
मागध कहत नन्द की साखें। बन्दीजन कवीसुरी भाखें ॥
गायक गावत भेरी बाजति। दुंदुभि गाजति घन धुनि लाजत ॥
आँगन द्वार गली सब झारीं। जल गुलाब सों छिरकीं सारी ॥
घर घर ध्वजा पताका राजति। सब पुर जरी पटनि करि छाजत ॥
द्वार द्वार हैं बन्दन माला। मौर रसालनि के सु रसाला ॥
खैला गाय बछरुवा जेते। हरद तेल करि रञ्जित तेंते ॥
कञ्चन माल सबनि कें गरे। मोर पुछ सुन्दर पट धरें ॥
सुन्दर भूषन झगा रु पागें। पहरि गोप अति नीके लागें ॥
ते सब नन्द सदन में आए। हाथनि में बहु भेटनि ल्याए ॥
यसुदा के सुत भयौ सुन्यौ जब। गोपन के आनन्द बढ़यौ तब ॥
उबटनि उबटि पहरि पट नए। दृग अञ्जन भूषन छवि छए ॥

कमल मुखन पर केसरि खौरि। पोन नितंबनि पट तन गौरि॥
तुरतहिं चलीं नन्द के धाम। हाथनि भेंट लिये अभिराम॥
मणिन के कुण्डल कानन चमकें। रतन जटित धुक धुकी रु दमकें॥
अति विचित्र पट पहरें आछें। बेंनी कुसुम झरत हैं पाछें॥
करनि में सुन्दर चूरी झलकें। मुक्ताहार कुचन पर लटकें॥
लरकहिं देखि सु दईं असीस। याकी रच्छा करि हौ ईस॥
सींचनि लगीं हरद जल तेल। कान्ह गीत गावति सुख रेल॥
नन्द धाम हरि प्रगट भए जब। बाजे बजे अनूप मही सब॥
जल घृत दूध दही छिरकावें। गोप परसपर अति सुख पावें॥
माखन के गोंदनि पुनि मारें। आनन्द मगन न कछू निहारें॥
मागध सूत बन्दीजन जिते। और हू जाचक आए किते॥
तिनकों भूषन बसन गऊ धन। दीने बहुत उदार नन्द मन॥
अपने सुत की वढ़ति चाह करि। हरि प्रसन्नता पुनि हिय में धरि॥
महाभाग रोहिनी जु नारी। पहरि दिव्य भूषन पट सारी॥
श्री ब्रजराज की आज्ञा पाय। उत्सव टहल करति हरषाय॥
ता दिन तें ब्रज अति छबि छई। रमा गुणनि युत तहाँ रहि गई॥
गोपनि गोकुल की रछा में। राखि नन्द आए मथुरा में॥
कंस कौं वर्ष दिना कौ कर जो। आय के नन्द चुकाय दयौ सो॥
भ्रात नन्द उतरे हैं जहाँ। सुनि बसुदेव सु आए तहाँ॥
देखि के नन्द उठत भए ऐसें। प्राणनि आए इन्द्री जैसें॥
दौरि भुजनि सों गर लपटाए। प्रेम विकल अति ही हरषाए॥
वसुदेवहिं सु पूज सनमाने। सुख सों आसन पर बैठाने॥
मन वसुदेव सुतनि में पग्यौ। ब्रजराजहि शुभ पूछन लग्यौ॥
भयौ बुढ़ापे में सुत तुमरें। भैया यह मङ्गल भयौ हमरें॥
जग में मित्रनि कौ मिलिवौ जो। अहो नन्द अति दुर्लभ है सो॥
हम तुम मिले सु भलौ भयौ है। नयौ जन्म जनु पाय लयौ है॥

अहो नन्द प्यारे तुम से जे। रहि नहिं सकैं सदा इक ठाँ ते॥
जैसे नदी माँहि के घास। सदा न रहैं सबैं इक पास॥
अरु जु महावन गाँव तिहारौ। गोप कुटुम्ब बसत जहँ सारौ॥
तहाँ कछू तृण जल हैं भारे। गोप गाय हैं निपट सुखारे॥
अहो भ्रात पुनि पुत्र हमारौ। माता सहित सुखी है भारौ॥
तुम रु रोहिनी करि लालित जो। पिता तुमें मानत ह्वै है सो॥
नरनि के अर्थ धर्म जे काम। मित्रनि हित लागें अभिराम॥
मित्र क्लेश पावत हैं जौ पै। अहो नन्द ते व्यर्थ हैं तौ पै॥

नन्द उवाच—

अहो देवकी के सुवि जिते। देखो कंसहि ते पुनि तिते॥
जे पाछें तें इक कन्या भई। सोऊ न रही गगन उड़ि गई॥
नहिं अदिष्ट सम कोऊ बलिष्ट। कारन सबकौ एक अदिष्ट॥
दुख सुख हे तु अदिष्टहि जानें। ताकों मोह कभू नहिं सानें॥

वसुदेव उवाच—

अहो नन्द जू नृप कौ कर जो। तुम दै चुके सबैं ताकों सो॥
अब घर जाहु टिकौ छिन नाहीं। कछु उतपात जु गोकुल माँहीं॥

श्रीशुक उवाच—

नन्दादिक व्रजवासी यह सुनि। तुरतहिं सकटनि जोरि लए पुनि॥
श्री वसुदेव की आज्ञा पाय। गोकुल चले जु सकल दौराय॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

षष्टम अध्याय

दोहा—छठे ध्याय में पूतना, हती नन्द के लाल।
मारग में लखि नन्द कें, कौतुक भयौ रसाल॥

श्रीशुक उवाच—

मग में नन्द बिचारत जात। साँची अहो भ्रात की बात॥

है हरि घर उतपात कछू जौ। तुम सुत की रछा कीजौ तौ ॥
बालघतिनी · दुष्ट घनेरी। ऐसी कंस पूतना प्रेरी ॥
सो सब लरकनि मारति डोलै। नगर ग्राम ब्रज माँहिं कलोलै ॥
हरि कौ श्रवण कीर्त्तन जहाँ। जाय सकै न राछसी तहाँ ॥
सो अकास की विचरन हारी। इक दिन बनि इक सुन्दर नारी ॥
अपनी ही इच्छा करि आई। नन्द के गोकुल अति छवि छाई
सुन्दर वसन हँसनि अति कीनी। वक्र चितौंन सनी रस ही की ॥
मल्ली फूलनि गूँथी बैनी। सबके मनमोहन मृगनैनी ॥
कुच नितम्ब पृथु छीन कटी है। श्रुति कुण्डल जनु रूप नटी है ॥
गौर वदन पर अलकें खुली। फेरति कमल कली कछु फली ॥
लखि गोपियन रमा ठहराई। अपने पिय कों देखनि आई ॥
सु तौ पापिनी ढूँढ़ति लरकनि। इक दिन गई नन्द के खरकनि ॥
हरि निज तेज ढाँपि रहे ऐसें। हे नृप अगिन राख में जैसें ॥
सबके अन्तरजामी हरि जो। रतन खटोला पै पौढ़े सो ॥
मूँदि लए दृग ताहि जानि हरि। काल रूप इन लयौ गोद धरि ॥
जैसें बालक रस्सा जानि। सूते साँपहिं पकरै आनि ॥
अन्तर दुष्ट उपरि आछी यों। चित्र विचित्रित खड्ग म्यान ज्यों ॥
अति सुन्दर तिय शोभा छई। घर में कान्ह कुँवर ढिग गई ॥
जसुदा औरु रोहिनी दोई। ऐ परि ताहि न बरजी कोई ॥
काल कूट तिन कुचनि लगायौ। सो कुच लैकें हरहिं पिवायौ ॥
गाढ़ें कुच गहि रोस महा करि। प्राणनि सहित दूध पीयौ हरि ॥
टूटन लग्यौ हृदै ताकौ जब। छाँड़ि छाँड़ि यों कहन लगी तब ॥
पुनि दृग पूतरी निकरि सु आई। सबरी देह पसीननि छाई ॥
हाथ पाँय पुनि पटकि सु रोई। ताकी धुनि सब ही दिसि भोई ॥
धर भूधर सुनि काँपे भारे। स्वर्गहिं कँपे नक्षत्र रु तारे ॥
नर सब ठां ठां गिरगस ऐसें। वज्र पात परयौ होय जैसे ॥

पुनि निसाचरी मरि सो गई। निज सरूप कों पावति भई॥
पाँव रु भुजा दई फैलाय। बार बखेरि रु मुखहिं उबाय॥
परी पूतना ब्रज में ऐसें। वज्र हत्यौ वृत्तासुर जैसें॥
पुनि छः कोस में द्रुम हे जिते। चूरन ह्वै गये ता तर तिते॥
गिरि कन्दर सम नासा छेक। डाढनि कों हल उपमा एक॥
पर्वत टौर से कुच हैं जाके। ताम्र सलाक से केश हैं ताके॥
नैंन आँधरे कूप हैं जनों। जंघा नदी के रारे मनों॥
बँधे सेत से हाथ रु पाय। सूखे सर सम उदर जनाय॥
ऐसो ताको तन देख्यौ जब। गोपी गोप निपट डरपे तब॥
ह्वदै कान अरु मस्तक जोई। सुर ही सुनें दूखित होय सोई॥
ताके उर पर निर्भै हरी। खेलतु नेक न सङ्का करी॥
गोपी ताहि सु हरवराय कें। दौरि गरें लायौ उठाय कें॥
जसुदा रोहिनि आईं भागीं। सक की रच्छा करन सु लागीं॥
गऊ पूँछ सों प्रथम भरायौ। गोमूत्रहि सों जु अन्हवायो॥
गोरज गोबर लै लै भारैं। हरि के द्वादस नाम उचारें॥
गोपिन प्रथम आचमन लीयौ। अङ्ग न्यास निज अङ्गनि कीयौ॥
पुनि बालक के अङ्गनि माँहीं। मन्त्रनि पढ़ि पढ़ि न्यास कराहीं॥
अज तुव चरन की रच्छा करौ। कटि रच्छा अच्युत विस्तरौ॥
घोंटुनि की रच्छक मनि मान। ऊरू रच्छक यज्ञ सुजान॥
हयग्रीव उर रच्छा करौ। केशव हिय रच्छा विस्तरौ॥
उदर के रच्छक ईस अभिराम। कण्ठ की रच्छा करौ इन नाम॥
विष्णु भुजन रच्छा विस्तरौ। मुख रच्छा सु उरु क्रम करौ॥
पुनि तुम मस्तक की रच्छा जो। करिवौ करौ सदां ईश्वर सो॥
आगे रच्छा करौ चक्रधर। पाछें रच्छा करौ गदाधर॥
धनुषबान लै मधुहा दाँएँ। खड्ग लै अजित फिरौ पुनि बाँएँ॥
कौन की संख लियें उर गाय। ऊपर की उपेन्द्र सुख पाय॥

चहूँ ओर की हलधर करौ। नीचे की तार छ विस्तरौ॥
सब इन्द्रिन की हृषीकेश पुनि। प्राणनि की श्रीनारायण मुनि॥
स्वेत दीप पति चित्त की करौ। योगेस्वर मन की विस्तरौ॥
पृश्नि - गर्भ बुद्धि रच्छक जान। अहङ्कार रच्छक भगवान॥
सोवत रछ्या माधव करौ। खेलत गोविन्द सुख विस्तरौ॥
चलति करौ रच्छा विकुण्ठपति। बैठत रच्छा करौ रमापति॥
यज्ञ भोक्ता सब दुःख हर्त्ता। भोजन में होहु रच्छा - कर्त्ता॥
यातुधान कूश्मांड डाकिनी। बकी मातृका बाल-घातिनी॥
भूत पिसाच विनायक यक्ष। प्रेत कोटरा जेष्ठा रच्छ॥
अपस्मार उन्माद सदाई। देह प्राण इन्द्रिन दुखदाई॥
पुनि जे स्वपनें के उतपात। बालक वृद्धनि कौ करैं घात॥
विष्णु नाम के लिये सबै ते। बेगि नास होहु या लरिका के॥
प्रीति सों बँधीं गोपिका जितीं। रच्छा करत भईं ये तितीं॥
जसुदा सुतहि दूध पुनि प्याय। पलना में ललना दियौ स्वाय॥
तब लगि नन्दादिक ब्रज आए। देखि पूतनहिं अचरज पाये॥
नन्द कही वसुदेवहिं जोई। कै रिषि कै बड़ जोगी कोई॥
जो उत्पात बखान्यो हुतो। नैनंनि करि हम देख्यौ सुतौ॥
पुनि सब गोप पूतना तन जो। काटि कुठारनि टूँक कियौ सो॥
गाँव तें खेंचि दूरि लै गये। बहुत काठ दै दाहत भए॥
ताके तन तें धुँआँ जो भयौ। जनु सब दिसान अगर ही खियौ॥
हरि ने याकौ पियौ पयोधर। तातें सबरे पाप गए गर॥
बालक खाय रुधिर पीवै जो। अस राच्छसी पूतना ही सो॥
हरिहि हतनि हित चूँची प्याई। तिनहूँ अहो परम गति पाई॥
जे श्रद्धा सों सेवा करें। मधुर वस्तु हरि आगे धरें॥
गोकुल की गोपीजन जैसें। तिनकी बात कहै को कैसें॥
लोकपाल नित बन्दन करैं। भक्त सदाँ निज हिय में धरें॥

ते पद गोद पूतना के धरि। ताकौ अस्तन पान कियौ हरि॥
सोऊ राक्षसी स्वर्गहिं गई। जननी की गति पावति भई॥
सदा दूध पीवें हरि तिनकौ। भाग कहै को तिन गैयन कौ॥
जिन गोपिन कौ सुत सनेह करि। आप तें श्रयौ दूध पीयौ हरि॥
जो हरि मोक्षादिक विस्तरैं। तिन में पुत्र बुद्धि तें करैं॥
यह अज्ञान कियौ संसार। तिन गोपिन कों नहिं निद्धार॥
ब्रज जन जब सुगन्ध वह पाई। कही कहा यह कहँ ते आई॥
सूँघत सबै नन्द घर आए। नन्द पूतना चरित सुनाए॥
सो तौ मरी बाल पुनि जियौ। सुनि सब हरषे अचरज कियौ॥
परम उदार नन्द हैं राजा। गोद में लयौ पुत्र सुख काजा॥
सुत के सिर कौ करि अघ्रान। जाय परे को सुखकी खानि॥
हरि कौ बालचरित यह गायौ। जह सुख धाम पूतना पायौ॥
हित करि के यह चरित सुनें जो। तुरतहिं हरि में रति पावै सो॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते षष्टोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय

दोहा—तृणावर्त रु सकटहि हरि, हते सातएं ध्याय।
खेलत हरि मुख माँहि पुनि, दीनों विश्व दिखाय ॥ १ ॥

राजोवाच—

हरि जे जे अवतारहिं धरें। पुनि जे जे चरित्र हरि करें॥
काननि कों ते सुख उपजावें। मन कों छिन छिन में हरषावें॥
जिन्हें सुनत मन उज्जल होई। हे मुनि तृष्णा रहै न कोई॥
हरि में उपजै भक्ति विचित्र। हरि भक्तनि कों मानें मित्र॥
हरि नरलोक माँहिं वपु धरयौ। पुनि अनुकरन हुँ तैसौ करयौ॥
तिनके अद्भुत बाल चरित। कहिये हमसों परम विचित्र॥

श्री शुक उवाच —

जन्म नक्षत्र हू आयौ जा दिन। हरि आपैं करवट लई तादिन॥
जसुदा सब बुलईं ब्रजनारी। सुतहिं न्हवावनि की मन धारी॥
सुन्दर सुन्दर गीत गवाए। पुनि सब ही बाजे बजवाए॥
द्विजनि पै बेद मन्त्र पढ़वाय। सुन्दर स्यामहिं लिये अन्हवाय॥
द्विजनि कों पूजि सबै निधि दईं। भूषण बसन गाय छबि छईं॥
हरिहिं नींद आई सुख पाय। मातु हरें तब दये सुवाय॥
उत्सव में आये ये प्रानी। बिदा करत तिनकों नँदरानी॥
अति आनन्द मगन ह्वै गई। सुत के रुदन सुनत नहिं भई॥
दूध हेत रोवत कल केलत। पटकि पाँय ऊँचे कों पेलत॥
फूल तें कोमल अति जो पाँय। तातें दीनों सकट गिराय॥
सकट के कई टूक ह्वै गए। ढिंग बहु बासन फूटत भए॥
जसुदा आदि तियनि सब देख्यौ। नन्दादिक गोपनि पुनि पेख्यौ॥
अचिरज देखि सबनि यह भाख्यौ। अहो सकट यह कौनें नाख्यौ॥
कोऊ निश्चय करि न सकै जब। ढिंग खेलत लरिका बोले तब॥
अहो लग्यौ या सुत को पाँय। सकट साँच उलटौ रह्यौ जाय॥
तिन नहिं तिनको वचन सु मान्यों। सुत कौ प्रबल बलहु नहिं जान्यौ॥
रोवत गोद लियौ नँदरानी। पूतहिं कछु छाया यह जानी॥
द्विजनि बुलाय पाठ करवायौ। दूध पिवाय चैन कछु पायौ॥
पुनि ता सकटहिं बली गोप सब। ज्यौं का त्यौं ठाढ़ौ कीनों तब॥
द्विजन सकट कौ पूजन करयौ। दधि कुश लै होम बिस्तरयौ॥
झूँठ ईर्षा दम्भ असूया। हिंसा गर्व न जिनकों छूया॥
ऐसें सत्य सील जे द्विजवर। कान्हहिं दई असीस सफल तर॥
रिग यजु सामवेद करि मंत्रित। पुनि पवित्र औषधी नियन्त्रित॥
ऐसे जलनि सों श्री ब्रजराय। बिप्रनि पै सुत लयौ न्हवाय॥
स्वस्ति पढ़ाय होंम करवायौ। द्विजनि कों भोजन मधुर खवायौ॥

पुनि जे गाय सबै गुन भरी। भूषन बसन सिंगारी खरी॥
ते ब्रजराय द्विजनि कों दीनी। सुत बढ़वार कामना कीनी॥
द्विजनि असीस दई पुनि जो जो। सुफल भई ब्रजराजहिं सो सो॥
इक दिन गोद लिये ब्रजरानी। सुतहिं लड़ावति अति सुख मानी॥
पुनि गिरि से हरि ह्वै गए भारी। कैसें थांभि सकै महतारी॥
बोझ देखि अति अचरज पायौ। बेगिहि सुतहिं भूमि बैठायौ॥
छिन ईसुर के ध्यान सु पागी। पुनि घर के धन्धे में लागी॥
तृणावर्त इक दानव जोई। कंस पठायौ आयौ सोई॥
महा बघूरे कौ वपु धारैं। घोर शब्द करि दिसिनि बिदारैं॥
गोकुल माँहिं राति सी भई। रेत सों सबै आँखि मुदि गई॥
हरि कों तिन लै गगन उड़ायौ। जहाँ धर्यौ तहँ मात न पायौ॥
उड़त काँकरी रज के माँहीं। काहू कों कछु दीखत नाँहीं॥
ता तीक्षण बयारि के माँहीं। जसुदा जब सुत पायौ नाँहीं॥
तब डकराय गिरी धर ऐसें। बछरा हीन गाय कोउ जैसें॥
आँधी रहे सुनी बिलखनि जब। ब्रज जन यसुदा ढिग आए सब॥
नन्दनँदन जब नाहिन पाए। तब सब एक बार डकराए॥
तृणावर्त हू बीच ही थक्यौ। हरि के बोझहिं उड़ि नहिं सक्यौ॥
बोझ जानि डारनि कों भयौ। अद्भुत बाल कण्ठ लगि गयौ॥
कण्ठ के गहत कछु बल न रह्यौ। मुख हू तें कछु गयौ न कह्यौ॥
आँखें काढ़ि असुर सो मर्यौ। कान्ह सहित ब्रज में गिरि पर्यौ॥
असुर सिला पर गिरत सु भयौ। तन तौ किरच किरच ह्वै गयौ॥
जैसें अहोत्रिपुर को पुर जो। टूंक टूंक भै सिव सर सों सो॥
हरि हित रोवति गोपी जेतीं। ता असुरहि देखत भई तेती॥
तिहि उर लुठत नन्द के तातहिं। ल्याय दयौ श्री जसुमति मातहिं॥
कान्हहिं असुर गगन लै धायौ। मीचु के मुख में तें फिरि आयौ॥
गोपी गोप ताहि पुनि पाई। अति आनन्द में डूबे जाँई॥

अचिरज कहन लगे ब्रजपालक। असुर ले गयौ हो इह बालक॥
पापी अपने पाप ही मरयौ। साधु साधुता करि उद्धरयौ॥
हमनें कछू तपस्या करी। अथवा नीकें पूजे हरी॥
अथवा कूवा बाप खुदाई। किधों सबनि सों करी मिलाई॥
अथवा हमनि यज्ञ बहु करे। अथवा बहुत दान विस्तरे॥
जातें सुत परलोक गयौ जो। फिरि बंधुनि कों आनि मिल्यौ सो॥
श्री ब्रजराज महाबन माँहीं। लखि उतपातनि निपट डराहीं॥
पुनि वसुदेव वचन भाख्यौ जो। नन्दराय जू यादि कियौ सो॥
इक दिन प्रेम सनी ब्रजरानी। पूतहिं गोद लिये सुखसानी॥
आपतें श्रवत दूध सो प्यावति। चुटकि बजाय बजाय लड़ावति॥
हँसत हँसत हरि लई जँभाई। जग रचना मुख माँहिं दिखाई॥
धरणि आकाश दिशा गिरि स्वर्ग। रवि शशि अगन तारका वर्ग॥
वारिध पवन दीप द्रुम जिते। जड़ जङ्गम सब देखे तिते॥
मुख में विश्व निहारयौ जबही। जसुमति काँपनि लागी तबही॥
नैन मूँदि करि ठाढ़ी भई। संशय माँहिं डूबि पुनि गई॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अष्टम अध्याय

दोहा—नामकरण श्री गर्ग जू, कियौ आठयें ध्याय।
खाय मृत्तिका मात कों, दीनों विश्व दिखाय॥ १॥

श्री शुक उवाच—

तपसी बड़ौ गर्ग है जोई। यदुवंशिनि कौ प्रोहित सोई॥
ताकों श्री वसुदेव पठायौ। आनन्द पाय नन्द के आयौ॥
तिहि लखि नन्द निपट हरषाए। हाथ जोरि कें सनमुख आए॥
पुनि मुनि कों दण्डौत सु करी। हरि समान सेवा विस्तरी॥
भोजन करि सुख सों बैठे मुनि। दै आनन्द नन्द बोले पुनि॥

अहो तुम तौ परिपूरन महा। ताते' कहौ करँ हम कहा॥
भगवद्भक्तनि कौ फेरौ जो। दीन उद्धारण के कारण सो॥
पुनि इन्द्रियन अगोचर जोई। जोतिस शास्त्र कह्यौ तुम सोई॥
तीनि काल के चरितहिं जा करि। हे मुनि जानि लेत है यह नर॥
तुम सम नहिं वेदविद् कोऊ। हे मुनि ये लरिका जे दोऊ॥
इनकौ संसकार करि छिप्र। जनम ही करि गुरु नरनि कौ विप्र॥

गर्ग–उवाच

अहो यदुवंशिन कौ प्रोहित मैं। या बातहि पुनि सब जानत हैं॥
संस्कार इनकौ करिहौं जौ। कंस देवकी-सुत लखि हैं तौ॥
तुम बसुदेव मित्र जो दोऊ। दुष्ट कंस जानत है सोऊ॥
भई देवकी के कन्या जो। सोऊ अनुचित मानत है सो॥
तेरो हन्ता जनम्यौ यहँ पुनि। वचन कन्यका कौ राख्यौ सुनि॥
यातें कंस ससङ्क सुनैं जौ। मारै आनि अनीति हमें तौ॥

नन्द उवाच—

अहो इकांत खरिक इक याँहीं। हमरौऊ कोउ जानैं नाँही॥
ऐसे तहाँ मन्त्र पढ़ि लीजै। लरिकन संसकार करि दीजै॥

श्रीशुक उवाच –

गए इकांत बात यह सुनि मुनि। लरकनि नामकरण लागे पुनि॥
अहो यह पुत्र रोहिनी कौ जो। गुणनि रमै है सुहृदनि कों सो॥
यातें इनको कहि हैं राम। अति बल तें ह्वै हैं बल नाम॥
सब यादवनि एक ठां कैहैं। यातें ये सङ्कर्षण ह्वै हैं॥
तेरौ सुत जुग जुग में जनमें। चारि रङ्ग धारै निज तन में॥
धौरौ लाल पीत पुनि स्याम। कृष्ण वरन ते' "कृष्ण" सु नाम॥
कभू' प्रगटे वसुदेव सुधाम। यातें बासुदेव इक नाम॥
एहो गुण कर्मनि अनुसार। याके नाम सरूप अपार॥
तिनकों जानत हैं हमसे मुनि। हे ब्रजराज न नर जाने' पुनि॥

पुनि गोकुलबासी हैं जिते । याते मङ्गल पैहैं तिते ॥
या करि अहो बिपति हैं जिती । तुम सुख सों तरि जैहौं तिती ॥
एक समै कोऊ नृप नहिं रहे । तब साधुनि को चोरनि दहे ॥
पुनि इनहीं तें साधु बढ़ाये । तब तिन चोरनि मारि भगाये ॥
महाभाग जन तुव सुत माँहीं । करिहैं प्रीति छोड़ि हैं नाँहीं ॥
तिनकों दुःख ह्वै है नहिं ऐसें । अहो नन्द हरि भक्तनि जैसें ॥
तातें तुमरौ सुत यह जोई । गुण करि नारायण सो सोई ॥
धन जस तेज समान है ताकी । नीके करियौ रक्षा याकी ॥
यह कहि गर्ग गए अपने घर । नन्द हरिषि आपहिं मान्यों बर ॥
कछु दिन पाछें ब्रजपति धाम । घुटुवनि चले राम घनश्याम ॥
पायनि में पनसूरा बाजत । कटि नग जटित कौंधनी राजति ॥
तिनकी धुनि सुनि सुनि किलकावत । दीठ बचाय गली लौं आवत ॥
किलकि कें चलत बटोही पाछें । कीच के बीचहि टकि रहें आछें ॥
देत बिसूरि डीठि के जोरें । डरत से आवत जननी धोरें ॥
कीच सने अति ही छबि छाए । मातनि दौरि कण्ठ लपटाये ॥
प्रेम सों कुचन दूध श्रवत जो । लरकनि कों प्यावन लागी सो ॥
हँसनि में अलप दसन जब देखें । मगन ह्वै जन्म सुफल करि लेखें ॥
पुनि ब्रजराज कुमार जु खेलें । ब्रज में करें सुखनि की रेलें ॥
बछरन की लै पूँछ भँभेरें । तिन सङ्ग आप खाँय चकफेरें ॥
लखि लखि तिनहिं हँसें ब्रजनारी । गृह कारज की सुरति बिसारी ॥
पशु पच्छी जल काँटे आगिए । तिन ढिंग कभू जात हैं भागि ॥
अति ही चञ्चल निपट खिलारी । कहाँ लगि रोकि सकै महतारी ॥
सबै काम तजि दीने जद्दिप । लरकनि सों डरपत हैं तद्दिप ॥
राम कृष्ण थोरे ई दिन में । पाँयनि चलन लगे खिरकनि में ॥
सखा बरोबरि के सङ्ग लए । खेलत सुख गोपिन कों दए ॥
ते ताकी सुन्दर चपलाई । देख जसोदहिं आय सुनाई ॥

हे जसुमति तुव सुत में खोरि। असमै देय वछरुवनि छोरि।
जौ हम खिजें तौ यह हँसि जाय। नीके चोरि दूध दधि खाय॥
आप खाय बानरनि खवावै। कबहूँ फोरि दहेंड़ों आवै॥
घर में जाय कछु न पावै जौ। हमरे सुतहिं रुवाय आवै तौ॥
अहो जब हम गृह कारज करैं। दूध दही लै छींके धरैं॥
तौ पीढ़ा पर ऊखर धरै। छेद दहेंड़ी में पुनि करै॥
मणिन जटित सब भूषण याके। रहै अँधेरो घर में काके॥
अहो यह करै ढिठाइ और। जाय बिगारै सुन्दर ठौर॥
या सम हम, न चोर कहूँ लह्यौ। तुमरे ढिग सु साधु ह्वै रह्यौ॥
सुन्दर हरि सुख भय कछु छायौ। मा पुचकारि कण्ठ लपटायौ॥
इक दिन खेलत गोपकुमार। श्री बलदेव परम सुख सार॥
सबनि जसोदहिं आय सुनाई। तेरे सुत नें माँटी खाई॥
यहि सुनि सुत के कर गहि लए। हरि डरपे दृग चञ्चल भये॥
जसुदा निज सुत की हितकारी। खिज डराय यह बात उचारी॥
क्यों रे मूढ़ इकौसें जाय। तें क्यों माँटी लीनी खाय॥
इन सब गोपकुमारनि भाखी। तेरो बड़ौ भ्रात हू साखी॥
हरि कही मैं माँटी नहिं खाई। ये सबरे झूँठे हैं माई॥
अरु इनकों साँचे मानों जौ। मैया मेरौ मुख देखौ तौ॥
जसुमत कही तूं साँचो जौ पै। मोकों मुख दिखाय दै तौ पै॥
पूरन ईश्वर नें मुँह फारयौ। लीला के हित नर वपु धारयौ॥
जड़ जङ्गम मय विश्व है जितौ। जसुमति मुख में देख्यौ तितौ॥
धरनि अकाश दिशा गिरि स्वर्ग। रवि शशि अगिन तारका वर्ग॥
वारिध पवन दीप सिसुमार। तेज नदी द्रुम अमर अपार॥
मन अरु माया के तीनों गुण। शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध पुनि॥
काल स्वभाव कर्म हंकार। विविधि भाँति के जीव अपार॥
व्रज अरु अपनपौ देख्यौ सबै। जसुमति अति सङ्कित भइ तबै॥

अहो यह स्वप्न कि हरि की माया । कै मो बुधि ही में भ्रम छाया ॥
अथवा मेरे बेटा को पुनि । यह कोऊ स्वभाव ही कौ गुन ॥
मन वच कर्म चित्त के माँहीं । यह अतर्क जग आवत नाँही ॥
उपजावै पालै जो याहि । हमरे नमस्कार हैं ताहि ॥
यह मैं पुनि यह वस्तु हमारी । गोप गाय ये गैया सारी ॥
यह पति यह पुनि पुत्र हमारो । मेरौ ई रु नन्द गृह सारौ ॥
जाकी माया तें यह दुर्मति । सोई हरि है गो हमरी गति ॥
यों जसुमति तत्वहिं जान्यों जब । पुत्र सनेह मयी माया तब ॥
प्रभु ने जननी ऊपर डारी । सो सब भूलि गई नन्दनारी ॥
सांख्य योग उपनिषद् अरु वेद । गावत जाके महिमा भेद ॥
भक्तहिं निसिदिन गावें जाहि । जसुमति सुत कर मान्यों ताहि ॥

राजोवाच—

हे मुनि महाभाग ब्रजराज । कौन सो तिन कीनों बड़ काज ॥
पुनि जसुमति जू ने कहा कियौ । जिनकौ मधुर पयोधर पियौ ॥
पुनि वसुदेव देवकी हू जो । बालचरित तिनहूँ न लख्यौ सो ॥
जिनतें सब कलिमल मिटि जावें । अवलों हूँ कविजन जे गावें ॥

श्री शुक उवाच—

वसुनि में मुख्य द्रोन जो नाम । पत्नी धरा नाम अभिराम ॥
विधि की इन आज्ञा मानी जब । विधि पै इक वर हू माँग्यौ तब ॥
हम घर जात जु आज्ञा तुमरी । परम भक्ति हो हरि में हमरी ॥
जातें लोक दुर्गतिहिं तरै । हे विधि हमें देहु या वरै ॥
होहु होहु ब्रह्मा यह कही । ब्रज में द्रोन प्रगट भे सही ॥
ते भए नन्द प्रबल जस धारी । जसुदा भई धरा जो नारी ॥
तिनके पुत्र भए हरि नीके । ब्रजवासिन के जीवन जीके ॥
नन्दरु जसुमति की जो प्रीति । ताकी कौन कहि सकै रीति ॥
विधि की आज्ञा साँची करी । ब्रज में प्रगट होय श्री हरी ॥

राम सहित लीला विस्तारी। तिन सबकों दीनों सुख भारी॥
इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
अष्टोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय

दोहा—नवें ध्याय उफने परहिं, गई सँवारन मात।
दधि भाजन फोरयौ लख्यौ, गहि बाँध्यौ नव तात ॥ १ ॥

श्री शुक-उवाच—

इक दिन जसुमति दासी जिती। गृह कारज में लागी तिती॥
तादिन दधि की एक मथानी। आपही मथन लगी ब्रजरानी॥
लाल के बाल चरित पुनि जे जे। गावति मधुर सुरनि सों तेते॥
कटि तट माँहि मिहीं पट राजै। मधुर मधुर कछु काँची बाजै॥
जसुमति नेती खचाते ज्यों ज्यों। कङ्कन कुण्डल हलन लगें त्यों॥
बैंनी माँहि मालती गुहो। झरि झरि परत अमृत सी फुही॥
सुत सनेह करि कुच हू श्रए। कछु श्रम कन मुख हू पै छये॥
भूख लगी तब लालन आए। जननी निरखि बहुत सुख पाये॥
मथन देत नहिं गहो मथानी। तब सुत गोद लयौ ब्रजरानी॥
श्रवत दूध लालन कौं प्यावति। हँसति हँसावति अति सुख पावति॥
दूध लला कों औटत हुतौ। आँच लगें ते उफन्यों सु तौ॥
देखि यसोमति दौरति भई। पीवत लरकहिं धर धरि गई॥
ललन रिस्यात सु दसन चबावत। भूँठें रोवत होंठ कपावत॥
लोढ़ा डारि मथनियाँ फोरी। करी जाय गृह माखन चोरी॥
दूध उतारि जसोमति आई। आय मथनियाँ फूटी पाई॥
पुनि यह कर्म पुत्र कौ जान्यों। हँसि निज भाग सफल कर मान्यौं॥
पुनि जसुमति जौ घर में जाय। चढयौ उलूखल माखन खाय॥
ढूँकत जाय बानरनि डारै। जसुमति जब यों सुतहि निहारै॥
तब इक छरी हाथ में लई। दबकति दबकति ता ढिग गई॥

देखि डरपि कै कूदि भजे हरि। जो मन शुद्ध कियौ है तप करि ॥
नाहि सोऊ मन छीबत नाँहि। वाको पकरन जसुमति जाहि ॥
ऐ परि भाज्यौ जात न यातें। प्रथु नितम्ब कटि छीन है जातें ॥
कछुक भजी बैनी खुलि गई। तातें फूलनि वर्षा भई ॥
पुनि जानें उजार हो कियौ। सो सुत पकरि जसोमति लियौ ॥
रोवत जात कछुक भय छयौ। मींजि मींजि दृग अञ्जन बह्यौ ॥
जसुमति तासु बाँह गहि लई। खिज खिज कछु डरपावति भई ॥
जसुमति अति वत्सल रस भरी। डरपत देखि डारि दई छरी ॥
पुनि बाँधनि की इच्छा कीनी। केवल सुत सनेह रस भीनी ॥
आगें पाछें बाहिर भीतर। जगत रूप जग के सोई हरि ॥
जिनके आगे पीछौ नाहीं। पुनि नहिं बाहर भीतर माँहीं ॥
सोइ अधोछज नर वपु धारी। तिनकों पुत्र जानि महतारी ॥
ऊखल सों लै बाँधत ऐसें। प्राकृत बालक बाँधिय जैसें ॥
पुत्रहिं सीख देन को मात। नेती लै बाँध्यौ निज तात ॥
सो द्वै आँगुर घटती भई। तासों और जोरती भई ॥
सोऊ तिती घटी जब बाँधी। तासों और जसोमति साँधी ॥
सोऊ घटी लई पुनि जो जो। दो आँगुर ही घटी सु सो सो ॥
जसुमति धाम दाम सब ल्याई। जोरी तऊ न पूरी आई ॥
गोपी हँसति परम छवि छई। जसुमति हू हँसि विस्मै भई ॥
श्रम ते अङ्ग पसीना परे। गुहे फूल बैनी ते झरे ॥
ऐसें मातु श्रमित देखी जब। हरि बंधि गए कृपा करिकें तब ॥
सब जग हरि ही के बस माँही। हरि काहू के बस है नाँहीं ॥
हे नृप जसुमति हाथ बँधे हरि। भक्तवश्यता दई प्रवाद करि ॥
यह हरि कौ जु अनुग्रह जोई। शिव विधि हू नहिं पायौ कोई ॥
हाथ रमा हूँ कें नहिं आयौ। एक जसोमति ही नें पायौ ॥
हे नृप यह जसुमति कौ सुत जो। तपसी हूँ कों नहिं सुखाय सो ॥

ज्ञानी हूँ पावै नहिं ऐसे। सुख सों गहैं सनेही जैसे॥
सुत कुवेर के द्वै अभिराम। नलकूबर मनिग्रीव सुनाम॥
धन मद करि गर्वित ह्वै गए। नारद श्राप तें अरू भए॥
जसुमति कछु कारज लागी जब। हरि जू ते द्वै द्रुम देखे तब॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते नवमोऽध्यायः॥ ९॥

दशम अध्याय

दोहा—दसें ध्याय में रिंगत हरि, डारि दोऊ द्रुम दीन।
तिनमें के द्वै देवतनि, हरि की अस्तुति कीन॥ १॥

राजोवाच—

कहौ श्राप नारद क्यों दियौ। इन पुनि निन्द कर्म कहा कियौ॥

श्री शुक उवाच—

सुत कुबेर के शिव के अनुचर। याही तें गरबे धन मद करि॥
गङ्गातट कैलास है जहाँ। फूलि रह्यौ इक बाग सु तहाँ॥
तामें दोऊ करत बिहार। गावत हैं सँग सुन्दर नारि॥
मदिरा पीय भये मतवारे। मद करि घूमत लोचन भारे॥
कमलनि फूलि रही सब गङ्ग। तामें ते अति ही भरि रङ्ग॥
तियनि सङ्ग बिहरति भए ऐसें। हाथिनि सङ्ग मत्त गज जैसें॥
अकस्मात आए नारद मुनि। देखि दुहुँनि मत्त जाने पुनि॥
नगिन तीय मुनि को लखि लाजीं। श्राप सों डरपि बेगि ते भाजीं॥
झटि ते जाय पहरि पट लए। ते दोऊ नगन मगनता छए॥
मदिरामत्त लखे नारद मुनि। धन मद करि आँधे जाने पुनि॥
तिन पै कृपा करन के हेत। बोले कछू श्राप कों देत॥

श्री नारद उवाच—

मति भ्रंसक धनमद है जैसो। और कोऊ मद नाँहिन तैसो॥
स्त्री जूआ मदिरा आदि। ये सब ही धनमद के स्वाद॥

धन मद करि निर्दे ह्वै जात। जीवनि मारत नहीं सँकात ॥
नस्वर देह अमर करि मानें। इन्द्रन कों पुनि जीति न जानें ॥
नृप कौ यह तन निर्धार। अन्त समें कृमि विष्टा छार ॥
ता तन हित सब जीव सतावै। पुनि यह अज्ञ नरक ही पावै ॥
या तन कों माता कहै मेरौ। पिता कहै मेरौ नहिं तेरौ ॥
नाना नानी कहैं हमारौ। बली कहैं यहि नाँहिं तिहारौ ॥
कहें अन्नदाता यह मेरौ। मोल लियो तिन कहें सु चेरौ ॥
स्वान कहें पुनि मेरौ मेरौ। कहै अगिन यह अवरन केरौ ॥
यों सब की सत्ता काया में। यह तौ उपजि मिलै माया में ॥
मूरख बिना कौन या तन कों। अपनों जानि हतै जीवनि कों ॥
धन मद अन्ध - दृष्टि जो आहि। भल अञ्जन दरिद्रता ताहि ॥
जातें अहो दरिद्री नर जो। अपनों सम सबकों देखै सो ॥
जैसे कण्टक चुभ्यौ होय जौ। दुख सुख अनुभव में आवै तौ ॥
सो न कबहूँ पर कौ दुख ठानें। कण्टक लगे बिना कह जानें ॥
निर्धन के हंकार न होय। मद हू ताके रहै न कोय ॥
सहज कलेश भोग जो जाकें। सोई अहो परम तप ताकें ॥
निर्धन सदा अन्न ही चहै। भूख सों तन सूख्यौ नित रहै ॥
इन्द्रिन हू को बल घटि जावै। तब यह काहू कों न सतावै ॥
समदर्शी पुनि साधु कोऊ जे। आप मिलें निर्धनहिं सहज ते ॥
ताकी तृष्णा दूरि करें सब। निर्धन तुरत ही शुद्ध होय तब ॥
हरि पद अनुरागी सम चित्त। तिनकों कछू न चाहिय बित्त ॥
जे असाधु धन मद करि भरे। तिनकों तिनहिं दूरि परि हरे ॥
तातें जे विषयी मतवारे। धन मद करि सु आँधरे भारे ॥
यह अज्ञान कृत इनकौ गर्व। सो अब दूरि करत मैं सर्व ॥
ये कुबेर के हैं सुत दोऊ। मद करि छए नाहिन सुध कोऊ ॥
नगन देह हू की सुधि नाँहीं। मगन दोऊ हैं दुर्मद माँही ॥

अब जे दोउ द्रुम हो याते। फिरि ऐसो मद होय न जाते॥
पै इनकौ सुमिरन मति जावौ। हरि के निकट जन्म पुनि पावौ॥
इन पै हमरी कृपा यहै अब। इक सत वर्ष दिव्य बीते जब॥
तब ये अपने धाम सु जावौ। हरिहिं देखि हरि भक्ति सु पावौ॥

श्री शुकदेव उवाच—

हे नृप यह कहि श्रीनारद मुनि। गे नारायण के आश्रम पुनि॥
नलकूबर मनिग्रीव जु दोऊ। भए जोंरुवा अरू सोऊ॥
भक्तनि माँहिं मुष्य नारद जो। साँचौ तिनकौ वचन करन सो॥
रिंगत रिङ्गत हरि आए तहाँ। दोऊ जमलार्जुन हे जहाँ॥
हरि कहि ये कुवेर सुत दोऊ। पुनि मेरौ प्यारौ मुनि सोऊ॥
इन्हें कही नारद जू जैसे। अब मैं हूँ पुनि करौं सु तैसे॥
यह कहि नेती बँधे जु श्रीहरि। ऊखल तिरछौ दियौ तनक करि॥
दुहूँ द्रुमनि में दियौ फँसाय। खेंचति ते अति ही तरराय॥
जरतें उखरि धरनि पर परे। हरि: जोर तें अति थरहरे॥
दोय पुरुष तिनमें तें निकसे। अगिन समान तेज करि विकसे॥
कियौ प्रकाश दसौ दिशि ओरें। दम करि रहित दुहूँ कर जोरें॥
आय नाथ कों माथ नवायौ। कछु इक सुन्दर वचन सुनायौ॥
कृष्ण कृष्ण हे आदि पुरुष हरि। हे जोगेसुर सबही के पर॥
यह सब विश्व तिहारौ रूप। ज्ञानवान ही लखें सरूप॥
देह प्राण इन्द्री हंकार। इनके तुम्ही ईस निर्धार॥
काल विष्णु भगवान त्वमेव। अव्यय ईसुर तुम हीं देव॥
सूछम तीन गुण मयी माया। महतत्व हू तुमनि उपाया॥
पुरुष रूप तुम तुम ही नेता। देह विकार सबै तुम वेता॥
हे हरि तुम हौ सब के माँहीं। इन्द्री जानि सकें तोहिं नाहीं॥
तुम हौ स्वयंप्रकाश भगवान। कैसें जानि सकें गुणवान॥
तुम हीं सबै प्रकासे हैं गुण। निज महिमा ढाँपी तिन सों पुनि॥

ब्रह्म रूप तुम हम सिर नावत। वासुदेव तुम जस उपजावत ॥
तन धारिन में तुव अवतार। ते निर्मय कहें निर्धार ॥
तन धारिन तें अति बल धरें। तुम ही तें तेजनि लै परें ॥
सो तुम सबै मनोरथ देत। लोकनि के मङ्गल के हेत ॥
अब सब ही लै अपने अंस। आनि अवतरे अहो प्रसंस ॥
अहो परम मङ्गल कल्यान। तुमें नमोनम शांति निधान ॥
वासुदेव हे जदुपति अब हम। सीस नाय तुंह करत नमोनम ॥
नारद हमें अनुग्रह कर्यौ। तब यह रूप दीठ है पर्यौ ॥
अब हरि हमकों आज्ञा दीजै। अनुचर जानि कृपा कछु कीजै ॥
वानी नित तुमरौ गुण गावै। मन चरननि तजि अनत न जावै ॥
हाथ नाथ की सेवा करौं। काँनन चरित कान्ह के परौं ॥
सीस ईस पायनि में रहौ। नैन साधु तुव ऐन जु चहौ ॥

श्री शुक-उवाच—

यह सुनि दाम बँधे दामोदर। कछुक दुहुनि सों बोले हँसि करि ॥

श्रीभगवानुवाच—

मुनि कृपाल नें कृपा करी जो। अहो मैं पहले हि जानीं सो ॥
धन मद अन्ध हुते तुम दोऊ। मुनि कृपाल ने खोयौ सोऊ ॥
जिन साधुनि ने मो मन लायौ। चित्तहिं समता में ठहरायौ ॥
तिनके देखत हिये उजारौ। होत है ज्यों रवि उएं सवारौ ॥
अब तुम दोउ जाहु निज धाम। भवनासक जु प्रेम अभिराम ॥
चाहत हे पायौ तुम सोऊ। मत पारायण हौ तुम दोऊ ॥

श्रीशुक उवाच—

बँधे उलूखल सों नँदनन्दन। तिनकों बार बार करि वन्दन ॥
दै परिक्रमा आज्ञा पाय। उत्तर दिसा गए हुलसाय ॥

इति श्री भागवते महा पुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादश अध्याय

दोहा—वृन्दावन में आय हरि, सखनि सङ्ग सुख पाय।
बच्छ चरावत बछासुर, हत्यौ ग्यारहें ध्याय ॥ ११ ॥

श्रीशुक उवाच—

नन्दादिक पुनि गोपहि जिते। द्रुमनि को शब्द सुनत भए तिते॥
बज्रपात ही जानत भए। दौरि सबै वृक्षन ढिंग गए॥
भूमि परे अरुरू दोऊ देखे। गिरिबे के कारण नाहिं पेखे॥
अपनौ सुत ब्रजराज लख्यौ सो। दाम बँध्यो ऊखल खेंचत जो॥
कोनें डारें कैसें परे। यह कहि नन्दादिक अति डरे॥
है उतपात कह्यौ ऐसें तब। ढिग खेलत लरिका बोले तब॥
इहिं कृष्ण ऊखलहिं फँसाय। हम देखत द्रुम दिये गिराय॥
दोय पुरुष तिन निकसत भए। याकी अस्तुति करते गए॥
सुनि यह सबनि असम्भव मान्यौ। किन्हूँ किन्हूँ संसै हू आन्यौ॥
पुत्रहिं देखि नन्द हँसि दियौ। नेती छोरि कण्ठ लै लियौ॥
कबहू गोपी तारी देत। कान्हु गाइ सुन्दर गति लेत॥
हे नृप हरि गोपिन बस ऐसें। सुन्दर काठ पूतरी जैसें॥
कबहुँ कि पटा खराउ मँगावें। तिनकों दौरि दौरि हरि ल्यावें॥
उठें नाहिं बांहनि ठोकें तब। हँसि हँसि गोपी लोटि जाँय सब॥
मैं हों भक्तनि के आधीन। यह हरि सबहिं दिखाय सु दीन॥
सुन्दर बाल खेल हरि कीनें। सब ब्रज कों आनँद बहु दीनें॥
इक दिन इक फल बेचनि आई। फलनि लेहु तिन टेर सुनाई॥
जु हरि ही सबनि देत भले। सोऊ नाज लै फल कों चले॥
कछुक नाज मग में गिर गयौ। कछुक जाय हरि ताकों दयौ॥
हरि अञ्जुलि तिन दई फलिन भरि। ताकी डलिया भरी रतन करि॥
स्याम राम यमुना तट गए। खेलत तहाँ मगन अति भए॥
तिनसों कही रोहिनी जाय। हे सुत बेगि चलौ घर न्हाय॥

जनम नछत्र आजु तुमरे बलि। गैयां बिप्रनि कों दीजैं चलि ॥
अरु देखो ये संग के बारे। मायनि कैसें उबटि सिंगारे ॥
तुम हूँ न्हाय तनक कछु खाय। करि सिंगार खेलियौ आय ॥
बहुत कही आये नाहीं जब। रोहिणि ने जसुमति पठई तब ॥
नेह सों दूध श्रवत कुच दोउ। सुत सनेह सों सुनि रही सोउ ॥
बड़ी बेर कौ खेलत सुत जो। तिन्हें बुलावनि लगी जननि सों॥
कृष्ण कृष्ण कमल दल लोचन। आय दूध पीवौ दुखमोचन ॥
श्रमित भए हौ खेलत जौ अब। भूखे मुहुड़ौ उतरि गयौ सब ॥
संग खिलैया निज गृह जाहु। जनि मोहन खेलहिं बिरमाहु ॥
रिभिटयौ अङ्ग धूरि में तेरौ। न्हाय धोय पट भूषन पहरौ ॥
वर्ष - गाँठ है आजुहि पूजन। गऊ - दान दीजै चलि विप्रन ॥
श्री ब्रजराज लिये पनवारी। बैठे जोहत बाट तिहारी ॥
हे बलिराम बेगि तुम आवौ। संग छोटि भैया कों ल्यावौ ॥
भोजन किये भयो अति काल। चलि किनि भोजन करौ गुपाल ॥
जसुमति हियौ प्रेम करि सान्यों। सर्वोपरि कों सुत करि मान्यों ॥
बहुत बुलाए आए नहिं जब। हाथ पकरि घर लै आई तब ॥
उबटि न्हवाय सिंगारे आछें। भोजन मधुर करायौ पाछें ॥
वृद्ध गोप नन्दादिक जिते। इक दिन बैठि अथाई तिते ॥
देखि महाबन में उतपातें। करन लगे कछु हित की बातें ॥
तहँ उपनन्द नाम इक कोई। ज्ञान वृद्ध बय वृद्ध हु सोई ॥
देश काल सब अर्थ बिचारै। राम कृष्ण के हित मन धारै ॥
तिन कही उब कछु भलौ चहौ जौ। सबै इहाँ ते बेगि चलौ तौ ॥
आवत इहाँ बड़े उतपात। इन लरकन कौ करन विघात ॥
पहलें बालघातिनी गह्यौ। तातें यह क्यों हूँ करि रह्यौ ॥
हरि ही परम अनुग्रह करयौ। सकट न याके ऊपर परयौ ॥
अरु वह दैत्य बधूरौ भयौ। आयौ लरकहिं नभ लै गयौ ॥

सिल पर परयौ टूक ह्वै गयौ। हरि या लरकहिं राखि सु लयौ॥
दुहूँ द्रुमनि के बीच ह्व आयौ। तहुँ हरि ही ने याहि बचायौ॥
तातें और अनर्थ न जौलों। आवै चलौ इहाँ ते तौलों॥
इन दोऊ लरकनि सङ्ग लेहु। इहाँ रहन काहू जिनि देहु॥
गोपी गोप गऊनि के हेत। वन वृन्दावन है रस खेत॥
तृन वीरु धनित हरित हैं जहाँ। झरना झरत रहत गिरि तहाँ॥
तातें हम सुत हीं लैहें अब। सकटनि वेगि जोरि लेवौ सब॥
गैयां सब करि लेहु सु आगें। जौ तुमरे हूँ मन यह लागें॥
यह सुनि गोप एक मति के सब। भलें भलें यों कहन लगे तब॥
सकटनि जोरि धरी सब सामाँ। चले गोप सबही अभिरामा॥
बालक वृद्ध तिया पुनि जितीं। सकटनि पै चढ़ाय लईं तितीं॥
धनुप बान गोपनि कर राजैं। तुरही शृङ्ग अनेक सु बाजैं॥
गोधन सब आगें करि लए। सङ्ग पुरोहित हू छवि छए॥
गोपी रथनि चढ़ीं छवि पावें। लाल के बालचरित सब गावें॥
कुच कुंकुम रञ्जित पट राजें। कण्ठ धुकधुकिन की छवि छाजें॥
जसुमति और रोहिणी भाम। गोदनि लएँ राम घनश्याम॥
इक रथ चढ़ीं महा छवि पावें। बाल चरित सुनि तन न अमावें॥
सबही काल सुखनि कौ धाम। ऐसौ वृन्दावन जो नाम॥
तहाँ आय सब रहे गोप वर। अर्द्ध चन्द्र सौ सकटनि कौ कर॥
जमुन पुलिन गिरि गोधन वन सब। राम स्याम हरषत निरषत छवि॥
बाल खेल तुतरी बोलनि करि। सब ब्रज कों आनन्द दियौ हरि॥
राम स्याम कछुक दिन पाछें। लगे चरावन बछरा आछें॥
सखनि सङ्ग बहु खेलनि करें। ढिग तें नहिन दूरि संचरें॥
होड़नि वादि वादि फलनि चलावें। नाचि नाचि कें वेंनु बजावें॥
कबहुँ मेष वृषभनि के धरें। तैसें हि ठाड़ परस्पर लरें॥
पंछी वनि वनि तैसेंहि बोलें। प्राकृत सिसु ज्यों करत कलोलें॥

बछरनि चारत जमुना तीर। गए सखिन सँग बलि बलवीर॥
तहाँ इक असुर बच्छ ह्वै आयौ। बछरनि मिल्यौ सु हरि लखि पायौ॥
नैंन सेंन दैबलहिं जनाय। भोरे से ह्वै ता ढिंग आय॥
पिछले पाय पूँछ गहि फेरयौ। निपट फिराय कै थरपै गेरयौ॥
बड़ौ रूप धरि असुर सु मरयौ। फलनि झारि धरनी पर परयौ॥
ताकों निरखि सखा सब हरषे। सुर हरषे पुनि फूलनि बरसे॥
हे नृप जे सब लोकनि पारत। ते व्रजराज के बछरनि चारत॥
प्रातहिं एक दिना भोजन करि। बच्छ चरावन निकसि गए हरि॥
जल पीवन जमुना तट गए। छेंकि बच्छ अप अपनें लए॥
पहले बछरनि कों जल प्याई। पुनि जल आपुन पियौ अघाई॥
बक यह नाम सु असुर महान। बक सरूप धरि बैठयौ आनि॥
लरकनि देखि निपट मान्यों भौ। ब्रज में परयौ ठौर गिरि कौ सौ॥
तीक्षण चोंच बली हू महा। हरिहिं लीलि गयौ कहिये कहा॥
देखत बालक ह्वै गए ऐसें। प्राणनि बिनु सब इन्द्री जैसें॥
विधि कौ पिता नन्द कौ बालक। सो सब लील्यौ बक घर घालक॥
लीलत गरें आग सी बरी। बगुला उगलि दिये तब हरी॥
पुनि लीलन कों चोंच सु फारी। सो गहि लीनी तुरत मुरारी॥
सब साधुनि की गति नँद नन्द। सुरनि कों देत बहुत आनन्द॥
लरकनि देखत ही बगुला कों। चीरयौ ऐसें ज्यों तिनुका कों॥
निरखि फूल अमरनि बरसाए। आनक संख अनेक बजाए॥
पुनि हरि कौ जस हू बहु गायौ। सो लखि लरकनि अचरज पायौ॥
हरि सों मिलि पुनि सुखी भए यों। प्राणनि के आए इन्द्री ज्यौं॥
पुनि सब बछरनि लै घर आए। आयकें सबहिं चरित सुनाए॥
सुनि सब ब्रज नें अचरज पायौ। कही यह सुत परलोक तें आयौ॥
उत्कण्ठा सों रहे निहार। तृपति न भये कियौ बहु प्यार॥
अहो या सुतहिं मृत्यु बहु आई। आप ही मरीं सबनि दुखदाई॥

मारन कौं आए दानव जे। लरका कौ कछु करि न सके ते॥
आप ही सबै मरि गए ऐसें। दीपक में पतङ्ग गन जैसें॥
अहो वेद वेत्ता जे कोई। तिनकौ वचन झूँठ नहिं होई॥
गर्ग जु मोहि कहि गए जो जो। आँखिन हमने देख्यौ सो सो॥
यों नन्दादि गोप हैं जिते। राम कृष्ण गुण गावत तिते॥
सदा मगन सुख ही में रहैं। भव दुख करि ते नैंकु न दहैं॥
कबहूँ नारिन के पुल बाँधें। आँख मिचौनी बँदर धाँदें॥
राम कृष्ण की या विध ब्रज में। बाल बैसि बीती खेलनि में॥

इति श्री भागवते महा पुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादश अध्याय

दोहा—ध्याय बारहैं सखा सब, गिले अघासुर नीच।
ताहू कौं मार्यौ हरी, बढ़ि सु गरे के बीच ॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

इक दिन बन भोजन मन करी। तातें प्रात उठे श्री हरी॥
सुन्दर अपनौं शृंङ्ग बजायौ। ताही करि सब सखनि जानयौ॥
सुनत ही सखा सहस्रनि आए। नन्द कुँवर के प्रेम भिजाए॥
वेत्र विषान वेणु अरु छींके। बछरनि पाछें लागत नीके॥
अप अपने अगनित बछराजे। हरि बछरनि में दए मिलाय ते॥
तिनकौं जाय चरावत जहँ तहँ। बाल खेल बहु करें सु तहँ तहँ॥
कनक काच गुञ्जामनि माला। बन में तऊ जाय ब्रज बाल॥
पत्र फूल फल माला करें। धातुनि चीत चन्द्रिका धरें॥
बेन रु बेंत सींग अरु छींके। आपुस माँहि चुरावत नीके॥
पुनि अछिया बछिया करि लेहिं। हँसि ताकी ताकों पुनि देहिं॥
देखा देखत वृन्दावन छवि। कछुक दूरि हरि निकसि जात जब॥
देखें यह को हरि छूवै को। यह कहि दौरत सबै सखा सो॥

कबहुंकि बेनु रु शृंग बजावें। कबहुंकि भृंगनि के सँग गावें ॥
कभूं चाल हंसनि की चलें। कभुं कोकिल सँग कूजत भलें ॥
कभुं बग के सँग ध्यान लगावें। कभूं खगनि छाया गहि धावें ॥
कभूं मोर सङ्ग नृत्य सु करें। कबहूँ सबें जमुना में तरें ॥
कबहूँ निज छाया सँग हँसें। पुनि मेंडुक संग कुदकनि लसें ॥
कबहूँ निज प्रति धुनि सों अरें। गारी देंहि बहुरि हँसि परें ॥
कबहूँ ते बानरनि बिरावें। पुनि तिन सङ्ग द्रुम डारनि धावें॥
कबहूँ तिनकी पूँछ गहें कर। ताही करि चढ़ि जाँय रूख पर ॥
हे नृप जे ज्ञानी जन बड़े। ते नित रहत ब्रह्म सुख गड़े ॥
भक्त तौ सदा इष्ट करि मानें। माया मोहित नर करि जानें ॥
कौन भाग लरकनि कौ कहें। ता हरि सँग नित खेलत रहें ॥
जोगी जन बहु जनमनि धरें। बहु दुख करि मन कों बस करें ॥
तौ ता हरि के पद की धूरि। हे नृप तिनकों निपटें दूरि ॥
जिनके दृग ढिग नित रहँ हरि सो। तिन ब्रज जन कौ भाग कहै को ॥
तब इक आयौ दुष्ट अघासुर। सो सुख देखि सक्यौ न महासुर॥
जाके डर सुर जियौ न मानें। जदपि करत अमृत हू पानें ॥
बकी रु बक कौ छोटो भ्राता। कंस पठायौ अति दुख दाता ॥
सखनि समेत लख्यौ तिन हरी। देखि सु यह निज मन में करी ॥
मेरे दोऊ बहनि रु भ्रात। मारे इहीं नन्द के तात ॥
मेरे गए बहिन भाई जहाँ। सबकों मारि पठाऊँ अब तहाँ ॥
भैया बहनिहिं देंउ तिलाञ्जल। सबकों मारि करों कोऊ छल ॥
ये सब मैं संहारे जबही। ब्रज में के सु मरें सब तबही ॥
ब्रज के प्राण राम घनस्याम। प्राण गएँ तन कौनें काम ॥
असुर ने यह बिचार हिय धरयौ। सबके गिलबे कों मन करयौ ॥
तब गिरि सम अजगर वपु धारयौ। गिरि कन्दर सम बदन पसारयौ ॥
इक योजन लाँबौ बिस्तरयौ। आय राह के माँह सु परयौ ॥
अधर अधर सु धरनि धरि दीनों। उपरलौ होठ गगन में कीनों ॥

मुख के दोऊ गलपटे ताके। हैं गिरिकन्दर की सोभा के॥
टौर सी डाढ़ जीभ मग मानों। मुख में अन्धकार घमड़ानों॥
तीच्छण स्वास पवन जनु आवैं। नैंन दवानल भ्रम उपजावैं॥
ताहि मानि वृन्दावन सुखमा। बालक करन लगे सब उपमा॥
अहो मित्र यह जीव सु को है। हमें गिलन कों साँप सो सो है॥
रवि कर अरुन रङ्ग अंबर कौ। सो जनु साँच होठ अजगर कौ॥
ता छाया करि अरुन धरनि जो। यहि अजगर कौ जनों अधर हो॥
यह गिरिकन्दर मुख है मानों। टौर ये साँप की डाढ़ हैं जानों॥
मारग बड़ौ जीभ जैसौ है। गुहा अँधेरो मुख कैसो है॥
दों की ताती ब्यार है जोई। लगत साँप की स्वास सी सोई॥
दों कें जरे जियनि की वास। सो जनु साँप नें खायौ माँस॥
जौं यह साँच ही अजगर महा। तौ हमकों गिलि जैहे कहा॥
बक ज्यों याहू मारेंगे हरि। यह कहि हरि दिसि देखे हँसि करि॥
पुनि ताके डरपावन हेत। सनमुख गए सब तारी देत॥
सबके अन्तर्जामी श्री हरि। निज मित्रनि की बानी सुनि करि॥
करि बिचार सो राच्छस जान्यों। मीतनि कौ रोकन मन ठान्यों॥
इतने बालक बछरा जिते। असुर उदर मे धसि गए तिते॥
ऐ परि मरे बड़नि भैया जो। तिनकौ बैर लियौ चाहै सो॥
या तें तिन मुख मूँद्यो नाँहि। हरि आए नहिं मुख के माँहिं॥
सकल लोक भय नासक हरि जो। तिनें देखि हरि दुखित भए सो॥
असुर जाठरा अगिन महान। ताके सब भए घास समान॥
इक तौ दीन बहुरि हरिदास। तिनें देखि हरि भए उदास॥
कही कि अब सु कहा मैं करौं। याहि मारि अपनेंनु उद्धरों॥
यह कहि हरि विचार करि लीनों। हँसि ता निकटहि मग पुनि कीनों॥
जा हरि तें अदृष्ट कछु नाँही। सोउ पैठि गए तिहँ मुख माँही॥
घन ओटनि सुर देखत हे सब। हाय हाय ते करन लगे तब॥

कंसादिक था के बांधव जे। अति आनँद में बूड़ि गए ते॥
जिते गए अजगर मुख बीच। सबकौ चूर्न कियौ चहै नीच॥
ताके गल में बढ़ि सु गए हरि। हा हा कार सुरनि कौ सुनि करि॥
हरि के बढ़े, पवन रुकि गयौ। ताकरि पेट सु फूलत भयौ॥
नैंन फिरि गए लाग्यौ तरफन। दसवों द्वार फूटि गयौ तब छन॥
तिह मग ताके प्रान गए जब। मूर्छित बच्छ बाल देखे तब॥
अमृत दृष्टि हरि सींचि उठाए। सुहृदनि पुनि बाहर लै आए॥
घन तन तें निकसी जो जोति। तातें सब दिसि जगमग होति॥
हरि बाहिर निकसे नहिं जौलों। गगन में सो थिर ह्वै रही तौ लों॥
सुरनि के देखत हरि निकसे जब। तिनमें उलटि समाई सो तब॥
मगन अमर गन फूलनि बरसें। नाचति अप्सरगन मन हरषें॥
बाजे वारे वाद्य बजावें। गायक मनभायक सब गावें॥
विप्रनि छिप्र करी अस्तुति पुनि। सब ठां व्यापि रही जै जै धुनि॥
अस्तुति वाद्य गीत जय वानी। हे नृप बहु मङ्गल कारि सानी॥
सो सुनि विधि निज गृह तें आयो। हरि महिमा लखि अचिरज पायौ॥
पुनि जो वह अजगर कौ गात। सूख गुफा सी भई अभिराम॥
हे नृप तामें ब्रज के बाल। बहुत ख्याल खेलें बहु काल॥
हरि हे पाँच बरस के जबै। असुर अघासुर मारयौ तबै॥
लरकनि चरित अघासुर को जौ। छठें बरस ब्रज माँहि कह्यौ सो॥
हे नृप यह सुन्दर नर वपु जो। कृष्ण कृपा करि प्रगट कियौ सो॥
सबके स्रष्टा सबतें शिष्ट। तिनमें यह अचिरज न विशिष्ट॥
नीच अघासुर जिनकौ तन छ्वै। छिन में अति ही शुद्ध गयौ ह्वै॥
पाई मुक्ति दुर्लभ हू महा। हे राजर्षि भयौ तौ कहा॥
हे नृप इनकी प्रतिमा करै। एक बार मन में जो धरै॥
सोऊ भागवती गति पावै। कौन अघासुर बात चलावै॥
नित निज सुख अनुभवसों जिहहरि। सब ही माया दूरि दई करि॥

सो साछात अघासुर हियें। पैठि परे भक्तनि के लियें।
श्रीसूत उवाच—
हे सौनक ये कृष्ण चरित्र। अति विचित्र पुनि परम पवित्र॥
सुनि नृप कौ मन बस ह्वै गयौ। श्री शुक सां पुनि पूछत भयौ।
राजोवाच—
हे मुनि हरि कौ चरित कह्यौ जो। हरि पाँचएं वरष कीनों सो॥
लरकनि छठएं वरस सु कह्यो। यह कछु हरि की माया सही॥
सुनि कें मेरे भयौ कुतूहल। कहियै यह सब चरित अहो बलि।
तुम तें कृष्ण कथामृत पीवें। यातें धन्य भए हम जीवें॥
श्रीसूत उवाच—
हरि चरित्र नृप पूछत भए। पूछत शुक सु गरक ह्वै गए॥
पुनि जब कछुक देह सुधि आई। तब नृप कौ सब कथा सुनाई॥
इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
नवमोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदश अध्याय

दोहा—बच्छ बाल बिधि नें हरे, तैसें करे बनाय।
तिनसां खेले वरष हरि, यही तेरहें ध्याय ॥ १ ॥
श्रीशुक उवाच—
हे महाभाग भागवत भारी। यह तुम प्रश्न कियौ सुखकारी॥
हरि की कथा श्रवन नित धरौ। छिन छिन में तुम नूतन करौ॥
जिनके मन पुनि कान रु बानी। हरि गुण माँहि निपट करि सानी॥
सारग्राही साधु सो तेई। तिनके हैं सुभाव नृप ये ही॥
नए करें सुनि हरि गुण ऐसें। विषयी पर-तिय बातनि जैसें॥
हे नृप स्नेही सिष्य जु आहि। गुह्य तें गुह्य कहत गुरु ताहि॥
गुह्य तें गुह्य कहौं तातें अब। सावधान ह्वै सुनियै सो सब॥
अघ मुख तें जिवाय बछ बाल। लै गए जमुन-पुलिन नन्दलाल॥

तहाँ जाय कही बात सु जीकी। अहो यह ठौर खेल कों नीकी ॥
उज्जल मृदुल बालुका सोहत। इत ये अमल कमल मन मोहत ॥
तिन पर आय भ्रमर गुञ्जारत। ता करि सब सरवर झङ्कारत ॥
इत ये फूल लेहैं द्रुम वेली। तिन में किलकि करत खग केली ॥
दिन हू चढयौ रु भूखे हैं सब। याते ह्यां भोजन कीजै अब ॥
अरु ये ढिग जल तृन हैं भारे। सुख पैहैं बछरा हू सारे ॥
पानी प्यायौ बछरनि यह सुनि। हेर तृननि में छोड़ि दए पुनि ॥
अब अपनी काँवरि खोली तब। हरि सँग भोजन कों बैठे सब ॥
और पास बैठे व्रज बाला। सोहत बीच नन्द के लाला ॥
अति प्रसन्न हरि सनमुख ऐसें। कमल कर्णिका के दल जैसें ॥
फूल पांखुरी पल्लव छीके। सिला छाल फल अंकुर नीके ॥
भोजन हित भाजन ये ठने। भोजन करत ग्वाल छवि सने ॥
सबै परसपर खात खवावत। हँसत हँसावत कछुक चखावत ॥
नन्दलाल पट कटि कसि लयौ। वेणु उरसि तामें पुनि दयौ ॥
काँख में वेंत रु सींग लियौ धार। सन्यौं कौर सोहत बाँए कर ॥
अँगुरिनि माँहि अचार सु राजत। ऐसें मित्रनि बीच विराजत ॥
करि परिहास हँसावत प्रिय जन। अमर नगर में लखत अमर गन ॥
जज्ञ भोक्ता पूरन हरि जे। लरकनि सङ्ग करत भोजन ते ॥
हे नृप जिनके हरि ही में मन। भोजन करत रहे ते व्रज जन ॥
बछरा चरत चरत चलि गए। बन अति सघन न दीसत भए ॥
लरकनि देखि महा भय पायौ। तब हरि निर्भय वचन सुनायौ ॥
अहो करौ तुम भोजन सबै। मैं बछरनि लै आवत अबै ॥
यह कहि बछरनि ढूँढन चले। कर में कौर लगत अति भले ॥
ढूँढीं गिरिकन्दर अरु कुञ्जें। निपट विकट ढूँढे द्रुम पुञ्जें ॥
हे नृप जोति अघासुर की जो। उलटि समाइ गइ हरि में सो ॥
यह लखि ब्रह्मा अचिरज भरयौ। पुनि महिमा देखनि मन करयौ ॥

हरि बछरनि लै गयौ चुराय। लरकनि हूँ पुनि लै गयौ आय॥
तिनकों और ठौर धरि आयौ। आय अपनपौ गगन छिपायौ॥
हरि ने जब बछरा नहिं पाए। तब फिरि के मित्रनि ढिग आए॥
तहाँ मित्र हू देखे नाहीं। दुहुनि लगे ढूँढ़न बन माहीं॥
अति सर्वज्ञ नन्द के लाल। कहूँ न पायें बछरा बाल॥
तब सहसा हरि नें यह जान्यों। यह सुकर्म ब्रह्मा ने ठान्यों॥
तब जगकर्त्ता अम्बुज नैन। लरकनि की मायनि सुख दैन॥
विधि हू के सुख कों नन्दलाल। आप ही भए बच्छ अरु बाल॥
वेनु सींग दल छरी रु छींके। भूषन बसन सील गुन नीके॥
आकृत आयु विहार रु नाम। बाल बच्छ जैसें अभिराम॥
तैसें ई सब आपुन बनें। नेंकु न फेर फार करि सनें॥
वेद कहत हरि रूप जगत सब। सो यह बचन साँच कीनों अब॥
आप ही बछरा आप ही बाल। आप ही घेरि चले नन्दलाल॥
आप ही खेलत आवत भए। आप ही छेकि बछरु-बाल ए॥
तिन खरकनि तिनके बछरनि करि। आप ही सबके घरनि गए हरि॥
तिनकी मायनि बैंन सुनें जब। दौरि आय गर लाय लये सब॥
स्नेह तें दूध कुचन तें बहै। सुतनि कों परब्रह्म करि लहै॥
अमृत तें स्वादरु मादक भारी। ता दूधहिं प्यावत महँतारी॥
पुनि मायनि नें उबटि न्हवाए॥ भूषन बसन विविधि पहिराए॥
लाय अरगजा तिलक सु कीने। डीठनि हेत डिठौंना दीने॥
मधुर मधुर पुनि बस्तु खवाईं। इतने ईं सु साँझ ह्वै आई॥
हे नृप सुन्दर बाल चरित करि। मायनि कों बहु सुख दीने हरि॥
गैयां हूँ कत दौरीं आईं। एननि दूधनि धार बहाई॥
ते बछरनि कों प्यावन लागीं। चाटति अति सनेह रंग पागीं॥
भाव पहल कौ सोहै सबकें। एक सनेह बढ़ि गयौ अब कें॥
पहल सौ हरि हू के सुत भाव। पै इक माया कौ अधिकाव॥

सुतनि में गोपनि को सनेह अस। पहल हुतौ नन्दनन्दन में जस ॥
ऐसें आप आपनपे ही करि। ब्रज बन खेले एक बरष हरि ॥
बरष में बाकी रहे कछुक दिन। तब बन बलहु संग गए इक दिन ॥
गोधन ऊपर चरनि गाय जे। ब्रज ढिंग चरत देखि बछरन ते ॥
स्नेह सों बँधीं भूलि तन गईं। अति उतावली दौरति भईं ॥
ग्रीवा पूँछ उठाय सु धाईं। दूधनि की पुनि धार बहाईं ॥
ग्वालनि पै नहिं रोकी गईं। सब बछरनि ढिग आवति भईं ॥
बखरे बछरनि लगीं चुखावन। चाटति निपट नेह सरसावन ॥
गायनि रोकि सके न गोप जे। होय खिसानें क्रोध भरे ते ॥
उखट पुखट धाए जे आए। बाल बच्छ लखि प्रेम भिजाए ॥
क्रोध गयौ पुनि भुजा उठाय। लरका लए गरे सों लाय ॥
पुनि तिनके सिर कौ करि घ्रान। पायौ तिन आनन्द महान ॥
पुनि ते चले महा हुलसात। लरकनि सुमिरि सु रोवत जात ॥
यह गोपनि की अद्भुत प्रीति। पुनि तिन गायन की लखि रीति॥
लगे बिचारन कारन राम। यह कछु है अद्भुत अभिराम ॥
सबकी प्रीति सुतनि में ऐसी। सर्वोत्तम हरि में ही जैसी ॥
हरि में मेरो प्रेम हो जैसो। बच्छ बालकनि में अब तैसो ॥
यह काहू की माया भुर की। सुर की नर की किधों असुर की ॥
है यह मेरे भर्त्ता ही की। तब मोहिनी है मोही की ॥
यह कहि ज्ञाननि में करि राम। सब ही कों सु लख्यौ इक स्याम ॥
पुनि हरि सों कही तुम ही हो सब। नाहिन सुर नाहिन ये रिषि अब॥
यह कहा मोहि कहौ हरि सही। हरि तब करि संक्षेप सु कही ॥
इक छिन ब्रह्मा की बीती अब। पुनि बिधि आय लखे तैसें सब ॥
हरि सँग क्रीड़त हैं सब तैसें। लखि बिधि मन में बोल्यो ऐसें ॥
हरि के बालक बछरा हैं जे। माया सज्जा में सोवत ते ॥
तिन तें इतर सु ये हैं कौन। तबके हरि संग खेलत जौन ॥

विधि नें बहुत ध्यान हूँ कीन्हों। साँच कौन से यह नहिं चीन्हों॥
जो हरि आप मोह नहिं पावै। पुनि सब जगहिं मोह उपजावै॥
विधि माया डारयौ चहैं तापै। निज माया मोहित भयौ आपै॥
लघु की माया बड़ेनि माँहिं। तनक हु करै प्रभाव सु नाँहिं॥
पुनि याकी घटती करैं ऐसें। दिन में जोति खदोत की जैसें॥
पुनि यों करै प्रभाव सु नाँहिं। जैसें अन्धकार निसि माँहिं॥
पुनि विधि के देखत ही तबै। श्याम चतुर्भुज ह्वै गए सबै॥
गदा रु संग चक्र अम्बुज कर। सुन्दर पीताम्बरनि रहे धरि॥
कुण्डल मुकुट हार वनमाला। हृदें लच्छमी रेख रसाला॥
करनि ऐंठवां करे जटित नग। अङ्गद अँगुठी रही सु जगमग॥
कटि में छुद्र घण्टिका राजें। चरननि में नूपुर छवि छाजें॥
पुनि लांबी तुलसी की माला। भक्तनि पहराई सु रसाला॥
उज्जल हास सतोगुण मनों। अरुन कटाक्षर जो गुण जनों॥
तिन करि भक्त मनोरथ जिते। पालत उपजावत रहें तिते॥
ब्रह्मा आदि चराचर जिते। मूरति धरें जुद जुदे तिते॥
नृत्य गीत पूजा की सामाँ। लै सब पूजत हैं अभिरामा॥
हे नृप आठ सिद्धि अनिमादिक। शक्ति जिती माया विद्यादिक॥
महदादिक चौबीस तत्व जे। कर जोरें सब ठाढ़े हैं ते॥
काल स्वभाव रु संस्कार पुनि। काम रु कर्म बहुरि तीनों गुन॥
हरि महिमा करि डरपत भारे। हाथनि जोरें ठाढ़े सारे॥
सत्य ज्ञान बहु आनन्दनि की। सदा एक रस मूरति जिनकी॥
पुनि जे मुनि उपनिषद बखानें। तिनकी महिमा तेउ न जानें॥
एक बेर ही तिहिं ब्रह्मा तब। परब्रह्म के रूप लखे सब॥
जा पर-ब्रह्म की जो है जोति। ताकरि जड़ जङ्गम सब होति॥
हरि महिमा विधि ने देखी जब। कौतुक सों जड़ सौ ह्वै गयौ तब॥
ता छिन विधि सोभित भयौ ऐसें। देवी ढिंग कोऊ पुतरी जैसें॥

सु प्रकास सुख रूप सु सदा। माया तिन्हें न छीवत कदा॥
मायिक सुख सब त्याग करै जब। उपनिषदनि करि ताहि लखें तब॥
ता हरि की अतर्क महिमा जो। नेंकु न विधि नहिं जानि सक्यौ सो॥
देखि हू ताहि सक्यौ नाहिन जब। सब माया हरि ढाँपि लई तब॥
पुनि विधि जागि पर्यौ सो ऐसें। मरि कें बहुरि उठै कोऊ जैसें॥
करनि सों मींड़ि नेंन खोले तब। अपनपौ सहित जगत देख्यौ सब॥
पुनि तानें सबरी दिसि देखीं। ढिग वृन्दावन अवनी पेखी॥
सब द्रुम पर उपकारी जामें। सबकी जीवनमूरि रु तामें॥
तातें काम रु लोभादिक जे। तामें कबहुँ न आइ सकें ते॥
नर अरु सिंह मित्र हैं जहाँ। सब ही जीव निर्वैर सु तहाँ॥
तहाँ निरखे ब्रजराज कुमार। अद्वय परब्रह्म रु अपार॥
जिनकौ है अगाध पुनि बोध। सोऊ बाल बछरनि की सोध॥
करत फिरत पहले की नाँही। सन्यौं कौर है करके माँहीं॥
देख कैं कूदि हंस ते पर्यौ। कनक दण्ड सौ धर पर डर्यौ॥
आंसुनि करि हरि के पग धोय। तिनमें लोट पोट पुनि होय॥
ज्यों ज्यों महिमा सुमिरन करै। त्यों त्यों उठि चरननि में परै॥
विधि के चारि मुकुट हैं जोई। हरि चरननि में लुठत हैं सोई॥
हरें हरें पुनि ठाढ़ौ ह्वै करि। नेंन पोंछि दोऊ जोरि लए कर॥
नारि नैरही काँपत जात। मुँह तें निकरि सकत नहिं बात॥
पुनि ज्यों त्यों मन बस कर लयौ। हरि की अस्तुति करत सु भयौ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
त्रिदशोऽध्यायः॥ १३॥

चतुर्दश अध्याय

दोहा—निज माया मोहित सुविधि, जानि सक्यौ कछु नाँहिं।
तब हरि की अस्तुति करी, ध्याय चौदहें माँहिं॥

ब्रह्मोवाच—

हे अस्तुति लायक घनश्याम। पीत वसन दामिन अभिराम॥

गुञ्जमाल वनमाल विराजै। सीस चन्द्रिका मुख छवि छाजै॥
वेंत बिषान वेंणु पुनि धरें। सन्यौ कौर बाँए कर करें॥
सुन्दर कोमल चरन तुम्हार। नमो नमो ब्रजराज कुमार॥
हे हरि यह तुमरौ जु सरूप। केवल निज सुख अनुभव रूप॥
भक्तनि की इच्छा हित धरयौ। मो पर बहुरि अनुग्रह करयौ॥
हे हरि याकी महिमा जोई। ध्यान हूँ में नहिं जानें कोई॥
साधु सदा गावत तुमरे गुन। तिनकों जे पीवत जीवत पुनि॥
मन वच क्रम करि वन्दन करें। पुनि सब जान जतन परिहरें॥
घर बैठें तुम तिनकों जीते। ज्ञानी वपुरे डोलत रीते॥
सुखद भक्ति कों जे परिहरें। ज्ञान हेत बहु क्लेशनि करें॥
ते केवल दुःख पावें ऐसे। धान छाँड़ि कूटत कुश जैसे॥
पहले योगी जन हे हरी। तुम में क्रिया समर्पन करी॥
कथा श्रवण करि भक्तिहिं पाय। सुख सों तुमें मिले ते आय॥
निर्गुण तुम तिनकी महिमा जो। बिन उज्जल मन जानि सकै को॥
होय अनन्य विकार तजै सब। तुम में तदाकार होवै जब॥
तब ही तौ तुम कों पहिचानें। और भाँति क्यों हूँ नहिं जानें॥
जग के हित तुम प्रगट भए हौ। अप्राकृति ही गुरानि छए हौ॥
निपुन हूँ तुमरे गुण न सकें गुनि। काल पाय रज कन हूँ गनें पुनि॥
अंगनि लेहिं मेघ की धारा। पुनि गनि लेंहि गगन के तारा॥
जो जन निज कृत कर्मनि भरैं। तुमरी कृपा चाहिबो करें॥
तुमें नवें ते नमन बचननि। सोऊ मुक्ति कों पावें हे हरि॥
हे परमातम आदि अनन्त। तुमरी माया कौ नहिं अन्त॥
यह देखौ दुर्जनता मेरी। महिमा देखनि ता प्रभु केरी॥
मैं अपनी माया विस्तारी। हे प्रभु मोसौ कौन अनारी॥
मैं हों तुमरे आगें ऐसें। अगिन के पास पतङ्गा जैसें॥
हम तुमरी महिमा नहिं जानें। न्यारे ईस आपकों मानें॥

पुनि सनि रहे रजोगुण माँहीं। माया अन्ध सु सूझत नाहीं ॥
अपनो जानि कृपा अब कीजै। पुनि मेरौ अपराध न लीजै ॥
हे प्रभु माया अरु हङ्कार। अगिन भूमि जल और बयार ॥
ये ब्रह्माण्ड घिरयौ है इन करि। तामें सात विलांद कौ मैं हरि ॥
अहो ऐसे ब्रह्माण्ड अनन्त। जिनकौ गनत न लहियै अन्त ॥
ते तुव रोम कूप भरमें यों। जाल रंध्र माँहीं रज कन यों ॥
ता तें हे हरि मैं सो कहाँ। अरु कहँ तुमरी महिमा महा ॥
हे प्रभु सब तुमरे उर माँहीं। या तें मो पै कोपौ नाँहीं ॥
ज्यों सुत जननी उर पग तानें। तौ कह मात कोप कछु ठानें ॥
मैं तो तुम हीं तें जन्म्यों पुनि। झूठ नहीं यह कहत सबै मुनि ॥
प्रलै काल कौ जल जब छयौ। विधि हरि-नाभि कमल तें भयौ ॥
तुम सबके द्रष्टा हे ईस। तुम हीं सर्वातम जगदीस ॥
तुम कहा हौ नारायण नाहीं। पुनि जो नारायण जल माँहीं ॥
सोऊ साँच है मूर्त्ति तिहारी। या में कछू न झूँठ मुरारी ॥
तुम केवल जल में होते जो। मैं बहु ढूंढ़ि लहे क्यों न तौ ॥
तुम ही पुनि छिन हिय में आए। तहूँ न मैं फिरि दरसन पाए ॥
माया के सुनियन्ता तुम हरि। यह अवतार जु पुनि तुमहीं करि ॥
यह मायक प्रपञ्च है जितौ। मात उदर में देखिय तितौ ॥
सहित अपनपौ तुमहु लखे तहँ। तुमरी लीला बिना बनें कँह ॥
अरु अपनी अचिरज लीला जो। अब ही हम हूँ को दिखई सो ॥
पहलें मैं तुम देखे एक। बाल बच्छ पुनि सहित अनेक ॥
पुनि सब लखे चतुर्भुज रूप। धरें इक इक ब्रह्माण्ड अनूप ॥
मो समेत पुनि तत्व हैं जिते। तिन आगें सब ठाढ़े तिते ॥
पुनि इकले तुम ही में लहे। अद्वय ब्रह्म अनन्त कहे ॥
तुव सरूप कौ ज्ञान न जिन्हें। माया करि बहु भासौ तिन्हें ॥
सृजन माँहि मोसे जु प्रकासौ। नास माँहिं शिव से ह्वै भासौ ॥

पालन में ये तुम हौ जोई। विष्णु रूप सें भासौ सोई॥
सुर नर ऋषि पशु जल के जन्त। इनमें तुमरे जनम अनन्त॥
ते दुष्टनि के मारन कारन। निज भक्तनि कों सुख विस्तारन॥
हे व्यापक परमातम हे हरि। लीला करत योगमाया करि॥
तिनकों कोउ न जानें ऐसें। कितौं कहाँ कब होत हैं कैसें॥
तातें सब जग भूठौ ऐसें। हे प्रभु सोए सुपन है जैसें॥
ज्ञान रहित पुनि दुःख की खानि। इक तुम नित सुख रूप समान॥
माया तें यह उपजै नासै। कारन तुम यों साँचौ भासै॥
सत्य एक तुम पुरुष पुराण। नित्य आदि अक्षर सुख खानि॥
स्वप्रकाश आत्मा रु अनन्त। निर्मल पूरन कहत सु सन्त॥
निरि उपाधि अरु अमृत सरूप। तुमरौ सौ न दूसरौ रूप॥
गुरु ही सूर्य रूप हैं हे हरि। ज्ञान नेत्र तिन तें सु पाय करि॥
निज आतम करि तुमें निहारें। तुमकों सब सर्वात्म उचारें॥
भूठो भव समुद्र यह हे हरि। सदा तरयौ ही सौ है ता करि॥
अपनें करि न तुमें जानें जो। ता करि संसारहिं पावै सो॥
तुमें जानि पुनि छूटि जाय यों। रस्सी जानि सर्प भय तें ज्यों॥
जग सों बाँधिबौ छुटिबौ जोई। हैं अज्ञान संज्ञक ये दोई॥
सो तुम हीं तें होत हैं हे हरि। तुम अनुभव अखण्ड विशुद्ध पर॥
तुम में पुनि दोऊ नहिं ऐसे। सूर्य माँहि रात दिन जैसें॥
हे हरि तुम जु आत्मा आहि। देह रूप करि जानें ताहि॥
पुनि तुमकौं ढूँढत ते बाहिर। अज्ञ अज्ञता कहा कहियै हरि॥
पुनि तनकी जड़ता तजि सन्त। तुमकों जानत अहो अनन्त॥
सर्प बुद्धि डोरी में जौलों। सुद्ध सरूप न भासै तौलों॥
तऊ तुव पद पङ्कज करुना कन। या जग में पावत हैं जे जन॥
तेई तुव महिमा जानत सुनि। ढूँढत हू पुनि पावत नहिं मुनि॥
तातें मैं अब याही तन करि। अथवा जड़ जङ्गम कौ वपु धरि॥

तुमरे भक्तनि कौ कछु ह्वै करि। तुमरे पद नौका सेऊँ हरि॥
भूरि भाग इतनों मम नाथ। मो तौ है तुमरे ई हाथ॥
हैं ब्रज की गो गोपी जितीं। हे विभु निपट धन्य ये तितीं॥
बालक बच्छ भए तुम जिनके। पिये दूध आनि हरषि सु तिनके॥
जा तुमरी सु तृपति के अर्थ। अबहूं लों नहिं जज्ञ समर्थ॥
धन्य धन्य पुनि भाग सु तिनके। नन्द के ब्रज में वास हैं जिनके॥
पूरन परमानन्द ब्रह्म जो। जिनको मित्र सदा कौ है सो॥
उनकी रहौ धन्य हम हूँ पै। इन्द्रिन के जु देवता हैं जे॥
इनके दृग प्यालनि में भरि भरि। बार बार हम पीवत हे हरि॥
तुव पद पङ्कज कौ मकरन्द। अमृत सुस्वाद देत आनन्द॥
तातें भूरि भाग मम कीजें। गोकुल में कछु जनम सु दीजें॥
जहाँ काहुक ब्रज जन की पद रज। तामें यह अन्हाय मूरख अज॥
तुमहीं जिनकी जीवन अद्भुत। तुव पद रज अजहूँ ढूँढत श्रुति॥
हे हरि मो चित भरमै महा। ब्रजवासिन तुम देहौ कहा॥
सब फल हैं हरि तुमरे माँहीं। तुम ते परें और फल नाहीं॥
सु तौ पूतना साधु बेष करि। सहित कुटुम्ब प्राप्त भई हे हरि॥
ब्रज जन के तन मन धन धाम। तुम्हरे ई निमित्त हे स्याम॥
घर हूँ तब लौं बंदी खाने। रागादिक हू चोर बखाने॥
मोह रूप हू बैरी तौलों। तुमरो भक्त भयो नहिं जौलों॥
अप्राकृति ह्वै प्राकृत जैसें। तुम भूतल में खेलत ऐसें॥
सो तौ निज भक्तनि सुख दैन। निश्चैं यही कमल दल नैन॥
तुव वैभव लानें ते जानों। हे प्रभु मैं कहा बहुत बखानों॥
मैं तौ तन मन वचननि हूँ करि। तुव वैभव नहिं जानि सकों हरि॥
हे प्रभु मोहि आज्ञा दीजै अब। सब के द्रष्टा तुम जानत सब॥
तुम हीं जग के पालक हरी। मैं यह देह समर्पन करी॥
हे भगवन हे कृष्ण मुरारी। तुमें सदा दण्डौत हमारी॥

यदुकुल कमल प्रफुल्लित करयौ। पुनि पाखण्ड अँध्यारौ हरयौ॥
गो द्विज धर सुर ये हैं वारिधि। तिनहिं बढ़ावनि आप कलानिधि॥
पुनि तुम धर के असुर संहारे। सूर्य्यादि तोहि पूजत सारे॥

श्री शुक उवाच—

यों विधि हरि की अस्तुति कीनी। तीन बार परिकरमा दीनी॥
पुनि हरि चरनन में सिर धरयौ। बहुरि सुधाम गमन तिन करयौ॥
पुनि हरि वे ई बछरा लाए। जिहीं पुलिन सिसु बैठे पाये॥
सुन्दर हरि की माया छुए। बरषहिं इक छिन मानत भए॥
हरि माया मोहित हैं जे नर। कहा कहा नहिं भूलत ते नर॥
सब जग हरि माया करि गह्यौ। भूलि अपनपौ हू कों रह्यौ॥
हरिहिं देखि सब मित्रनि कही। मित्र बेगि तुम आए सही॥
तुम बिन हम इक कौर न खायौ। तुहूँ कौर कर लीयें आयौ॥
अब आवौ कछु खैयैं मिलि करि। तब हँसि कें भोजन कीनों हरि॥
अब वन तें हरि घर कों आवत। मोतनि अजगर चर्म दिखावत॥
फूल चन्द्रिका तन वन धात। बजवत वेंणु श्रृंग पुनि पात॥
कबहुँ कि बछरनि टेरि बुलावत। मित्र पवित्र कीर्त्ति सब गावत॥
गोपी दृगनि कों उत्सव रूप। घर आए हरि परम अनूप॥
घरनि आय लरकनि यह कही। जसुमति नन्द सुवन नें सही॥
आजु एक अजगर कों मारि। बालक बच्छ लिये उद्धारि॥

श्री राजोवाच—

जो सनेह निज सुतनि में नाँहीं। सो ब्रज जन कौ हरि के माँहीं॥
पर सुत माँहिं बनें यह कैसें। हे मुनि कहियै हैं यह जैसें॥

श्री शुक उवाच—

हे नृप अपनौ आतमा जोई। सब प्राणिन कौ प्यारौ सोई॥
पुनि ये पुत्र धनादिक जिते। ताही करि प्यारे हैं तिते॥
तातें प्यारौ आतम जैसौ। सुत वित गृह नहिं प्यारौ ऐसौ॥

हे नृप सत्तम सुनि दै कानें। जो नर तनहिं आत्मा जानें ॥
ताकों यह तन प्रिय है जैसौ। तन सम्बन्धी प्रिय नहिं तैसौ ॥
तऊ देह तें आत्मा जोई। हे नृप निपट सु प्यारी सोई ॥
जातें तन हूँ छीन भए नर। बहुत जियौ चाहत हे नृप वर ॥
तातें हे नृप आत्मा जोई। प्राणनि कों अति प्यारौ सोई ॥
पुनि यह जगत चराचर जितौ। ताही करि प्यारौ है तितौ ॥
तातें हरि कों जानों भूप। सर्वातम के आतम रूप ॥
सोउ जगत हित निज माया करि। तन धारी से भासत हैं हरि ॥
जो कोई हरिहिं जानि अनुरागै। ताहि चराचर हरि ही लागै ॥
हरि कौ रूप सबनि के माँहीं। हरि सरूप बिन है कछु नाँहीं ॥
सबकों आश्रै जीव सुजानि। ताकों आश्रय हैं भगवान ॥
ता बिन और वस्तु है कौन। हे नृप यह तुम ही कहौ क्यों न ॥
अति पवित्र जस श्री मुरारि जो। तिनकों पद पल्लव नौका जो ॥
ताकौ आश्रय लीनों है जिहँ। गोखुर सम भव समुद्र कियौ तिहँ ॥
पुनि सो परम धाम को पावै। बहुरि न भव समुद्र में आवै ॥
एक वरष शिशु कहाँ रहे यह। तुम पूछी नृप हम सु दई कहि ॥
मित्रनि सहित चरित हरि जू कौ। बहुरों मथन अघासुर हू कौ ॥
वन भोजन पुनि बछरनि हारबौ। हरि कौ पुनि सरूप सब करिबौ ॥
पुनि विधि अस्तुति कहैं रु गावै। सो नर सकल मनोरथ पावै ॥
बहुत खेल खेले नन्दलाल। चोर मिहचनी कवड़ी ख्याल ॥
सेतबंध आदिक लीला करि। अंतर्हित कौ मार कियौ हरि ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

दोहा—गोचारन धेनुक सुबध, कह्यौ पन्द्रहें ध्याय।
विष जल सों मूच्छित भए, लए बछ बाल जिवाय ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच—

पुनि पौ गण्ड पाय अभिराम। सोभित भए राम घनस्याम॥
सखिन सँग लगे गाय चरावन। फिरत पगनि वृन्दावन पावन॥
राम सहित हरि वेणु बजावत। मित्र वृन्द सब कीरति गावत॥
फूलन करि जो झलरि रह्यौ बन। तहाँ हरि गए कछु खेलनि की मनि॥
गोधन सब आगें करि लए। तिन बन तिनहूं कों सुख दए॥
खग मृग भृंगनि की मधुरी धुनि। कमल सुगन्ध पगन ल्यावत पुनि॥
सरनि में भरे अमल जल ऐसें। होंय महंतनि के मन जैसें॥
देखि के हरि हिय आनन्द भरयौ। पुनि तहाँ विहरन कों मन करयौ॥
तहाँ के द्रुम दल फल फूलनि करि। नै करि हारे पग माँहि रहे परि॥
तिनें देखि हरषे हरि सही। हँसि हिय बात भ्रात सों कही॥
अहो भ्रात ह्यां के द्रुम जिते। अमरनि करि पूजित हों तिते॥
ते देखौ तुव चरन रहे नै। हाथनि में फल फूल भेट लै॥
कहत कि हम अज्ञान सु भरे। पै तुम या वन के द्रुम करे॥
अरु ये भृंङ्ग हैं भक्त तिहारे। निश्चै ये मुनि ही हैं सारे॥
पुनि तुमरे जस कों ये गावत। जातें सबै शुद्धता पावत॥
तुम छिपि जदपि फिरत वन माँहीं। तऊ तुमें ये छोड़त नाँहीं॥
अहो भ्रात ह्यां अचिरज कहा। तुव संग फिरत पुरुष जो महा॥
ब्रज तिय चितैं देत सुख जैसें। हरिनी हूँ तोहि चितवत ऐसें॥
कोकिल मोर देत सुख यातें। इनके घर आये तुम जातें॥
साधुनि कौ स्वभाव है यही। ये वनवासी धन्य सु सही॥
धर तृन वीरुध धन्य है यातें। तुव परसहि पावत जातें॥
धन है द्रुम वेलिन कौ जीवन। जातें होत है तुव कर छीवन॥
खग मृग सर गिरि धन्य हैं यातें। दया सहित तुम देखत जातें॥
जो उर चहति समुद्र की कन्या। ताहि परसि गोपी भईं धन्या॥
ऐसे जो सोभित वृन्दावन। ताहि देखि हरि मगन भए मन॥

गिरि झरननि तट धेंनु चुगाईं। सखनि सङ्ग बिहरे दोऊ भाई ॥
राम स्याम वनमाला धरें। सखी सबै जस गान सु करें ॥
मद करि मतवारे जे भृंग। आप कभूं गावत तिन सङ्ग ॥
कभूं मधुर कोकिल संग कूकें। कबहुँ कि सँग पुनि सूवा हूकें ॥
कभूं हंस सँग धुनि छवि पावें। कभूं मोर सँग नाचि हँसावें ॥
कबहूँ गैयां दूरि जाति जब। धौरी धूमरि कहि टेरत तब ॥
मेघनि की गरजनि सम टेरनि। सुनत सखा सुख पावत टेरनि ॥
कबहुँ कि चकवा कुञ्ज चकोर। बहुरों भरद्वाज पुनि मोर ॥
तैसे ह्वै तिन संग धुनि करें। कबहुँक व्याघ्र सिंह सों डरें ॥
श्रमित कभूं बलदेव होत जब। सखनि गोद में सोय जात तब ॥
श्री हरि पाय पलोटन् करें। बड़ं भ्रात कौ श्रम यों हरें ॥
कबहूँ सखा सु नाचें गावें। कभूं कूदि पुनि युद्ध मचावें ॥
तब हँसि राम श्याम कर गहैं। सखनि सुजस अपने मुख कहैं ॥
कबहूँ श्रीहरि श्रमित होत जब। सघन तरुनि तर गमन करत तब॥
तहाँ नव पल्लव की सज्जा करि। सखनि गोद में सोय जात हरि ॥
तब कोउ पाय पलोटत मित्र। कोऊ बीजना करत पवित्र ॥
कोऊ सनेही हरें सु गावत। जातें कमल नेंन सुख पावत ॥
ऐसें अपनीं ही माया करि। निज महिमा दुराय राखी हरि ॥
रमा पलोटति पाय सु जाकें। जानैं परत चरित नहिं ताकें ॥
सखनि संग खेलत हरि ऐसें। प्राकृत के संग प्राकृत जैसें ॥
बीच बीच ईश्वरता करें। राम स्याम सब के मन हरें ॥
इक श्रीदामा नाम सु ग्वाल। राम स्याम को सखा रसाल ॥
स्तोक-कृष्ण पुनि सुबलादिक जे। करि सनेह दुहुँ बन बोले ते ॥
राम राम हे महाबली सुनि। सुनों दुष्ट हन्ता हरि हू पुनि ॥
इत तें निकट ताल बन महा। बहुत मिष्ट फल कहियैं कहा ॥
रहै दुष्ट धेंनुक ता माँही। काहू खान देत सों नांहीं ॥

सो अति बली गधा कौ रूप। सुनो राम घनस्याम अनूप॥
बहुत गधा पुनि सङ्ग हैं ताके। बल हू करि सु बरोबरि बाकें॥
सो वह गधा नरनि कों खात। तातें तहाँ न कोऊ जात॥
फल मीठे सुगन्ध सुखकारी। आवत मन ललचावत भारी॥
ताके फल सो हमें खवावौ। हे हरि ता करि चाह मिटावौ॥
अहो राम मन माँहिं रुचै जौ। वेगि इहाँ ते तहाँ चलौ तौ॥
यह मित्रनि कौ वचन सुन्यों जब। राम स्याम कछु मुसिक्याए तब॥
पूरन करन सखनि कौ काम। तहाँ गए श्री राम रु स्याम॥
बल तहाँ ताल हिलाए ऐसें। मतवारौ कोऊ हाथी जैसें॥
फलनि के परत शब्द जो भयौ। सो सुनि असुर गधा पुनि लयौ॥
सुनत ही सो धायौ आयौ जब। वृच्छनि सहित धरनि काँपी तब॥
रेंकत बलजू के ढिग आय। उर में मारे पिछले पाय॥
पुनि रिसाय पिछले पग जेई। पाछें आय चलाए तेई॥
ते बल ने कर में गहि लए। पुनि ता गधहिं फिरावत भए॥
फेरत तासु जीव कढ़ि गयौ। ताल फुलक पर फैंकि सु दयौ॥
ता करि काँपि सु ताल परयौ जब। ढिग हू के कों लै सु गिरयौ तब॥
सोऊ गिरतहि लै गिरयौ और। यों सब बन कौ कीनों चौर॥
बल नें दए बिछाय सब ऐसें। महा पवन करि बिछ्रत हैं जैसें॥
ईस अनन्त बहुरि भगवान। तिनमें यह अचिरज न महान॥
जिनमें ओत प्रोत जग ऐसें। तंतुनि माँहि बस्त्र हैं जैसें॥
धेनुक मरे गधा हैं जिते। राम स्याम ढिग आए तिते॥
तिही भाँति मारे पुनि सोऊ। गहि गहि के पिछले पग दोऊ॥
राम कृष्ण की लीला हैं ये। मरे गधा पुनि ताल परे जे॥
तिन करि धर सोभित भई ऐसें। सघन घननि करि गगन सु जैसें॥
दुहुँनि को अद्भुत कर्म लख्यौ जब। हरषे सुर फूलनि बरसे तब॥
पुनि सबरे बादित्र बजाए। राम कृष्ण ही के गुण गाए॥

तब तें तहाँ पशु चरन जात हैं। नर निर्भै ह्वै फल हु खात हैं ॥
कमल नैंन हरि कौ जु चरित्र। कहत सुनत है निपट पवित्र ॥
अस्तुति करत सखा सुख रले। बड़े भ्रात सँग ब्रज कों चले ॥
गोरज छुरित सुकुन्तल बनें। मोर चन्द्रिका फूलनि सनें ॥
रुचिर नैंन मधुरे मुसिक्यावत। वेनु बजावत प्रिय जन गावत ॥
सुनि धुनि गोपी धाईं आईं। देखनि हेतु महा छवि छाईं ॥
हरि मुख कमल अमल मकरन्द। दृग भृङ्गनि पिय पाय अनन्द ॥
लज्जा हास बिनै करि भारी। चितवनि हीं करि पूजा करी ॥
सो पूजा हरि लै घर आए। सुख जसुमति रु रोहिनी पाए ॥
जथा जोग पुनि भोजनादि जे। अति सनेह करि करवाए ते ॥
उवटनि उवटि न्हवाय सु लए। ताकरि मारग के श्रम गए ॥
पुनि अति सुन्दर पट पहराए। स्रग पहिराईं अतर लगाए ॥
भोजन स्वाद कराए पाछें। जननिन बहुरि लड़ाए आछें ॥
पुनि सुन्दर पलकनि पर गए। अति सुख पाय सु सोवत भए ॥
इक दिन कालीदह गए स्याम। सखा सबै पै नाँहिन राम ॥
तहाँ गरमी करि प्यासे भए। गाय गोप दह के तट गए ॥
तहाँ विष जल पीवतहि मरे। दड़म दड़म दह तट सब परे ॥
योगेश्वर हू के ईश्वरि हरि। अति दुख पायो तिनें देखि कर ॥
पुनि कही मोही कों जानत ये। अमृत दृष्टि करि लए ज्याय ते ॥
जल तट तें उठि अचरज पागे। आपस में सब देखनि लागे ॥
विष पी करि जीवौ अपनौ जो। कृष्ण कृपा करि जानत भए सो ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

दोहा—दण्ड सोरहें ध्याय में, काली कों हरि दीन।
अस्तुति याकी तियनि की, सुनि सु दया हूँ कीन ॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

पुनि हरि जू अपनी जमुना जो। काली करि दुःखित देखी सो॥
तब जमुना की शुद्धि विचारि। काली तहँ ते दियौ निकारि॥

राजोवाच—

औंड़े जल बह रह्यौ सु क्यों करि। पुनि ताहि कैसें दण्ड दयौ हरि॥
निज बस हरि चरित अमृत पुनि। पीवत को अघाय कहियै मुनि॥

श्री शुक उवाच—

जमुना दह में काली कौ घर। औटत जल ताकी स्वासनि करि॥
ता जल की सु भाप सञ्चरै। उड़ ते पंछी गिरि गिरि परें॥
विष जल पवन परस जब पावें। तट के जड़ जङ्गम मरि जावें॥
दुष्टन दण्ड दैंन प्रगटे हर। ताके विष प्रभाव कों लखि करि॥
तट कदम्ब ता पर चढ़ि गए। पुनि पट कटि में बाँधत भए॥
कसि सु कौंधनी ठोकि दोऊ कर। कूदि परे विष जल में श्री हरि॥
हरि कूदे अजगर काँपौ तब। ता के विष सों जल उछरयौ सव॥
सौ धनुषनि लों लहरि गई पुनि। अति बलिष्ट हरि अहो राज मुनि॥
हरि दह मथ्यौ करनि करि ऐसें। मतवारौ कोऊ हाथी जैसें॥
निज गृह की यह दशा लखी जब। काली सहि न सक्यौ आयौ तब॥
हँसत पीतपट कटि घनस्याम। अति सुकुमार निपट अभिराम॥
विहरत तहाँ डरत कछु नाँहीं। आय सु लिपटि गयौ तन माँहीं॥
जब मित्रनि हरि दीखत भए। दुःख शोक भय करि तब छए॥
व्याकुल होय गिरे धर माँहीं। हरि बिन जिनें कछू प्रिय नाँहीं॥
गाय बैल पुनि बछरा जिते। दुखित ह्वै दह दिसि देखत तिते॥
डरपत रोवत पुनि डकरात। ब्रज में भे दारुण उत्पात॥
वज्रपात वहुरों भूचाल। वाम अङ्ग फरके ततकाल॥
तिनें देखि नन्दादिक जिते। दुःख शोक करि डरपे तिते॥
जदिपि तन मन हैं हरि माँहीं। पै हरि महिमा जानत नाँहीं॥

कहन लगे कि आजु बिनु राम। गैयां गए चरावन स्याम ॥
तहाँ कछु आजु भलाई नाँही। निपट चाह हरि दरशन माँही ॥
बालक बृद्ध गोप गोपी सब। व्याकुल ह्वै ब्रज तें निकसे तब ॥
छोटे भैया कौ प्रभाव जो। इक सङ्कर्षण ही जानत सो ॥
ब्रजवासी व्याकुल देखे जे। हँसि तिन सों न कछू बोले ते ॥
चरन चिन्ह देखत देखत तब। आए श्री जमुना के तट सब ॥
जिनमें जब ध्वज अंकुश राजै। बीच बीच गोखुर छवि छाजें ॥
दूरि तें तिननि लखौ वनमाली। लपटि रह्यौ तन कारौ काली ॥
गोप गाय डकरात निहारे। दुखित ह्वै भे मूरछित सारे ॥
निपट सनेही गोपी जितीं। पिय लखि जरन लगीं अति तितीं ॥
बोलनि हँसनि सुहृदता पिय की। सुमिरत दसा और भई जिय की ॥
लखि दहि कूदति जसुमति मात। गोपी रोकति रोवत जात ॥
पुनि ते हरि गुण गावति भईं। हरि दिसि देखति जड़ ह्वै गईं ॥
नन्दादिक दह पैठनि लागे। जिनके मन हरि ही सों पागे ॥
सङ्करषन नें रोके ते सब। तिनसों भ्रात प्रभाव कह्यौ तब ॥
यों अनन्य ब्रजवासी जिते। हरि हित दुखित लखे हरि तिते ॥
पुनि कछु इक पाछें वनमाली। तन तें दूरि दियौ करि काली ॥
जब हरि कौ अति वपु बढ़ि गयौ। तब तिह दुःखित ह्वै तजि दयौ ॥
कुपित ह्वै फन उठाय फुङ्कारत। विष बरसावत हरिहिं निहारत ॥
तप्त तए से नेत्र सु वरें। मुख तें तो अँगार से परें ॥
मुख में द्वै द्वै जीभन फेरत। नेंननि तें विष आगि बखेरत ॥
तासों हरि खेलत भए ऐसें। गरुड़ साँप सों खेलत जैसें ॥
काली हू देखै औसर कों। धरें फिरत चारों दिसि हरि कों ॥
तब बलहीन भयौ सो काली। पुनि तिह फन नवाय वनमाली ॥
सकल कला गुरु झट चढ़ि गए। चढ़ि करि पुनि हरि नाचत भए ॥
ता छिन मुनि चारन गन्धर्व। सिद्ध अप्सरा आए सर्व ॥

आनक ढोल मृदङ्ग बजावत। गावत बहुरि फूल बरसावत॥
काली के सौ माँथे माँहीं। नाथ कु माथ नबै जो नाँहीं॥
नाचि मानि हरि तोरत तापै। दुष्ट दुष्टता रहत न थापै॥
फननि तें उछरि उछरि मनि परे। हरि के चरन अरुन अति करे॥
पद पटकनि करि बल घटि गयौ। काली अति दुःख पावत भयौ॥
रुधिरहि बमन करन लाग्यौ तब। सुर फूलन बरसे हरषे सब॥
यह चरित्र गोपनि देख्यौ जब। पुरुष पुरातन सो मान्यों तब॥
ताण्डव नृत्य कियौ बनमाली। फन तन करि पीड़ित भै काली॥
मुख तें बहुतै रुधिर बह्यौ जब। मन करि हरि की सरन भयौ तब॥
गुरु नारायण पुरुष पुरान। सो येई तिन लीनों जान॥
हरि उर भार त्रिलोकी कौ जो। तास नृत्य करि पीड़ित है सो॥
ता पति कों लखि ताकी तिया। दुखित रु बिग्र ह्वै गईं हिया॥
भूषन वसन सिथल भए जिनके। केश हु छूटि गए पुनि तिनके॥
पतिवरता सब जोरि सु हाथ। आगें सुत करि लए अनाथ॥
निज पति कों अपराध छमावन। जाय परीं सब हरि के पाँवन॥

॥ सर्प पत्नी ऊचुः ॥

अपराधी कों दण्ड जु दियौ। यह तुम नाथ न्याव ही कियौ॥
दुष्टनि कों तुम दण्ड सु देंन। प्रगटे अहो कमल दल नैंन॥
तुमरें रिपु अरु मीत समान। दण्ड देत सोऊ मङ्गल जानि॥
हम पै तुमनि अनुग्रह करयौ। दै करि दण्ड पाप सब हरयौ॥
बिना पाप होय साँप सु क्यो करि। तुमरौ क्रोध अनुग्रह है हरि॥
प्रथम जनम इनको तप कियौ। पाप निरादर आदर दियौ॥
कहा धर्म इन कीनों हरी। कै सब ही पै दया सु करी॥
जातें तुम सब जीवनि मूल। तुरत ही याहि भए अनुकूल॥
इन तुव पद रज पाई हे हरि। हम नहिं जानत कोंन सुफल करि॥
जा रज कों लच्छमी तप करयौ। राग भोग तजि ब्रत मन धरयौ॥

तुव पद रज कों प्राप्त भए जे। बड़ौ राज हू चाहत नहिं ते॥
स्वर्ग रसातल विधि हू कौ घर। ते नहिं चाहत हे सुन्दर वर॥
योग सिद्धि पुनि मुक्ति है जोऊ। ते जन कभू न चाहत सोऊ॥
तातें नाथ चरन रज तेरी। सब ही करि सु दुराप घनेरी॥
सो इन पाई कहियै कहा। तमोगुणी पुनि क्रोधी महा॥
जो रज चाहत ही संसारी। तुरतहिं पावन संपति सारी॥
हे सर्वोपर पुरुष पुरान। हे परमातम हे भगवान॥
जन निवास पुनि सब तें न्यारे। नमस्कार हैं तुमें हमारे॥
हे अप्राकृति हे अविकार। हे निर्गुण हे शक्ति अपार॥
हे विज्ञान ज्ञान घन रूप। नमो नमो हे ब्रह्म सरूप॥
काल हो पुनि कालहिं आधार। सब समैंन के देखन हार॥
विश्व रूप पुनि द्रष्टा ताके। कर्त्ता हू पुनि कारन वाके॥
इन्द्री भूत सु मात्रा प्रान। मन बुधि चित तुमहीं भगवान॥
तीन गुणनि करि निज अनुभव जो। हे हरि तुम ढँपि राख्यौ सो॥
हे सूक्ष्म निरुपाधि अनन्त। सब वादनि में तुही लसन्त॥
हे सर्वज्ञ वाच्य वाचक करि। तुमहीं ताहि नमति हम हे हरि॥
हे कवि तुमहीं सबहि प्रमान। शास्त्रनि हूँ कों तुम्हीं निदान॥
प्रवृत्ति निवृत्ति हू तुमरे रूप। तुमें नवति हे वेद सरूप॥
राम कृष्ण प्रद्युम्न निरुद्ध। जानत चित्त भयौ जो शुद्ध॥
भक्तिनि के पालक हे ईशा। तुमें नवावति हम सब सीशा॥
तुम ही अन्तःकरण प्रकासौ। जैसो भक्त ताहि त्यों भासौ॥
गुण वृत्तिनि करि जात सु लहे। स्व प्रकास गुण द्रष्टा कहे॥
तुम अतर्क लीला तुम हौ मुनि। सब कारजहिं प्रकासत तुम पुनि॥
मौन सील इन्द्रिन के ईस। तुमकों हम सु नवावति सीस॥
स्थूल सूक्ष्म गति के तुम ज्ञाता। पुनि सब ही के हौ धिष्ठाता॥
जगत रूप पुनि जुदे जगत करि। द्रष्टा पुनि कारण तुम हो हरि॥

तुम अचाह पुनि काल शक्ति-धर। जग जन्मादिक करौ गुणनि करि॥
जीवनि के स्वभाव पुनि जेई। दृष्टि सों तुम जगाय देहु तेई॥
पुनि तुम क्रीड़ा करत अपार। तुमरौ सदा अमोघ विहार॥
तीन गुणनि के हैं नर जिते। तुमरे आहि खिलौना तिते॥
अब तोहि सतोगुणी प्रिय यातें। तिनहीं पालन प्रगटे जातें॥
तिनके धर्म की रच्छा हेत। अब तुम हमें दिखाई देत॥
परजा कौ अपराध निहारि। स्वामी कों सहने इक बार॥
यह है मूढ़ तुमें नहिं जानें। छमा करौ तुम शान्त बखानें॥
तातें कृपा करौ भगवान। नहिं तौ यह अब छोड़त प्रान॥
हे हरि हम तिय निपट अनाथ। पति ही प्रान सु दीजै नाथ॥
हम दासिनि कों करिबें कहा। सो आज्ञा दीजै अब हहा॥
श्रद्धा करि तुव आज्ञा करियैं। तब ही सब भय तें छुटि परिय॥

श्री शुक उवाच—

यों हरि की अस्तुति कीनी जब। सुनि हरि सर्पहिं छोड़ि दयौ तब॥
हरि की कूदनि करि भिड़ि गयौ। काली निपट मूछित भयौ॥
पुनि कछूक चैतन्य भयौ जब। निपट दीन लए हाथ जोरि तब॥
हरें हरें हरि सों कही बात। दुखित गात कछु हाँफत जात॥

काली उवाच—

हम सुभाव ही करि सब दुष्ट। तमोगुणी पुनि क्रोधी पुष्ट॥
यह स्वभाव करि दुस्त्यज मानों। सबनि कों यही दुष्ट ग्रह जानों॥
नाना जाति बीज बल जामें। आकृति चित्त स्वाभाव बहु तामें॥
सो यह जगत रच्यौ तुम ही हरि। विविधि भाँति माया के गुण करि॥
तिन हूँ में हम सर्प सु जाति। जन्म ही करि क्रोधी विख्यात॥
दुस्त्यज तुमरी माया हे हरि। मोहित हम ताहि तजें सु क्यों करि॥
माया तौ इक तुम्हीं छुटावौ। जगत ईस सर्वज्ञ कहावौ॥
अब जों मन सो हमकों कीजै। दया करौ कै दण्डहिं दीजै॥

श्री शुक उवाच—

कार्ज हेत ही प्रगटे सही। सुनि यह हरि काली सों कही ॥
अब तुम बेगि समुद तट जावौ। सहित कुटुम्ब ढील जिनि लावौ ॥
तुम ह्यां ते जावौगे जाबै। सब या को जल पीवें तबै ॥
मैं यह तोहि सिच्छा दई जोई। सन्ध्या प्रात पढ़ै जो कोई ॥
सो तुम तें भय पैहै नाहीं। पुनि अन्हाय जो या दह माँहीं ॥
जल करि सबकौ तर्पन करै। व्रत करि पुनि मो में मन धरै ॥
बहुरों पूजन करै हमारौ। सो सब पापनि तें होय न्यारौ ॥
पुनि तें रमणक दीपहि तज्यौ। गरुड़ के डर तें यह दह भज्यौ ॥
अब तोहि गरुड़ न खैहै यातें। मो पद कर चिन्हित है जातें ॥

श्री शुक उवाच—

अचिरज रूप कर्म है जिनकौ। काली नाग बचन सुनि तिन कौ ॥
हरषि प्रीति करि पूजे हरी। तिहि विधि तिह तिय हू अनुसरी ॥
दिव्य बसन भूषन मनि माल। अतर अरगजा कमल रसाल ॥
इनसों पूजि प्रसन्न किये हरि। सीस नाय परिक्रमा दै करि ॥
ह्वै प्रसन्न हरि आज्ञा दइ जब। कुल समेत निज धाम गयौ तब ॥
हरि क्रीड़ा हित नर बपु धरयौ। तिंह जब यह सु अनुग्रह करयौ ॥
तब जमुना जल कौ विष गयौ। परम सवाद अमृत सम भयौ ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

दोहा—ध्याय सत्रहें गोप सब, अमित तहाँ करी सेंन।
दवानल तें राखि सब, लए कमल दल नेंन ॥ १ ॥

राजोवाच—

सर्पनि कौ रमनक गृह हे मुनि। काली ही नें तज्यौ सु क्यों पुनि ॥
इन कहा कियौ गरुड़ अपराधु। हम सों कहौ अहो यह साधु ॥

श्री शुक-उवाच—

रमनक दीप गरुड़ जब जाय। बहु साँपनि हत थोरे खाय॥
तब साँपनि मिलि बलि ठहराई। मास मास प्रति देत सदाई॥
जास औसरौ आवै जब तब। सो अपनी रच्छा हित तव तब॥
गरुड़ की बलि तरु तर धरि आबें। गरुड़ जू आय खाय सो जावें॥
कद्रू कौ सुत. काली जोई। बिष बल करि मतवारौ सोई॥
गरुड़ की भेट आप सो खावै। गरुड़हिं तनक न मन में लावै॥
तब हरि प्यारौ गरुड़ हो जोई। काली पर अति कोप्यौ सोई॥
काली के मारन कों धायौ। काली हू लखि सन्मुख आयौ॥
विष अरु डाढ़ ही आयुध जाके। फन अनेक पुनि उठि रहे ताके॥
जीभ भयानक लप लप करें। फुङ्कारत है धीरज धरें॥
घूरत दृगनि गरुड़ ढिग आयौ। डाढ़नि करि पुनि काटि सु खायौ॥
हरि वाहन तब क्रुद्धित भयौ। बड़ौ बली पुनि तिहि ढिग गयौ॥
बाँईं पाँख कनक दुति धारी। सो तिन ता काली कें मारी॥
तब काली अति विह्वल भयौ। दौरि जमुन दह में धँसि गयौ॥
तहाँ गरुड़ नहिं जात है यातें। सौभर ऋषि कौ स्राप है जातें॥
इक दिन छुधित गरुड़ तहाँ आयौ। पकरि के बड़ौ मीन इक खायौ॥
सौभर रिषि सु मनें हूँ कीनों। तऊ तिन ताहि खाय ही लीनों॥
तब ताके सङ्गी जे मीन। निपट दुखी भए बहु रो दीन॥
ते लखि दया आय बोले मुनि। मीननि कौ मङ्गल चाहत पुनि॥
गरुड़ आय इहाँ मीन खाय जौ। जीवत ह्यां ते फिरि न जाय तौ॥
कोऊ साँप नहिं जानत याहि। इक काली हो जानत ताहि॥
तातें तामें आनि रह्यौ हो। पुनि श्रीकृष्ण निकासि दयौ सो॥
पुनि दह में तें हरि जब आए। निरखि गोप सब सनमुख धाए॥
बहुरि लपटि सुख पायौ ऐसें। प्राणनि आएं इन्द्री जैसें॥
हरि कें सुन्दर मनि गल सोहें। कञ्चन के भूषन मन मोहें॥

लाल माल करि नीके लागें। अरगज करि मरगजे सु बागें ॥
जसुमति बहुरि रोहिनी नारी। नन्द गोप पुनि गोपी सारी ॥
हरिहि देखि करि प्रान सु पाए। सूखे वृच्छ हरे ह्वै आए ॥
राम स्याम सों मिलि हँसि दीनों। हरि प्रभाव जानत रंग भीनों ॥
गाय बैल पुनि बछरा जिते। अति आनन्दित ह्वै गए तिते ॥
तियनि सहित पुनि विप्र सु आए। आय नन्द कों वचन सुनाए ॥
अहो मनवाञ्छित भयौ हमारौ। काली तें सुत बच्यौ तिहारौ ॥
काली के मुँह माँहि गयौ जो। जसुमति जू ने सुत पायौ सो ॥
छाती लाय गोद बैठायौ। दृगनि तें जल परवाह बहायौ ॥
गोपी गाय गोप हैं जिते। भूखे प्यासे श्रमित रु तिते ॥
ता रात्री कों रहे सु तहाँ। जमुन कूल रसमूल है जहाँ ॥
ग्रीसम रितु आधी निसि गई। सोवत व्रज जन सुधि नहिं भई ॥
चहूँ ओर वन आगि सु लागी। जरन लगे ब्रजजन अनुरागी ॥
व्याकुल ह्वै सब उठत सु भए। उठि करि कृष्ण सरन सब गए ॥
कृष्ण कृष्ण हे महाभाग हरि। हे बल निपट बली तुम बल करि॥
घोर आगिन यह चहुँ दिसि छाई। तुमरे जननि जरावन आई ॥
अपने सुहृदनि राखौ हे हरि। तुव पद अभय तजें हम क्यों करि॥
नन्दनन्दन अनन्त जगदीश। बहुरि अनन्त शक्ति के ईश ॥
स्वजन दुखी लखि दुख में छए। घोर हू आगिन पान करि गए ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अठारहवाँ अध्याय

दोहा—ध्याय अठारहें ग्रीष्म रितु, भई बसन्त समान ।
तहाँ स्याम श्री राम करि, हत्यौ प्रलम्ब महान ॥

श्री शुक-उवाच—

भोर कृष्ण अपने व्रज आए। व्रज जन गावत अति सुख पाए ॥

ऐसें ब्रज राम रु स्याम। करत गोप लीला अभिराम॥
इतने में ग्रीषम रितु आई। जोंन जनानि कों अति सुखदाई॥
बन में सो बसन्त ह्वै रही। राम स्याम जहाँ विहरत सही॥
ठां ठां तिह बन झरना झरें। तिनकी धुनि पुनि काननि परें॥
झींगुर धुनि सुनिये नहिं तहाँ। हरयौ भरयौ बन ह्वै रह्यौ जहाँ॥
सरित सरोवर झरना जिते। कमलनि करि फूले हैं निते॥
तिन लगि पवन सु सीतल आवें। बहुरों मन्द पराग उड़ावें॥
ता करि गरम सु व्यापै नाँहीं। घाम न फेलत तिहि बन माँहीं॥
तातें तहाँ की सजल रहै धर। गहरी नदियनि की लहरनि करि॥
अति सुन्दर बन फूलि रह्यौ पुनि। खग रु मृगनि की छाय रही धुनि॥
भ्रमर मयूर मधुर सुर गावें। सारस कोकिल कूक सुनावें॥
राम स्याम तहाँ बजवत बेनु। सखनि के संग चरावत धेनु॥
पल्लव फूल चन्द्रिका धरें। तन बन धात के चित्र सु करें॥
कभूं सखनि संग नाचें गावें। कबहूं गुथत महा छबि पावें॥
जब हरि आपुन ही गति लेत। तब कोऊ गाय सु तारी देत॥
कोऊ बेनु पुनि शृङ्ग बजावत। कोऊ रीझि रीझि सुख पावत॥
गो पालक हरि परम अनूप। गोप हू सबै देवता रूप॥
राम स्याम की अस्तुति ऐसें। करत अहो नट की नट जैसें॥
भुजनि ठोकि कभुं डेलनि मेलत। सखहिं खेंचि पुनि कुस्ती खेलत॥
केस जरूते सिरनि सुहात। कभूं फाँदि चकफेरी खात॥
जब कबहूं कि सखा गति लेत। राम स्याम तब तारी देत॥
गावत पुनि जब मान सु आवत। भले भले कहि मनहिं बढ़ावत॥
कबहूं बेलि आँवरे मेलत। कबहूं सबै मुकिन सों खेलत॥
चोर सिहचनी कौंढ़ी ख्याल। खग मृग ह्वै पुनि खेलत बाल॥
कबहुँ कि मेंडुक गति बिस्तरें। कबहूं बिबिधि उपहासनि करें॥
कबहूं झूलत मचकी देत। कबहुँ कि नृप ह्वै कर कों लेत॥

यों गिरि सर वन कुञ्जनि बाल। लोक प्रसिद्ध खेलत सब ख्याल ॥
तहँ इक असुर प्रलम्ब जु आयौ। गोप बेस धरि मारन धायौ ॥
हरि सर्वज्ञ जानि ताहि लियौ। पुन ताहि मारन कौं मन कियौ ॥
बड़े खिलारी हरि बोले तब। आवौ चढ़ा चढ़ी चढ़ा खेलें अब ॥
राम स्याम तब मुखिया भए। सखा जुदे जुदे बाँटि सु लए ॥
जो हारै सो लेय चढ़ाय। वट भाण्डीर तीर लौं जाय ॥
श्री दामा वृषभादिक जिते। राम ओर के जीते लिते ॥
हरि दिसि के पुनि हारि गए सब। श्रीदामा हरि पै सु चढ़यौ तब ॥
भद्रसेन पर वृषभ बिराजत। बल प्रलम्ब पर आनि छाबि छाजत॥
पुनि प्रलम्ब हरि दृष्टि बचाय। वट तें परें बलहिं लै जाय ॥
प्रगट कियौ पर्वत सम रूप। कञ्चन भूषन परम अनूप ॥
ता पर राम सु सोहत ऐसें। दामिनि युत घन पर ससि जैसें ॥
पुनि नभ लौं चढ़ि गयौ अचानक। भृकुटी डाढ़ सु लिपट भयानक ॥
नैंन बरत पुनि केस जरत जनु। देखि तनक बल हू काँपे मनु ॥
पुनि सुधि भई मित्र यह नाँहीं। तब रिसाय ताके सिर माँहीं ॥
एक मुकी बल मारी ऐसें। इन्द्र बज्र परबत के जैसें ॥
ताकरि मस्तक फाटि सु गयौ। मुख तें वमन रुधिर कौ भयौ ॥
पुनि चिंघारि धर परयौ सु ऐसें। बज्र कौ मारयौ पर्वत जैसें ॥
बल अति बली असुर मारयौ जब। गोपनि लखि अचरज पायौ तब ॥
भलें भलें यों सबनि सुनाई। आसिष दै पुनि करी बड़ाई ॥
प्रीति सों मिले ताहि सब ऐसें। मरि फिरि आवै तासों जैसें ॥
पाप रूप वह असुर हत्यौ जब। तब आनन्दित भए अमर सब ॥
बल के ऊपर फूलनि बरसें। धन धन कहत महा मन हरषें ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

दोहा—मुञ्जावन की आगि तें, हरि ने लए बचाय।
गोप गाय ब्रज के सबै, यह उन्नीसें ध्याय ॥१॥

शुक उवाच—

ता दिन ग्वाल खेल के माँहीं। मगन सु गैयन की सुधि नाँहीं॥
चरत चरत मुञ्जावन जहाँ। अति गह्वर तें धसि गईं तहाँ॥
ता बन में पुनि आगि सु लागी। गाय भैंस बकरी भय पागी॥
तब ते दुखित ह्वै डकरानी। राम स्याम कों सुनई बानी॥
राम स्याम पुनि ग्वाल हे जिते। देखनि लगे तिनहिं तब तिते॥
देखत दीठि परी नहिं जबै। परम दुखी तब ह्वै गए सबै॥
तब खुर दन्तनि करि दल मले। तिन्हीं तृणनि कों देखत चले॥
अति ही व्याकुल हैं सब याते। भई है नष्ट जीवका जातें॥
लखों गाय मुञ्जावन माँहीं। रोवत मारग पावत नाँहीं॥
ग्वाल श्रमित पुनि प्यासे भए। उलटि सबै सु कृष्ण ढिंग गए॥
तब हरि तिन गैयनि कों टेरत। नाम लेत पीताम्बर फेरत॥
मेघ समान सुनी टेरनि जब। हरषि सबै गैया राँभीं तब॥
पुनि चहुँ दिसि लगी औंचक आगि। पवन सों निपट उठी सो जागि॥
बन के जड़ जङ्गमनि जरावत। चहूँ ओर तें दौरति आवति॥
गौ गोप लखि डरपे भारे। राम स्याम के सरन पधारे॥
जैसे कोऊ मीच तें डरपै। तब सु अपनपौ हरि कों अरपै॥
कही हे कृष्ण कृष्ण हे राम। महाबली बलदेव सु नाम॥
हम तुम सरन दवानल जारत। अहो भ्रात कहौ क्यों न उबारत॥
अहो कृष्ण हम बन्धु तिहारे। दुःख पैवे कों योग न प्यारे॥
तोही कों हम जानत नाथ। तुम धर्मज्ञ रु हम सु अनाथ॥

शुक उवाच—

हरि मित्रनि कौ दीन वचन सुनि। कही जिनि डरपौ दृग मूँदौ पुनि॥

मित्रनि नें दृग मूँदि लए जब। हरि सु योगविद्या जानत सब ॥
ताकरि अगिन पान करि गए। दुःख तें मित्र छुटाय सु लए ॥
पुनि ते दृग उघारि देखे जौ। बट भाण्डीर तीर ठाढ़े तौ ॥
लखि अचरज मानत भए ऐसें। छुटे दवानल ते सब कैसें ॥
तब हरि की जु योगमाया जो। तासु सन्यों हरि बल जान्यों सों ॥
अगिन तें निज बचिवौ देख्यौ जब। हरि कों कोऊ देव मान्यों तब ॥
पुनि भई साँझ घेरि सब गैया। बजवत बेंनु चले दोऊ भैया ॥
मित्रनि नें नीके जस गायौ। गोपिनि देखि परम सुख पायौ ॥
जिनकों हरि बिन इक छिन जाई। सौ जुग की सम बीतत सोई ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
उन्नीसोऽध्यायः ॥ १६ ॥

बीसवाँ अध्याय

दोहा—बरषा बहुरों सरद रितु, कहत बीसएँ ध्याय।
राम स्याम पुनि सखनि सङ्ग, जहँ विहरत सुख पाय ॥ १ ॥

शुक उवाच—

लरकनि आय घरनि यह कही। आजु प्रलम्बहिं मारयौ सही ॥
दावानल तें हम रु बचाये। सुनि सब गोपनि अचिरज पाये ॥
कही कि राम कृष्ण ये दोऊ। अहो हैं बड़े देवता कोऊ ॥
पुनि बरषा रितु आई नीकी। जामें उपजनि है सबही, की ॥
पवन सों मेघ छुभित ह्वै गए। रवि ससि मण्डल बैठत भए ॥
दामिनि कौंधति गरजत भारे। उनए जलद सु कारे कारे ॥
तिन करि नभ सब ढँपि गयौ ऐसें। सत रज तम कार जीव सु ऐसें ॥
आठ महीना धरनी जल जो। किरनि निकरि रवि सोखि लयौ सो॥
समै पाय पुनि बरस्यौ ऐसें। नृप कर लै कभु देत सु जैसें ॥
पवन के प्रेरे बादर आँहीं। दामिनि दमकति है जिन माँहीं ॥
तिन सब ताप तपित निरखे जब। निज जीवन कों बरसे ते तब ॥

जैसे दुखितहिं देखि दयाल। आनहुँ दै सु करत प्रतिपाल॥
ग्रीषम तें धरि सूकि सु गई। बरषा भए डहडही भई॥
ज्यों सकाम तप करि कृष होय। फलनि मिलें न पहिचाने कोय॥
कारी निसि पटबीजन दमकें। घन नछत्र कोउ नाँहिन चमकें॥
ज्यों पाखण्ड रहे कलि माँहीं। बेद मार्ग पुनि दीसें नाँहीं॥
सुनी बादरनि की गरजनि जब। ठां ठां मेंडुक बोलि उठे तब॥
जैसें पाँड़े बोलें जब ही। चट्टा बोलि उठें तब सबही॥
छोटी नदी सूकि जे रहीं। तेऊ उमड़ि उमड़ि तब बहीं॥
ज्यों अजितेन्द्री जन उमड़ाय। तन धन बहुरों सम्पत्ति पाय॥
हरे तृणनि करि धर भई हरी। इन्द्र बधुनि पुनि अरुन सु करी॥
छतनंनि करि पुनि सोभित ऐसें। सोहत नृप के डेरा जैसें॥
खेतनि में उपजे सब धान। तिनहिं निरखि हरषे जु किसान॥
ब्यौपारी डूबे दुख माँहीं। दैवाधी नहिं जानत नाँहीं॥
जल थल के बासी पुनि जिते। पानी नयौ पाय करि तिते॥
अति ही सुन्दर ह्वै गए ऐसें। हरि की सेवा करि जन ऐसें॥
पवन सों सिन्धु हिलोरनि खात। नदियनु पाय उमगि सो जात॥
ज्यों सकाम योगी कौ चित्त। बिषैन पाप छुभित होय मित्त॥
गिरिन के ऊपर जलधर बरसें। दुखित न होंय बहुरि ते हरषें॥
जैसें हरि जन दुःख पावें जब। दुखित न होंय बहुरि हरषें सब॥
मग में ठौर ठौर तृण छए। चलत बटोहिन कों भ्रम भए॥
ज्यों अभ्यास बिना के बेद। द्विजनि हू करि न पाइयतु भेद॥
मेघ महा सबकों सुखदाई। दामिनि तिहुँ न ढिग ठहराई॥
जैसें बिभचारिन तिय जोई। गुणी पुरुष ढिंग रहै न सोई॥
जेह बिना कौ इन्द्र धनुष जो। गरजत घन में अति सोह्यौ सो॥
जैसें निर्गुण पुरुष है जोई। त्रिगुण जगत में सोभित होई॥
निज किरननि करि मेघ प्रकास्यौ। तिन सों ढपि न चन्द्रमा भास्यौ॥

ज्यों आपहिं हंकार प्रकासै। तासों लपटि पुरुष नहिं भासै॥
भई जब मेघनि की घनघोर। सुनि कुहके हरषे बन मोर॥
ज्यों गृह तें निर्वेदहिं पाय। भक्तनि देखि गृही हरषाय॥
पानी पाय सु पादप जिते। बहुत भाँति के ह्वै गए तिते॥
ज्यों सकाम तपसी फल पाय। और भाँति होय सो जाय॥
सरनि तीर कण्टक पुनि कीच। चक्रवाक रहैं तिनहीं बीच॥
ज्यों कुचील घर माँहिं गँवार। बसत हैं करि विषैन सों प्यार॥
इन्द्र करी जब बरषा भारी। मेंड़ खेत की फूटीं सारी॥
ज्यों कलि में पाखंडिन वाद। तिन सों मिटें वेद मर्याद॥
पवननि करि प्रेरे बादर जे। नरनि अमृत जल देत भए ते॥
ज्यों द्विज के उपदेसहिं पाय। राजा सब धन देत लुटाय॥
पके खजूर आम्र जामुन जहँ। सखनि संग हरि गौ चारत तहँ॥
तिन गायनि हरि टेरत जबै। फूली तन ते मातन तबै॥
दौरि न सकत ऐंन के भार। आवति दूध बहावति धार॥
बनवासी सब हरषित भए। तिनतें होत नाद मन हरें॥
ठां ठां गुहा निपट सुखकारी। तिनकों देखत फिरत मुरारी॥
कभूं मेह तें काँपत जबै। गिरि गुहानि में पैठत तबै॥
कबहूँ कन्दमूल फल खाय। द्रुम खोंतर में धँसें सु जाय॥
घर तें दधि ओदन आवै जब। जल तट सिलनि पै खात तबै सब॥
बहुरों बछरा बैल रु गाय। दृगनि मूँदि रोंथत सु अघाय॥
हरे तृणनि पर बैठनि जिनकी। कहा कहौं सुन्दरता तिनकी॥
सब सुखदायी वर्षा काल। तासु सराह करी नन्दलाल॥
बहुरों सरस सरद रितु आई। मधुर मधुर जहँ पवन सुहाई॥
अति निर्मल अकास छबि छयौ। उज्जल जल नदियन कौ भयौ॥
सरनि में प्रफुलित भए कमल कल। बहुरि सरद करि भए अमल जल॥
जैसे बिगरयौ योगी जोई। बहुरि योग करि निर्मल होई॥

जल कौ मल सु सरद हरि लियौ। धरनि कौ पङ्क दूरि पुनि कियौ॥
नरनि की दूरि करी सकराई। पुनि अकास की घटा मिटाई॥
ज्यों चारों आश्रम के दुःख जे। हरि की भक्ति हरै छिन में ते॥
मेघ हू निज सर्वस जो जल हो। दै करि अति उज्वल ह्वै गए सो॥
ज्यों सब तजि निष्पाप होय पुनि। अति उज्जल ह्वै सोभित हैं मुनि॥
कभू कि गिरि झरना जल देत। कभू कि जलहिं रोकि पुनि लेत॥
जैसें ज्ञानी ज्ञान अमृत जो। कबहूँ कहैं न कबहुँ कहैं सो॥
जलनि में जो जलवासी रहें। छीन होत जल नाहिन लहें॥
जैसे मूढ़ कुटुम्बी जोई। घटत आयु कों लखै न कोई॥
पुनि जलचर जु छिलछिले पानी। रहत घाम करि देह तपानी॥
ज्यों निर्धन विषयी जो दीन। घर में रहै सदा दुःख लीन॥
हरें हरें धर कीच मिटाई। बहुरों नाजनि तजी कचाई॥
ज्यों जड़ तन में ते जो धीर। तजैं अहता ममता पीर॥
समुदहु निश्चल ह्वै गयौ ऐसें। चित उपराम भए सुनि जैसें॥
खितहर जल रोकनि के हेत। खेतन की दृढ़ मेंड़ सु देत॥
ज्यों इन्द्रिनि करि श्रवत ज्ञान जो। तिनें रोकि योगी राखत सो॥
सरद में रवि की तपनि जु भई। उदै होइ ससि सो हरि लई॥
तन अभिमान हरै ज्यों ज्ञान। ब्रज तिय दुःखहिं हरें भगवान॥
मेघनि बिन सोहत आकास। पुनि तारनि कौ भयौ प्रकास॥
जैसे अर्थ वेद को पाय। सतोगुणी चित रह छवि छाय॥
पूरन ससि तारनि के संग। नभ में सोहत भयौ अभङ्ग॥
जैसे जदुपति कृष्ण मुरारी। कुल संग सोहत धरनि मँझारी॥
नव फूलनि की पवन जु आवै। तासों मिलि जन ताप बुझावै॥
ज्यों ब्रज तिय हरिसों मिलि हरिऔं। करत हैं दूरि विरह की जरकौं॥
खगी मृगी पुनि गाय रु नारी। सरद में भईं रितुमती सारी॥
तिन पाछें डोलत पति ऐसें। हरि सेवा पाछें फल जैसें॥

कुमुद बिना पुनि कमल हैं जिते। रवि उदौंन में फूले तिते ॥
ज्यों तेजस्वी भूप होय जब। चोरनि बिना सबै हरषे तब ॥
पुर अरु ग्राम परम छवि छए। नये अन्न करि उत्सव भए ॥
तिन करि धर सोभित भई ऐसें। राम स्याम करि सोहति जैसें ॥
पढुआ व्यौपारी राजा मुनि। वर्षा सों जु रुके चारों पुनि ॥
सरद में निज फल पाए ऐसें। सिद्ध तनहिं तजि पावत जैसें ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

दोहा—बेंणु बजायौ सरद ऋतु, हरि बृन्दावन जाय।
सुनि ब्रज तिय बरनन करयौ, इक्कीसें अध्याय ॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

हे नृप यह बृन्दाबन जितौ। कमल सुगन्ध व्यापि रह्यौ तितौ ॥
निर्मल जल सर सरिता भरे। फूलनि फलरि रहे द्रुम खरे ॥
मतवारे खग भृङ्ग सु गुञ्जे। तिन करि गुञ्जत पुनि गिरि कुंजें॥
तहाँ सखनि सङ्ग गऊ चरावत। मधुर मधुर हरि बेंनु वजावत ॥
बेंनु गीत ब्रज तियनि सुन्यों जब। सुनि मनमथ करि मथित भई सब॥
को इक गोपी हरि के पाछें। निज सखियनि सों बरनत आछें॥
बरनन करिबे जब जब लगें। तब हरि चरितनि में मन पगें ॥
मन विक्षिप्त होय मन्मथ करि। कहि नहिं सकत गरौ आवत भरि॥
नटवर बेस चन्द्रिका धरें। गोप वृन्द कीरति विस्तरें ॥
बैजयन्ति माला पीतम्बर। किरवाले कौ फूल कान पर ॥
निज चरननि कों अति सुखकारी। विहरत बृन्दाविपिन बिहारी ॥
रन्ध्रनि में अधरामृत भर करि। बन में बेंनु वजावत हैं हरि ॥
सब ही जन मन कों सुखकारी। ताहि सुनत जब ब्रज की नारी ॥
तब सब ताहि सु वर्णन करें। वर्नन करत घुरत हरि गरें ॥

॥ गोप्य ऊचुः ॥

हे सखि ये नन्दनन्दन आछें। सखनि सङ्ग गायनि के पाछें॥
बेंनु बजावत घर ते चलें। अरुण कटाक्ष करत पुनि भलें॥
दृगनि कौ फल इनकौ निहारिवौ। याते परें न कछू विचारिवौ॥
मीतनि के मधि राजत ऐसें। द्वै नटवर रङ्ग भूमि में जैसें॥
मोर चन्द्रिका फूलनि भौंरा। धरे सीस पुनि नूत के मौरा॥
नील पीतपट कमलनि माला। कबहुँ कि गान करत नन्दलाला॥
हे सखि वेंनु पुण्य कहा कियौ। हमरौ अधर सुधा इन पीयौ॥
पुनि याकी जननी सरिता जे। याकौ रस अवसेस पाय ते॥
कमल रूप रोमाञ्च धरें तन। बाँस ही याके पुरुषा अनगन॥
ते मकरन्द अश्रु डारत यों। सुतहिं साधु लखि हरि के जन ज्यों॥
हे सखि यह वृन्दाबन बन जो। धर कौ जस बढ़वत छन छन सो॥
कान्ह चरन करि सोभा पावत। जब हरि यामें बेंनु बजावत॥
तब हरि कों सु घटा करि मानें। बेंनु बजनि कों गरजनि जानें॥
तातें मोर नाचि कुहकावें। गिरिवासी लखि जड़ ह्वै जावें॥
हे सखि धन्य मूढ़ हरिनी ये। हरि कौ बैंनु गीत सुनि कें जे॥
पतिनि सहित कान्हर ढिंग आवति। नेह सने दृग भेंट चढ़ावति॥
हे सखि सुर बनिता हैं जितीं। चढ़ीं विमान पतिन संग तितीं॥
कान्ह कौ रूप सील पुनि जोई। तियनि कों अति सुखदाई सोई॥
ता हरि कों लखि सुर तिय जितीं। काम सों मोहित ह्वै गईं तितीं॥
वेनु सुनत नीवीं खुलि गईं। पुष्प वृष्टि केशनि ते भईं॥
हे सखि हरि कौ वेंणु अमृत जो। कान उठाय गाय पीवति सो॥
पुनि इनके बछरा हैं जिते। पियत दूध सुनि चकि रहे तिते॥
हरि तन इक टक देख्यौ करें। नेंननि तें जल धार सु परें॥
हे सखि या बन के खग जिते। मुनि समान सब ह्वै रहे तिते॥
बैठि सु रुचिर द्रुमनि की डारें। इक टक मोहन बदन निहारें॥

चुप ह्वै वेंनु गीत कों सुनें। तनक खुरक सों माथौ धुनें॥
हे सखि नदी वेनु गीतहिं सुनि। काम सों पीड़ित थकित भईं पुनि॥
भोंर में खाति मसोसे मारति। करत रङ्ग करि कमल उपारति॥
तिन करि हरि पद पूजन करें। ता करि काम विथा परिहरें॥
हे सखि सखनि सङ्ग दोउ भैया। वेंनु बजाय चरावत गैया॥
बन में कहूँ घाम जब आवै। तब यह मेघ परम सुख पावै॥
प्रीति सों निज तन छत्र बनावै। कुसुम समान फुहीं बरसावै॥
हे सखि हरि पद अरुण सु भारी। पुनि हरि की जो प्यारी नारी॥
ताकें कुच कुंकुम करि छयौ। ताकरि सब बन रञ्जित भयौ॥
सो बन भील तियनि देख्यौ जब। काम ताप करि तपित भईं तब॥
तृननि तें ता केसरिहि उतारि। निज मुख कुचनि लगावति नारि॥
काम विथा निरवावति तातें। हे सखि तेई धन्य हैं यातें॥
हे सखि यह गोधन गिरि जोई। हरि कौ बड़ौ दास है कोई॥
राम स्याम नित विचरत यापै। या कौ सुख कहि आवत कापै॥
बहु रों गऊ रु गोप समेत। यहौ कृष्ण कों नित सुख देत॥
तृण जल कन्दर कंदरु मूल। इन करि हरिति हिये की सूल॥
हे सखि राम स्याम ये दोई। कांधनि धरे पाट की नोई॥
सखनि संग बन गाय चरावत। मधुर मधुर पुनि बेंणु बजावत॥
तब जङ्गम जन जड़ ह्वै जात। पुलकित होत जड़नि के गात॥
यों वृन्दाबन में बिहरत जे। तिनके अति अद्भुत चरित्र ये॥
बरननि करति परस्पर गोपीं। ह्वै गईं तनमय अति रस ओपीं॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
एकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

दोहा—बाईसें अध्याय में, वस्त्रनि हरि वर दीन।
बहुरि जज्ञ पत्नी जहाँ, तहाँ गमन हरि कीन॥ १॥

शुक उवाच—

अगहन मास परम सुखकारी। नन्दराय ब्रज की जु कुमारी॥
ते कात्यायनि पूजन करें। पुन्य अन्न भोजन विस्तरें॥
अरून उदय जमुना तट जाँहिं। प्रथम जाय ते तामें न्हाहिं॥
पुनि माँटी की प्रतिमा करें। बहुरि तासु पूजन विस्तरें॥
फूल पात फल तन्दुल गन्ध। धूप दीप नैवेद्य प्रबन्ध॥
छोटी बड़ी वस्तु पुनि जितीं। तिन करि ताहि सु पूजत नितीं॥
देवी के चरननि सिर धरें। पुनि यह मन्त्र जाप ते करें॥
हे कात्यायनि हे महामाये। हे महा योगिनि सर्व सहाये॥
नन्द सुवन पति करौ हमार। ताहि नमो नम बारम्बार॥
यों इक मास तिननि व्रत धर्यौ। कात्यायनि को पूजन कर्यौ॥
नन्द सुवन पति होहु हमार। यह मन में कीनों निर्धार॥
प्रात ही उठि सब सबनि बुलावति। हाथनि गहि करि हरि गुण गावति॥
दिन प्रति जाय जमुन यों न्हात। व्रत समाप्त दिन की सुनि बात॥
चीर तीर धरि जल में खेलत। कृष्णहिं गावति अति सुख झेलति॥
योगेश्वर हू के ईसुर हरि। तिन सबके मन की सु जानि करि॥
व्रत के फलहिं देन तहँ आये। प्यारे सखनि सङ्ग पुनि लाए॥
आय कें चीर तीर तें लए। झट कटि कसि कदम्ब चढ़ि गए॥
हँसत हँसावति सबनि मुरारी। कछु परिहास कथा उच्चारी॥
हे अबला ह्यां लों आवौ अब। आप आपनें बसन लेहु सब॥
साँच कहत कछु हँसत सु नाँही। तुम व्रत करि कर्पित जल माँहीं॥
अब लौं झूँठ न बाल्यौ है मैं। हे सुन्दरि! ये सब जानत हैं॥
इक इक आय वस्त्र लै जावौ। अथवा सबही मिलिकें आवौ॥
सुन्यों कृष्ण को हास्य वचन जब। परम प्रेम में डूबि गईं सब॥
आपुस में लखि लखि मुसिक्याईं। लज्जित ह्वै न नीर ते आईं॥
सुनि करि छुभित चित तें भईं। कण्ठ लों जल में पैठि सु गईं॥

सीतल जल सों काँपति जात। हरि सों कहन लगीं कछु बात ॥
हम तोहि नन्द गोप सुन जानति। ब्रज में बहुरि प्रतिष्ठित मानति ॥
तातें प्रिय अनीति जिनि कीजें। काँपति हमें वसन किनि दीजें ॥
हे सुन्दर हम हैं तुव चेरी। आज्ञा हू हम करि हैं तेरी ॥
हे धर्मज्ञ वस्त्र दीजै अब। न तौ जाय नंदहिं कहिहैं सब ॥

श्री भगवानुवाच—

हे सुन्दरि जौ हौ तुम चेरी। तौ तुम आज्ञा करि हौ मेरी ॥
अति सुन्दर मुसिक्यानि निहारी। इहाँ आइ लेहु वसन निहारी ॥
तव ते जल तें काँपति आईं। आगें करनि की ओट बनाईं ॥
भए तुष्ट हरि सुद्ध भाव करि। काँधे पर पुनि वस्त्र लए धरि ॥
ह्वै प्रसन्न हँसि बोले हरी। तुम तौ देव अवज्ञा करी ॥
व्रत करि नगन धँसी जलमाँहीं। यह अपराध सु जैहै नाँहीं ॥
तातें हाथ जोरि सिर धरौ। ता देवहिं दण्डौत सु करौ ॥
पुनि निज वसन लेहु तुम आनि। सुनि इन व्रत घटतौ लई मानि ॥
पुनि ते व्रत पूरन कों सवें। तैसें ई नई कृष्ण कों तवें ॥
ये ई सव व्रत के फल आहि। यातें सवें पाप मिटि जाहिं ॥
तैसें तिनकों नग्न लखीं जव। हरि करुना में भीजि गए तव ॥
ह्वै सन्तुष्ट प्रेम करि भारी। तिनके दीनें वस्त्र मुरारी ॥
जद्दिप तिनहिं ठगीं हू हरी। बहुरि खिलौना सी ते करीं ॥
वस्त्र हरे पुनि लाज छुटाई। बहुरि हँसी की वात चलाई ॥
तऊ ते हरि में दोष न ल्याईं। दरसन हीं करि परम अघाईं ॥
निज निज वसननि पहरति भईं। हरि दरसन के वस ह्वै गईं ॥
लाज सनीं चलि सकति सु नाहीं। जिनके चित अटके हरि माँहीं ॥
मो चरननि की प्राप्त हेत करि। व्रत कीनों इन जानि लई हरि ॥
पुनि कही तुम मनोर्थ में जान्यों। तुम सम सेवा कों मन ठान्यों ॥
सो मैं अङ्गीकृत कियौ जातें। साँच होंन कों जोग्य सु यातें ॥

मो मैं अहो लग्यौ है जो मन। तातें और कामना होत न॥
जैसे भुज्यौ बीज जो कोई। तातें बहुरि न अंकुर होई॥
ए पै तुमरौ है मनोर्थ जो। मो इच्छा करि पूर्ण होहु सो॥
अगली निसि मो सँग रमि हौ सब। जा तें तुम देवी पूजी अब॥
अब तुम सब जावौ अपने घर। इतनी कहि चुप ह्वै गए श्रीहरि॥
ते वर पाइ पाय हरि के जे। हिय में धरि धरनी ठि गईं ते॥
तहाँ ते सखनि सँग दोऊ भैया। दूरि निकसि गए चारत गैया॥
कठिन घाम हित छत्र से छए। हरि तिन द्रुमनि सराहत भए॥
स्तोक कृष्ण हे अंशु विशाल। हे तेजस्विन ऋषभ रसाल॥
हे सुवलार्ज्जुन हे श्री दाम। अहो हे देव प्रस्थ अभिराम॥
अहो बरूथप द्रुम देखौ ये। महाभाग परहित जीवत जे॥
जाड़ौ गरमी वरषा व्यार। आप सहत हमरौ निरवार॥
अहो ये सबकों जीवन रूप। यातें इनकौ जन्म अनूप॥
इन तें जाचक विमुख न जाय। ज्यों दयाल के घर में आय॥
कोंपल पात गोंद फल फूल। छाया वकुला लकरी मूल॥
क्वैला राख रु रस लों जिते। इनके परहित लागत तिते॥
तन धारिन कौ जन्म है जोई। याही भाँति सफल सो होई॥
मन धन प्रान बचन करि जबै। करै आचरन मङ्गल सबै॥
नव पल्लव फल दल फूलनि कै। जिन वृछनि की डारि रहीं नै॥
तिन्हीं द्रुमनि के बीच बीच ह्वै। गए जमुन तट गायनि कों लै॥
उज्जल सीतल सुखद सुहायौ। सो जल पहलें गायनि प्यायौ॥
हे नृप पुनि आपुन सुख पाय। परम स्वाद जल पियौ अघाय॥
जमुना तट इक बाग सुहावन। तहाँ लगे पुनि गाय चरावन॥
तिहिं ठां भूखे भए सखा सब। राम स्याम सों बोले यह तब॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

दोहा—तेईसें अध्याय में, भोजन मिस हरि आप।
जज्ञपतिनीन कृपा करि, द्विजनि दयौ तन ताप ॥१॥

॥ सखा ऊचुः ॥

महाबली हे राम पियारे। हे हरि तुम सब दुष्ट संघारे ॥
हमकों भूख सतावति भारी। याकों करियै दूरि मुरारी ॥

शुक उवाच—

यह सुनि बोले पङ्कज नैंन। भक्त मथुरनिन कों सुख दैंन ॥
ढिग यह देव-जनन की ठौर। तहाँ वेदज्ञ विप्र सिर मौर ॥
जज्ञ अंगिरा नाम जु आहि। स्वर्ग हेत ते करत हैं ताहि ॥
हमरे पठये तहाँ सु जावौ। बड़े भ्रात कौ नाम सुनावौ ॥
हमरौ ऊ पुनि नाम सु लेहु। जाय कहौ कछु भोजन देहु ॥
पुनि ते हाथ जोरि तहाँ गए। करि दण्डवत सु माँगत भए ॥
हे भूदेव! सुनों इक बात। मङ्गल होहु तिहारै गात ॥
हम इन गोपनि राम पठाए। बहुरि कान्ह आज्ञा तें आए ॥
निकसे आय चरावत गैया। अति भूखे हैं दोऊ भैया ॥
तुम पै कछु भोजन मँगवायौ। तातें ग्वाल वृन्द यह आयौ ॥
श्रद्धा ओदन दोऊ होंय जौ। हे धर्मज्ञ तिनहिं दीजै तौ ॥
पशु हत्या सौत्रामनि दोय। इन बिन और जज्ञ जौ होय ॥
दोष नहीं तिनकौ अन्न खात। हे सत्तम सुनिये यह बात ॥

शुक उवाच—

यह हरि की जु जाचना आहि। सुनि अनसुनी करी तिन ताहि ॥
तुच्छ स्वर्ग हित क्लेसहिं करें। अज्ञ बहुरि अभिमानहिं धरें ॥
द्रव्य देवता रित्वज मन्त्र। देस काल ऋतु अगिन रु तन्त्र ॥
पुनि जजमान धर्म पुनि जिते। अहो जु हरि ही मय हैं तिते ॥
सो भगवान अधोछज रूप। साछात परब्रह्म सरूप ॥

ताहि कुबुद्धिनि नर कर जानें। नास सील तन अधिकै मानें॥
हाँ ना तिननि कछू न करी जब। ह्वै निरास तब उठि आए सब॥
राम स्याम सों कही सब आय। सुनि हरि तनक दियौ मुसिक्याय॥
बहुरौ जाचक रीति सुनाई। और एक पुनि बात सिखाई॥
अब तुम इनकी तिय ढिग जावौ। हमरे नामहिं जाय सुनावौ॥
राम स्याम आए हैं दोऊ। सुनत सबै दैहैं सब कोऊ॥
तिनकी अधिक प्रीति मो माँहीं। छिन मो मन तें टरति सु नाँहीं॥
ते तिन पतिनिन गृह गए तबै। करि सिंगार बैठीं ते सबै॥
तिन ढिग जाय सु सीस नवाए। बहुरों तिनकों वचन सुनाए॥
अहो हम कान्हर ने पठये हैं। सोंऊ तुमतें तौ लगते हैं॥
आजु तौ सखनि सहित दोऊ भैया। आए दूरि चरावत गैया॥
तिनके सहित छुधित हैं सबै। तातें कछू देहु तुम अबै॥
कान्हर आए सुने तिननि जब। अति आनन्द में डूबि गईं सब॥
दरसन कों नित ही अरवरतीं। राति द्यौस हरि कथानि करतीं॥
चारि प्रकार के सुन्दर विंजन। तुरत भरे भाजन मनरञ्जन॥
प्रीतम सन्मुख चलीं सु ऐसें। सरिता चलै समुद दिसि जैसें॥
पति सुत भ्रात बन्धु पुनि जिते। बहुते रोकि रहे पुनि तिते॥
कान्ह के चरित सुने हैं जब तें। उतहीं चित अटक्यौ है तब तें॥
तरु अशोक मण्डित कमनीय। बाग जमुन तट अति रमनीय॥
तहाँ कान्ह तिन तियनि निहारे। संग में सखा भ्रात पुनि प्यारे॥
धरें पीत पट साँमल गात। तिन चित्रित है गिरि को धात॥
पल्लव फूल चन्द्रिका धरें। सुन्दर नटवर बेस सु करें॥
इक कर मित्र खएं छवि पावत। इक कर सों कल कमल फिरावत॥
हँसत लसति अलकावलि नीकी। काननि कमल सु जीवन जीकी॥
प्रीतम गुण सुनि कान भरे हैं। मन हूँ लौ ता माहिं धरे हैं॥
अब नैननि करि भीतर लए। हिय लपटाय ताप तजि दए॥

ज्यों सुषुप्ति में लीन होय जब। अहं वृत्ति सब ताप तजें तब॥
तिय सों सब आसा छिटकांईं। इक प्रीतम कों देखनि आईं॥
हरि सर्वज्ञ हिये की जानी। हँसि इतराय कही कछु बानी॥
हे महभाग भलें आईं सब। बैठौ हम प्रिय कहा करें अब॥
तुमरी आवनि उचित है यातें। मोकों देखनि आईं जातें॥
जो नर चतुर स्वार्थ को जानें। सो मुहि प्रिय आत्मा करि मानें॥
तो नित मोसों प्रीति सु करें। कबहुँ कछू न कामना धरें॥
तन मन धन बुधि प्रान रु दारा। ताही करि सब लगै सु प्यारा॥
और न कोऊ प्यारौ तातें। अब निज गृह तुम जावौ यातें॥
ज्यों तुमरे पति तुम सों मिलिकें। जज्ञहिं पूर्ण करें सुख झिलिकें॥

॥ द्विज पत्नी ऊचु: ॥

अहो यह तुम कठोर जिनि भाखौ। नेंकु तो निज वचननि की राखौ॥
हम तुम चरन सरन आईं जब। भैया बन्धु त्याग कीने सब॥
पद करि तुलसी माल जो डारी। सो हम धरि हैं सीस मुरारी॥
पति सुत पिता बन्धु पुनि भ्रात। हम सों कोऊ न करि हैं बात॥
और कौन हम सों बतरैहै। हमरी गति कोऊ अब ह्वै है॥
तुमरे चरननि में हम परीं। हमरी गति तुमहीं हे हरी॥

श्री भगवानुवाच—

सुत पति भ्रात बन्धु पुनि जिते। तुम सों दोष न करिहैं तिते॥
ह्वै हैं पुनि प्रसन्न सुर हू अब। जाते मेरे ई बस हैं सब॥
पुनि मेरौ संग या तन माँहीं। नहिं सुख हित सनेह हित नाँहीं॥
तातें मो मैं मनहिं लगैहौ। तब तुम तुरत ही मोकों पैहौ॥

श्री शुक उवाच—

यह सुनि पुनि द्विज पतिनी जितीं। जज्ञ धाम में आईं तितीं॥
पतिन हू तिनसों दोष न कीनों। मिलि जज्ञहिं पूरन करि लीनों॥
गहि राखी पति ने इक नारी। ताने जैसे सुने मुरारी॥

तैसे ई हरि कौं हिय में धरि । कर्म बन्ध तन दियौ त्याग करि ॥
पुनि जो चारि प्रकार कौ विंजन । अति सवाद बहुतै मनरञ्जन ॥
पहले सखनि अघाय खवायौ । बहुरों हरि हू नें सो पायौ ॥
ऐसें नर वपु करि नन्दलाल । करत नरनि के से पुनि ख्याल ॥
बानी चरित रूप रङ्ग भीनों । गो गोपी गोपनि सुख दीनों ॥
पुनि अपराधी माथुर जिते । निज कृति सुमिरत पति भए तिते ॥
विश्व के ईसुर नर वपु धर्यौ । तास माँगिबौ कान न कर्यौ ॥
पुनि जु अलौकिक भक्ति है जोई । तियनि की हरि में देखी सोई ॥
अपनपौ लख्यौ भक्ति कर हीन । दु:खित ह्वै निज निन्दा कीन ॥
धिक व्रत विद्या जन्म हमार । समझि क्रिया कुल कौं धिक्कार ॥
पुनि चातुर्य्यहि धिक है यातें । हरि सों विमुख भए हम जातें ॥
निश्चें हरि की माया है जो । जोगिनि हूँ कों मोहि लेत सो ॥
जाके हम सब जग के गुरु ये । अपनों भलौ न जानि सके ते ॥
अहो इन तियनि कौ लखौ प्रभाव । हरि गुरु में भयौ कैसौ भाव ॥
घर सरूप ये मीच की पास । ताहू काटि गई हरि के पास ॥
इनके कछु न जनेऊ भए । बहुरि न कछू वेद पढ़ि लए ॥
नहिं तप नहिं पुनि आतम ज्ञान । नहिंन सौच न क्रिया प्रधान ॥
ते जोगेसुर के ईसुर हरि । तिनसों भयौ सनेह गाढ़ तर ॥
पुनि हम ये सब ही गुण भरे । भक्ति विमुख भख मारत परे ॥
अहो हम अपनौ भलौ न जानें । घरनि में अति आसक्तिहिं ठानें ।
तिन हम मूढ़नि कौं समझावन । पठये सखा भक्त मन भावन ॥
पूरन काम मुक्ति के दाता । तिन कौन सी दुर्लभ बाता ॥
हम मायक आधीनानि पें जो । माँगिवौ ताहि विडम्बन है हो ॥
जाकी चरननि हेत रमा जो । सर्वसु ही कौ अनादर करि सो ॥
चञ्चलता तजि सेवत ताहि । माँगन तासु न सोहै काहि ॥
देस काल द्विज द्रव्य रु मन्त्र । अगिनि अमर जजमान रु तन्त्र ॥

जज्ञ बहुरि पुनि धर्म है जोई। सबमें एक मुख्य है सोई ॥
सो साछात विष्णु भगवान। जोगेसनि के ईस महान ॥
प्रगट भए जादवनि सु माँहीं। सुनि हम मूढ़नि जानी नाँहीं ॥
अहो हम हूँ अति धन्य हैं यातें। जिनके ऐसी पतिनी जातें ॥
जिनकी भक्ति देखि हमरी मति। नन्दनंदन में निश्चल भई अति ॥
कृष्ण अखण्डित बुद्धि जु आहि। हमरे नमस्कार हैं ताहि ॥
जाकी माया करि मोहित मति। कर्मनि में हम भ्रमत रहत अति ॥
आदि पुरुष हरि कौ प्रभाव जो। हम ताकों नहिं जानि सके हो ॥
हम तन्माया मोहित जातें। सो अपराध छमा करौ यातें ॥
हरि अपराधी द्विज वर जिते। निज अपराध सुमिरि यों तिते ॥
हरि देखनि की भई मन माँहीं। कंस तें डरपि चलि सकें नाँही ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

दोहा—चौबीसें अध्याय हरि, जज्ञ इन्द्र कौ मेंटि।
पुजवायौ गिरि गोधनहिं, करवाई सब भेंट ॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

इक दिन नन्द गोप हैं तिते। इन्द्र कौ यज्ञ करन लगे तिते ॥
भ्रात सहित श्री कृष्ण मुरारी। गोपनि की सब क्रिया निहारी ॥
सर्वातम सबकों देखत हरि। ताहू कों जानत नीके करि ॥
ऐ गोप परि वृद्ध नन्दादिक। नम्र ह्वै तिनें बात पूछत इक ॥
हे पितु यह उत्सव को महा। कौन देवता फल पुनि कहा ॥
काहे करि यह सिद्धि होत हो। सुन्यों चहत मैं सबै कहो सो ॥
जे कोऊ सबहिं आपने जानें। अपुनी पर की कछू न ठानें ॥
मित्र उदास न बैरी जिनकें। कौन सी बात गोप्य है तिनकें ॥
उदासीन कों अरि ज्यों तजियै। सुहृदहिं अपनों जानि सु भजियै॥

जानि जानि कें कर्म करैं जो। कर्म सिद्धि कों पावत है सो॥
जानें बिना करैं पुनि जोई। तैसे सिद्धि न पावै सोई॥
हे पितु कहौ कौन यह कह्यौ। अथवा लोक रीति करि लह्यौ॥

श्री नन्द उवाच—

हे सुत इन्द्र रूप भगवान। मेघ हैं ताकी मूर्त्ति समान॥
सब ही कौ जीवन है जल जो। अहो पूत तेई बरसत सो॥
मेघनि कौ पति इन्द्र है जोई। मेघनि सों सब सिद्धि सु होई॥
तिन वस्तुनि करि हम तिहिं जजें। और हू नर पुनि ताकों भजें॥
बचें सों हम जीविका करें। धर्म अर्थ कामहिं मन धरें॥
हे सुत कछु न होय नर सेती। इन्द्र बिना नहिं उपजहिं खेती॥
परम्परा वह धर्म जु जाहि। द्वेष काम भय लोभ तें याहि॥
हे बेटा नर छोड़ें जौ पै। मङ्गल कों नहिं पावै तौ पै॥

श्री शुक उवाच—

नन्द ने कह्यौ सुन्यों हरि ऐसें। औरौ गोपनि हू कह्यौ वैसें॥
पुनि सो इन्द्रहिं क्रोध बढ़ावनि। बोले पितहिं सबहिं मन भावनि॥

श्री भगवानुवाच—

हे पितु कर्म सों उपजत जंतु। कर्म ही करि पुनि सबकौ अन्त॥
दुख सुख भय पुनि मङ्गल जितौ। कर्म ही करि सब होत है तितौ॥
अरु जौ कहौ ईसुर है कोऊ। कर्म ही करि फल देत है सोऊ॥
कर्म बिना पुनि देत न जातें। सबकों हेतु कर्म ही यातें॥
निज निज कर्मनि के बस नर सब। तिनहिं इन्द्र करि कहा करिवें अब॥
नरनि कौ सौभावीक कर्म जो। इन्द्र समर्थन मेंटनि कों सो॥
नर स्वभाव के पीछें चलें। पुनि सुभाव तें नेंकु न टलें॥
नर सुर बहुरि असुर हैं जिते। हे पित सब सुभाव बस तिते॥
कर्म सों ऊँच नीच तन पावै। पुनि सु कर्म ही करि छिटकावै॥
शत्रु मित्र गुरु कर्म ही जान। कर्म ही उदासीन भगवान॥

ताते कर्महिं कों पूजै नर। निज सुभाव में आस्थि ह्वै करि ॥
जाकरि कार्य सिद्ध होय जाकौ। हे पितु सोई देवता ताकौ ॥
जाकरि जासु जीवका होय। तिह तजि और भजै जो कोय ॥
तो तातें सुख लहै न ऐसे। दुष्ट नारि पर पति ते जैसे ॥
विप्र जीवका करै बेद कर। राजा नीकें करि पालै धर ॥
सूद्र द्विजनि की सेवा करै। वैस्य जीवका चारि सु धरै ॥
खेती वनज व्यापार पुनि जानों। चौथो गो रछन पुनि मानों ॥
तामें इक गोरच्छन जोई। हमरी तात जीवका सोई ॥
सत रज तम तीनों गुण हैं जे। पालन उत्पति प्रलय करें ते ॥
रज करि स्त्री पुरुषनि द्वारा। विविधि भाँति जग होत अपारा ॥
रज गुण प्रेरे मेघ जु आवें। जलहिं बरषि ते सबहिं डुबावें ॥
तिन करि जन सब जीवत अहौ। इन्द्र सु कहा करत सो कहौ ॥
हमरें घर पुर देसन ग्राम। बन गिरि माँहिं करें विश्राम ॥
गो द्विज गिरि कौ यज्ञ करौ अब। इन्द्र यज्ञ की सामां लै सब ॥
खीरि आदि पुनि दारि है अन्त। ऐसें कीजै पाक अनन्त ॥
पूरी पूआ गूँझा कीजै। पुनि दूधहिं इक ठाँ कर लीजै ॥
पुनि वेदज्ञ द्विजनि के हाथ। होम करैयै है ब्रजनाथ ॥
तिनकों सुन्दर अन्न रु धेनु। बहुत दच्छना देहु सुखेंन ॥
पतित स्वान चाण्डाल जु आहि। दीजै जथा जोग पुनि ताहि ॥
पहलें घास गउनि कों दीजै। बहुरों गिरि कौ पूजनि कीजै ॥
पुनि भोजनि करि करौ सिंगार। अतर लगाय पाय सुख सार ॥
गो द्विज अगिन बहुरि गिरि गोधन। इनकी फेरी करौ सबै जन ॥
हे पितु हमरौ तौ मत यही। तुमें रुचै तौ करियै सही ॥
गो द्विज गिरि सबकों यह प्यारौ। बहुरों निपटै सुख दह मारौ ॥

श्री शुक उवाच—

इन्द्र कौ गर्व निवारन सही। काल रूप हरि ने यह कही ॥

सो सुनि नन्दादिक हे जिते। भलें कही मानत भए तिते॥
हरि ज्यों कह्यौ कस्यौ त्यौं ही पुनि। द्विजनि पै करवाईं मङ्गल धुनि॥
गायनि घास चुगाय सु लीनी। पुनि गोधन की पूजा कीनी॥
पुनि गैया आगें करि लईं। गोपनि गिरि परिकर्मा दईं॥
गोपी पुनि सकटनि पर चढ़ीं। करि सिंगार जनु छवि सों मढ़ीं॥
तिनकों द्विज आसीस सुनावत। ते पुनि नन्दनन्दन गुण गावत॥
गोपनि के विसवास के कारन। हरि इक बड़ौ रूप कियौ धारन॥
मैं हौं गिरि यों कहत सु भए। सब सामिग्री खाय सु गए॥
पुनि गोपनि सँग ताढिग आय। आप ही आपहिं सीस नवाय॥
कही लखौ यह गिरि कौ रूप। हमें अनुग्रह कियौ अनूप॥
याकी करै अवज्ञा जो नर। हति है ता हिय इच्छा तनु धरि॥
हम तौ निज गायनि के हेत। याके पगनि माँहि सिर देत॥
यों गिरि गोधन पूजि द्विजनि तब। कृष्ण सहित ब्रज कों आए सब॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

पच्चीसवाँ अध्याय

दोहा—बरस्यौ ब्रजहि बहावनहिं, इन्द्र पचीसें ध्याय।
हरि उठाय गिरि गोधनहिं, लीनों ताहि बचाय॥ १॥

श्री शुक उवाच—

नन्दादिक पुनि गोप जितेक। तिनके पालक हरि ही एक॥
तिन पर इन्द्र कोप कीनों तब। अपनो जज्ञ भङ्ग देख्यौ जब॥
संवर्त्तक मेघनि कौ गन जो। करि डारै छन माँहि प्रलै सो॥
इन्द्रहिं आप ईस अभिमानी। ताहि बुलाय कही यह बानी॥
अहो बनवासी गोप जिते। श्री मद करि भे मत्त सु तिते॥
मनुष कृष्ण कौ आश्रै कियौ। हमरौ पुनि पूजन तजि दियौ॥
जैसे कर्म प्रधान जज्ञ जो। झूँठे नौका सौ भासत सो॥

तासों भयौ चाहत भव पार। तजि कें आत्म अनात्म विचार ॥
मूर्ख अनम्र अज्ञ वाचाल। पण्डित मानी बजवत गाल ॥
ता नर कृष्ण को आश्रै पायौ। गोपनि मेरौ जज्ञ मिटायौ ॥
श्री मद करि मतवारे भए। कृष्णहिं पाय फूलि ते गए ॥
अहो मेघ तिनकौ मद झारौ। गोधन वृन्द मारि पुनि डारौ ॥
मैं हूँ पुनि चढ़ि ऐरापति पै। बहुरों बली पवन गन कों लै ॥
तुमरे पाछें पाछें आऊँ। नन्द के व्रज कों खोदि बहाऊँ ॥

श्री शुक उवाच —

यह कहि इन्द्र दए ते छोरि। पुनि व्रज पै आए घन घोर ॥
बिजुरीं चमकें गरजें भारे। पवन सों छुभित भए पुनि सारे ॥
जल धारा पुनि ओरा परें। व्रज कों अति पीड़ा ते करें ॥
थूनी सी जल धारा भईं। कछू न सूझै धर छै गईं ॥
गोपी गोप गाय पुनि जितीं। निपट सीत करि काँपति तितीं ॥
बछरनि छाती तर करि ल्याईं। कृष्ण चरन के सरन सु आईं ॥
कृष्ण कृष्ण हे महाभाग हरि। गोकुल की रच्छा तुमहीं करि ॥
कुपित इन्द्र तें हमें बचावौ। अहो भक्त वत्सल सु कहावौ ॥
सिलनि की बरषा करि व्रज भारी। दुखित अचेतन लख्यौ मुरारी ॥
पुनि यह हरि जू जानि सु लियौ। कुपित होय यह इन्द्र जु कियौ ॥
असमैं माँहि सिलनि की वर्षा। तीक्षण पवन वित्त के कर्षा ॥
हमन इन्द्र कौ यज्ञ मिटायौ। हमें हतन तिन यह सु उपायौ ॥
अब याकों सु दूरि करि डारों। अपने कछु बल कों विस्तारों ॥
आप ही ह्वै रहे ईस मूढ़ सब। तिनकौ धन मद दूरि करौं अब ॥
बहुरों साधु देवता हैं जे। आपुहि सदा दास मानत ते ॥
हम असाधु को दण्ड जु धरें। सुतौ तास कौ मङ्गल करें ॥
हम व्रजनाथ रु व्रज सु हमारौ। या बिन मोहि और नहिं प्यारौ ॥
निज तन करि या की रछा जो। करिवौ हमरौ व्रत ही है सो ॥

पुनि जो गिरि गोधन सुखकारी। लीला ही करि ताहि मुरारी॥
इक कर सों उठाय लयौ ऐसें। साँप बैठना को सिसु जैसें॥
बहुरि कान्ह गोपनि सों कही। तात मात हे ब्रज जन सही॥
अप अपने सब गोधन लै करि। सुख सों आय धसौ या के तर॥
मो कर तें गिरि के गिरवे कौ। हे तुम डर मानों जिनि नेंकौ॥
वर्षा व्यार बचावन कारन। हम यह गिरि कीनों है धारन॥
यों हरि समाधान कीनों जब। गोधन नीचें जाय धँसे सब॥
गोधन सकट पुरोहित जिते। सुख सों तातर रहे सु तिते॥
सात दिना हरि कर गिरि धारयौ। ब्रज जन तन मन वारि सु डारयौ॥
गरक भए सब ता छवि माँहीं। भूख प्यास सुख की सुधि नाँहीं॥
इन्द्र ने हरि प्रभाव देख्यौ जब। विस्मय भयौ रु गर्व गयौ सब॥
बहुरि मनोरथ सिद्धि न भए। तब सब मेघ मनें करि दए॥
मिटि गईं घटा उदै रवि भयौ। तीक्षण पवन हूँ पुनि थमि गयौ॥
ताहि देखि गोवर्धन धारी। गोपनि सों इक बात उचारी॥
अहो अब व्यारि वृष्टि रहि गई। बहुरों नदीं छिलछिलीं भईं॥
तिय सुत गोधन लै निकसौ अब। मन तें डर पुनि दूरि करौ सब॥
तब गैयन लै निकसे सारे। बहुरि लए सब सकट निकारे॥
तिय बालक पुनि बूढ़े जिते। हरें हरें सब निकसे तिते॥
हरि हूँ सबके देखत गिरि जो। लीला करि धरि दयौ तहीं सो॥
पूरन गोप प्रेम करि छए। दौरि कान्ह सों लपटि सु गए॥
प्रेम सहित दधि अच्छित जल करि। गोपिन आसिष दै पूजे हरि॥
जसुमति बहुरि रोहिनी नन्द। महाबली बल पाय अनन्द॥
कान्ह सों लपटि गए सब आछें। प्रेम सों देत असीस सु पाछें॥
स्वर्ग में सिद्ध साध्य गन्धर्व। चारण बहुरि देवता सर्व॥
अस्तुति करत महा मन हरषें। सुन्दर सुन्दर फूलनि बरसें॥
संख बहुरि दुन्दुभी बजावें। तुंब रु आदि सबै पुनि गावें॥

राम स्याम पुनि निज ब्रज आए। संग में गोप परम रङ्ग छाए॥
मोहन कौ मोहन चरित्र जो। व्रज तिय ब्रज गावति आईं सो॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
पञ्चविंशोऽध्याय: ॥ २५ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

दोहा—विस्मित भए हरि कर्म लखि, गोप छब्बीसें ध्याय।
तिनें गर्ग के वचन कहि, नन्द दए समझाय ॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

गोप न जानत हरि कौ मर्म। देख्यौ यह अति अद्भुत कर्म॥
बहुरों सब अचिरज करि छए। श्री ब्रजराज सों बोलत भए॥
अहो या बालक के जे कर्म। अति अद्भुत लखि उपजत भर्म॥
हमसें अहो गँवारनि माँहि। याकौ जन्म सम्भवै नाँहिं॥
जो यह सात बरस कौ बाल। इक ही करि सों करि कछु ख्याल॥
गोधन लयौ उठाय सु कैसें। हाथी सूँड़ सों कमलहिं जैसें॥
दृग हू याके खुले नहीं जब। महा वलिष्ट पूतना कौ तब॥
प्राण सहित पय पीयौ ऐसें। काल पिवत यौवन कों जैसें॥
बहुरों तीनि मास कौ भयौ जब। सकट तरे सोवत रोवत तब॥
तानत पाय अँगूठा लगि करि। कैसें सकट उलटि गयौ हे हरि॥
वर्ष दिना को हो यह जबै। तृनावर्त्त नभ लैं गयौ तबैं॥
कैसे गरौ घोंटि ताहि मारयौ। पुनि ब्रज माँहि सिला पर डारयौ॥
कबहूं इन माखन चौरयौ जब। जसुमति ऊखल सों बाँध्यौ तब॥
इन द्वै अरजू के द्रुम हे जे। करनि सों कैसें डारि दए ते॥
सखनि सहित बन गोचारत जब। कैसें बकहिं चीरि डारयौ तब॥
बछरनि में बछरा ह्वै आयौ। कैसें ताहि फिराय चलायौ॥
बन्धुनि सहित सु धेंनुक नाम। कैसें हत्यौ राम अरु स्याम॥
सुखद ताल बन पके फलनि करि। निर्भै कियौ अहो इनही हरि॥

बड़ौ बली बलदेव सुहायौ। तापै पुनि प्रलम्ब मरवायौ॥
ब्रज के गोप गाय पुनि जिते। दावानल तें बचए तिते॥
बड़ विषधर जो काली नाग। सो इन दमन कियौ बड़ भाग॥
दह तें कैसें काढ़ि सु दियौ। निर्विष जमुना कौ जल कियौ॥
पुनि हमरौ दुस्त्यज अनुराग। तेरे सुत में हैं बड़ भाग॥
हमसों पुनि याहू कौ महा। कहौ नन्द यह कारन कहा॥
कहाँ यह सात बरस कौ बारौ। कहाँ धरिवौ गिरि गोधन भारौ॥
तातें हे ब्रजराज सुनों अब। तुव सुत माँहिं करें सङ्का सब॥

श्री नन्द उवाच—

अहो सुनों सब वचन हमारौ। मो सुत में सङ्का जिनि धारौ॥
या के गुण मोहि गर्ग कहे जो। अब मैं तुमसों सबै कहों सो॥
तेरो सुत जुग जुग में जनमें। चारि रङ्ग धारै निज तन में॥
धौरौ लाल पीत पुनि स्याम। कृष्ण वरन तें कृष्ण सु नाम॥
अहो नन्द यह सुत जो तेरौ। कभू भयौ बसुदेव हू केरौ॥
तातें कोऊ बुद्धिमान जे। वासुदेव हू करि कहि हैं ते॥
पुनि गुण कर्मनि के अनुसार। तुव सुत नाम सरूप अपार॥
तिनकों जानत हैं हमसे मुनि। हे ब्रजराज नर न जानें पुनि॥
पुनि गोकुलबासी हैं जिते। यातें मङ्गल पैहैं तिते॥
याकरि अहो विपति हैं जितीं। तुम सुख सों तरि जैहों तितीं॥
एक समै कोऊ नृप नहिं रहे। तब साधुनि कों चोरनि रहे॥
पुनि इनहीं ते साधु बढ़ाए। तब तिन चोरनि मारि भगाए॥
महाभाग जन तुव सुत माँहीं। करि हैं प्रीति छोड़ि हैं नाँहीं॥
तिनके दुःख ह्वै है नहिं ऐसें। अहो नन्द हरि भक्तहिं जैसें॥
अहो नन्द यह तुव सुत जोई। गुण करि नारायण सौ होई॥
धन जस तेज समान सु ताके। नहिं अचरज कर्मनि में याके॥
यह कहि मोहि गर्ग घर गए। हम याहि तब यों मानत भए॥

है कोऊ नारायण अंस। बिन श्रम करत हैं कर्म प्रसंस ॥

श्री शुक उवाच—

गर्ग कौ कह्यौ नन्द भाष्यौ जब। सब ब्रजवासी मगन भए तब ॥
बहुरों सब सङ्का तजि दीनीं। नन्द रु कान्ह की पूजा कीनीं ॥
भयौ इन्द्र कौ जज्ञ भङ्ग जब। निपट ही व्रज ऊपर कौप्यौ तब ॥
बज्र चलायौ ओरा डारे। तीक्षण पवन रु बरषे भारे ॥
गोप गाय तिय दुःखित भईं सब। हरि के चरन सरन गईं तब ॥
हरि दयाल लखि क्रोध सु कियौ। इक कर सों उठाय गिरि लियौ ॥
ज्यों लरिका खेलन के हेत। साँप बैठना कर में लेत ॥
इन्द्र कौ गर्व दूरि पुनि कियौ। अपने ब्रजहिं राखि यों लियौ ॥
गौवइनि के हैं इन्द्र सदा जो। नित्य प्रसन्न रहौ हम पै सो ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
षड्विंशोऽध्याय: ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

दोहा—सत्ताईसें ध्याय में, हरि प्रभाव लखि लीन।
सुरभी इन्द्र सु आय करि, हरि अभिषेकहिं कीन ॥१॥

श्री शुक उवाच—

गिरिधारी नें गिरि धरिकें जब। वर्षा तें व्रज राखि लयौ सब ॥
तब गोलोक तें सुरभी आईं। संग इन्द्र हू कों पुनि ल्याईं ॥
हरि अपराध तें इन्द्र लजायौ। कान्ह के पास इकौसें आयौ ॥
आय पाय श्री हरि कें परयौ। रवि सौ मुकट चरन पर धरयौ ॥
अति तेजस्वी कृष्ण मुरारी। तिनकी महिमा सुनी निहारी ॥
इन्द्र कों त्रिभुव कौ मद गयौ। हाथ जोरि पुनि बोलत भयौ ॥
हे सर्वज्ञ एक रस रूप। सुद्ध सत्व मय तुव सु सरूप ॥
रज तम तुमने मारि विडारे। मायिक जग तें हौ तुम न्यारे ॥
हे हरि जग तौ बाँधत ताकों। तुमरो ज्ञान होत नहिं जाकों ॥

पुनि तन के कारण लोभादि। ते तुममें कहाँ बनें अनादि॥
हे हरि ये लोभादिक हैं जे। अज्ञानिन कों लपटत हैं ते॥
तऊ तुम धर्म की रच्छा हेत। अहो दण्ड दुष्टनि कों देत॥
तुमहीं जग के गुरु पुनि तात। तुमहीं बहुरि नियन्ता ख्यात॥
तुम्हीं दुरत्यय काल दण्ड धरि। अपने मनमानें सरूप करि॥
अभिमानिन के गर्व निवारि। सुख सों ब्रज में करत विहार॥
हे हरि हमसे मूढ़ महा जे। जगत ईस आपहिं मानें ते॥
तिनके सबरे गर्व जात तब। भय में तोहि लखें निर्भय जब॥
पुनि तुव भक्ति सु करें अखण्ड। दुष्टनि तुव लीला ही दण्ड॥
हे प्रभु मैं धनमद मतवारौ। जानि सक्यौ न प्रभाव तिहारौ॥
मूढ़ यहै अपराध कियौ जो। हे प्रभु ! अब तुम छमा करौ सो॥
पुनि यह दुष्टा बुद्धि हमारी। फिरि कबहूँ जिनि होहु मुरारी॥
हे हरि यह तुमरौ अवतार। दुष्ट नृपति करि जो भुव भार॥
ताही के सु उतारन कारन। पुनि भक्तनि कों सुख विस्तारन॥
बासुदेव हे पुरुष सरूप। हे जादव पति कृष्ण अनूप॥
सबके भीतर सब तें न्यारे। हे भगवन दण्डौत हमारे॥
बहुरि विशुद्ध ज्ञान घन रूप। निज इच्छा करि धरयौ सरूप॥
सर्वातम सब बीज मुरारी। व्यापक पुनि दण्डौत हमारी॥
अहो मिटयौ जब जज्ञ हमारौ। मैं क्रोधी पुनि गर्वित भारौ॥
तुमरे व्रजहिं बहावन कारन। बरष चलाई तीच्छण व्यारनि॥
हे प्रभु तुमनि अनुग्रह कियौ। गर्व उपाय नास करि दियौ॥
तुमहीं ईसुर गुरु आतमा सब। तिन तुमरी हौं सरन भयौ अब॥

श्री शुक उवाच—

यों हरि की अस्तुति कीनी जब। हँसि करि ताहि कृष्ण बोले तब॥

श्री भगवानुवाच—

अहो तुम धन करि मत्त भए जब। तुमरौ मख हम भङ्ग कियौ तब॥

अब तुम मोहि सुमिरिहौ जातें। यह सु अनुग्रह ही है यातें ॥
अहो हम सबकों दण्ड सु धारें। धन मदमत्त न मोहि निहारें ॥
जा पर हम सु अनुग्रह करें। तासु प्रथम सब सम्पत्ति हरें ॥
अब तू जाहु होहु भल तेरौ। नितहीं वचन मानियों मेरौ ॥
पुनि धैर्यमान सुरभि जो। हरि कों सहित कुटंबन ई सो ॥
बहुरों गोप वेस ईसुर हरि। तिनसों बोली सम्बोधन करि ॥

सुरभि उवाच—

कृष्ण कृष्ण हे बड़ योगीस। हे विस्वातम हे जगदीस ॥
तुमहौ सब लोकनि के नाथ। तुम हम करे अनाथ सनाथ ॥
परम देव तुम हमरे ईस। हमरे तुम्हीं इन्द्र जगदीस ॥
सो गो द्विज सुर साधुनि के हित। हे हरि तुमहीं इन्द्र रहौ नित ॥
ब्रह्मा की आज्ञा तें हम अब। इन्द्रऽभिषेक तुमें करि हैं सब ॥
दूरि करन पृथिवी कौ भार। तुम यह प्रगट कियौ अवतार ॥
पुनि सुरिभी हरि आज्ञा पाय। निज पय तें हरि दए न्हवाय ॥
पुनि अकास गङ्गा कौ जल जो। सूँड़ में ऐरावत ल्यायौ सो ॥
इन्द्र ने हरिहिं न्हवायौ ताकरि। श्री गोबिन्द नाम दीनों धरि ॥
संग में सुर रिषि देव मात जे। फूले नाहिं समात गात ते ॥
तहाँ आय-तुंवर नारद मुनि। विद्याधर गन्धर्व सिद्ध पुनि ॥
अघ नासक हरि कीरति गाई। नचीं अप्सरा अति हरषाई ॥
बहुरों सुरपति फूलनि बरषे। अस्तुति करत महामन हरषे ॥
त्रिभुवन मङ्गल फिरी दुहाई। गायनि धरनी दूध भिजाई ॥
द्रुम सबरे मकरंदनि भए। बिन जोते सब अन्न सु भए ॥
नाना रस की नदी सु बहीं। गिरिनि तें मनि बाहिर ह्वै रहीं ॥
हे नृप हरि अभिषेक भयौ जब। जन निर्वैर भए सबहीं तब ॥
यों हरि कों अवषेक सु भयौ। आज्ञा माँगि इन्द्र घर गयौ ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

दोहा—ध्याय वरुण गृह तें पितहिं, अट्ठाईसे ध्याय।
गोपनि कों वैकुण्ठ पुनि, दीनों कान्ह दिखाय ॥ १ ॥

व्रत इकादसी कौ निर्जल करि। नन्दराय जू पूजत श्रीहरि॥
इक दिन बहुत द्वादसी नाँहीं। गए न्हान निसि जमुना माँहीं॥
वरुण के भृत्य पकरि लै गए। समै आसुरी मानत भए॥
गोपनि नहिं नन्द देखे जब। राम कृष्ण करि कूके ते तब॥
कूकनि सुनि हरि दौरे गए। वरुण लै गयौ जानत भए॥
हरि समर्थ अपनेंनु सुख काजा। तबहीं गए वरुन ढिग राजा॥
वरुण ने कान्हर कों देखे जब। निपट बड़ी पूजा कीनीं तब॥
कान्ह दरस करि अति सुख पायौ। बहुरों कछु इक वचन सुनायौ॥

वरुन उवाच—

हे प्रभु हम अब ही तन धरयौ। आजु ही अर्थ हाथ सब परयौ॥
तुव पद पङ्कज कों सेवत जे। भव समुद्र के पार भए ते॥
हे परमात्म ब्रह्म जगदीस। तुमकों हम सु नवावत सीस॥
जग स्रष्टा माया तुव माँहीं। हे प्रभु कबहूँ सुनिये नाँहीं॥
पुनि ये हमरे मूढ़ जु प्रानी। हे प्रभु इनों कछू नहिं जानी॥
छमा करौ तुव पितु लै आए। अब लै जाहु परम सुख छाए॥

श्री शुक उवाच—

ईसुर के ईसुर भगवान। कियौ प्रसन्न दियौ सनमान॥
पुनि हरि लै आए श्री नन्दहिं। गोपनि कौ दै अति आनन्दहिं॥
नन्द वरुन कौ वैभव देख्यौ। पहले ऐसौ कभू न पेख्यौ॥
पुनि निज सुत के पायनि परयौ। लखि कै नन्द सु अचरज भरयौ॥
गोपनि सों सब आय बखान्यों। तिननि हरषि ताहि ईसुर मान्यौ॥
पुनि कहै अपनी सूछम गति जो। हमकों कभू दिखै है यह सो॥
सबही की जानत भगवान। अपने जनानि की हिय की जानि॥

ताके सिद्ध करन कों हरी। यह सु कृपा करि मन में धरी॥
अहो अविद्या काम कर्म करि। सब जोनिन में भ्रमत रहत नर॥
पै अपनी गति जानत नाँहीं। दयासिंधु हरि करि मन माँहीं॥
पुनि निर्मायिक अपनों धाम। गोपनि कों दिखयौ घनस्याम॥
जो है ब्रह्मज्योति रु सनातन। बहुरों सत्य अनन्त ज्ञान घन॥
ह्वै निगुण इकाग्र मन करि पुनि। जा धामहिं देखत हेंगे मुनि॥
पहले जहाँ अक्रूर अन्हाए। तादह में लै गोप डुबाए॥
तहाँ तिननि देख्यो हरि धाम। पुनि ते काढ़ि लए घनस्याम॥
नन्दादिक लखि अचरज पाय। सुत की अस्तुति करी हरषाय॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
अष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

उन्तीसवाँ अध्याय

दोहा—उनतीसे अध्याय में, कठिन कहे हरि बेंन।
अन्तर्हित भए रास में, बहुरि कमल दल नेंन॥१॥

श्री शुक उवाच—

फूली सरद मल्लिका चहुँदिसि। हरि हू हरषि निरषि कें सो निसि॥
रमन करन कों मन पुनि कीनों। सरन योग माया कौ लीनों॥
तब ही पूर्ण उदै भयौ चन्दा। सबही कों दीनों आनन्दा॥
सुन्दर पूर्व दिसा कौ मुख जो। किरन करन करि अरुण कियौ सो॥
जैसें विरही जन निज तिय मुख। केसरि मण्डित करि पावै सुख॥
रमा बदन सौ ससि सो नीकौ। नव कुंकुम हूँ कौ रंग फीकौ॥
किरननि करि बन रंग्यौ गयौ सब। सुन्दर बेंनु बजायौ हरि तब॥
रस छाके बाँके दृग जिनके। सुनत ही मन मोहै सो तिनके॥
बेंणु गान ब्रजतियनि सुन्यों जब। अंगनि छाय अनङ्ग गयौ तब॥
हरि जू ने मन पकरयौ जिनकौ। सब ही काज विसरि गयौ तिनकौ॥
बेगि चलीं निज प्रीतम पासा। कुण्डल लोल कपोल प्रकासा॥

कोऊ गाय दुहावत धाई। कोऊ पटकि दोहनी आई॥
कोऊ औटत पय तजि भागी। चूल्हे ही पर थूली त्यागी॥
कोउ परोसत ही तजि आई। कोऊ दूध पियावति धाई॥
किनहूँ टहल पतिन की त्यागी। कोऊ भोजन करत सु भागी॥
कोऊ लीपति उवटति कोऊ। कोऊ आँजति ही दृग दोऊ॥
उलट पलट पट भूषण जिनके। आईं उत्कण्ठत चित तिनके॥
तात भ्रात पति बंधुनि बरजीं। हरि चित रहे सु नेंकु न लरजीं॥
कोय घरनि में रोकि जु लईं। बाहिर ते नहिं निकसति भईं॥
तिन दृग मूँदि भावना धरी। ध्यान माँहि लै कीने हरी॥
दु:सह प्रीतम विरह ताप सों। पाप सबै मिटि गए आप सों॥
ध्यान में पिय सों मिलि सुख पायौ। ताही करि सब पुन्य विलायौ॥
जो हरि परमातम करि गायौ। जार बुद्धि हू करि तिहि पायौ॥
गुण मय देह तजि दए तबै। छीन भए पुनि बन्धन सबै॥

श्री राजोवाच—

कृष्णहिं परम कान्त कर जान्यों। हे मुनि नहिंन ब्रह्म करि मान्यों॥
तिन गुणमय कौ गुण प्रवाह जो। कैसे उपरम भयौ कहौ सो॥

श्री शुक उवाच—

अहो यह तौ पहले ही कही। हरि दोषी सिसुपाल हू सही॥
परम सिद्धि तत छिन में पाईं। ये तौ हरि की प्यारीं गाईं॥
अप्रमेय बहुरों अविनासी। निर्गुण पुनि सब गुण परकासी॥
ता हरि की जु प्रगटता है जो। लोकनि के कल्यान हेत सो॥
जो निन हरिहिं एक करि मानें। क्रोध सनेह काम मय ठानें॥
बहुरि मित्र करि मानत हैं जे। ताही कों पावत सब ही ते॥
जोगेश्वर ईसुर भगवान। बहुरि अजन्मा सब गुण खानि॥
अचिरज कछु न करौ ता माँही। जा हरि करि जग रहत सु नाँही॥
वक्तनि में हरि वक्ता भारी। ढिग आईं देखीं ब्रज नारी॥

तिनसों वचन कहे ऐसे तब। सुनतहि मोहित होय जाँय सब ॥

श्री भगवानुवाच—

हे महाभाग भले आईं सब। हम तुमरो प्रिय कहा करें अब ॥
व्रज में तो ह्वै मङ्गल महा। आवनि कौ कहौ कारन कहा ॥
देखौ यह रजनी अति घोर। घोर ही साँप रु सिंह करोर ॥
तातें तुम जावौ व्रज माँहीं। तियनि कों इहाँ सु रहिवे नाँहीं ॥
मात भ्रात पति पित सुत जिते। ढूँढ़त तुमें न पावत तिते ॥
तातें तुम जावौ व्रज माँहीं। बन्धुनि कों दीजै दुःख नाँहीं ॥
जमुनहिं परसि पवन जो आवत। सुन्दर तरु पल्लवनि कँपावत ॥
पुनि ससि किरननि रंग्यौ गयौ जब। सो वन तौ तुम देखि लयौ अब ॥
हे पतिवर्ता व्रज अब जावौ। सेवा करि निज पतिनि रिझावौ ॥
गाय दुहावौ बच्छ चुंखावौ। लरकनि कों सो दूध पिवावौ ॥
अथवा हम हाँ सों करि प्यार। जौ तुम ह्यां आईं व्रजनारि ॥
तो पै यहू उचित है यातें। मोसों प्रीति करत सब जातें ॥
मन दै पति की टहल करै ज्यों। पुनि पति के बंधुनि हूँ की त्यों ॥
पुनि प्रजानि कौ पोषन रूप। यही इस्त्रिन कौ धर्म अनूप ॥
दुर्भग बूढ़ो रोगी दुर्मति। जड़ निर्धन ऐसो हू जो पति ॥
भलौ चहै सो तिय नहिं त्यागै। पै जो कोऊ न पातक लागै ॥
कुल तिय कों पर पति सेवन जो। अहो सुन्दरी निपट निन्द सो ॥
स्वर्ग जाय पुनि जस नहिं रहै। निपट तुच्छ दुख भय करि दहै ॥
श्रवन कीर्त्तन दर्शन ध्यान। इनसों उपजै प्रेम महान ॥
तैसौ निकट रहें नहिं होय। यातें घरनि जाहु सब कोय ॥

श्री शुक उवाच—

यह प्रिय की अप्रिय जो बानी। सुनि व्रज नारि परम दुख सानी ॥
डूबि गईं चिन्ता में यातें। सफल न भए मनोरथ जातें ॥
सोचत मुख नीचे करि लए। स्वास सों अधर सूखि अति गए ॥

दृगनि तें अञ्जन बहत सु रोवत। तिन करि पुनि कुच कुंकुम धोवत॥
चरननि करि धर खोदति भईं। दुखनि छईं जड़ सी ह्वै गईं॥
रोवत नैन मलिन ह्वै गए। तिनहिं हाथ करि पोंछि सु लए॥
जा हित सबै काम तजि आईं। तिन प्रीतम ये बात सुनाई॥
भईं क्रोध करि गद्गद बानी। बोलीं कछुक प्रेमरस सानी॥

॥ गोप्य ऊचुः ॥

तुमकों उचित बचन ये नाहीं। बहुत कठिनता है जिन माँहीं॥
हम आईं तुव सरण त्यागि सब। अहो हठी हमकों न तजौ अब॥
निज भक्तनि कों सुख दै ऐसें। नारायण मुमुक्षु को जैसें॥
पति सुत बन्धुन की सेवा जो। स्त्रीनि कौ है परम धरम सो॥
हे धर्मज्ञ तुमनि यह भाष्यौ। सो सब हम तुमही में राख्यौ॥
तुम सबही के बन्धु सु प्यारे। बहुरि आत्मा सबनि निहारे॥
निपुन सदा तुम में रति ठानें। अति प्यारौ निज आत्मा मानें॥
कौंन काम पति सुत दुख दायक। होहु प्रसन्न अहो वरदायक॥
बहु दिन की आसा तुव माँहीं। कमल नैंन सो काटौ नांहीं॥
घरनि माँहिं जो चित सञ्चरयौ। हे सुख रूप तुमनि सो हरयौ॥
हाथ हू नाथ हाथ के माँहीं। पाय हूँ पेंड़ चलि सकें सु नाहीं॥
क्यों करि ब्रजहिं जाय हरि अहो। बहुरि जाय का करैं सु कहौ॥
बोलनि हँसनि मनोहर गीत। तिन करि जगी अगिन हे मीत॥
अधरामृत करि सींचि देहु सब। न तौ विरह की अगिन उठत अब॥
तातें हमरे तन जरि जैहें। ध्यान धारि तुमही को पैहें॥
कमल नैंन ये तुमरे पाय। रमहिं देत आनन्द घनाय॥
हम वन में परसे ये जब तें। तुमनें बहुत दए सुख तब तें॥
हे ब्रजजन प्रिय तब तें यह तन। और के ढिंग हू ठाढ़ौ होत न॥
जा लछमी के अवलोकनि हित। सब सुर करत तपस्या दै चित॥
भृत्यनि सहित रहत उर माँहीं। तुलसी तुव पद छोड़ति नाँहीं॥

तिन हूँ की रज रमा चहति ज्यों। हम हूँ रज कों प्राप्ति भई त्यों॥
तातें सुखद प्रसन्न होहु अब। हम आईं तुव सरन त्यागि सब॥
इक तुव सेवा की आसा धरि। सुन्दर हँसनि रु अवलोकन करि॥
तीव्र काम करि तपित भईं सब। हे सुन्दर दासी कीजै अब॥
हँसि अवलोकनि मधुरी बोलनि। सोहत कुण्डल ललित कपोलनि॥
मुख पर अलकनि ललकनि सोहै। अधर सुधा मन कौ मन मोहै॥
सुखद भुजा उर रमा सु धाम। देखि भईं हम दासी स्याम॥
ऐसी को तिय त्रिभुवन माँहीं। कुल के धर्मनि त्यागै नाँहीं॥
तुमरौ सुन्दर वेंनु गीत सुनि। अरु यह रूप माधुरी लखि पुनि॥
खग मृग द्रुम पुनि गैयां जितीं। देखौ पुलकित ह्वै रहीं तितीं॥
सुर रक्षा हित नारायण ज्यों। ब्रज के भय दुख दूरि करन त्यों॥
आपु हूँ व्रज में प्रगट भए हरि। दुखियनि के हौ बन्धु निपट करि॥
तपित दासियन के कुच सीस। निज कर कमल छुवैयै ईस॥

श्री शुक उवाच —

जोगेसुर हू के ईसुर हरि। तिनके व्याकुल वचननि सुनि करि॥
आतमाराम हूँ दया सु छए। तिन संग रमैं प्रेम बस भए॥
हरि को उज्जल हास लसन्त। कुन्द कली से सोहत दन्त॥
पिय दर्शन करि प्रफुलित गोपीं। विहरत हरि संग प्रेम सु ओपीं॥
तिन करि हरि सोभित भए ऐसें। तारनि संग चन्द्रमा जैसें॥
यूथ सैकरों तियनि के संग। करैं वैजयन्ती उर रङ्ग॥
गावत वन विचरत छवि पावत। तिय हरि के गुण गाय मल्हावत॥
बहुरों सीतल जमुन-पुलिन जहँ। गोपिन कों हरि लै आए तहँ॥
कमल सुगन्धि चहूँ दिसि छाई। तहँ बहु क्रीड़ा करी कन्हाई॥
भुजा पसारि आलिङ्गन दियौ। नख छत करि परिहास हु कियौ॥
उर नीवी कुच अलक रु हाथ। तिनहिं परसि हरषित व्रजनाथ॥
क्रीड़ा करि चितये मुसिक्याय। यों तिनके सु काम उपजाय॥

बहुरों तिनसों रमन सु कियौ। ताकरि बहुतै आदर दियौ॥
कृष्ण तें अति आदर पायौ जब। आपहिं अधिक मानि गरवीं तब॥
तिनकौ सौभाग्य गर्व जो। देखि के अन्तर्हित भए हरि सो॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
एकोनत्रिंशोऽध्याय: ॥ २६ ॥

तीसवाँ अध्याय

दोहा—विरह तपति गोपी सबै, ढूँढ़े सघन बन माँहिं।
ध्याय तीसए दुःखित सब, जब हरि पाए नाँहिं॥ १॥

श्री शुक उवाच—

औचकि हरि अन्तर्हित भए। तियनि के दृगनि ओट ह्वै गए॥
पुनि ते तपनि लगीं तन ऐसें। बिन हाथी हथिनी कोउ जैसें॥
चलनि प्रेम बहुरों जो हास। पुनि अवलोकनि सहित विलास॥
बहुरि मनोहर वचन विहार। औरौ कृष्ण विलास अपार॥
तियनि के चित तिन के बस परे। ह्वै तद्रूप चरित हार करे॥
बोलनि चितवनि चलनि हँसनि अब। हरि हो की सी होय गई सब॥
यह मैं कृष्ण कहन यों लागीं। केवल तन्मयता करि पागीं॥
होय बावरी बन बन हेरति। ऊँचे सुर करि मीतहिं टेरति॥
हरि सब के बाहिर भीतर यों। सदा विराजत है अकास ज्यों॥
ता हरि के सनेह करि पागीं। द्रुम बेलिनि प्रति पूछन लागीं॥
अहो पिलूखन हे पीपर बर। कहौ तुमनि कहूँ देखे हैं हरि॥
प्रेम हास अवलोकनि डारि। मन हरि लै गए नन्दकुमार॥
हे पियाबांस हे पुन्नाग। हे चम्पक अशोक हे नाग॥
हँसि हरि हमरे गर्वहिं अहौ। गए कान्ह इत देखे कहौ॥
हे तुलसी कल्यानि कहै किन। तू गोविन्द पद प्यारी निसि दिन॥
भ्रमरनि सहित तोहि हरि धारत। तैं देखे हरि क्यों न उचारत॥
मल्लि मालती जुही चमेली। तुमनि कहूँ हरि लखे सहेली॥

हरि अपने कर सों तुमकों छ्वै। क्यों नहिं कहति गए हैं ह्यां ह्वै ॥
जामनि आक बेलि हे अम्ब। मौलसिरी कचनारि कदम्ब ॥
अहो सहजनें कटहर नाम। सुनिये वचन चिरोंजी भाम ॥
औरौ जमुन तीर के द्रुम जे। निश्चय पर उपकारी ही ये ॥
हम सब विरही सून्य सु चित्त। तिनकों अब बताय देहु मित्त ॥
हे धरती तप कीनों कहा। हरि पद परसि सु पुलकित महा॥
कै पुलकी बामन पद पाएं। कै बराह के दन्त चढ़ाएं ॥
हे हरिनी सखि श्री नन्दनन्द। तुमरे दृगनि देत आनन्द ॥
प्रिया सहित हे या मग माँहीं। गए तुमनि तौ देखे नाँहीं ॥
कुन्द मालती गन्ध सु आवत। कुच कुंकुम हूँ की गँध ल्यावत ॥
हे द्रुम श्री हरि कमल फिरावत। इक कर प्रिया छुएं छबि पावत॥
तुलसी के अलि मद मतवारे। पाछें लगे जानते सारे ॥
तुमरी नवनि प्रेम चितवनि करि। चले जात में लीनी हैं हरि ॥
अहो ये लपटि रहीं द्रुम बेली। इनसों क्यों नहिं पूंछत हेलीं ॥
इनकौ परस कियौ हरि सही। ताही तें अस फूलि सु रहीं ॥
ये बौरान वचन तिन तिय के। कायर महा मिलें बिन पियके ॥
बहुरों तदाकार ह्वै गईं। हरि की लीला करति सु भईं ॥
एक पूतना ह्वै अनुरागी। इक ह्वै कृष्ण पियनि कुच लागी॥
इक भई सकुट रु एक भई हरि। रोप उलटि गयौ सकट पाय करि॥
इक तौ बालकृष्ण सी भई। इक ह्वै तृनावर्त्त लै गई ॥
इक गोपी घूँघरू बजावति। चलति घुटरुवनि अति छबि पावत
द्वै होय राम स्याम रस ओपी। बहुरों सखा होंय सब गोपीं॥
कोई बच्छासुर सी होई। बहुरि बकासुर होत है कोई ॥
कोई कृष्ण ह्वै गैयनि टेरति। बेंन बजाय पीतपट फेरति ॥
कोई सखा भाव कें धरें। ते तब तासु बड़ाई करें ॥
इक भई कृष्ण सखा इक भई। ताके खएं भुजा धरि लई ॥

कही कि अहो मित्र देखौ सब। कैसी चालि चलत हों मैं अब॥
इक ह्वै कृष्ण वचन उच्चारयौ। वृष्टि ब्यार तें क्यों भय धारयौ॥
मैं तुमरे हित जतन सु ठान्यों। यों कहि इक कर सों पट तान्यों॥
इक भई सर्प हेत बनमाली। चढ़ि सिर बोली सुनि रे काली॥
दुष्टनि दण्ड देत मैं जाते। प्रगटयौ बेगि जात रहि यांते॥
इक भई जसुमति एक भई हरि। ऊखल सों बाँधी माला करि॥
तब ताकें सु कछुक भय भयौ। सुन्दर मुख नीचौ करि लयौ॥
इक भई कृष्ण परम अनुरागी। कही कि अहो दवानल लागी॥
डरपौ जिनि मूँदौ दृग सबै। तुमकों सुख विस्तारों अबै॥
यों प्रीतम कों पूछति डोलें। बन के द्रुम बेली नहिं बोलें॥
बहुरों बन में सबनि निहारे। पिय के चरन चिन्ह अति प्यारे॥
तिनकों देखि सबनि यह कही। हरि के चरन चिन्ह ये सही॥
अंकुस धुजा जवादि चिन्ह जे। देखौ सखी सबै इनमें ते॥
पुनि तिन खोजनि चलति सु भईं। आगें जाय लखीं इक नईं॥
वधू चरन करि मिले निहारे। तब ह्वै दुखित सु वचन उचारे॥
अहो ये कौन तिया के पाय। नन्द सुवन के सङ्ग जो जाय॥
हरि भुज डारि गरे में ऐसें। हाथी के संग हथिनी जैसें॥
हरि ईसुर भगवान हैं जोई। इन नीकें आराधे सोई॥
जातें हमें छोड़ि बनमाली। हरषि ताहि लै गए निराली॥
ये हरि पद पङ्कज की रेंन। निपट धन्य सखि कहत बनें न॥
जा रज कों विध रमा रु ईस। तापत जन कों धारत सीस॥
पै ये पाय जु हैं ता तिय के। अति दुखदाई हमारे हिय के॥
हरि कौ अधरामृत सब कौ है। ताकों सो इकली पीवत है॥
ह्यां के तृन अंकुर कठोर सब। ताके पायनि माँहिं चुभे जब॥
तब पिय कांधे लईं चढ़ाय। यातें ह्यां नहिं ताके पाय॥
ये देखौ हरि पद गड़ि गए। तासु बोझ करि बोझल भए॥

फूलनि तोरन हेतु मुरारी। देखौ इहाँ उतारीं प्यारी॥
उचकि कें फूल लए हैं जाते। आधे पाय ही उपटे याते॥
अहो अहो देखौ मृगनैनी। ह्यां फूलनि सों गूँथी बेंनी॥
आत्मा राम अखण्डित हू जो। ता तिय के संग रमत भए सो॥
कामी नर कौ दैन्य दिखावत। तियनि की दुर्जनता सु बतावत॥
यों देखति डोलति बन माँहीं। पै तिन तियनि कों तन सुधि नाँहीं॥
सब ही कों बन माँहिं छोड़ि करि। जा तिय कों लै गए सङ्ग हरि॥
सोचति सब गोपिन तें आपहिं। अधिक मान तजि दीनों तापहिं॥
पुनि कही पिय सब कामिनि तजीं। देखौ इक मोही को भजीं॥
बहुरों कछुकि दूरि सो गईं। गर्वित ह्वै पुनि बोलति भईं॥
अहो अब तौ पग थके हमारे। जहाँ मन तहाँ लै चलिए प्यारे॥
यह सुनि प्रीतम नें सु उचारी। मो कांधे पर चढ़ियै प्यारी॥
यह कहि अन्तर्हित भए आप। तिया तपति ह्वै करत विलाप॥
अहो नाथ हे रमन सु प्यारे। हे अजानुभुज कहाँ पधारे॥
अहो मीत मैं दासी तेरी। मोहू कों कीजै निज नेरी॥
पिय बिछुरनि करि मोहित भारी। बहुरों महा दुखित सो प्यारी॥
प्रीतम कों ढूँढ़ति ब्रजनारी। निकट जाय सो सखी निहारी॥
तिन कही मोहि आदर दियौ हरी। मैं तिनसों दुर्जनता करी॥
तब तिन मोहिं इहां तजि दई। सुनिकें सब अति विस्मित भईं॥
चन्द चाँदनी लखी जहाँ लौं। ते ता पाछें गईं तहाँ लौं॥
बन में लख्यौ अँध्यारौ जबै। तहाँ तें ते सब उलटीं सबै॥
मन बानी पुनि चेष्टा जिती। तिनकी हरि ही की सी तिती॥
ह्वै तन्मय गावति हरि के गुण। देह गेह की सुधि न रही पुनि॥
बहुरों जमुन पुलिन तें आईं। केवल कृष्ण भावना छाई॥
मिलि करि कृष्णहिं गावन लागीं। पिय आवनि हीं में अनुरागीं॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

इकत्तीसवाँ अध्याय

दोहा—इकतीसें अध्याय में, तिही पुलिन ते जाय।
पुनि हरि गुण गावनि लगीं, मित्तहिं चित्त लगाय ॥ १ ॥

॥ गोप्य ऊचुः ॥

हे प्रीतम ब्रज प्रगटे जब तें। यह ब्रज अति सोहत है तब तें॥
लछमी हूँ छिन टरति सु नाँहीं। हमरे प्राण सु तुमरे माँहीं॥
हम तुम हित ढूँढ़ीं दिसि सबै। अपनीनु आय निहारौ अबै॥
हे वरदाता सुरत विलासी। हम तौ बिना मोल की दासी॥
सरद कमल छवि जिन दृग माँहीं। तिन करि हमरौ बध कहा नाँही॥
विष जल तें पुनि वृष्टि बात तें। अघ मुख तें पुनि वज्रपात तें॥
रिष्टासुर व्यौमासुर हू तें। बार बार हम राखि लई हैं॥
अहो तुम जसुमति के सुत नाँही। तुम हौ जो सब के हिय माँहीं॥
जग रच्छा हित विधि विनती सुनि। प्रगटे आय जादवनि में पुनि॥
हे जादवपति हे कमनीय। तुव कर कमल महा रमनीय॥
जग तें डरि जो तुव ढिंग आवै। सो इन तें निर्भयता पावै॥
श्री कर गहति मनोरथ दायक। हमरे सीस धरौ सुखदायक॥
अहो वीर ब्रज के दुःखहारी। अहो मीत हम दासि तिहारी॥
सुन्दर वदन कमल दरसावौ। हँसि ही करि हरि गर्व मिटावौ॥
तुमरे पद पङ्कज सोभा घर। भक्तनि के सब पाप लेत हर॥
गौवनि पाछें चलत सुखारे। फनी फननि पर नाँचे भारे॥
ते पग हमरे कुचनि सु धारौ। तिन करि काम बिथा निरवारौ॥
एहो वीर कमल दल नैंन। तुमरे मधुर वचन सुख दैंन॥
भक्तनि कों सुख देत सु भारे। तिन करि मोहित चित्त हमारे॥
तातें अब अधरामृत पाय। हे सुन्दर वर लेहु जिवाय॥
तुमरी कथा अमृत कवि गावत। पाप दूरि करि तपति बुझावत॥
सुनत ही सब मङ्गल विस्तारै। अति सुन्दर सुन्दरता धारै॥

जे विस्तारि कहत घर माँहीं। तिन सम दूजौ दाता नाँहीं॥
हे प्रिय तुमरौ हँसनि विहार। बहुरि ध्यान मङ्गल कौ सार॥
पुनि इकान्त में बात कहीं जे। हमरे हिय तें टरति नहीं ते॥
बहुरों प्रेम चितौन तिहारी। हे कपटी मति तथति हमारी॥
कमल तें अति कोमल पायनि करि। जब बन गाय चरावत हे हरि॥
तब तृण कांकर चुभत तिहारें। ते कसकत मन माँहिं हमारें॥
दिन के मुदें विपिन तें आवत। वदन कमल कौ दरस दिखावत॥
गोरज छुरित अलक घुँघरारी। तिन करि काम जगावत भारी॥
हे दुखहरन रमन पिय प्यारे। मङ्गल निधि पदकमल तिहारे॥
पूजति रमा धरनि के मण्डन। भक्तनि सुखद सदा दुख खण्डन॥
विपति काल में ध्यान की लायक। हमरे कुचनि धरौ सुखदायक॥
अहो वीर अधरामृत तेरौ। शोक हरत सुख देत घनेरौ॥
पियति बेनु सब चाह भुलावत। यह हमकों तुम क्यों न पिवावत॥
हे प्रिय तुम बनगमन करत जब। इक इक छन जुग सम बीतत तब॥
सुन्दर बदन केश घुँघरारे। देखत अति दृग होत सुखारे॥
पै यह विधि अति दीठ निहारयौ। पल बनाय बिच अन्तर पारयौ॥
मोहित भईं गीत तेरौ सुनि। पति सुत तजि तुव ढिग आईं पुनि॥
निसि में कौन तियहिं तजि जाय। तुम सब जानत हे सठ राय॥
अहो इकौसे की जे बतियाँ। अब ते हमरी जारति छतियाँ॥
उर विसाल जहाँ रमा विराजै। प्रेम चितौन हँसनि छवि छाजै॥
देखति मन मोहित होय भारी। बार बार होय चाह तिहारी॥
अहो व्रज बन कौ दुःख निवारन। बहुरि विश्व मङ्गल विस्तारन॥
हे प्रीतम तुम प्रगट सु भए। हमरे मन तुमहीं में छए॥
अब कछु हमें सु ऐसौ दीजै। जाकरि हृदय रोग यह छीजै॥
अहो कोमल पद कमल तिहारे। हमरे कुच कठोर हैं भारे॥
हरें धरत हू डरत सु भारी। तिन करि बन में फिरत मुरारी॥

तहाँ तें काँटनि हीत दुखारी। हे जीवनि मति भ्रमति हमारी॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

बत्तीसवाँ अध्याय

दोहा—विरह गान विथित हरि, ह्वै बतीसें ध्याये।
वहीं प्रगट ब्रज तियनि की, श्लाघा करी बनाय॥

श्री शुक उवाच—

यों गोपिन गाए हरि के गुण। नाना विधि विलाप कीने पुनि॥
मीत दरस की चाह सु पगीं। मिलि सुन्दरि सब रोवनि लगीं॥
तब तिन मधि हरि प्रगट भए सो। मनमथ हू के मनहिं मथे जो॥
धरें पीतपट माला गरें। वदन कमल तें फूल से झरें॥
पियहि तियनि आयौ देख्यौ जब। प्रीति सों दृग डहडहे भए तब॥
इक ही बार उठीं अब ऐसें। प्रानन्नि के आए तन जैसें॥
कोऊ अति आनन्दहिं पाय। हरि कर कमल सु पकरयौ धाय॥
किन हूँ हरि भुज चन्दन सनी। धरि लई खए महा छवि बनीं॥
पिय ने पान उगारि सु दई। किनहूँ हाथ जोरि सो लई॥
इक तिय पिय के चरन कमल जे। तपत कुचनि पै धरि सु लए ते॥
एक प्रेम करि क्रोध सु छई। मोहन भौंह चढ़ाय सु लई॥
होठनि चावति करति कटाच्छें। जनु प्रीतम को मारति आछें॥
इक तिय निर्निमेष ह्वै गई। हरि मुख कमलहिं पीवति भई॥
पीवत हू अघाय नहिं ऐसें। हरि पद पाय साधु जन जैसें॥
इक तिय पियहिं देखि हिय माँहीं। धरि बहुरों दृग खोलै नाँहीं॥
मिलि सुख में डूबी सो ऐसें। हरिहि पाय योगीजन जैसें॥
सबही तिय पिय दरसन पाय। अति आनन्द में डूबीं जाँय॥
विरह की ताप दई तजि ऐसें। हरि को पाय मुमुछुक जैसें॥
तियनि के ताप आप तें गए। तब सबहिन पिय घेरि सु लए॥

तिन करि हरि अति सोहत ऐसें। ज्ञान भक्ति गुण करि नर जैसें॥
बहुरि सु जमुन पुलिन है जहाँ। तियनि कों पिय लै आए तहाँ॥
फूले जहाँ कुन्द मन्दारें। पाय सुगन्धि मधुप झङ्कारे॥
जहाँ सरद ससि उदै होय करि। रिस करि निसि कौ तम लीनों हरि॥
पुनि जो पुलिन महासुख दाई। करत रंग करि जमुन बनाई॥
तियनि देखि पिय अति सुख पायौ। पुनि सब हिय कौ रोग विलायौ॥
पूरन भयौ मनोरथ ऐसें। हरि बरननि तें वेद के जैसें॥
कुच केसर भीनी उपरेंनी। पियहिं बिछाय दईं मृगनैंनी॥
तिन पर हरि ईसुर बैठे सो। योगिन हिय में कलपे हैं जो॥
तियनि में बैठि परम छवि पाई। त्रिभुवन की सुन्दरता आई॥
काम रूप तिय की पूजा करि। पाँय पलोटन लगीं गोद धरि॥
पुनि प्रीतम को अस्तुति करी। कछुक क्रोध माँहि हूँ भरी॥
चितै भौंन करि सैंना बैंनी। हँसि पिय सों बोलीं मृगनैंनी॥

॥ गोप्य ऊचुः॥

इक भजते को भजें अहो हरि। बिन भजते कों भजें एक नर॥
इक पुनि देत दुहुन छिटकाय। सो प्रभु कौंन कहौ समझाय॥

श्री भगवानुवाच—

भजते ही को भजें अहो जो। स्वारथ ही कौ उद्यम है सो॥
तहँ पुनि कछू सुहृदता नाहीं। बहुरि न कछू धर्म ता माँहीं॥
बिन भजते कों द्वै जन पूजें। करुणावान सनेही दूजें॥
सज्जनता निरुपाधि धर्म जो। हे सुन्दरि इनमें पैयत सो॥
भजते हू कों भजें नहीं जे। बिन भजते कों भजें कहाँ ते॥
गुरु द्रोही अरु आत्माराम। अकृतज्ञ अरु आस काम॥
मैं भजते हु कों भजौ नाँहीं। प्रीति बढ़ावनि अपने माँहीं॥
ज्यों धन पाय निधन खोवै जब। तन्मय ह्वै तब भूलि जात सब॥
मो हित लोक वेद तुम त्यागयौ। मैं छिप तुमहीं सों अनुराग्यौ॥

तुम्हरी करन प्रेम अधिकई। अहो मैं तनक ओट ही लई॥
मैं यहि भलौ जानि करि कियौ। तुम प्रिय दोष मानि क्यों लियौ॥
अहो निर्दोष प्रीति तुम केरी। आईं काटि गेह दृढ़ बेरी॥
देव उमर हू लों सुख दैन। हम पै कछु उपकार बनै न॥
तातें अपने ही सु किये कार। होहु प्रसन्न अहो सुन्दरि वर॥
इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

तेंतीसवाँ अध्याय

दोहा—तेतीसें अध्याय में, महारास हरि कीन।
जल विहार बन केलि करि, अति आनन्दहिं दीन ॥१॥

श्री शुक उवाच—

सुन्दर हरि के बचन सुने जब। विरह ताप तजि दईं सबनि तब।
हरि कौ दरस परस पुनि पाय। सबै मनोरथ गए मिराय।
तहाँ हरि तिनसों रास रच्यौ तब। आपस में भुज गहि लीनी सब॥
गोपिनि ने मण्डल करि लीनों। भयौ रास उत्सव रंग भीनों॥
द्वै द्वै बीच आप इक राजें। तियनि की भुज पिय कंठ विराजें॥
सबनि मानि अपने ढिग लए। नभ तें आनि विमान सु छए॥
सुर सुरतिय के मन सु हरे पुनि। बरसत कुसुम होत दुन्दुभि धुनि॥
गावत तियनि सहित गन्धर्व। तिन ही को निर्मल जस सर्व॥
बहुरि रासमण्डल के माँही। पिय सों मिलि तिय नृत्य कराहीं॥
तहाँ किंकिनी चूरी नूपुर। तिन ही को बहु व्यापि रह्यौ सुर॥
तिय पिय मण्डल सोहत ऐसें। गौर नीलमणि माला जैसें॥
भुजहि कँपाय ठुमकि पग धरें। पवन पाय कुच पट फरहरें॥
हँसत चलति कटि भृकुटि नचावत। कानिन करनफूल छवि पावत॥
बेनी किंकिनि बाँधति गाढ़ी। गावति पियहि पसीजति ठाढ़ी॥
पिय के संग तिय सोहति ऐसें। मेघनि के संग बिजुरी जैसें॥

तियनि के कण्ठ रंगे रागनि करि । पिय सों मिलि अनुराग रहीं भरि॥
नाचति पुनि गावति छवि छई । धुनि करि सब दिसि छाय सु गई॥
हरि सों अधिक लयौ सुर जिहि तिय। भले भले कहि पूजी सो पिय॥
पुनि किनहूँ ध्रुवताल उठाई। ताहू की पिय करी बड़ाई॥
कोऊ रास करि श्रमित सु भई । बेंनी चुरी सिथिल ह्वै गई॥
तब पिय खए भुजा धरि नीकी। ठाढ़ी भई सु जीवनि जी की॥
पिय की भुज चन्दन लपटानी। कमल सुगन्ध हू करि सरसानी॥
इक तिय ताहि खए धरि लई। चूंबि कें रोमाञ्चित ह्वै गई॥
कर्नफूल द्युति करि मण्डित जो। पिय कपोल पर धरि कपोल सो॥
नाचति गरे माँहिं भुज मेलि। लेत उगाल परम सुख केलि॥
सु नूपुर किंकिनि बाजत जात। कोउ नाचति गावति हुलसात॥
बहुरि श्रमित ह्वै पिय ढिग जाय। हस्त कमल रही कुचनि लगाय॥
गोपिन पाइ इकान्त मुरारी। लक्ष्मी कों जो प्यारे भारी॥
पिय के गरे माँहिं भुज डारि। गावति पिय कों करत विहार॥
पिय के सँग तिय नृत्य सु करें। केशनि ते पुनि फूलि सु परें॥
नूपुर बजत होति चूरीं धुनि। भ्रमर ही जहाँ गवईया हैं पुनि॥
गोपिन के मुख श्रमकन राजें। कर्नफूल अलकें छवि छाजें॥
भुजनि सों मिलि पुनि प्रेम कटाच्छें। हास विलास करें बहु आछें॥
तियनि सों पिय छुर मत भए ऐसें। बालक निज प्रतिबिम्ब सों जैसें॥
पिय सों मिलि तिय आनन्द छई। भूषण माल सिथिल सब भई॥
केस वेस पुनि कछु न सँभारें। कुच पट उड़त परम छवि धारें॥
पुनि सुराङ्गना रास निहारि। काम विथित मोहित सु अपार॥
उडुपति बहुरों उडुगन जिते। अचिरज पाय थकित भए तिते॥
रास मे सुन्दर व्रज तिय जितीं। हरि हू पुनि मूरति धरि तितीं॥
आत्माराम बहुरि भगवान। तिय सों रमें परम सुख मानि॥
तिय भईं श्रमित पसीना आए। प्रेम सों पिय पोंछत छवि छाए॥

पुण्य चरित पिय के तिय गावति । पिय कर परस महासुख पावति॥
रतन के कर्णफूल काननि में । अलक झलक सोहति आनन में॥
जब हँसि चितवति पिय तन हेरि । तब पिय पावत है सुख ढेर॥
पुनि श्रम टारन हेतु मुरारी । चले जमुन कों संग ब्रजनारी॥
कुच कुंकुम रञ्जित मालावलि । गन्ध पाय धावत आवत अलि॥
मेड़ तोर पैठे जल ऐसें । हथिनिनि सङ्ग लै हाथी जैसें॥
तहँ पिय सों तिय छींटनि खेलति । चितवत हँसत परम सुख झेलति।
निरखत सुर अति ही हरषावत । अस्तुति करत फूल बरसावत॥
आत्माराम हु विहरत ऐसें । मतवारे कोउ हाथी जैसें॥
फूलनि झलरि रह्यौ बन जहाँ । तियनि संग हरि विहरत तहाँ॥
संग डोलति पुनि भृंगी ऐसें । मद श्रावी गज के संग जैसें॥
आपहीं माँहि सुरति सुख जाकें । अनुरागी अबला संग ताकें॥
तिन निसि विहरे पूरन काम । काव्य कथा रस कीजे धाम॥

श्री राजोवाच—

धर्मनि के थापन हित हे मुनि । बहुरि अधर्म नास करन पुनि॥
धरनि माँहिं अवतीर्न भए हरि । सबै अंस निज संग सु लै करि॥
धर्म के रच्छक श्रीहरि हे मुनि । कर्त्ता वक्ता हू ताके पुनि॥
तिन प्रतिकूल सु क्यों आचर्यौ । पर तिय को आकर्षन कर्यौ॥
पूरन काम सदा श्री जदुपति । यह तौ कारज कियौ निन्द अति॥
कारन कौन सु कहिये हे मुनि । हमरौ संसय दूरि करौ पुनि॥

श्री शुक उवाच—

साहस बहुरि धर्म लङ्घन जो । कियौ समर्थनि देख्यौ है सो॥
तेजस्वी कों दोस न ऐसें । सर्वभोक्ता अगिनहिं जैसें॥
पुनि असमर्थ पुरुष जो आहि । मन हू करि करिबे नहिं ताहि॥
करै मूढ़ तौ दुःख ही पावै । विष कों इक सिव ही सु पचावै॥
वचन हीं सत्य समर्थनि कौ जो । त्यों हीं कहुँक आचरन है सो॥

बचन सों मिल्यौ आचरन जो जो। बुद्धिमान आचरै सु सो सो ॥
हे नृप निरहङ्कार मुरारी। भली बुरी सो करत हैं सारी ॥
भलौ किये ताहि कछु न भलाई। बुरौ किये नहिं होत बुराई ॥
तिर्जक नर पुनि सुर हैं जिते। हरि आधीन सबै हैं तिते ॥
भलौ बुरौ ताहि कहाँ तें लागै। कहियै कहा सु याके आगे ॥
हरि पद पङ्कज सेवा करि मुनि। तृप्त भए कटि गए कर्म पुनि ॥
ते निज इच्छा करि आचरें। पै न कभूं बन्धन में परें ॥
निज इच्छा करि प्रगटे जोई। तिने कहाँ ते बन्धन होई ॥
गोपी पुनि गोपिन के पति जे। बहुरि देह धारी सु जिते ये ॥
सब के भीतर रहत सदा सो। लीला ई हित प्रगट भए सो ॥
नरनि पै करन अनुग्रह हरी। मानुष देह प्रगट लै करी ॥
पुनि तैसी ही लीला करें। जिन सुनि नर तत्परता धरें ॥
हरि माया मोहित ब्रज जन जे। हरि में कछु न दोष ल्याए ते ॥
अप अपनी पुनि दारा जितीं। अप अपने ढिग मानीं तितीं ॥
चारि घरी पुनि राति रही जब। जैबे की हरि आज्ञा दई तब ॥
गयौ चहति नहिं पै हरिप्यारी। निज निज घरनि गईं ते सारी ॥
यह ब्रजनारी बहुरि मुरारी। तिनकौ चरित परम सुखकारी ॥
श्रद्धा करि जो सुने सुनावै। हरि की परम भक्ति सो पावै ॥
हृदय रोग पुनि काम जु आहि। छिन में धीर निवारै ताहि ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चौंतीसवाँ अध्याय

दोहा—साँप छुटायौ साप तें, साँप तें पितहिं छुटाय।
संखचूड़ मारयौ बहुरि, यह चौंतीसे ध्याय ॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

इक दिन इक सिब उत्सव भयौ। गोपनि के अति कौतुक छयौ ॥

सकटनि चढ़ि चढ़ि आनन्द छए। सबै अम्बिका बन कों गए॥
तहाँ सरसुती में सब न्हाय। पूजा की सामिग्रिन ल्याय॥
भक्ति सों सिव पूजन विस्तर्‌यौ। बहुरि अम्बिका पूजन कर्‌यौ॥
गाय बसन पट मधुरे अन्न। दए द्विजनि सिव करन प्रसन्न॥
तिहिं निसि तहीं रहे नन्दादिक। व्रत करि केवल जल पीयौ इक॥
तहाँ भूखौ इक अजगर आयौ। सूते नन्द तिन्हें लपटायौ॥
तब श्रीनन्द पुकारे भारे। कृष्ण कृष्ण हे तात पियारे॥
गिले जात मोहि अजगर भारी। लेहु छुटाय हों सरन तिहारी॥
सुनि सब गोप सु धाए आए। नन्दहिं देखि महा अकुलाए॥
तपत सराइनि साँपहिं मार्‌यौ। तऊ न भयौ देह तें न्यारौ॥
तब हरि ताके पाँव छुवायो। तुरतहि ताकौ पाप विलायौ॥
सर्प देह तजि तन धार्‌यौ सो। विद्या धरनि को पूज्य आहि जो॥
कनक माल तन दिपति सु भारी। पर्‌यौ चरन ताहि कहत मुरारी॥
अहो तुम सुन्दर पुरुष सु कौंन। कैसे भई निन्द अहि जोंन॥

सर्प उवाच—

मैं हों विद्याधर अभिराम। अति सुन्दर सु सुदर्शन नाम॥
चढ़्यौ विमान फिरौ सब ठां पुनि। लखि कुरूप अंगिरा नाम मुनि॥
गर्ब सों तिनें हँस्यौ मैं जाते। निज पापहिं अब भोगत तातें॥
ते मुनि निपट दयालु मुरारी। साप दै कियौ अनुग्रह भारी॥
जातें तुव पद पङ्कज पाए। जा करि सबरे पाप मिटाए॥
जग तें डरपि सरन भए तेरी। तिनकी तुम काटी भय बेरी॥
हे दुख नासन तुव पद पाय। मेरौ साप सु गयौ विलाय॥
हे केशव लोकेशनि ईस। महा पुरुष पुनि हे जोगीस॥
आज्ञा देहु सरन हों तेरी। जन रछा तुम करी घनेरी॥
हे अच्युत तुव दरसन पाय। ब्रह्मदण्ड मम गयौ विलाय॥
तुमरे नामहिं कहै सुनें जो। हे हरि वेगि ही शुद्ध होय सो॥

पुनि जो परसैं दुव पद अहा। सो पवित्र होय कहनों कहा ॥

श्री शुक उवाच—

यों हरि जू सों आज्ञा पाय। दै परिकर्मा सीस नवाय ॥
स्वर्गहिं गयौ सुदर्शन नाम। कष्ट तें पितहिं छुटायौ स्याम ॥
हरि कौ यह प्रभाव देख्यौ जब। तब अति अचिरज पगे गोप सब ॥
पुनि ब्रज जन मेले के पाछें। ब्रज कों आवत भए सु आछें ॥
हरि ने अद्भुत कर्म कियौ जो। सुख पावत गावत आवत सो ॥
एक समै श्री स्याम रु राम। अति बलिष्ट बहुरों अभिराम ॥
निसि कों वन में करत विहार। सँग सोहति ब्रज जुवति अपार ॥
प्रेम सनी तिय अति सुख पावति। सुन्दर भाँति दुहुनि को गावति ॥
भूषन बसन रु माला धरें। अङ्ग अरगजा लेपन करें ॥
पुनि ता निसि कौ आदर कीनों। उडु उडुपतिन उदौ जहाँ लीनों ॥
फैली कुमुद मल्लिका गन्ध। मत्त भए अलि पाय सुगन्ध ॥
गाय दुहुनि पुनि कीनों रंग। सप्त स्वरनि रु मूर्छना संग ॥
जो सब जन मन कों सुखकारी। काननि कों पुनि मङ्गल भारी ॥
सुनि ब्रज तिय सु मूर्छित भईं। नीवीं अरु वेंनी खुल गईं ॥
तन की तिनहिं तनक सुधि नाँहीं। स्याम राम क्रीड़त जिन माँहीं ॥
मत्त से ह्वै दोऊ गावत जहाँ। भृत्य कुवेर कौ आयौ तहाँ ॥
संखचूड़ है ताकौ नाम। राम स्याम की प्यारी भाम ॥
राम स्याम के देखत तिंह निसि। तियनि घेरि लै चल्यौं उतर दिसि ॥
निडर न संक करै काहू की। तब तिय राम कृष्ण कहि कूकीं ॥
घेरि तियनि लै जात है ऐसें। गायनि घेरि चोर कोऊ जैसें ॥
साल हाथ लै दौरे दोऊ। कूकि कें कही डरौ जिन कोऊ ॥
निपटहि निकट आय पहुँचे जब। काल रूप से लखि डरप्यौ तब ॥
मूढ़ सु तियनि छोड़ि तहँ भाग्यौ। केवल जीबे में मन पाग्यौ ॥
तियनि के ढिंग सु रहे बलराम। तिंह पाछें दौरे घनस्याम ॥

ताकौ पाछौ तज्यौ सु नाँहीं। सिर की मनि लैवौ मन माँहीं॥
बहुरि दुष्ट के ढिग हरि गए। मूकी एक चलावत भए॥
मनि समेत काटयौ सो सीस। मनि कों लै आये जगदीस॥
तेजोमय मनि भ्रातहिं दई। ह्वै प्रसन्न तिय देखनि भई॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
चतुर्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

दोहा—पैंतीस अध्याय में, बन कों गए मुरारि।
हरि गुण गाय सुदुखनि करि, दिन काटति ब्रजनारि ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच—

नन्द नंदन बन गमन करें जब। तियनि के मन हित संग जात तब॥
तब तिय मिलि पिय के गुण गावें। दुख सों ज्यों त्यों दिनहिं बितावें॥

॥ गोप्य ऊचुः ॥

हे सखि वाम खएँ कपोल धरि। कोमल अंगुरिन छेद मूँदि करि॥
अधर वेंनु धरि मधुर बजावत। सोहन मोहनि नृत्य करावत॥
लाज भरी सुर वनिता जितीं। चढ़ीं विमान पतिन संग तितीं॥
सुनत ही सबै काम बस ह्वईं। बिवस भईं नीवीं खुलि गईं॥
फैलति सखि हरि हास उजारी। उर में थिर विजुरी सम प्यारी॥
दुखितनि कों अति सुखद जु वेंन। जब बजवत सखि पङ्कज नैंन॥
तब मृग गाय बैल पुनि जिते। बिन चित ठाढ़े घूमत तिते॥
मुख तृन कान उठाएं ऐसें। रहि गए लिखे चित्र के जैसें॥
पल्लव धातु चन्द्रिका धरें। हे सखि मल्ल बेस सो करें॥
कबहुँ कि सखिन सहित दोऊ भैया। जब बन माँहि बुलावत गैया॥
तब सब नदी सु जड़ ह्वै जात। कभूं प्रेम करि भुजा कंपात॥
हरि पद रज ते चाहत ऐसें। छीन पुण्य हम चाहत जैसें॥
हे सखि सखा सु गावत हैं गुण। आदि पुरुष की सी सोभा पुनि॥

गिरि तट चुगत धेंनु जे सबै। वेंनु बजाय बुलावत जबैं॥
तब द्रुमलता फूल फल छावें। जिन हिय माँहिं हरिहिं दरसावें॥
प्रेम सों तन रोमाञ्चित भए। निपट नए मकरन्दनि अए॥
टीकौ अति नीकौ है आली। तुलसी माल धरें बनमाली॥
तास गन्ध करि अलि मतवारे। गावत हरि सु सराहत भारे॥
सारस हंस विहंगम जिते। सुनि हरि वेंन विवस होंय तिते॥
हरि ढिंग आय ध्यान सों करें। मूँदि नैंन मुख मौनहिं धरें॥
हे सखि कुण्डल माला राजें। राम स्याम गिरि तट छवि छाजें॥
त्रिभुवन को आनन्द बढ़ावत। हरषि हरषि जब वेंनु बजावत॥
तब ये मेघ सु गरजत हरें। बड़नि की करत अवज्ञा डरें॥
छाया हित तन छत्र बनावें। फुहीं रूप फूलनि बरसावें॥
हे जसुमति तुव सुत के माँहीं। बचीं गोप क्रीड़ा कोऊ नाँहीं॥
जब यह सुन्दर बेनु बजावें। तामें नए नए सुर गावें॥
तब सिव विधि आदिक सुर जिते। सुनि करि मोहित होत हैं तिते॥
समझत नहीं निपुन हूँ भारे। नारि नवाय रहे ते सारे॥
अंकुश कमल रु धुजा वज्र जे। हे सखि हरि पद चिन्हित हैं ये॥
खुरनि खुदी ब्रजभूमि विथा जो। मद गज ज्यों चलि दूरि करत सो॥
बेनु बजाय हँसत चितवत जब। हमरे हिय में काम जगत तब॥
मोहित ह्वै जड़ की गति धारें। बेंनी पुनि नींवी न सँभारें॥
कभूं गनत मनि माल सों गैया। पहरें तुलसीमाल कन्हैया॥
प्यारे मित्र खए भुज धरें। बेंनु बजाय गान जब करें॥
तब हरिनिन के चित्त चुरावें। ते गुणनिधि हरि के ढिग आवें॥
सब तजि हरि संग डोलति ऐसें। हे सखि हम ये गोपी जैसें॥
हे जसुमति तुव सुत सुखदाई। कुन्द माल पहरी छवि छाई॥
संग लै गोधन गोप अपार। जब जमुना मधि करत विहार॥
तब मलयाचल की जो व्यार। चलत मन्द सुख देत अपार॥

हरषि अमर फूलनि बरसावें । अस्तुति करें रु वाद्य बजावें ॥
हे सखि ब्रज गोपनि हितकारी । गाय घेरि आवत गिरिधारी ॥
बजवत वेंन सखा जस गावत । वदन चंद अतिही छवि पावत ॥
अद्भुत चलनि कहत नहिं आवत । मग में पद सिवादि लपटावत ॥
लटकत देत द्रगनि आनन्द । जसुमति उर प्रगटयौ यह चन्द ॥
हमरे देंन मनोरथ आवत । गोरज सनी माल छवि पावत ॥
मद करि द्रग घूँमत हे आली । सुहृदनि कों जु सुखद वनमाली ॥
गादर बेर समान वदन छवि । कुण्डल कनक कपोल रहे फवि ॥
दिन के मुदें सु गज ज्यों आवत । वदन चन्द अति ही छवि पावत ॥
ब्रज गैयनि को दिन को ताप । ताहि मिटावत आवत आप ॥

श्री शुक उवाच—

यों ब्रज तिय हरि के गुण गावें । तिन करि अति आनन्दहिं पावें ॥
मन चित हरि ही माँहिं लगाय । ऐसें दिवसहिं देत बिताय ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

छत्तीसवाँ अध्याय

दोहा—हत्यौ अरिष्टासुर हरी, छत्तीसें अध्याय ।
नारद तें सुनि कंस पुनि, दिय अक्रूर पठाय ॥१॥

श्री शुक उवाच—

इक दिन नाम अरिष्टासुर जो । बड़ौ बैलि बनि कें आयौ सो ॥
बड़ी टांट धर खोदत आवत । बहुरि कँपावत बुरें रँभावत ॥
सिंगनि करि ढोहनि कों ढाहें । पूँछ उठाय बुरें पुनि चाहै ॥
कछु कछु विष्टा मूत्र करै पुनि । बहुरि निठुर ताँड़नि ताकी सुनि ॥
गाय तियनि के गर्भ हैं जेते । हे नृप तुरतहि श्रवत हैं तेते ॥
ताकी टाँटहि पर्वत मानि । मेघनि के गन बैठत आनि ॥
तीछन सींग ताहि देख्यौ जब । गोपी गोप सबै डरपे तब ॥

हे नृप पशु हूँ डरपें भारे। गोकुल कों तजि भाजे सारे॥
कृष्ण कृष्ण कहि कूकत भए। ताही की पुनि सरन सु गए॥
दुखित देखि हरि की डरपौ जिन। बैलहिं पुनि भाखी यह तिंह छिन॥
गो गोपनि कों क्यों डरपावत। अरे असाधु कहाँ तू आवत॥
तुमसे दुष्टनि कौ बल जितौ। मैं हों दूरि करन कों तितौ॥
यह कहि भुजहिं ठोकि श्री हरी। इक भुज मित्र खए पर धरी॥
सोऊ कुपित ह्वै सन्मुख धायौ। खुरनि सों धरनहिं खोदत आयौ॥
पूँछ उठाय मेघ भरमावत। लाल नेत्र सींगनि सतरावत॥
घूरत धायौ आयौ ऐसें। वज्र इन्द्र कौ आवत जैसें॥
हरि नें तास सींग गहि लए। पाछें कों अहुटावत भए॥
पैंड़ अठारह पर पटक्यौ यों। गजहिं पेलि गज ही पटकै ज्यों॥
हरि तें पाय पराभव राक्षस। स्वास लेत पुनि भयौ क्रोध बस॥
सब अंग माँहि पसीना छायौ। बहुरि वेगि उठि धायौ आयौ॥
हरि गहि सींग भूमि में डारयौ। दाबि पाय सों सींग उपारयौ॥
तासों मारि रु मसक्यौ ऐसें। गीलौ पट निचोरियै जैसे॥
तब तों वोन रुधिर कौ कियौ। विष्टा मूत्र बहुरि करि दियौ॥
पटके पाय नेंन फिरि गए। दुख करि प्रान सु निकसत भए॥
तब तौ सुर अति ही हरषाए। अस्तुति करी फूल बरसाए॥
यों हरि असुर मारि ब्रज आए। गोपिन सुखद सबनि जस गाए॥
हरि बलिष्ट नें हत्यौ असुर जब। नारद कंसहिं जाय कही तब॥
कन्या सो जसुदा की जानों। कृष्ण देवकी कौ सुत मानों॥
राम रोहिनी कौ सुत प्यारौ। वसुदेव तुम तें डरपि सु भारौ॥
नन्द मित्र कें धरि आयौ ते। उनहीं तुमरे पुरुष हते ये॥
सुनत ही कंस क्रुद्ध ह्वै गयौ। तीक्षण खडग हाथ में लयौ॥
बसुदेवहि मारन के कारन। तब नारद ने कियौ निवारन॥
अपनी मीच जानि सुत इनके। बेरीं डारि दईं पग तिनके॥

हरि सरूप नारद गमने जब। कंस सु केसी कों बुलाय तब॥
कही कि अब तुम ब्रज कों जावौ। राम स्याम कों मारि सु आवौ॥
सलतोसल मुष्टिक चाणूर। येऊ लए बुलाय हजूर॥
मन्त्री और महावत आए। तिनहूँ कों नृप वचन सुनाए॥
अहो वीर चानूर हे मुष्टिक। सब तुम मेरी बात सुनों इक॥
सुत बसुदेव के राम रु स्याम। निश्चै ते सु नन्द के धाम॥
तिन तें मेरी मृत्यु बताई। तातें मैं यह तुमें सुनाई॥
ते दोऊ ह्यां ते आवें जबै। मल्ल युद्ध करि मारौ तबै॥
मल्ल भूमि में मञ्च करौ अब। जहाँ बैठि युद्धहिं देखें सब॥
अहो महावत मङ्गल रूप। दन्त कुवलयापीड़ अनूप॥
रङ्ग भूमि के द्वारें धारौ। ताकरि हमरे वैरिन मारौ॥
चौदस कों सु जथा विधि साधौ। धनुर्यज्ञ करि सिव आराधौ॥
सब वरदाता सिव जो आहि। शुद्ध पशुनि हति पूजौ ताहि॥
यह कहि पुनि अक्रूर बुलाए। हाथ पकरि कछु वचन सुनाए॥
हे अक्रूर तुम सौ नहिं प्यारौ। कछुक मित्र करि काज हमारौ॥
अहो सु इन जादवनि मँझारी। तुमसौ नहिं दूजौ हितकारी॥
तातें सिद्ध करन निज काज। तुमरे सरन भए हम आज॥
तुम तें काज सिद्ध होंय ऐसें। वामन सरन तें इन्द्र कौ जैसें॥
अब तुम जाहु नन्द ब्रज जहाँ। सुत बसुदेव बसत हैं तहाँ॥
बहुरों या रथ कौं लै जावौ। बेगि चढ़ाय इहाँ लै आवौ॥
हरि आश्रित देवनि भुवि बीच। सिर जे राम स्याम मम मीच॥
पुनि नन्दादिक हू कों ल्यावौ। भेट हू सब लिवाय लै आवौ॥
ह्यां हम तिन दुहुवनि कों मारें। काल रूप हाथी के द्वारें॥
तासों कहूँ बचि गए जौ पै। वज्र तुल्य ये मल्ल हैं तौ पै॥
वृष्णि रु भोज दासार्हक नाम। बसुदेवादिक बन्धु अभिराम॥
तिनके हतें त्रपत ते ह्वै हैं। पुनि हम तिन हूँ कौ बध कै हैं॥
उग्रसैन जो पिता हमारौ। बूढ़ौ राज लालची भारौ॥

पुनि ताकौ देवक जो भ्रात। औरौ जे मम वैरी ख्यात ॥
अहो मित्र हति हौं ये सबै। निष्कण्टक धर ह्वै है तबै ॥
जरासन्ध है ससुर हमारौ। दुविद है सु तौ मित्र ही प्यारौ ॥
नर्कासुर बाणासुर संवर। ये ऊ अपने ही सु मित्र वर ॥
सुर पच्छी राजानि मारि सब। नीके धरनि भोग करि हैं तब ॥
जज्ञ रु पुर छवि देखि सु आवौ। यह कहि वेगि दुहुनि कों ल्यावौ॥

अक्रूर उवाच—

हे नृप भल विचार यह यातें। अपनी मीत टरत है जातें ॥
ऐ पै भली बुरी सम जानों। फल कौ दाता दैवहिं मानों ॥
नर यह बहुत मनोरथ धरैं। ऐ पै दैव नष्ट ते करें ॥
तब नर पावत दुख सुख भारौ। तऊ हों करि हों कह्यौ तिहारौ ॥

श्री शुक उवाच—

यों अक्रूरहिं आज्ञा दीनी। मंत्रिनि हूँ की विदा सु कीनी ॥
बहुरि कंस अपने घर गयौ। अक्रूर हु गृह आवत भयौ ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सेंतीसवाँ अध्याय

दोहा—केसी मारयौ हरि करी, अस्तुति नारद आय।
हत्यौ बहुरि व्यामासुरहिं, सेंतीसे अध्याय ॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

केसी कों व्रज कंस पठायौ। बड़ौ अस्व बनि कें सो आयौ ॥
मन सौ दौरत खोदत धरनी। हिनहिनात अति ही भय करनी ॥
कांधे के पुनि बारह लावत। तिन करि मेघ विमान कँपावत ॥
उरपत गोकुल हिनहिनान सुनि। जुद्ध हेत हरि कों ढूँढ़त पुनि ॥
हरि ने ताहि बुलायौ जब ही। सिंह समान सु गरज्यौ तबही ॥
चण्ड बेग दुर्जय बड़ बली। क्रोध सों सब इन्द्री कलमली ॥

समुहें दौरयौ मुखहि उवाय। जनु सब गगनहिं गीलें जाय॥
आय रिसाय पाय पिछले जे। कमल नैंन प्रति तिह ताने ते॥
तिनहिं बचाय रिसाय मुरारी। गहि करि पाय फिरायौ भारी॥
इक सत धनुष फैंकि दयौ ऐसें। गरुड़ साँप को फैंकत जैसें॥
बहुरि रिसाय सँभरि उठि धायौ। मुख पसारि हरि के ढिग आयौ॥
हरि हसि भुज मुख मेली ऐसें। बिले माँहि अजगर को जैसें॥
भुज कों छ्वै सब दन्त गिरे यों। तातौ लोहौ लागे तें ज्यों॥
हरि भुज पुनि उर बढ़ि गई ऐसे। बिना जतन तन रोग सु जैसें॥
भुज के बढ़ें पवन रुकि गयौ। दृग फिरि गए पसीननि छयौ॥
लीद करत धरनी पर परयौ। पायनि पटकि पटकि सो मरयौ॥
पकी फूट ज्यों तन फटि गयौ। गर्व न भयौ काढ़ि भुज लयौ॥
बिन श्रम हत्यौ देखि सुर हरषे। अस्तुति करी फूल पुनि बरसे॥
परम भागवत श्री नारद मुनि। आय इकौसें यह भाखी पुनि॥
कृष्ण कृष्ण हे प्रभु योगीश। बासुदेव व्यापक जगदीश॥
महा पुरुष ईसुर हिय बासी। यदुपति गूढ़ रु अखिल निवासी॥
तुम सबके आतमा हौ ऐसें। काठनि माँहिं अग्नि है जैसें॥
हे ईश्वर पहलें तुम एक। माया करि गुण किये अनेक॥
तिन करि रचि पालत संहारत। तौहि सत्य सङ्कल्प उचारत॥
प्रगटे धर्म सेत कों धारन। भूप रूप असुरनि कों मारन॥
पुनि इँह दैत्य अस्व बपु धारयौ। भली करी लीला करि मारयौ॥
हे हरि यह हींस्यौ हो जबै। सुर डरि स्वर्गहिं तजि गए तबै॥
पुनि चानूर रु मुष्टिक नाम। औरौ किते मल्ल अभिराम॥
हाथी बहुरि कंस हू है जो। हति हौ परों देखि हैं हम सो॥
संख जवन मुर नरक सु नाम। इन हूँ कौ बध लखि हैं स्याम॥
लखि हैं पारिजात की ल्यावनि। इन्द्र ही बहुरि पराजय पावनि॥
लखि हैं नृप कन्यनि कौ ब्याह। बल ही एक मोल जहाँ आहि॥

नृगहिं छुटहौ पापनि ते जब। यह द्वारिका में लखि हैं सब॥
बधू सहित पुनि मनि सिमन्त जो। ल्यावौगे हम देखेंगे सो॥
महाकाल पुर लों पुनि जैहौ। मरयौ पुत्र ल्याय द्विज कों दैहौ॥
मिथ्या बासुदेव हति आछें। कासी पुरी जरै हौ पाछें॥
दन्तवक्र सिसुपाल जु दोऊ। यज्ञ माँहि तुम हति हौ सोऊ॥
पुर बसि चरित करौगे जे जे। कवि गैहैं हम लखि हैं ते ते॥
भार उतारक काल रूप हरि। अर्जुन के सारथी होय करि॥
बहुत छोहिनी हति हौ जबै। हे प्रभु सो हम लखि हैं सबै॥
हे विशुद्ध विज्ञान सरूप। सफल मनोरथ परम अनूप॥
निज सरूप ही में थित ह्वै करि। सबै अर्थ तुम पाय लए हरि॥
हम हैं सरन तेज करि तुम पुनि। नित्य निवृत्त किये माया गुण॥
तुम ईसुर आपहि रु आप गति। जादव वृष्णि सात्वतनि के पति॥
निज माया करि रच्यौ सबै तुम। क्रीड़ा हित नर ताहि नवत हम॥

श्री शुक उवाच—

मुनि सिर नाय रु आज्ञा पाय। गयौ दरस करि परम अघाय॥
केसी कों हति हरि सुखदाई। गोपनि संग बन गाय चराई॥
गोधन तट सब आए ग्वाल। करन लगे चोरनि कौ ख्याल॥
कोऊ गोप भेड़ बनि गए। कोऊ पाल ह्वै पालत भए॥
कोऊ भए चोर तिह ठाँहीं। खेलत काहू तें भय नाँहीं॥
मायावी मय पुत्र व्योम जो। गोप रूप धरि कें आयौ सो॥
चोरनि में मिलि भेड़ चुरावै। गिरिकन्दर में धरि धरि आवै॥
कन्दर द्वार सिला द्वै दई। चारि पाँच बाकी रहि गई॥
साधुनि के पालक श्री हरी। तास कर्म लखि जिय में धरी॥
लए जात कों गहि लयौ ऐसें। सिंह गहत ल्यारी कों जैसें॥
पुनि सो असुर बली अति भारयौ। गिरि समान निज रूपहिं धारयौ॥
छुटयौ चहत पै छुटै सु नाँहीं। आय गयौ हरि के कर माँहीं॥

भुजनि सों पकरि धरनि में डारयौ। पसु की मार ताहि हरि मारयौ॥
कन्दर ते सब ग्वाल निकारे। सखनि सहित गोकुलहिं पधारे॥
असुर मीच लखि सुर हरषाए। बार बार हरि के गुण गाए॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते सप्तत्रिंशोऽध्याय: ॥३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

दोहा—अड़तीसें अध्याय ज्यों, कीनों मग में ध्यान।
राम कृष्ण अक्रूर कों, त्यों कीनों सनमान॥ १॥

श्री शुक उवाच—

श्री अक्रूर अल्प मति नाँही। तिंहि निसि रहे मधुपुरी माँही॥
प्रात भए गोकुल को चले। रथ में चढ़े सु लागन भले।
कमलनैन श्री कृष्ण मुरारी। तामें प्रेम भक्ति भई भारी॥
श्री अक्रूर बड़ो बड़ भागी। मग में चलत सु यह लौ लागी॥
अहो हम कहा पुण्य बड़ कियो। कै कछु काहू योग्यहिं दियौ॥
कै कहा परम तपस्या करी। जातें आजु देखि हों हरी॥
पैं मो विषयी कों दुर्लभ यों। शूद्रहिं वेदनि कौ पढ़िवौ ज्यों॥
जदपि मैं तौ नीच हौं भारी। ऐपरि दैहें दरस मुरारी॥
ज्यों तृण परे नदी की धारें। काऊ कबहुँ कि लगत करारें।
आजु अमङ्गल गयौ हमारौ। बहुरों जनम सफल भयौ भारौ॥
जातें जे पग जोगी ध्यावें। तिनहिं आजु हम सीस नवावें।
आजु कंस बड़ कियौ अनुग्रह। जातें मोहि भेज्यौ जु नन्द ग्रह॥
जाहि सबै अवतार सु कहैं। तास आजु पद पङ्कज लहैं।
जिन पद की नख चन्द्रकान्ति करि। पहलें दुस्तर भवहिं गए तरि।
विधि शिवादि सुर रमा उमा पुनि। भक्तनि सहित बहुरि जितने मुनि।
निसि दिन तिनके पूजनि पगे। गोपिन कुच कुंकुम करि रंगे।
सखनि सहित गऊ वनहिं चरावन। बन बन में फेरे तिन पावन।

निश्चे हरि मुख लखि हों याते। मृग मोहिं होत दाहिने जाते॥
गोल कपोल मधुर मुसिक्यावत। अरुण नेंन अलकनि छवि पावत॥
धरनी भार उतारन कों अपु। निज इच्छा करि प्रगट कियौ वपु॥
दृग फल बहुरि लुनाई धाम। मोसों आजु लपटि हैं स्याम॥
कार्ज कारन के द्रष्टा जो। बहुरि अहंता के हंता सो॥
पुनि अज्ञान भेद भ्रम जितौ। दूरि कियौ निज तेंज सों तितौ॥
रचे प्रान बुधि निज माया करि। तिन सों सब ठां अनुमानें हरि॥
हरि के जन्म कर्म बहुरों गुण। मङ्गल रूप पापनासक पुनि॥
तिनकौ गान सु सबहिं जिवावै। शुद्ध करें पुनि सुख उपजावै॥
तिन बिन पुनि सुन्दर हू वानी। मृतक सिंगार समान बखानी॥
धर्म रु सुरनि की रछा हेत। हरि प्रगटे जादवनि निकेत॥
मङ्गल जस ब्रज विस्तारन अब। जा जस कों गावत हैं सुर सब॥
हरि त्रिभुवन में सुन्दर भारी। रीझि सु रही रमा सी नारी॥
सब के गुरु पुनि साधुनि की गति। दृगधारिन कों प्यारौ है अति॥
आजु ताहि मैं लखि हों यातें। आछे सगुन होत हैं जातें॥
जब मैं दरस दुहुनि कौ पैहों। रथ तें कूदि पाय गहि लैहों॥
जिन पायन कों योगी जिते। करत ध्यान कल्याणहिं तिते॥
पुनि दुहुवनि के मित्रनि लहि हों। दौरि दौरि तिनके पग गहि हों॥
पायनि में हों गिरि रहि हों जब। मो सिर कर कमलनि धरि हैं तब॥
काल ते डरप सरन जे आए। तिनकों तिन कर ही सु बचाए॥
जो कर बलि इन्द्र पूज्यौ जब। तब त्रिभुवन वैभव पायौ सब॥
जा कर कमल के परसहिं पाय। गोपिन कौ श्रम गयौ विलाय॥
ऐ पर मो कों कंस पठायौ। ताही कौ सु दूत ह्वै आयौ॥
पै हरि सबके हिय में जातें। कंस कौ मोहि न मानि हैं याते॥
उर में रहि चित की पुनि जो जो। दिव्य नेंन करि देखत सो सो॥
हाथ, जोरि पग गिरि रहि हों जब। प्रेम भीजि हँसि चितवेंगे तब॥

वेगि ही सबैं पाप मिटि जैहैं। ह्वै निसङ्क बड़ आनन्द पैहैं।
भक्त अनन्य बन्धु हितकारी। ता सों मिलि हैं गिरिधारी।
तब ही तन पवित्र यह ह्वै है। बहुरि कर्म-बन्धन कटि जैहै।
हरि सों मिलि पुनि सीस नवैहों। हाथ जोरि ठाढ़ो ह्वै रैहों।
तब मोहि कहि हैं कुँवर कन्हैया। हे अक्रूर तात हे भैया।
तब मम जन्म सफल होय महा। अहं या में अचिरज है कहा।
बड़े करें नहिं आदर जाको। जग में धिक जीवन है ताको।
नहिं कोऊ जाके सुहृद न प्यारो। नहिं वैरी पुनि नहिन कुप्यारो।
तउ भक्तनि कों भजत सु ऐसें। कल्पवृक्ष ढिग के कों जैसें।
राम हूँ जब मोहि नम्र चितैहैं। हँसि करि लपटि बाह गहि लैहैं।
घर लै जाय सु आदर कैहें। बन्धुनि की पुनि बात चलैहैं।

श्री शुक उवाच—

यों हरि ही में मनहिं लगायो। साँझ परे गोकुल ढिग आयो।
जो हरि की उज्जल पद रज जो। मुकटनि पर लों केस धरत सो।
ताके निरखे चरन अनूप। अवनी के जे भूषन रूप।
जो अंकुस अंबुज करि चिन्हात। देखत ही आनन्द बढ़्यो अति।
प्रेम सों अश्रु पुलक सञ्चरें। हरवराय रथ तें गिरि परें।
तामें लोटि बहुरि यह कही। यह प्रभु पायनि की रज सही।
जीवनि कौ पुरुषारथ यही। सोक कपट भय तजि कें सही।
श्री अक्रूर दसा रंग छाके। और ओर चित नेंकु न ताके।
श्री अक्रूर खरिक लों आए। तहाँ दुहुवनि के दरसन पाए।
सुन्दर नील पीत पट राजें। सरद कमल से दृग छवि छाजें।
स्यामल स्वेत रु सोभाधाम। लाँबी भुज किसोर अभिराम।
अति सुन्दर सुन्दर मुख राजें। बल करि गज छावा से छाजें।
ध्वज वज्रादि चिन्ह कों धरें। पायनि करि व्रज सोभित करें।
अति उदार पुनि कृपा जनावें। जब कछु चितै मधुर मुसिक्यावें।

रुचिर उदार चरित पुनि करें। मणि माला बनमाला धरें॥
पहरें उज्जल वसन अन्हाय। तन में रह्यो अरगजा छाय॥
नरनि में मुख्य सबनि की आदि। जगपति जगकारन रु अनादि॥
धरनी भार उतारन हेत। प्रगटे दोऊ अंस समेत॥
बहुरों अपनी कान्ति प्रकासी। ताकरि सब दिसि करी उजासी॥
राम कृष्ण दोऊ राजत हैं यों। स्वेत नील गिरि कनक खचे ज्यों॥
तिनहिं निहारत ही अक्रूर। प्रेम सों भयौ विकल भरिपूर॥
रथ तें कूदि दण्ड की नाँही। जाय परयौ पायनि के माँहीं॥
हरि दरसन करि आनन्द छयौ। दृग भरि आए पुलकित भयौ॥
यह अक्रूर नवनि है अहो। उत्कण्ठित कहि सक्यौ न यहौ॥
कृष्ण भक्त वच्छल हरषाय। पुनि ताके मन की सब पाय॥
चक्र चिन्ह करि कर छवि छायौ। तासों खेंचि हिये लपटायौ॥
त्यों ही सङ्कर्षण कों नए। तेऊ त्यों पुनि लपटि सु गए॥
पुनि कर गहि घर कों लै आए। राम स्याम संग निपट सुहाए॥
पुनि कही अहो कहौ हौ आछें। आसन पुनि बिछाय दयौ पाछें॥
पाय धोय विधि पूजा दीनी। अमित की निज कर सेवा कीनी॥
बहुरों शुद्ध बहुत गुण सान्यों। श्रद्धा करि अस भोजन आन्यों॥
भोजन करि अक्रूर अघाए। हलधर फूल पान तब ल्याए॥
परम धर्म कों जानत आछें। तिन करि अति सुख दीनों पाछें॥
पुनि अक्रूरहिं नन्द उचारी। अहो कंस है निर्दै भारी॥
तिंह जीवन तुम रहत सु कैसें। भेड़ कसाई के घर जैसें॥
निपट दुष्ट पोषत निज प्राणें। रोवत हते बहिन सुत जानें॥
ताकी तुम सु प्रजा हौ अहौ। कहा कुसल हम पूछें कहौ॥
यों अक्रूरहिं नन्द कही जब। मग कौ श्रम सब दूरि भयौ तब॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
अष्टत्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

उन्तालीसवाँ अध्याय

दोहा—उन्तालीसे ध्याय में, गोपी विरह विहाल।
जमुना में अक्रूर जू, हरि पुर लख्यौ रसाल ॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

सज्जा पर अक्रूर विराजें। राम स्याम बहु आदर साजें॥
मग में किये मनोरथ जे जे। ह्याँ अक्रूर लहे सब ते ते॥
रमा धाम श्री स्याम जु आहि। दुर्लभ कहा तुष्ट भए ताहि॥
ऐ परि कृष्ण परायन जे जन। तातें कछू न चाहत ते जन॥
बहुरि देवकी सुत भगवान। व्यारू करि ढिग बैठे आनि॥
कियो चहत पुनि कीनों जो जो। पूछन लगे कंस की सो सो॥

श्री भगवानुवाच—

अहो तात हे साधु पियारे। भलौ होहु तुम भले पधारे॥
हमरे ज्ञाति बन्धु पुनि जिते। कहौ सुखी आरोग हैं तिते॥
कुलहि रोग जो मामा कहियै। सो वह कंस बढ़त नित लहियै॥
तास राज में बन्धु हमारे। पूछें कहा कुसल हे प्यारे॥
मात पिता निष्पाप हमारे। मेरे हेत सहे दुख भारे॥
पुनि मम हित बन्धन में परे। मो हित ही सबरे सुत मरे॥
अहो हम तुमरौ दरसन पायौ। यह तौ भलौ भयौ मन भायौ॥
अब ऐवे को कारन कहो। सुनि पुनि कहत भयौ सब यहौ॥
हत्यौ चहत वसुदेवहिं कंस। हे हरि निपट दुखित यदुवंस॥
राम स्याम वसुदेव के पूत। यह कहि कंसहि नारद दूत॥
सुनि जाहित अपु दूत ह्वै आयौ। सोऊ सब सन्देश सुनायौ॥
सुनि के राम स्याम मुसिकयाए। कंस संदेसे पितहिं सुनाए॥
सुनि सुनन्द कुतवालहिं कही। यह तुम डोंड़ी फेरौ सही॥
दही-दूध सब इक ठौ करौ। बहुरौं सकटनि जोरि सु धरौ॥
बड़े सकारें मथुरा जैहें। जाय कंस राजा को दैहें॥

लखि हैं धनुर्जञ्ञ पुनि तहाँ। सब देसनि के ऐहैं जहाँ॥
गोपिन सुनी राम अरु स्याम। जैहें प्रात मधुपुरी धाम॥
लैवे कों अक्रूर सु आयौ। सुनत ही तियनि निपट दुख पायौ॥
कोऊ तपति उसासनि भरें। तिन करि बदन मलिनता धरें॥
कोऊ निपट दुखित मृगनैंनी। सिथल भईं पट चूरी बैंनी॥
कोऊ तास ध्यान पगि गईं। चित्रलिखीं जनु पुतरीं ठईं॥
तन हू की सुधि रही न ऐसें। हे नृप जीवन मुक्तहि जैसें॥
कोइक हरि की सुन्दर बानी। हँसनि सहित अनुराग सु सानी॥
पुनि जे हिये माँहि गड़ि गईं। तिनें सुमिरि मोहित ते भईं॥
प्रेम सन्यों अवलोकनि हास। बहुरि शोक नासक परिहास॥
सुन्दर बचन चालि पुनि नीकी। बहुरि अदाय सु जीवनि जीकी॥
तिनहीं कौ सु चिन्तवन करें। विरह विकल पुनि अति ही हरें॥
केवल हरि ही में अनुरागी। सब मिलि रोय कहन यों लागी॥

॥ श्री गोप्य ऊचुः ॥

हे विधि तोहि दया कछु नाँही। प्रीति जुराय नरनि के माँहीं॥
पूर्न भए बिन करत सु न्यारे। बालक कैसे खेल तिहारे॥
शोक निवारन मृदु मुसिक्यानि। झलकति अलक कपोलनि आनि॥
सो दिखाय अब देत है व्याध। हे विधि तो सौ कौन असाध॥
तोहि क्रूर हम जानि सु पायौ। धरि अक्रूर नाम तू आयौ॥
अपने दिये नेंन कों ऐसें। फोरत अब तू बालक जैसें॥
जा दृग करि तुव सब चतुराई। हरि के इक तन में लखि पाई॥
नन्द सुवन इक छन के मीत। नये नये की रुचित सु प्रीति॥
देखौ हम सुत पति गृह त्यागि। दासी ह्वै तासों रहीं लागि॥
ताही करि दुःखित हम सबै। देखौ नेंकु न देखत अबै॥
अहो प्रात की राति जु ऐहे। पुर की तियनि बहुत सुख दैहे॥
पुनि तिनके जु मनोरथ जिते। निश्चें सिद्ध भए अब तिते॥

उन्तालीसवाँ अध्याय

दोहा—उन्तालीसे ध्याय में, गोपी विरह विहाल।
जमुना में अक्रूर जू, हरि पुर लख्यौ रसाल ॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

सज्जा पर अक्रूर विराजें। राम स्याम बहु आदर साजें॥
मग में किये मनोरथ जे जे। ह्याँ अक्रूर लहे सब ते ते॥
रमा धाम श्री स्याम जु आहि। दुर्लभ कहा तुष्ट भए ताहि॥
ऐ परि कृष्ण परायन जे जन। तातें कछू न चाहत ते जन॥
बहुरि देवकी सुत भगवान। ब्यारू करि ढिग बैठे आनि॥
कियो चहत पुनि कीनों जो जो। पूछन लगे कंस की सो सो॥

श्री भगवानुवाच—

अहो तात हे साधु पियारे। भलौ होहु तुम भले पधारे॥
हमरे ज्ञाति बन्धु पुनि जिते। कहौ सुखी आरोग हैं तिते॥
कुलहि रोग जो मामा कहियै। सो यह कंस बढ़त नित लहियै॥
तास राज में बन्धु हमारे। पूछें कहा कुसल हे प्यारे॥
मात पिता निष्पाप हमारे। मेरे हेत सहे दुख भारे॥
पुनि मम हित बन्धन में परे। मो हित ही सबरे सुत मरे॥
अहो हम तुमरौ दरसन पायौ। यह तौ भलौ भयौ मन भायौ॥
अब ऐवे को कारन कहो। सुनि पुनि कहत भयौ सब यहौ॥
हत्यौ चहत वसुदेवहिं कंस। हे हरि निपट दुखित यदुवंस॥
राम स्याम वसुदेव के पूत। यह कहि कंसहि नारद दूत॥
सुनि जाहित अपु दूत ह्वै आयौ। सोऊ सब सन्देश सुनायौ॥
सुनि के राम स्याम मुसिकयाए। कंस संदेसे पितहिं सुनाए॥
सुनि सु नन्द कुतवालहिं कही। यह तुम डोंड़ी फेरौ सही॥
दही दूध सब इक ठौ करौ। बहुरौ सकटनि जोरि सु धरौ॥
बड़े सकारें मथुरा जैहें। जाय कंस राजा को दैहें॥

लखि हैं धनुर्जज्ञ पुनि तहाँ। सब देसनि के ऐहैं जहाँ ॥
गोपिन सुनी राम अरु स्याम। जैहें प्रात मधुपुरी धाम ॥
लैवे कों अक्रूर सु आयौ। सुनत ही तियनि निपट दुख पायौ॥
कोऊ तपति उसासनि भरें। तिन करि वदन मलिनता धरें ॥
कोऊ निपट दुखित मृगनैंनी। सिथल भईं पट चूरी वैंनी ॥
कोऊ तास ध्यान पगि गईं। चित्रलिखीं जनु पुतरीं ठईं ॥
तन हू की सुधि रही न ऐसें। हे नृप जीवन मुक्तहिं जैसें ॥
कोइक हरि की सुन्दर बानी। हँसनि सहित अनुराग सु सानी॥
पुनि जे हिये माँहि गड़ि गईं। तिनें सुमिरि मोहित ते भईं ॥
प्रेम सन्यों अवलोकनि हास। बहुरि शोक नासक परिहास ॥
सुन्दर वचन चालि पुनि नीकी। बहुरि अदाय सु जीवनि जीकी ॥
तिनहीं कौ सु चिन्तवन करें। विरह विकल पुनि अति ही डरें॥
केवल हरि ही में अनुरागी। सब मिलि रोय कहन यों लागी ॥

॥ श्री गोप्य ऊचुः ॥

हे विधि तोहि दया कछु नाँही। प्रीति जुराय नरनि के माँहीं ॥
पूर्न भएं बिन करत सु न्यारे। बालक कैसे खेल तिहारे ॥
शोक निवारन मृदु मुसिक्यानि। झलकति अलक कपोलनि आनि॥
सो दिखाय अब देत है व्याध। हे विधि तो सौ कौन असाध ॥
तोहि क्रूर हम जानि सु पायौ। धरि अक्रूर नाम तू आयौ ॥
अपने दिये नैंन कों ऐसें। फोरत अब तू बालक जैसें ॥
जा दृग करि तुव सब चतुराई। हरि के इक तन में लखि पाई ॥
नन्द सुवन इक छन के मीत। नये नये की रुचित सु प्रीति ॥
देखौ हम सुत पति गृह त्यागि। दासी ह्वै तासों रहीं लागि ॥
ताही करि दुःखित हम सबै। देखौ नेंकु न देखत अबै ॥
अहो प्रात की राति जु ऐहे। पुर की तियनि बहुत सुख दैहे ॥
पुनि तिनके जु मनोरथ जिते। निश्चें सिद्ध भए अब तिते ॥

पहलें सुन्दर हरि मुख पीहें। बक्र चितौंन हँसनि लखि जीहें॥
पुनि सुन्दर मधुरी बोलनि करि। तिनही के बस ह्वै जैहैं हरि॥
जद्दिप पराधीन पुनि धीर। तऊ बस ह्वै जैहैं हे बीर॥
देखि लजौहें हास विलास। ऐहें कब सु गँवारिनि पास॥
अन्धक वृष्ण भोज पुनि जिते। सात्वक पुनि दासार्हक किते॥
तिनके दृगनि कौ उत्सव है जो। निश्चे आजु मधुपुरी में सो॥
जातें मग में लखि है ताहि। जो गुण धाम रमापति आहि॥
निपट निठुर नहिं लेस दया कौ। जिनि अक्रूर नाम होहु याकौ॥
जो है वस्तु प्राण तें प्यारी। लिये जात सो दूरि अनारी॥
दुखितन को पुनि समाधान जो। सोऊ करत न निठुर आनि सो॥
देखौ हरि हू की निठुराई। कैसे रथ पर बैठे जाई॥
गोप हू पुनि मतवारे जथा। करत एक चलिबे की कथा॥
बूढ़े हू पुनि मनें न करें। देखौ नहिंन बज्र हू परें॥
हम हीं चलि हरि कों रोकें सब। गुरजन हमरौ कहा करिहैं अब॥
छिन हू हरि बिन रह्यौ न जाय। तिन बिन क्यों जीहें अब हाय॥
जाकी मिलनि खिलनि बतरान। नेह सनी चितवनि मुसिक्यान॥
रास माँहि सुख दीनों भारी। छिनि ज्यों बीति गई निसि सारी॥
ता बिन बिरह दुःख जो भारौ। हे अलि क्यों तरिहैं सु विचारौ॥
साँझ समें जो ब्रज कों आवत। मित्रनि के संग बेन बजावत॥
गोरज सनी अलक बनमाल। हँसि तिरछे चितवत नन्दलाल॥
तब हमरे चित हरत सु अहो। तिन बिनु क्यों जीहें सो कहो॥
मन तौ लागे कृष्ण मँझारी। विरह ताप करि पीड़ित भारी॥
कहि दामोदर माधव आछें। लज्जा तजि सब रोईं पाछें॥
रोवत रोवत उदै भयौ रवि। करि अक्रूर प्रात सन्ध्या तब॥
दुहूनि चढ़ाय हाँकि रथ दयौ। नन्दादिक सकटनि चढ़ि लयौ॥
सबै गोप गमने ता पाछें। गोरस भेट लईं सब आछें॥

ब्रज तिय प्रीतम पाछें लागीं। फिरि फिरि चितवनि करि अनुरागीं
कछु कहिहें सन्देस मुरारी। इंह हित ठाढ़ी ह्वै रहीं सारी॥
ते ब्रज तिय श्रीकृष्ण निहारी। निज वियोग करि पीड़ित भारी॥
प्रेम वचन तब कहि सु पठाये। दुखित होहु जिन हम ये आये॥
जौलों रथ की बैरख देखी। बहुरों उड़त रेणु पुनि पेखी॥
तौ लों ते सु चित्र सी भईं। मन करि तौ हरिके संग गईं॥
पिय फिरि आवनि की तजि आसा। घर फिरि आईं निपट उदासा॥
निसि दिन अब पिय के गुण गावें। ह्वै विसोक पुनि दिननि बितावें॥
पापनासिनी जमुना जहाँ। राम स्याम हू आए तहाँ॥
संग अक्रूर परम सुखकारी। पवन समान चलत रथ भारी॥
आय दुहूनि आचवन लियौ। परम मिष्ट उज्जल जल पियौ॥
निरखि जमुन तट द्रुम हरषाय। पुनि रथ ही पर बैठे आय॥
नीके रथ ऊपर बैठाय। पुनि अक्रूर सु आज्ञा पाय॥
विधिवत जाय जमुन में धँसे। वेद मन्त्र कों जपत सु लसे॥
गोता लेत ही जमुन मँझारी। तहूँ देखे हलधर गिरिधारी॥
तब कही ये तौ रथ बैठाये। देखौ ह्यां कैसें करि आए॥
यह बिचारि करि उर्द्धरि निहारे। रथ ही में बैठे दोऊ प्यारे॥
कही कि ये तौ बैठे ह्याँ हीं। झूठे ही देखे जल माँहीं॥
यह कहि पुनि जब गोता लीनों। तहाँ सेस कौ दरसन कीनों॥
सिद्ध नागपति असुर हैं जिते। सीस नाय अस्तुति करें तिते॥
सहस सीस सोभित हैं भारी। सहस फननि में मनिन उजारी॥
स्वेत बरन तन नीलौ वास। शृंगनि सहित मनों कैलास॥
ता पर श्री घनस्याम निहारे। पीत बसन तन सोहत भारे॥
चारि भुजा पुनि सांत विराजत। अरुन कमल दल से दृग राजत॥
सुन्दर हँसनि लसनि मुख माँहीं। चितवनि छवि कवि कहै सु नाँही॥
सुन्दर कान नासिका भौंहें। अधर अरुण कपोल अति सोहें॥

भरत भरीं पुनि लांबी बाहें। उच्च खए सोभा उर माँहें॥
संख समान कण्ठ सुखकारी। नाभि गम्भीर सु सोहति भारी॥
त्रिवली सहित उदर पुनि ऐसौ। पीपर को पल्लव होय जैसो॥
सुन्दर कटि नितम्ब पुनि जानु। जङ्घा पिंडुरी सरस समान॥
पद पङ्कज सोहत हैं भारी। अरुण नखनि की निपट उजारी॥
अँगुरी अरु अंगुष्ट दल नीके। सुन्दर टंकुना जीवनि जी के॥
अङ्गद खडुवा मुकट विराजें। निरुपम रतन जटित छवि छाजें॥
सोहति छुद्र घण्टिका नौ गुण। कुण्डल नूपुर हार जिते पुनि॥
संख चक्र कर कमल विराजै। इक कर माँहि गदा छवि छाजै॥
उर में लछमी रेख रसाला। सोहत कौस्तुभ मणि बनमाला॥
निर्मल चित सुनन्द नन्दादि। सिव विधि पुनि सुरेस सनकादि॥
नौ द्विज उत्तम पुनि प्रहलाद। बहुरि भक्त वसु नारद आदि॥
अप अपने सब भावहिं धरें। अमल वचन करि अस्तुति करें॥
रमा सरस्वति की रति पुष्टी। इला ऊरजा कान्ती तुष्टी॥
प्रकृति अविद्या विद्या जितीं। ताकी सेवा करति हैं तितीं॥
लखि अक्रूर परम हरषायौ। परम भक्ति करि तन पुलकायौ॥
प्रेम सों नैंननि में जल भरयौ। हाथ जोरि सिर चरननि धरयौ॥
गद्गद ह्वै धीरजता धरी। हरे हरे कछु अस्तुति करी॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥३६॥

चालीसवाँ अध्याय

दोहा—चालीसें अध्याय में, कृष्णहिं ईसुर मानि।
सीस नाय अस्तुति करी, श्री अक्रूर सुजानि॥ १॥

श्री अक्रूर उवाच—

अव्यय आदि पुरुष नारायण। अहो मैं तुमरे परत हों पायन॥
तुमरी नाभि कमल तें भयौ। ब्रह्मा जिन सबरौ जग ठयौ॥

अगिन भूमि जल गगन बयार। प्रकृति पुरुष महतत हङ्कार ॥
मन इन्द्री इन्द्रिन के बन्धु। शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ॥
ये सब जग के कारन गाए। तिनके तुम कारन हम पाए ॥
मायादिक करि तुम नहिं लहे। जातें ते सब जड़ता गहे ॥
मायिक गुणनि बँध्यौ बिधि हू पुनि। जानत नहिं तुमरौ वपु निगुन ॥
अध्यात्माधि भूत अधि देव। इनके तुम द्रष्टा हरि देव ॥
तोहि साधु योगी सब जजें। महा पुरुष ईसुर करि भजें ॥
कर्मठ द्विज हू बेदत्रयी करि। तुमहीं कों पूजत हैं हे हरि ॥
तुम हित करें यज्ञ बहुतेरे। सब ही देव रूप हरि तेरे ॥
ज्ञानी सब कर्मनि छिटकाय। रहत सदा उपसम कों पाय ॥
सदा ज्ञान घन तुम जो आहि। करि समाधि पूजत ते ताहि ॥
कोई साधुनि की सिक्षा पाय। तुम जु भक्ति बिधि दई सुनाय ॥
ताकरि तुमकों पूजें हे हरि। इक तुम तिनकी बहु सूरति करि॥
कोई सिव के कहे वचन सुनि। सिव सरूप तुम तिनहि जचत पुनि॥
सब आचारज कौ मत धरें। तुमरी ते उपासना करें ॥
पुनि जे और हू देवहिं भजें। तामें तुमरी बुधि हू तजें ॥
तेऊ तोहि सु पूजत यातें। तुम हौ सर्व देव मय जातें ॥
ज्यों जल सों सरिता उमड़ाय। पै ते सब समुद्र कों जाय ॥
सत रज तम तुव माया के गुण। याही तें ये मायिक हैं पुनि ॥
ब्रह्मा लों जड़ जङ्गम जिते। तिनमें पोय सु राखे तिते ॥
तुमरी दृष्टि लिपति कहुँ नाँहीं। सर्वातम सब की बुधि माँहीं ॥
यह जु अविद्या कृत संसार। धस तहें नर सुर पशुनि मँझार ॥
हे हरि तुम सब ही सों न्यारे। तुमकों हैं दण्डोत हमारे ॥
अगिन बदन तुव धरनी पाय। सूर्य नैन नाभि नभ आय ॥
स्वर्ग ही सीस दिसा पुनि कान। इन्द्र ही भुजा पवन बल प्राण ॥
वृछ औषधी रोम तिहारे। नख रु अस्थि ये पर्वत भारे ॥

बहुरों हे हरि राति द्यौस जो। पलकनि कौ लगिवौ खुलिवौ सो॥
मेघ हैं केश कूखि हैं जलनिधि। वर्षा वीर्य सिष्णु पुनि है विधि॥
हे पूरन ये लोक हैं जिते। तुम में क्रीड़ा करत हैं तिते॥
ज्यों माछर गूलरि के माँहीं। जल में ज्यों जलचर इतराहीं॥
हे हरि तुम लीला के कारन। प्रगट करत जे जे अवतारनि॥
तिन करि लोक परम सुख पावें। बहुरों तुमरे ई जस गावें॥
प्रलय-समुद में विचरन हारे। ता मीनहिं दण्डौत हमारे॥
हे मधुकैटभ मारन हारे। हय सिर सहि दण्डौत हमारे॥
कच्छयप कों दण्डौत हमारे। मन्द्राचल के धारन हारे॥
सूकर कों दण्डौत हमारी। जिन या धरनी कों उद्धारी॥
नरसिंहहिं दण्डौत हमारे। जिन साधुनि के भय निरवारे॥
वामन कों दण्डौत हमारे। तीनि लोक के मापन हारे॥
दुष्ट नृपनि के मारन हारे। परसराम दण्डौत हमारे॥
श्री रामहिं दण्डौत हमारे। रावन के जे मारन हारे॥
बासुदेव प्रद्युम्न निरुद्ध। बहुरों सङ्कर्षण अति शुद्ध॥
सब जीवनि के पालन हारे। तिनकों है दण्डौत हमारे॥
दैत्य दानवनि मोहन हारे। शुद्ध बुद्ध कों नमो हमारे॥
म्लेच्छ प्राय नृप मारन हारे। ता कल्की कों नमो हमारे॥
सबै जीव मोहित हैं हे हरि। एक तुह्मारी ही माया करि॥
बुरी अहंता ममता धरें। कर्म मार्ग में भरम्यो करें॥
हे हरि मैं तौ निपट सु अन्धु। देह गेह तिय सुत धन बन्धु॥
ये सब सुपन समान बखानें। ते मैं मूढ़ साँच करि जानें॥
अपने प्यारे तुम जो आहि। विषयी अज्ञ न जानत ताहि॥
जड़ तन कों मैं आतमा जानत। दुःख रूप गृह को सुख मानत॥
बहुरि कर्म फल निपट अनित्य। ते मैं मढ़ सु मानें नित्य॥
कोई ढके जलहिं ज्यों त्यागै। अज्ञ सु मृगतृष्णा को भागै॥

तैसें ही मैं तुमें त्यागि करि। विषै ओर भागत हों हे हरि ॥
काम कर्म ने मन हति डारयौ। इन्द्री बली कढ़ेरत भारयौ ॥
अब ताहि रोकि सके हम नाँहीं। बुधि ही मिली विषै के माँहीं ॥
अब तुव चरन सरन हम आए। जे असाधु कों दुर्लभ गाए ॥
तुमरी ही सु कृपा यह सबै। यह संसार छुटयौ चहै जबै ॥
तब तुव साधुनि कौ सँग पावै। पुनि तुम में अति मति लगि जावै ॥
तुम विज्ञान ज्ञान के कारन। बहुरि अनन्त शक्ति के धारन ॥
सर्व नियन्ता ब्रह्म सरूप। नमो नमो हे परम अनूप ॥
वासुदेव हे सब जन धामा। हृषीकेश हे अति अभिरामा ॥
रछा करौ सरन में आयौ। हे प्रभु तुम कों सीस नवायौ ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
चत्वारिंशोऽध्याय: ॥ ४० ॥

इकतालीसवाँ अध्याय

दोहा—इकतालीसे ध्याय हरि, धोबी कौ बध कीन।
माली दरजी कों बहुरि, तुष्ट होय बर दीन ॥ १ ॥

जल में रूप दिखायौ हरी। अक्रूरों पुनि अस्तुति करी ॥
अन्तर्ध्यान कियौ पुनि ऐसें। स्वांगहि नट दिखाय कें जैसें ॥
अक्रूरौ लखि अन्तर्ध्यान। बेगि ही जल तें बाहिर आन ॥
नित्य नेम करि रथ ढ़िग आए। पै अति ही विस्मै करि छाए ॥
तिनहिं देखि हरि पूछन लागे। अहो तुम कहा कौतुक में पगे ॥
जल थल किधों अकास मँझारी। तुम कछु कौतुक देख्यौ भारी ॥

श्री अक्रूर उवाच

जल थल बहुरि अकास मँझारी। हे प्रभु जे कौतुक हैं भारी ॥
विश्व रूप ते सब तुम माँहीं। तुमें देखि कहा देख्यौ नाँहीं ॥
तुम ही में कौतुक हैं सचौ। ता तुम कों देखत हम अचौ ॥
जल थल बहुरि अकास मँझारी। कहा हम कौतुक देख्यौ भारी ॥

यह कहि रथहिं हाँकि पुनि दयौ। साँझ समै पुर ढिंग लै गयौ॥
मग में जिननि लखे दोऊ ये। दृग संग गए भए आंधे ते॥
तबलों नन्दादिक हे जिते। आगे जाय बाग में तिते॥
बैठि रहे पुनि मारग चहें। ते कहाँ रहे सबै यों कहें॥
रथ तें कूदि राम अरु स्याम। गोपनि जाय मिले अभिराम॥
नम्र क्रूर के कर गहि लये। हँसि करि पुनि यह बोलत भए॥
अहो तात याँ रथ कों लै कर। तुम तो गमन करौ अपनें घर॥
हम ह्यां नेकु सु करि विश्राम। ऐहैं देखन पुर अभिराम॥

श्री अक्रूर उवाच—

अहो नाथ तुम मोहि तजौ जिन। मैं कैसें गृह जैहों तुम बिन॥
अहो भक्तवत्सल तुम भारे। हम हूँ तौ हैं भक्त तिहारे॥
अहो अधोक्षज प्यारे हे हरि। सुहृद सखा पुनि भैयहिं लै करि॥
मो गृहस्थ कौ घर हैगौ जो। पद रज करि पवित्र करियै सो॥
अगिन सहित सब देव पितर जे। तुव पद रज करि तृपति होत ते॥
बलि हू नें हरि पग धोये जब। अतुल विभौ तानें पायौ तब॥
पुनि तिन भक्तनि की गति पाई। तीन लोक में कीरति छाई॥
तुव पद जल सुचि गंगा आप। तीनि लोक के मिटवति पाप॥
सिव नें जाहि सीस राखी धरि। स्वर्गहिं गए सगर सुत ता करि॥
हे जदुपति उत्तम जस धारी। तुमें देव दण्डवत हमारी॥

श्रीभगवानुवाच

अहो जदुनि कौ द्रोही मारि। तुमरे घर ऐहैं निर्धारि॥
बड़े भ्रात कों संग लै ऐहैं। पुनि सुहृदनि कों आनन्द दैहैं॥

श्रीशुक उवाच—

यों अक्रूरहिं कृष्ण कही जब। होय विमन से पुर गमनें तब॥
पहल जाय कंसहि सब कही। पुनि अपने गृह गमनें सही॥
साँझ समें पुर देखन चले। राम स्याम संग सखा सु भले॥

बड़डे फटिक मननि के द्वार। कनक किंवार रु वन्दनवार॥
दुर्गम औड़ी खाई जहाँ। अष्टधातु के कोठे तहाँ॥
सुन्दर बाग झलरि रहे नीके। महल चौक सब सोने ही के॥
गृह पुर बाग दुकान रु साला। सब ही सुन्दर परम रसाला॥
फरस झरोखा चौकी छाजै। हीरा मोती मूँगनि साजै॥
फटकि विदूर्ज बहुरि मरकति मानि। बीच बीच पुनि खचित नील मणि॥
तिन पर बैठे मोर परेवा। बोलत मधुर करत जनु सेवा॥
चौक बजार गली गलियारे। जल सुगन्ध करि सींचे सारे॥
तन्दुल खील फूल मन भाए। येऊ पुनि तिनमें फैलाए॥
द्वार द्वार अति सोभा भरे। फले सुपारी केला धरे॥
जल के भरे कलस पुनि राजें। मध्य नूत पल्लव छवि छाजें॥
घटनि की नारि बँधे पट सोहैं। दधि चन्दन चरचे मन मोहैं॥
धरे दीप पुनि फूलनि माला। सोहति धुजा रु वन्दन माला॥
सखनि सहित सो पुरी निहारी। राज मार्ग ह्वै चले मुरारी॥
तब पुरतिय उत्कण्ठित धाँईं। देखनि कों महलनि चढ़ि आईं॥
किनहूँ द्वे भूषण के माँहीं। इक पहरयौ इक पहरयौ नाँहीं॥
किन्हूँ सिंगार सु उलटौ कियौ। इक दृग ही में अंजन दियौ॥
एक करत भोजन तजि धाई। इक उबटति बिन न्हाएं आई॥
कोई औंघति आई हरि कों सुनि। कोई गोद तें सुतहिं हटकि पुनि॥
कमल नेंक सोभा के धाम। मद गज की सी गति अभिराम॥
हँसि चितौन करि सुख बहु दियौ। पै तिनके मन कों हरि लियौ॥
हरि गुण इननि सुने हैं जब तें। मन तौ लगि सु रहे हे तब ते॥
अब अमृत चितोंन मुसिक्यान। हरि नें सींचि कियौ सनमान॥
इननि दृगनि करि भीतरि लए। पुलक भए सब दुख भगि गए॥
महलनि चढ़ीं वदन हरषाए। लै सुन्दर फूलनि बरसाए॥
द्विज हरषाय दुहुनि ढ़िग आवें। भेट गन्ध जल माला लावें॥

दधि अच्छत लै पूजन करें। औरौ वस्तु भेट पुनि धरें॥
पुरजन कहत परम सुख भीने। अहो इन ब्रज को तप कीने॥
जे नर लोकनि कों सुखदाई। देखत निसि दिन कुँवर कन्हाई॥
इक धोबी रंगरेज सु आहि। मग में मिल्यौ कही हरि ताहि॥
हम लायक उत्तम पट दीजै। मंगल होहु न संसय कीजै॥
परिपूरन हरि यों जब कही। सु तौ कंस कौ भृत्यु है सही॥
अति ही दुर्मति गयौ रिसाय। खिज करि बोल्यौ दृग सतराय॥
अरे गँवार न ऊवट चलौ। नृप धन तुमें लागत है भलौ॥
नित तुम पहरत ऐसे ई पट। जियौ चहौ तौ भागि जाहु झट॥
जौ कोऊ यह नृप सुनि पैहै। मारि बाँधि सब लूटि सु लैहै॥
यह सुनि कान्ह कुपित अति भयौ। कर ही करि सिर काटि सु लयौ॥
पुनि ताके संग में हे जिते। पोटनि पटकि भजि गए तिते॥
राम स्याम तब ते पट लए। आपहिं उचित सु पहरत भए॥
अपु लायक मीतनि लै लीनें। और तहीं सब डारि सु दीने॥
पुनि इक लखि दरजी हरषायौ। राम स्याम कौ बेस बनायौ॥
नाना रंग के वस्त्र सु लए। तिनहीं के भूषन करि दए॥
बहु विधि राम स्याम सिंगारे। पुनि दोऊ सोभित भए भारे॥
उत्सव माँहिं सिंगारे जैसें। स्याम स्वेत गज छावा जैसें॥
ताकों हरि प्रसन्न ह्वै दीनी। निज साजुज्य मुक्ति रस भीनी॥
बल जस धन सुमिरन निज दियौ। पुनि इन्द्रिन कौ कौसल कियौ॥
पुनि सुदाम माली के धाम। सखनि सहित गमने घनस्याम॥
देखि सुतौ उठि ठाढ़ौ भयौ। चरननि माँहिं लोटि पुनि गयौ॥
बहुरि सबनि कों आसन दीनों। पद्य अर्घ दै पूजन कीनों॥
सोंधौ लाय माल पहिराई। बहुरौं बीरीं आनि खवाई॥
पुनि कही हे प्रभु तुम जो आए। देव पितर रिषि बहुत अघाए॥
पुनि मम जनम सफल भयौ भारौ। कुल हू भयौ पवित्र हमारौ॥

तुम दोऊ जग कारन नीके। प्रगटे मंगल हित धरनी के॥
तुमरें विषम दृष्टि प्रभु नाँही। समही हौ सब भूतनि माँहीं॥
सर्वातम सबके हितकारी। पै भजते कों भजत मुरारी॥
मैं तो तुमरो दास हों जातें। हे प्रभु मोहि कहौ कछु यातें॥
नर कौ परम भाग है यही। करैं तुमनि जु दया करि कही॥
यह कहि हरि के मन की जानी। अति आनन्द माँहि मति सानी॥
सुन्दर फूलनि मालि बनाई। सो मोहनलालहिं पहिराई॥
मालनि करि सब ग्वाल सिंगारे। राम स्याम हूँ हरषे भारे॥
सग्न सुदामा चरननि नयौ। ताहि दुहुनि पुनि वर लै दयौ॥
हरि में अचल भक्ति जो आहि। तिन हरि जू पै माँगी ताहि॥
सब के माँहिं दया अवगाही। भक्तनि माँहि सुहृदता चाही॥
सब वर दयौ बहुरि हरि कही। कुल बढ़नी होहु संपति सही॥
आयु कान्ति जस बल पुनि दीनों। बहुरि तहाँ तें गमन सु कीनों॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

ब्यालीसवाँ अध्याय

दोहा - ब्यालीसे अध्याय में, कुब्जहिं सूधी कीन।
धनुष तोरि रछक हते, कंसहिं भय बहु दीन॥ १॥

श्री शुक उवाच—

राजमार्ग ह्वै चले मुरारी। चली जात इक देखी नारी॥
सुन्दर वदन सु कुब्जा नाम। कर अरगजा पात्र अभिराम॥
तरुन वंस पुनि हरि सुखदाई। हँसि तासों कछु बात चलाई॥
हे सुन्दरि तुम कौन सु आहि। यह अरगजा सु दैहौ काहि॥
यह सु अरगजा हमें देहु जौ। वेगि ही तुम मंगल पावौ तौ॥

कुब्जोवाच—

हे सुन्दर हों कंस की चेरी। कुब्जा नाम प्रवीन घनेरी॥

मेरौ कियौ अरगजा जोई। कंसहि अति प्यारौ सो होई॥
तुम बिन हे सुन्दर सुखदायक। अब याहि कौंन लगावन लायक॥
बोलनि हँसनि चितौंन लुनाई। रूप माधुरी कही न जाई॥
तिन करि तिंह मन मोहित भयौ। दुहुनि के तन लगाय सो दयौ॥
स्याम पीत अरगजा लगायौ। राम स्याम तन अति छवि छायौ॥
तीन ठौर तें टेढ़ी नारी। ता पर भए प्रसन्न मुरारी॥
कही कि या कौ कूब्र मिटावें। निज दरसन के फलहिं दिखावें॥
दावि लए पायनि सों पाय। द्वै अंगुरी ठोढ़ी सों लाय॥
ऐसो एक झटोका दयौ। बुगचा सौ विलाय सब गयौ॥
सब तन भयौ सु सरल समान। कुच नितम्ब भए पुष्ट महान॥
हरि के छियत ही सुन्दर भारी। होय गई सो कुबजा नारी॥
सुन्दर रूप सबै गुण छयौ। तिय हिय काम उदै पुनि भयौ॥
हँसि करि पीताम्बर गहि लीनौं। बहुरौं यह सु निवेदन कीनौं॥
होहु प्रसन्न अहो सुन्दर वर। मथ्यौ गयौ मेरौ मन तुव करि॥
अब चलिये मेरे घर माँहीं। मैं तुमकौं सु छोड़िहौं नाँही॥
यह ता तिय कौ वचन सुन्यों जब। हरि मीतनि कौ मुख देख्यौ तब॥
बड़ौ भ्रात हू देखत जात। हरि हरि ताहि कही यह बात॥
हे सुन्दरि ऐहौं कारज करि। सब दुख नासक है तुमरौ घर॥
हमकों आश्रै गेह तिहारे। एक बटोही बहुरौं क्वारे॥
मधुर वचन कहि करि सन्मान। बहुरि चले आगे भगवान॥
दरसन हेत महाजन धावें। फूल पान बहु भेटनि ल्यावें॥
हरिहिं देखि तिय काम सताई। तन हूँ की सब सुरति भुलाई॥
सिथल भई पट चूरी वेंनी। चित्र लिखीं सीं ते मृगनैंनी॥
बहुरौं धनुष धाम हैं जहाँ। जननि पूछि हरि गमने तहाँ॥
तहाँ जाय हरि ताहि निहारयौ। इन्द्र धनुष सौ सोहत भारयौ॥
कनक जटित पुनि पूजित भारी। बहुते सूर करत रखवारी॥

नरनि हूँ बहुत निवारन करे। हरि हठ करि सु पैठि ही परे ॥
वाम हाथ में लयौ उठाय। पुनि सब देखत ताहि चढ़ाय ॥
खेंचि बीच तें तोरयौ ऐसें। मत्त करी गाँड़े कों जैसें ॥
तास शब्द सब ठां छ्वै गयौ। सुनि करि कंस सु डरपत भयौ ॥
ताके रच्छक निपट रिसाए। शस्त्रनि लै पकरनि कों धाए ॥
मारौ बाँधौ कूकत भए। हरि जू की चहुँ दिसि घिरि गए॥
ते सब जब चहुँ दिसि घिरि आए। राम स्याम तब निपट रिसाए ॥
धनुष टूँक ही करि सब मारे। पुनि नृप पठए योधा भारे ॥
तेऊ मारि हरि बाहिर आए। पुर सम्पति लखि लखि हरषाए ॥
तिनकौ बल रु प्रभाव ढिठाई। लखि लखि पुरजन करें बड़ाई ॥
ये तौ कोऊ देवता भारी। निर्भै फिरें सु नगर मँझारी ॥
दिन के मुँदे सखनि संग दोऊ। आए जहाँ हुते सब कोऊ ॥
विरह तपति गोपीन कह्यौ जो। मथुरा में सब सत्य भयौ सो ॥
नर भूषन हरि तन की सोभा। देखति तिय उलहत सुख गोभा ॥
जा तन सों लछमी रही पागि। भजति सुरनि हू कौं करि त्यागि॥
दुहुनि जाय पग धोय सु आछें। दूध भात लें पायौ आछें ॥
मन सों कंस मनोरथ लहे। तिहि निसि सुख सों सोय सु रहे॥
धनुष तोरि सब रच्छक मारे। लीला सी करि दुहूँ पधारे ॥
सुनि करि दुर्मति कंस जु आहि। डरयौ रु नींद परी नहिं ताहि ॥
सोवत जगत लखे उत्पात। जिनतें अपनी मृत्यु जानत ॥
मूड़ न दीखै दर्पन माँहीं। इक ससि पुनि द्वै से दरसाहीं ॥
छिद्र लखै परछाँही माँहीं। मूँदे कान शब्द होय नाँहीं ॥
स्वर्ण वर्ण सूझत द्रुम माँहीं। चरन चिन्ह पुनि उघटत नाँहीं ॥
सुपन में तेल लगाएं अङ्ग। विषहिं खात पुनि प्रेतन सङ्ग ॥
चढयौ गधा पर देह उघारें। जपा फूल माला उर धारें ॥
ऐसें बहुत असुभ जे भारे। जागत सोवत लखे सु सारे ॥

देखि कंस मति अति भय पाई। चिंता तें न नींद हू आई॥
नीठि नीठि पुनि प्रात भयौ जब। मल्ल भूमि सुधराई तिन तब॥
पहलें तुरहीं भेरि बजाय। सो घर नरनि सु पूजी जाय॥
धुज पट माल रु बन्दनवार। इन करि कीनें मंच सिंगार॥
तिन पर द्विज छत्री नृप जिते। सुख सों सब हो बैठे तिते।
पुनि मंत्रिन जुत कंस जु आय। बड़े मंच पर बैठ्यौ जाय॥
और पास नृप आप मँझारी। ऐ परि हृदय सु काँपत भारी॥
कछि कछि मत्त मल्ल सब आए। संग अप अपने गुरनि सु ल्याए॥
बाजत तुरही भेरि नगारे। ठोकत खम्भनि मल्ल सु भारे॥
सल तोसल मुष्टिक चाणूर। बहुरि कूट अति बल भरि पूर॥
ये ऊ मल्ल तहाँ सब आए। सुन्दर शब्दनि करि हरषाए॥
कंस बुलाए नन्दादिक जे। भेट दै इक ठाँ बैठि गए ते॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

तेतालीसवाँ अध्याय

दोहा—मारि कुवलियापीड़ कों, रङ्गभूमि में जाय।
बतरैहैं चाणूर सों, तेतालीसें ध्याय ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच—

राम स्याम हूँ उठे सवारे। बजत सुनें सब भोरि नगारे॥
प्रात क्रिया करि अति हरषाए। रङ्ग भूमि कों देखन आए॥
जाहि कुवलियापीड़ उचारें। सो हौ रंग भूमि के द्वारें॥
बहुरि महावत पैल्यो जाहि। राम स्याम ने देख्यौ ताहि॥
तब झट दै कटि कसी मुरारी। लईं सँवारि अलक घुँघरारी॥
बहुरि महावत कों सुख सानी। मेघ समान कही हरि बानी॥
अहो महावत ढील न कीजै। हमकों बेगि सु मारग दीजै॥
नाहीं तौ जमलोक है जहाँ। आजु दुहून पठैहों तहाँ॥

यों रिषाय जब कही मुरारी। रिस भरि गयौ महाव्रत भारी॥
आंकुश मारि कुपित अति कियौ। काल रूप गज पेलि सु दियौ॥
हाथी हरि कें सम्मुख धाय। सूँड़ माँहि लीने लपटाय॥
तासों निकसि दई इक थाप। पगनि में दबकि गए पुनि आप॥
तब तौ करी रिसायौ भारी। दीसत नाहीं कहाँ मुरारी॥
बहुरों सूँघि सूँघि गहि लए। त्यों ही पुनि हरि निकसि सु गए॥
गहि लई पूंछ बली अति आहि। पुनि पच्चीस धनुष लों ताहि॥
खेल सौ करन कढ़ेरयौ ऐसें। गरुड़ कढ़ेरत साँपहिं जैसे॥
पुनि हरि बाँये दाँए ताहि। बहुत झटाका दीने वाहि॥
बहुरि फिराय फिरे सग ऐसें। बछरा संग हरि बालक जैसें॥
पूँछ छोड़ि पुनि सन्मुख आए। रहपट ताके वदन लगाए॥
पुनि ताहि डारन कों मति करी। तब दीनी विलकैयाँ हरी॥
विलकईयनि दै गिरि से परे। पुनि हरि तुरत दूरि संचरे॥
गज नें जानें गिरे मुरारी। रिस करि दन्तनि धरनि विदारी॥
गज कौ सगरौ बल घटि गयौ। पै अतिही सु क्रोध में छयो॥
बहुरि महावत ने पेल्यौ जब। रिस करि हरि सम्मुख धायौ तब॥
हरि जू आवत ताहि निहारयौ। पकरि सूँड़ धरनी पर डारयौ॥
लीला करि सु सिंघ से हरी। पायनि करि दाब्यौ सु करी॥
दाँत उखारि महावत मारे। रङ्ग भूमि कों बहुरि पधारे॥
आयुध दन्त खए धरि लीने। मद रु रुधिर की बूँदनि भीने॥
सखनि संग दोऊ छवि छाए। वदन कमल पर श्रम कन आए॥
मल्लनि तौ लखि बज्र सु जानें। नरनि देखि कोऊ नरवर मानें॥
तियनि देखि मनमथ यों कही। गोपनि लहे सुजन ही सही॥
दुष्ट नृपनि सु दण्डधर जानें। मात पितानि निज बालक मानें॥
कंस ने मृत्यु ही मानें सही। विकल कोऊ यों अज्ञनि कही॥
परम तत्व करि योगिन जानें। यदुबंसिन अमरोत्तम मानें॥

हत्यौ कुवलीयापीड़ मुरारी। कंस हू भीजंबान अति भारी॥
ऐ परि वहु डरप्यौ मन माँहीं। ये दुर्जय क्यों जीते नाँहीं॥
सुन्दर पट भूषन स्रज धरें। दरस करैयनि के मन हरें॥
लाँबी भुजनि सु सोहत ऐसें। कछे कछाए नटवर जैसें॥
मंचनि पर बैठे जन जिते। देखि दुहुनि अति हरषे तिते॥
बदन कमल कों पीवत जात। ऐ परि नंकु न नैंन अघात॥
नैंननि करि पीले हैं मानों। हाथनि करि मिलि जैहैं जानों॥
नाक सों मनों सूँघ ही जैहें। जीभ सों जनों चाटि ही लैहें॥
रूप-माधुरी गुण रु ढिठाई। देखि सबनि कों सुधि सी आई॥
कहन लगे कि सुने हैं तैसे। अब हमने देखे ये जैसे॥
जो साछात ईस भगवान। नारायण यह नाम सुजान॥
ताके ये सु अंस अभिराम। प्रगटे श्री बसुदेव के धाम॥
पूत देवकी कौ मन भायौ। गोकुल माँहि पिता धरि आयौ॥
अवलों गुपत रहे ये स्याम। वढ़िवै करे नन्द के धाम॥
तृनावर्त्त पुनि वकी जु नारी। अहो ब्रज मे इनहीं संघारी॥
द्रुम डारे खर केसी मारे। संख चूड़ आदिक संघारे॥
बहुरि गोप गायनि की हरी। दावानल तें रछा करी॥
इनहीं कालीनाग निकारयौ। बहुरि इन्द्र कौ गर्व निबारयौ॥
इनहीं जो गिरि गोधन भाख्यौ। साँत द्यौस इक कर पै राख्यौ॥
पुनि गोकुल की रछा करी। वर्षा व्यार वज्र तें हरी॥
ब्रज तिय नित याकौ मुख देखें। प्रेम हँसनि चितवनि पुनि पेखें॥
अनायास सब तापनि तजें। तिन हीं अति आनन्दहिं भजें॥
जदुकुल इनते धन जस पैहैं। सुखी होय विख्यात सु ह्वै हैं॥
पुनि इनके बड़ भैया राम। कमल नेंन सोभा के धाम॥
वच्छ प्रलम्ब वकासुर मारे। ऐसें कहत भए ते सारे॥
तुरही भेरनि की छाई धुनि। यों बोल्यौ चाणूरि दुहुनि पुनि॥

अहो राम अहो स्याम मुरारी। कुस्ती में तुम निपुन सु भारी॥
मल्लनि के संमत मन भाए। नृप नें देखन हेत बुलाए॥
जो जन तन मन वचन सहेत। अपनें राजा कों सुख देत॥
सोई सब कल्याणहिं लहैं। नाहीं ते दुःख ही करि दहै॥
तुम नित बन में गाय चरावत। मल्ल जुद्ध खेलत सुख पावत॥
हम तुम मिलि या नृपहिं रिझावें। नृप रिझए सब ही सुख पावें॥
यह हरि मल्लनि की सुनि बानी। आप ही तौ अति ही सुख दानी॥
तिनकी करि सु सलाघा भारी। देस काल के उचित उचारी॥
अहो हम ये बनवासी जिते। या राजा की प्रजा सु तिते॥
राजा कौ प्रिय करिबौ जोई। हमकों परम अनुग्रह सोई॥
पें हम बालक जुद्ध सु कैहें। जिनमें हमरी सम बल ह्वै हैं॥
जुद्ध हू तबही सोभा पैहै। तुम हूँ कों अधर्मणहिं छ्वै है॥

चाणूर उवाच—

तुम नहिं बाल किसोर हू नाँही। अति वलिष्ट हौ बलियन माँही॥
खेल ही करि तुम सो गज मारयौ। जिन सहस्र गज कौ बल धारयौ॥
यातें लरिवें वलियन सङ्ग। नहिं यामें कछु पाप प्रसङ्ग॥
यातें आवौ हम तुम गुटें। मुष्टिक सो बलदेव सों जुटें॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥४३॥

चौंतालीसवाँ अध्याय

दोहा– मल्लरु कंसहिं मारि पुनि, कंस तियनि समझाय।
बहुरि मात पित सों मिलें, चौंतालीसे ध्याय॥१॥

श्री शुक उवाच—

हरि कहि भलें तिही सों गुटे। मुष्टिक सो बलदेब सों जुटे॥
हाथनि सों लै हाथ सु बाँधे। पायनि सों लै पाय हू साँधे॥

अति बल करें परस्पर लरें। जीतनि की मन इच्छा धरें॥
मूकी के संग मूकी चले। घोंटू के संग घोंटू भलें॥
माथे सों पुनि माथे बाजें। छाती सों भिर छाती गाजें॥
कबहूँ बाहनि गहि सु फिरावें। फेंकि चलावें बहुरि बुलावें॥
कबहूँ मसकत भुजनि सु भारें। कबहूँ धरनी माँहिं पछारें॥
कबहूँ तजि न्यारे होंय आछें। आवत कभूं पींठि के पाछें॥
धर चिपटे कों कभूं उठावें। कबहू मुद्गर ज्यों ठहरावें॥
कबहूँ खपंची सों छुटि जाय। कभूं सिमटि धर सों चिपटाय॥
सबल निवल कौ जुद्ध लख्यौ जब। दया भीजि तिय यह बोली तब॥
अहो या भूप सभा के जिते। अब भए निपट अधर्मी तिते॥
लरकनि के संग मल्ल लरावें। नृप देखत आपौ सुख पावें॥
कहाँ ये गिरि से बज्र कठोर। पुनि कहाँ ये सुकुमार किसोर॥
अब फैल्यौ अधर्म सब माँहीं। जहाँ अधर्म तहाँ रवि वें नाँहीं॥
बढ़नि माँहि जब दोष निहारै। तहाँ निपुन कबहूँ न पधारै॥
हाँ नाँ करें दोष जहाँ लागै। अज्ञ हू भयें दोष पुनि पागें॥
रिपु के चहुँ दिसि फिरत मुरारी। या दिसि किनि देखौ हा हारी॥
श्रम कन करि मुख लागत कैसौ। भरि मकरन्द कमल होय जैसौ॥
अहो राम कौ मुख किन हेरौ। मुष्टिक पैं करि क्रोध घनेरौ॥
हँसत जात सोहत अति नीके। अरुन नैंन अलि जीवनि जीके॥
ब्रज धर पुन्यवती अलि कोऊ। जामें ये बिचरत हैं दोऊ॥
गाय चरावत बेणु बजाय। रमा उमापति पूजत पाय॥
आदि पुरुष तन धरि दुरि रहे। हम पै सखि ये परत न कहे॥
नित्य नयौ सखि इनकौ रूप। सबतें सुन्दर सुतें अनूप॥
श्री जस ईसुर ताकौ धाम। अति दुर्लभ लीनों अभिराम॥
गोपिन करी तपस्या कौंन। नित या मुख कों पीवत जों न॥
हे सखि बे गोपी हैं धन्य। हरि अनुरागी परम अनन्य॥

चढ़ी रहैं नित हरि उर माँहीं। गुण गैवौ छिन भूलति नाँहीं ॥
लीपत कूटत दही बिलोवत। गाय दुहावत लरकहिं रोवत ॥
झूलत न्हात रु देत बुहारी। हरि ही कौं गावति ब्रजनारी ॥
प्रात ही हरि गोचारन चलें। साँझ समें सखि आवत भलें ॥
सुनें बेन धुनि ब्रज तिय जबहीं। बेगि ही दौरि परति तब सबहीं ॥
चितवनि हँसनि प्रेम की देखें। इननि पुण्य कीनें अनलेखें ॥
ऐसे कहति भई सब नारी। हरि रिपु मारन की मनधारी ॥
पुनि पित मात तपें उर माँही। पुत्रनि कौ बल जानत नाँही ॥
हरि चाणूर दाव बहु करें। पुनि त्यों बल मुष्टिक हू लरें ॥
बज्र हू सों हरि अंग कठोर। तिनकी खाईं रगर करोर ॥
सबही तन चूरन ह्वै गयौ। बहुरि मल्ल अति व्याकुल भयौ ॥
पुनि सिकरा सौ कूदि सुधायौ। हरि ढिंग आयौ निपट रिसायौ ॥
दुहुँ कर की मूँकी करि लीनी। खेंचि कें हरि जू के उर दीनी ॥
ताकरि हरि अहुठे नहिं ऐसें। गज माला कौ मारयौ जैसें ॥
हरि कर गहि फिराय धर पटक्यौ। गिरत ही मरयौ बहुरि नहिं मटक्यौ ॥
बज्र से धरनि परे तिह काला। बिखर गए पट भूषन माला ॥
त्यों ही मुष्टिक पहल अनारी। मूकी एक राम कें मारी ॥
तब बलदेव बली अति आहि। एक थाप लै मारी ताहि ॥
थाप के लगत सु काँप्यौ भारयौ। मुख तें बहुतै रुधिर उगारयौ ॥
प्राण गए पुनि गिरयौ सु ऐसें। पौन सो बड़ौ रूख कोऊ जैसें ॥
बहुरि राम ढिंग कूदि पधारयौ। सोऊ वाम मुकी सों मारयौ ॥
पुनि सलतोसल हरि ढिंग आए। पाव ही करि ते मारि गिराए ॥
सल तोसल मुष्टिक चाणूर। बहुरि कूट जो बल भरि पूर ॥
इनके हतें और हे जिते। प्राणनि हित भजि गए सु तिते ॥
तुरहिन की तौ छाइ रहीं धुनि। खेंचि लए निज मित्रनि कों पुनि ॥
तिनसों खेलत कूदत भारे। पायनि नूपुर बजत सुखारे ॥

राम स्याम कौ कर्म जु आहि। सबही देखि सु हरषे ताहि॥
इक बिन कंस साधु द्विज जिते। भलें भलें यों कहत सु तिते॥
बड्डे मल्ल सु हते गए सब। बचे बचाये भाजि गए जब॥
मनें करी तब भेरिन की धुनि। निपट रिसाय कंस बोल्यौ पुनि॥
अहो दुराचारी ये दोऊ। पुर तें वेगि निकारौ कोऊ॥
गोपनि कौ धन छीन लेहु सब। दुर्मति नन्दहिं हूँ मारौ अब॥
बेगि ही पुनि बसुदेवहिं मारौ। इक असाधु पुनि दुर्मति भारौ॥
रिपु पच्छी पुनि उग्रसेन जो। अनुगनि सहित वेगि मारौ सो॥
ऐसें कंस बकनि लाग्यौ जब। कान्ह कुँवर अति कुपित भए तब॥
वेगि ही अस लाघवता करी। ऊँच मञ्च पै चढ़ि गए हरी॥
अपनी मृत्यु कंस देखी जब। धीरज तजि उठि ठाढ़ौ ह्वै तब॥
ढाल खड्ग लै हरि के दुँहुँ दिसि। सिकरा की ज्यों फिरत करत रिसि॥
दु:सह हरि ने गहि लयौ ऐसें। गरुड़ गहत है साँपहिं जसें॥
पहलें ताकौ मुकट सु झटक्यौ। पुनि गहि केश तहाँ तें पटक्यौ॥
तापर कूदे आप मुरार। निज बस पुनि विश्वहिं आधार॥
हाहाकार परयौ अति भारी। देखत हैं सब नर अरु नारी॥
मृतकहिं बहुरि कढ़ेरयौ ऐसें। सिंह कढ़ेरे गज कों जैसें॥
पीवत खात चलत पुनि सेवत। भय करि कंस हरिहि नित जोवत॥
ताही दुर्लभ रूपहिं पायौ। चक्र धरें नेंननि ढिंग छायौ॥
कंक बहुरि निग्रोध आदि जे। आठ कंस के भ्राता हैं ये॥
भ्रात कौ बैर लेंन ते धाए। सन्मुख आए निपट रिसाए॥
बल बेंडौ लै मारें ऐसें। सिंघ पशुनि को मारत जैसें॥
सुर तिय नाचें दुन्दुभि बाजें। हरि विभूति सिव विधि अति राजें॥
अस्तुति करें फूल बरसावें। दृगनि सिरावें मन हरषावें॥
हे नृप तिनकी तिय हीं जितीं। पतिन के मरें दुखित भईं तितीं॥
रोवति पीटति आईं तहाँ। मरे परे हैं प्रीतम जहाँ॥

आय धाय तिन सों लपटानी। एक ही बार रोय डकरानी॥
हे अनाथ वत्सल प्रिय प्यारे। हे धर्मज्ञ दयानिधि भारे॥
तुमरे मरें प्रजा हम जिनीं। अहो नाथ अब मरीं सु तितीं॥
हे पति पुरुषोत्तम तुम बिन अब। मंगल हीन भयौ यह पुर सब॥
अब यह पुर सोहत नहिं ऐसें। हे प्रिय हम अनाथ ये जैसें॥
नेंक हूँ कहूँ दोष नहिं जिनमें। बडडौ द्रोह तुम ठान्यौ तिनमें॥
ताही करि तुम सोवत ऐसें। नर द्रोही सुख पावें कैसें॥
उत्पति पुनि पालन अरु मारन। इन सब के ये हरि ही कारन॥
ता हरि सों जु द्रोह जो कैहै। कहौ क्यों न सो क्यों सुख पैहे॥

श्री शुक उवाच—

हरि नें ते सब तिय समझाईं। मृतकनि की पुनि क्रिया कराईं॥
मात पिता पुनि जाय छुटाए। चरननि माँहि रु सीस नवाए॥
माता पिता लपटि नहिं गए। ईसुर जानि सु संकित भए॥
पुण्य चरित यह सुनें सुनावै। श्रद्धा करि तौ हरि पद पावै॥
विप्र सु ब्रह्म तेज कों धरै। छत्री बहुरि राज कों करै॥
वैश्य बहु तपु निधन कौं पावैं। सूद्र बहुरि उत्तम ह्वै जावै॥
विद्या धन कीरति सन्तान। यासों तुरत मिलत सब आन॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

दोहा—नन्दादिक कों सान्ति करि, कंस पितहिं दै राज।
पैंतालीसे ध्याय पुनि, पढ़ि आए यदुराज॥ १॥

शुक उवाच—

मात पिता कें ईसुर ज्ञान। सो हरि जानें लीनों जान॥
यह इनके जिनि होहु विचारी। निज माया हरि तिन पर डारी॥
पुनि दोऊ मात पिता ढिग जाय। स्नेह सों दुहुँवनि सीस नवाय॥

दुहुनि देत सुख वचन उचारे। अहो मात हे तात पियारे॥
तुम नित हीं उतकण्ठित रहे। हमरे बाल चरित नहिं लहे॥
पुनि पौगड किसोर चरित जे। हमनि किये तुम नहिंन लखे ते॥
हम सु बँधे अदिष्ट के माँहीं। तुम ढिग छिन हूँ रहे सु नाँहीं॥
मात पिता कौ लालन पालन। तक हू नहिं देख्यौ हम बालनि॥
यह तन सब अर्थनि कौ दाता। ताकौं दै पोषत पित माता॥
तिनकौ सौ जन्मनि हूँ माँही। नर उपकार करि सकें नाँही॥
सुत समर्थ तन धन कारे जौ पै। मात पितहिं सेवें नहिं तौ पै॥
जम के दूत मरें तें ताहि। वाकौ माँस खबावें वाहि॥
गुरु द्विज बृद्ध रु मात पिता कौ। सरनागत सुत साधु तिया कौ॥
जिन समर्थ पोषन नहिं करयौ। सो निश्चें जीवत हीं मरयौ॥
पहलें हम समर्थ नहिं आछें। डरत रहे नित कंस तें पाछे॥
तुम सेवा बिन गए जिते दिन। हमरे निष्फल भए तिते दिन॥
कंस दुष्ट तें तुम दुख पाए। हम, तुम सेवा में नहिं आए॥
यह अपराध गनों जिनि यातें। हम तौ पराधीन हे जातें॥

श्री शुक उवाच—

प्रगट कियौ नर रूप कृपा करि। जब यों भाषी विश्वरूप हरि॥
तब दोऊ मोहित ह्वै गए। गोद चढ़ाय लाय उर लए॥
अति सुख पाय नेंन भरि आए। राम स्याम तिनसों अन्हवाए॥
स्नेह सो बँधे गरे रुकि गए। मोहित कछू न बोलत भए॥
यों सुदेवकी सुत भगवान। मात पिता कौ करि सन्मान॥
नाना उग्रसेंन जो आहि। कह्यौ जादवनि कौ पति ताहि॥
पुनि कही हमें प्रजा तुम जानों। हे नृप सबकों आज्ञा ठानों॥
अहो जजाति कौ साप है जातें। जादव राज जोग नहिं यातें॥
हम तुमरी नृप सेवा करिहें। इन्द्रादिक तुव पायनि परिहैं॥
बहुरि भेट देहें सुख काजा। पुनि ये कौन बापुरे राजा॥

यदु धक मधु पुनि जिते। कंस तें डरपि भजि गए तिते ॥
ते सब बन्धु सु कृष्ण बुलाए। तहां तें ते अति टूटे आए ॥
तिनके घर पुनि तिनकों दीनें। धन दै समाधान पुनि कीनें ॥
राम स्याम भुज रच्छित भए। लहे मनोरथ ताप सु गए ॥
नित सुन्दर हरि कौ मुख देखें। चितवनि हँसनि दयाजुत पेखें ॥
घरनि माँहि यों क्रीडत भए। अति सुख छए पूर्ण ह्वै गए ॥
वृद्ध हू तहाँ तरुन ह्वै आए। बहुत ही बल रु तेज करि छाए ॥
हरि मुख कमल सुधा कों पीवत। बार बार ताही करि जीवति ॥
दोऊ बहुरि नन्द ढिग आए। मिलि करि पुनि ये वचन सुनाए ॥
हे पित तुम बहु प्रीति सु भीनें। हमरे लालन पालन कीनें ॥
मात पिता कों सुत अति प्यारे। तिनके लाड़ आपते भारे ॥
लालन पालन करि न सकें जब। मात पिता निज सुतनि तजें तब ॥
तिनकों जे निज सुत ज्यों पालें। तेई मात पित हिय में सालें ॥
अब तुम व्रजहिं जाहु सब लेकें। हम इन सुहृदनि कों सुख देकें ॥
स्नेह दुखी बन्धुनि के हेत। एहें बेगि ही तात निकेत ॥
यों नन्दादि प्रसन्न सु कीनें। पुनि सुन्दर पट भूषन दीनें ॥
औरों वस्तु दई बहु हरी। पुनि सब ही की पूजा करी ॥
नन्द प्रेम करि विह्वल भयौ। रोय कें सुतहिं लाय उर लयौ ॥
पुनि रोवत सब व्रज कों चलें। एक प्रेम करि लागत भले ॥
पुनि वसुदेव सु गर्ग बुलाए। औरौ बहुत सु द्विजवर आए ॥
दुहुँवनि के करवाय जनेऊ। पुनि सब सिगारे द्विज बेऊ ॥
सहित दच्छना पूजा कीनी। बछरनि सहित गाय बहु दीनीं ॥
सुन्दर पट सिंगारीं भारीं। गर में कनक जंजीरें डारीं ॥
राम स्याम कौ जन्म भयौ जब। मन करि जे पुनि गाय दई तब ॥
सुधि करि पुनि तेऊ सब दीनी। जे अधर्म करि कंस सु छीनी ॥
संसकार करि द्विजता पाई। सुन्दर व्रत धारयौ दुहु भाई ॥

तिनके मनरु प्राण हम माँहीं । तन सम्बंधिन की सुधि नाँही॥
हरि ही श्रेष्ठ आत्मा प्यारे । यों हम मन करि तिननि विचारे॥
मो हित लोक धर्म जिन त्यागे । हम तिनके सुख में अनुरागे॥
प्यारे तें प्यारे हम भारे । हे उद्धव जब इहाँ पधारे॥
तब तें ब्रज तिय विरह सु तई । अति उत्कण्ठित व्याकुल भई॥
मेरे ई लीला गुण भाखें । ज्यों त्यों दुःख करि प्राणनि राखें॥
कहौ जाय ते जीवें नाँही । कान्हर ऐहें इन दिन माँहीं॥

श्री शुक उवाच

उद्धव लै प्रभु कौ सन्देश । रथ चढ़ि चले नन्द के देस॥
साँझ समै सुन्दर ब्रज आयौ । रथ ढँपि गयौ सु गोरज छायौ॥
मची गाय हित मत्त बिजारें । लरत परस्पर ढांडत भारें॥
बछरनि हेत गाय जहाँ दौरत । ऐंन भार निपटे झक झोरत॥
कूदत स्वेत बछरुवा नीके । बजवत बेनु जे जीवनि जीके॥
ठां ठां गैया दुहि पननीं कीं । दोहन धुनि मोहन मन हीं की॥
गोपी गोप परम छवि पावत । सुन्दर राम स्याम गुण गावत॥
गोपनि के गृह परम रसाला । धूप दीप जुजि बन्दनमाला॥
अतिथ अगिन रवि गो द्विज देवा । जिनमें इन सब ही की सेवा॥
फूलि रहे बन निपट सुखारें । गुञ्जारत खग भृंग सु भारे॥
पुनि कमलनि के बन मन मोहें । हंस रु कारण्डव जहाँ सोहें॥
आवत उद्धव नन्द निहारे । कान्हर के अनुचर अति प्यारे॥
पहल सु दौरि लपटि ही गए । बहुरि कृष्ण ज्यों पूजत भए॥
पुनि सुन्दर भोजन करवाए । सुख सों बहुरि सेज बैठाए॥
पाय पलोटि सु श्रम निरवारयौ । पुनि ब्रजराज वचन उच्चारयौ॥
महाभाग वसुदेव जु आहि । हमरौ मीत कुसल है ताहि॥
सुत रु सुहृद सुखी सब ताके । अब तौ क्लेश गए सब वाके॥
पापी कंस सबनि लै मरयौ । अपने पाप आप ही गरयौ॥

अति धर्मिष्ट साधु जदुबंस। तिनकौ अति द्रोही सो कंस ॥
मात तात ब्रज जन ये गैया। इन संभारत कभूं कन्हैया ॥
अपनों गिरि गोधन वृन्दावन। कबहूँ तिनके खरकत हैं मन ॥
कबहूँ एक बेर हू ऐहें। इन सुजननि कौ दरसन कैहें ॥
हम मुख लखन योग हैं नाँहीं। हँसनि लसनि चितवनि जा माँहीं ॥
वर्षा व्यार दवन जल काली। इन तें हम राखे वनमाली ॥
बहुत दुरत्यय मृत्यु बचाई। बड़े सुमन के कुँवर कन्हाई ॥
बोलनि डोलनि हसनि चितौन। वल अरु ख्याल कहि सकै कौन ॥
हे उद्धव जब जब सुधि आवें। तब तब सब गृह काज भुलावें ॥
गिरि बन नदी खेल की ठौरें। कान्ह चरन अङ्कित सिर मौरें ॥
अब हम तिनकों देखत जवै। तदाकार ह्वै जात हैं तवै ॥
राम स्याम कोऊ नर हैं नाँहीं। निपट बड़े कोऊ अमरनि माँहीं ॥
देव काज हित प्रगट सु भए। जानत हम सु गर्ग कहि गए ॥
कंस मल्ल बहुरों वह साथी। दस हजार गज बल कौ हाथी ॥
लीला ही करि मारें ऐसें। सिंह पशुनि कौं मारत जैसें ॥
वज्र सौ बड़ौ धनुष तोरयौ यों। एक छरी कों बड़ौ करी ज्यों ॥
सात द्यौस इक कर गिरि धारयौ। खेल सौ करि दानब कुल मारयौ ॥
धेनुक बक प्रलम्ब जे सारे। सुर असुरनि के जीतन हारे ॥

शुक उवाच

श्री ब्रजराज कृष्ण अनुरागी। सुमिरि सुमिरि हरि में मति पागी ॥
प्रेम बढ़यौ अति विह्वल भए। गरौ रुकें चुप के ह्वै गए ॥
सुत के नन्द चरित कहे जे जे। सुनति गई जसुमति जू ते ते ॥
स्नेह तें दूध कुचनि तें अयौ। पति दिसि देखि रोय पुन दियौ ॥
नन्द जसोमति कौ हरि माँहीं। परम प्रेम कहि आवत नाँही ॥
उद्धव देखि परम सुख पायौ। श्री ब्रजराजहिं वचन सुनायौ ॥
अहो मानदाता तुम दोऊ। तनधारिन में धन्य हौ कोऊ ॥

जातें सबके गुरु नारायण। तिनमें ऐसे मति पारायण॥
राम स्याम जग बीज अनूप। प्रकृति पुरुष हू जिनके रूप॥
सबमें रहिं उत्तम जो ज्ञान। करत प्रकास सु पुरुष पुरान॥
जामें जन मरती हू बार। मन विशुद्ध करि छिनहूँ धारि॥
कर्म बासना सब छिटकावै। शुद्ध सु होय परम गति पावै॥
ते पूरन सर्वातम कारन। कारन ही करि नर बपु धारन॥
तामें तुमरी प्रीति सु महा। अब तुमकों करिवें रह्यौ कहा॥
जदुपति कान्ह बेगि ही ऐहैं। सब ब्रज सहित तुमें सुख दैहैं॥
जो यदुकुल कों अति दुखदाई। ता कंसहिं जब मारि कन्हाई॥
तुम सों आइ कही ही जो जो। निश्चे साँची करि हैं सो सो॥
हे महाभाग दुःख जी नहिं ठानों। कृष्णहिं अपने ही ढिग जानों॥
सो सब माँहिं बिराजत ऐसें। काठनि माँहिं अगिन है जैसें॥
नहि तकि कोऊ बैरी प्यारौ। सदा अमानी सब तें न्यारो॥
उत्तम मध्यम अधमों नाँही। आप समान सबनि के माँहीं॥
तिय सुत मात पिता नहिं ताकें। निज पर देह जन्म नहिं वाकें॥
कर्म हूँ नहिं तन ऊ क्रीड़ा हित। भक्तनि की रछा में दै चित॥
सुर पशु वहुरों नरनि मँझारी। कबहूँ प्रगटत आनि मुरारी॥
निर्गुण हरि क्रीड़न के कारन। सत रज तम गुण कौ करि धारन॥
सरजें पालें वहुरों दहें। आप अजन्मा न्यारे रहें॥
जैसें भ्रमति दृष्टि जो आहि। भूँमि हूँ भ्रमति लगै सब ताहि॥
यों चित कर्त्ता ही सब ठानें। अहं बुद्धि करि जीव सु मानें॥
सो हरि नहि तुमरौ ई तात। सबकौ सुत आतम पित मात॥
भूत भविष्य सद्य जड़ जङ्गम। देख्यौ सुन्यों दीर्घ पुनि सूछम॥
तिन बिन वस्तु मात्र कछु नाँहीं। ते परमातम हैं सब माँहीं॥
यों उद्धव रु नन्द कतरात। निसि गई बीति होय गयौ प्रात॥
वहुरि निपुन सव गोपीं जागीं। दियनि बराय मथन दधि लागीं॥

दियनि कान्ति करि नग जगमगें। भुंजा विलोवत नीकी लगें॥
हलति नितम्ब बहुरि उर माला। कुण्डल कान्ति कपोल रसाला॥
कुंकुम चिले बदन छवि पावति। कमलनैंन के गीतनि गावति॥
दधि की होति घमरकनि नीकी। छई गगन धुनि जीवन जी की॥
ता करि सब दिसि मङ्गल छयौ। इतनें रवि कौ उदै सु भयौ॥
नन्द द्वार पर रथ लखि ताकौ। ब्रज तिय कहन लगीं यह काकौ॥
पुनि आयौ कहा सुफल्क कपूत। जो है निपट कंस कौ दूत॥
कमल नैंन सुन्दर घनस्याम। तिनें लै गयौ मथुरा धाम॥
अब हमरे कहा माँसहिं लैहैं। मरे कंस कों पिण्ड सु दैहैं॥
यों तिय ठाढ़ीं कहति हुतीं जहाँ। नेंम साधि उद्धव आए तहाँ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

दोहा—प्रेम देखि ब्रज तियनि कौ, तिनहीं के गुण गाय।
पुनि उद्धव मथुरा गयौ, सैंतालीसे ध्याय॥ १॥

श्री शुक उवाच—

हरि अनुचर ब्रज तियनि सु देख्यौ। कमल माल पीतम्बर पेख्यौ॥
मनि कुण्डल रु कमल दल लोचन। सुन्दर मुख पङ्कज दुःख मोचन॥
हँसि कें कही यह कौन अनूप। कहाँ तें आयौ कान्हर रूप॥
यह कहि सब उद्धव ढिग गईं। चारों घाँ ते घेरति भईं॥
जानी कान्ह सन्देसौ ल्यायौ। बहुत दीन ह्वै सीस नवायौ॥
लज्जित हास चितौंन रु बानी। सन्मानें उद्धव सुख दानी॥
बहुरि इकौसें आसन डारयौ। तहाँ बैठाय वचन उचारयौ॥
जानी हम तुम कान्ह पठाए। माता पितहिं दैन सुख आए॥
और भाँति या ब्रज के माँहीं। ताकी प्रीति लखत हम नाँही॥
बन्धुनि माँहि प्रीति जो आहि। मुनि हूँ त्यागि सकें नहिं ताहि॥

और सों प्रीति प्रयोजन हीं की। सो नहिं जी की कहिबे ही की॥
नारी सों ज्यों नर की प्रीति। अलि की ज्यों फूलनि सों रीति॥
नृप असमर्थहिं प्रजा सु तजें। निर्धन तें पुनि गनिका भजै॥
विद्या पढ़ि सिष गुरु कों त्यागें। खग फल गए वृच्छ तजि भागे॥
धन लै द्विज जजमानहिं तजै। जों कर अतिथ सु गृह ते भजै॥
मृग ज्यों जरे विपन तें भागै। जार हू तियहिं भोग करि त्यागै॥
यों गोपिन की तन मन बानी। सुन्दर कान्ह कुँवर में सानी॥
कृष्ण दूत ब्रज आयौ जब तें। सबही काज बिसरि गए तब तें॥
हरि के बाल किशोर चरित जे। पुनि पुनि तिनहीं कों सुमिरति ते॥
रोय रोय तिनहीं कों गावें। छिन छिन में तन सुधि बिसरावें॥
ध्यान में इक तिय पिय हिय लगी। पुनि सु भोंर धुनि सुनि सो जगी॥
ताहि चाहि पिय दूत सु मान्यों। पुनि तिन तिय यह बचन बखान्यों॥

गोप्य उवाच—

अहो हे मधुप बन्धु कपटी के। जिन छूवै मम पाय सु नीके॥
सौत कुचनि करि मिडी जु माल। तिंह कुंकुम करि तुव मुख लाल॥
परौ तिन्हीं सौतनि पग माँहीं। हम प्रसन्न ह्वै हैं अब नाँहीं॥
तिनकी किन हाँसी करिवावौ। जिनके तुम अस दूत कहावौ॥
मन मोहन निज अधर सुधा जो। हमकों एक ही बार प्याय सो॥
बहुरों तजि भजि गयौ सु ऐसें। अहो तुमसे फूलनि को जैसें॥
हाय हाय क्यों रमा सु नारी। ताके पाय पलोटति भारी॥
ऐ पर ता कपटी की बानी। सुनि सोऊ मोहीं हम जानी॥
हे षटपद यदुनाथ पुराण। ताकौ यह जु गुणनि कौ गान॥
हम गृह हीन सबै ये नारी। तिन आगें क्यों गावत भारी॥
आजु काल्ह जे हरि की प्यारी। तिनसों मिलि उर विथा निवारी॥
क्यों न जाय गावत तिन आगें। जहाँ तें हाथ मनोरथ लागै॥
स्वर्ग पताल रु धरनि मँझारी। ताकों को तिय दुल्लंभ भारी॥

जाके हास बिलास हैं जिते। कपट सने अति सोहत तिते ॥
पद रज उमा उपासति जाकी। अब हम कोंन बात रही काकी ॥
ऐ पै दीननि सुख देहैं जौ। उत्तम श्लोक नाम रहि है तौ ॥
अरे पगनि तें सीस उठाव। मैं तेरौ सब जानति भाव ॥
हरि सों सीख मागि भल जानन। द्वैत ह्वै आछें वचन बखानत ॥
हम हरि हित सुत पति सब त्यागे। ते कृतघ्न हमकों तजि भागे ॥
अब तासों सु प्रयोजन कहा। अहो मधुप सो निर्दय महा ॥
पहले बालि हत्यौ इन ऐसें। बधिक हतै बन कौ मृग जैसें ॥
पुनि सकाम वह सूपनखा जो। यह तिय बस विरूप कीनी सो ॥
इन पूजा लै बलि बाँध्यौ यों। कउवा खाय घरहिं घेरे ज्यों ॥
प्रीति न करियै कारे माँही। पै ताके गुण बिसरत नाँही ॥
जाकी अमृत रूप लीला कौ। एक हू कनका कान परै जौ ॥
ताही कौ सवाद पावै जब। द्वन्द्धर्म मिटि जात सबै तब ॥
विटल से होय दीन ह्वै जावें। दुःखित गृह कुटम्ब छिटकावें ॥
अहो बहुत कप छिन की नाँही। फिरत भीष कों घर घर माँहीं ॥
ताकी हमनि कपट की बानी। अहो मधुप साँची करि मानीं ॥
ताके नख छत देह मँझारी। देखति हम होंय पीड़ित भारी ॥
जैसें बधिक घाव देखें जब। अज्ञ मृगी अति दुखित होंय तब ॥
तातें दूत और कछु गावौ। कपटी के गुण दूरि दुरावौ ॥
हे प्रिय मीत फेरि तुम आए। हमरे प्यारे नें सु पठाए ॥
क्यों न कहत हौ चहियत कहा। तुम तौ हमरे पूज्य सु महा ॥
कैसें ले जैहौ उँह पास। एक ना एकर ढिग जास ॥
अहो साधु इक रमा बधू जो। नितहीं तिंह उर चढ़ी रहै सो ॥
अहो साधु श्री नन्दनन्दन जो। पठि आए सब निज पुर में सो ॥
बन्धु गोप अरु पित कौ धाम। कबहूँ सुमिरत हैं घनस्याम ॥
पुनि हम ये दासी जु कहावति। कभू इनहूँ की बात चलावत ॥

अगर सुगन्ध सनी भुज अहौ। हमरे सिर धरिहैं कब कहौ?

श्री शुक उवाच

उद्धव ते देखीं ब्रजनारी। हरि दरसन उत्कण्ठित भारी॥
पिय सन्देस करि दुखहि निवारन। कछूक उद्धव लगे उचारन॥

उद्धव उवाच

अहो तुम पूर्ण मनोरथ सबै। सबकी पूज्य भईं तुम अबै॥
जा तें वासुदेव जो गायौ। तामें तुम यों मनहिं लगायौ॥
दान होम ब्रत वेद पाठ तब। संजम आदि बहुरि जितने जप॥
सबही कौ इक फल है यही। हरि में एक भक्ति होय सही॥
भली भई सो हरि के माँहीं। तुमनि करी मुनि पावत नाँही॥
सुत पति देह गेह पुनि जिते। भली भईं तुम त्यागि सु तिते॥
परम पुरुष जो कृष्ण सु नाम। सोई तुमनि बरयौ अभिराम॥
अहौ एकान्त भक्ति जो भारी। तुमरी भई भगवान मँझारी॥
हे महाभाग विरह रस भीनों। मो पै बड़ौ अनुग्रह कीनों॥
अब सुनिये पिय सुख सन्देस। जो मैं लै आयौ या देस।

श्री भगवानु वाच

मैं सर्वातम हौं सब माँहीं। हम तुम सौं बिछुरन कहूँ नाँही
ज्यों धर जल नभ अगिन बयार। इनकौ सब में है विस्तार॥
त्यों मन प्राण बुद्धि इन्द्रिय गुण। इन सबकों हम हीं आश्रै पुनि॥
अपनी माया के प्रभाव करि। महा भूत इन्द्री गुण कों धरि॥
आपुन माँहिं आपकों आप। सृज पालों पुनि देंहु सु ताप॥
आत्म शुद्ध ज्ञान घन रूप। निर्गुण न्यारौ निपट अनूप॥
जाग्रत स्वप्न सुषुप्त सो कहियै। इन मन वृत्तिन करि सो लहियै॥
सुपन समान असत्य विषै जो। ध्यावत इन्द्रीं रूप होय सो॥
पहलें ता मन कों बस आनें। ज्ञानी पुरुष न आलस ठानें॥
सांख्य योग श्रुति पाठ रु दान। तप दम सत्य और हू आन॥

इनकी अवधि जीतवौ मन कौ। समुद अवधि ज्यों सब नदियनि कौ॥
मेरौ ध्यान निरन्तर कैहैं। पुनि निज मन कों वस करि लैहैं॥
याते मैं दृग ओट सु आयौ। हों तुमरौ प्यारौ मन भायौ॥
दूरि रहे पिय मन लागे ज्यों। ढिग के रहें न हित पागे त्यों॥
सब वृत्तानि तजि मन जो आहि। मो में धरौ समेटि सु ताहि॥
मेरौ ई पुनि सुमिरन कैहौ। मो कों पाय तुरत ही लैहौ॥
अहो बृन्दावन में हम कीनों। तुमरे सहित रास रस भीनों॥
जे रुकि गईं ते सो करि ध्यान। तुरत ही मिली मोही कों आनि॥

श्री शुक उवाच

यह पिय कौ सन्देस सुन्यौ जब। गोपिन को कछु सुधि आई तब॥
ह्वै प्रसन्न उद्धव सों कही। अहो यह भली भई है सही॥
अनुगनि सहित हत्यौ जो कंस। जाते दुखित हुतौ जदुवंस॥
लहे सब अर्थ जादवनि अहो। अब हरि आहि कुसल सों कहो॥
श्री हरि नगर तियनि के प्यारे। बहुरि प्रीति के जाननि हारे॥
तिनके वचन विलासनि माँहीं। कैसे कहौ बँधे ते नाँहीं॥
नेह सों सनीं लजोंही हास। पुनि उदार चितवनि रस रास॥
पुर तिय हरि सन्मानें इन सों। हमरी प्रीति करत अब तिन सों॥
अहो कबहूँ पुर तियनि मँझारी। कोउ कछु बात चलें गिरधारी॥
हमरी सुधौ करत मन माँहीं। हम गँवारि तिहि लायक नाँही॥
अहो वृन्दावन अति कमनीय। कुन्द कुमुद ससि करि रमनीय॥
तहाँ नूपुर बजाय करि रास। हमसों कीने बहुत विलास॥
ते निसि माहि कभू सुधि आवति। सुन्दर तास चरित हम गावति॥
अहो कृष्ण ह्यां ऐहें कहा। ताके विरह तपति हम महा॥
करसों परसि जिवै है ऐसें। वन कों इन्द्र मेंह करि जैसें॥
बैरी हत्यौ राज्य पायौ सब। काहे कों ब्रज में ऐहें अब॥
भूपनि की कन्यानि विवैहें। बन्धुनि सों मिलि अति सुख कैहें॥

सुतौ धीर बहुरों लक्ष्मीपति । पुनि सब काम प्राप्त पूरन अति ॥
हम गँवारि औरौ तिय महा । तास अर्थ साधेंगीं कहा ॥
दुष्ट पिङ्गला हूँ यह कही । है नैरास परम सुख सही ॥
सोऊ हम जानति करियै कहा । हरि में आस दुरत्यय महा ॥
जे हरि करीं इकौसें बात । ते कहौ कापै छोंड़ी जात ॥
बिन चाहें हूँ रमा सु जाके । छिन हू न तन तें टरति न ताके ॥
गिरि बन नदी बेनु-ख गैया । ये सुधि द्यावत कुंवर कन्हैया ॥
चरन चिन्ह सोभा के धाम । देखें भूलि सकें नहिं स्याम ॥
चलनि मिलनि पुनि हँसनि कलोलनि । लीला करि चितवनि मिठ बोलनि ॥
इन करि चित्त सु हरे मुरारी । अब सो क्यों भूलैं ब्रजनारी ॥
हे दुखनासक हे ब्रजनाथ । हे गोविन्द रमापति नाथ ॥
गोकुल डूबत है दुखधार । हे हरि बेगि करौ उद्धार ॥

श्री शुक उवाच

हरि कौ सुन्यों सन्देसौ गोपी । तिनकी विरह ताप तौ लोपी ॥
बहुरि अधोक्षज आत्मा जानें । पूजा करि उद्धव सनमानें ॥
उद्धव कछु कम ही ननिताई । ब्रज में रहि हरि लीला गाई ॥
गोपिन की तन ताप निवारी । गोकुल कों सुख दीनों भारी ॥
बहुत दिना हरि कथा बखानी । ब्रजवासिन इक छिन सी जानी ॥
बन गिर गुहा नदी पुनि देखत । फूलनि झलरि रहे द्रुम पेखत ॥
उद्धव ब्रज विचरत सुख पावत । ब्रज जन कों हरि की सुधि द्यावत ॥
यों उद्धव देखीं ब्रजनारी । हरिअ बेस करि व्याकुल भारी ॥
तब तिने सीस नवायौ । प्रेम सों भीजि कछुक जस गायौ ॥
अहो केवल ये ब्रज तिय जितीं । धर में सफल जन्म हें तितीं ॥
जातें जो सर्वात्म मुरारी । तामें इनकी प्रीति है भारी ॥
जग तें डरपि जाहि जाचत मुनि । हम हूँ जाकों चाहत हैं पुनि ॥
हरि गुण में जिनकौ मन महा । तिनकों ब्रह्म जनम करि कहा ॥

कहाँ विभचारि दुष्ट ये नारी। बहुरों बन की विचरन हारी॥
कहाँ यह परम प्रीति कौ ह्वैबौ। हरि परमातम में मन दैबौ॥
बिन जाने हूँ भजै जु हरै। तौ हू मङ्गल ही कों करै॥
ज्यों बिन जाने अमृत पीवै। तौ हू नर जीवै ही जीवै॥
अहो राम मैं कृष्ण मुरारी। इन पै कियौ अनुग्रह भारी॥
कण्ठनि डारि भुजा रस भीनी। सबै कामना पूरन कीनी॥
यह तौ नहिंन रमा हूँ पाई। जदिप रहति उर माँहि सदाई॥
कमल सी सुर तिय पार्वति नाँहीं। और तिया किहि गनती माँहीं॥
अहो हम हूँ होंय विपिन मँझारी। कछूक गुल्म लता तन धारी॥
जिन पर इन पायनि की रेंन। परत रहै नित सुख की दैन॥
ये दुस्त्यज कुटुम्ब तजि भागीं। बहुरि बड़नि की राह सु त्यागीं॥
पुनि हरि जू की राह सु लही। जो अज हूँ श्रुति ढूँढत सही॥
ब्रह्मादिक सब पूरन काम। अरु जोगीस रमा पुनि वाम॥
हिये माँहि नित पूजत रहें। हरि पद कमल सबै सुख दहें॥
ता पद कमलहिं रास मँझारी। कुचनि लगाय सबै ब्रजनारी॥
विरह ताप कों दूरि सु करी। बहुरि परम आनन्दहिं भरी॥
अहो इनकी पद रेंनु जु आहि। हम नित सीस नवावत ताहि॥
जिनकौं हरि गुण कौ गैबौ जो। करै पवित्र त्रिलोकी कों सो॥

श्री शुक उवाच

नन्द जसोदा गोप रु गोपी। सब ही एक प्रेम रस ओपी॥
सब सों उद्धव आज्ञा लीनीं। रथ चढ़ि चलिवे कों मति कीनी॥
दौरि दौरि नन्दादिक आवें। कान्ह हेत बहु वस्तुनि ल्यावें॥
देत सँभारि प्रेम करि छुए। वहुरि रोय यह बोलत भए॥
अहो हमरी मन वृति हैं जितीं। रहौ कान्ह चरननि में तितीं॥
बानी ता बिन और न कहौ। तनहूँ तास टहल में रहौ॥
कर्मनि करि हम भ्रमत जु दीन। जहँ कहूँ हरि इच्छा आधीन॥

हमकों पुण्यनि कौ फल यही। कान्ह कुँवर में रति होय सही॥
यों गोपनि उद्धव सनमाने। कान्ह कुँवर की सम ही जाने॥
पुनि हरि रच्छित मथुरा धाम। तहाँ आए उद्धव अभिराम॥
जाय कृष्ण कों सीस नवायौ। ब्रज कौ प्रेमाधिक्य सुनायौ॥
उग्रसेन वसुदेव रु राम। इनको दईं भेट अभिराम॥

इति श्री भागवते महा पुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानिकृते
शप्तचत्वारिंशोऽध्याय: ॥

दोहा:—कुब्जा सों हरि रमन करि, अठतालीसें ध्याय॥
जाय ग्रेह अक्रूर कों, गज पुर दए पठाय॥

श्री शुक उवाच

सर्वातम सबके दृष्टा जो। श्री भगवान जानि मन में सो॥
काम तपति कुब्जहिं सुख दैन। गए तास गृह पंकज नैन॥
सब अनूप सामिग्री जहाँ। काम उपाय धरे सब तहाँ॥
मोती माल पता कचदोबा। आसन सेज अतर पुनि चोबा॥
सुन्दर धूप दीप वन माला। हरि घर आए देखि सु बाला॥
हरिवराय आसन तजि धाई। सखियनि संग हरि के ढिग आई॥
बहुरों आसन पर बैठाय। अति ही सन्माने यदुराय॥
त्यों उद्धव कों आसन दीनों। तिंह धर बैठि परस करि लीनों॥
तब हरि लोकाचार दिखाय। बैठे सुन्दर सेज सु जाय॥
तब सो कुबिजा उबटि अन्हाय। भूषन बसन पहरि छबि जाय॥
हार पहरि सोंधौ ला लियौ। पान चाबि मादक रस पियौ।
बहुरि लजोंहीं चितवनि हास। हरि ढिग आई करति विलास॥
नव सङ्गम करि कछू लजाति। हरि बुलवत आवति न सकाति॥
तव कंकन जुत भुज छबि छई। गहि बैठाय सेज पै लई॥
तासों कृष्ण रमन पुनि कियौ। तास अरगजा कौ फल दियौ॥
काम सों कुच उर नैंन तपात। कुबजा हरि पद सूँघति जात॥

तनहिं छुवाय विथा निरवारति। सुख सरूप हरि कों उर धारति॥
तासों लपटि सु छोड़ति नाँहीं। तनक न रही ताप तन माँहीं॥
मुक्ति के दाता दुर्लभ हरि जो। दए अरगजा करि पाए सो॥
ऐ पै कुब्जा निपट अभागी। तापै काम कामना माँगी॥
कमलनैंन हे प्रीतम प्यारे। कछुक द्यौस घर रहौ हमारे॥
मो संग रमन करौ सुखकारी। मैं तोहि छोड़ि न सकत मुरारी॥
मानद हरि नें सो वर दियौ। बहुरि तास सन्मान हूँ कियौ॥
पुनि हरि उद्धव निज घर आए। जे घर सब सम्पत्ति कर छाए॥
सब वरदाता विष्णु दुराध। जो नर ता हरि कों आराध॥
तुच्छ विषै सुख मानै जौ पै। तासम और न दुर्मति तौ पै॥
इक दिन बल उद्धव संग लए। हरि अक्रूर भवन कों गए॥
कछु तौ ताकौ भलौ मनावन। कछु अपनौं हूँ काम करावन॥
निज बान्धव अक्रूर निहारे। नरनि माँहिं जे श्रेष्ठ हैं भारे॥
सन्मुख दौरि हरषि लपटानें। पुनि सब ही नीके सनमानें॥
राम स्याम कों नवत सु भए। तऊ पुनि तैसें सब नए॥
पुनि सबकों आसन बैठाए। बहुरों जल लै पाँव धुवाए॥
सो जल लै निज सिर पर धरयौ। बहुरों नीकें पूजन करयौ॥
सुन्दर भूषन वसन रु माला। ल्याय धरे बहु अतर रसाला॥
पुनि धर मस्तक लाय सु नए। पग धरि गोद पलोटत भए॥
बहुरि बिनै करि नम्र सु भारी। राम स्याम प्रति कछू उचारी॥

श्री अक्रूर उवाच—

अनुगनि सहित महापापी जो। भली भई तुम हत्यौ कंस सो॥
बड़े दुःख तें कुल उद्धारयौ। बहुरि बढ़ाय दियौ सुख भारौ॥
तुम दोऊ जग हेत अनूप। बहुरि प्रधान पुरुष जग रूप॥
कारज कारन है यह जितौ। तुम बिन न्यारौ तनक न तितौ॥

तुमहीं यह जग सिरज्यौ हे हरि। पुनि प्रविष्ट ह्वै निज शक्तिन करि॥
बहु विधि ह्वै भासत तुम अबै। जो लखियत सुनियत यह सबै॥
जैसें पाँच भूत ये जोई। सब ठाँ बहु विधि भासत सोई॥
ऐसें तुम आत्मा सुतन्त्र जे। इक सब में बहु विधि भासत ते॥
रज सत तम तीनों गुण धारौ। इन करि रचि पालौ संघारौ॥
तुम नव धौ गुण कर्मनि माँहीं। ज्ञान रूप रु अविद्या नाँहीं॥
देह उपाधि न आतमा माँही। यातें भवह अविद्या नाँहीं॥
यातें बन्धन मोक्ष तिहारौ। लखियत सो अविवेक हमारौ॥
बहुरि पुरातन बेद मार्ग जो। जगत हेत तुम प्रगट कियौ सो॥
पाखण्डी ताकों मेटें जब। सत्व मूर्त्ति तुम प्रगट करौ तब॥
धरनी भार उतारन हेत। तुम प्रगटे बसुदेव निकेत॥
असुर नृपन की सेंननि मारि। पित कुल जस करिहौ विस्तार॥
भूरि भाग घर आजु हमारे। जहाँ जगतगुरु आप पधारे॥
तुम नर पितर देव श्रुति मूरति। तुव पद जल सब पाप निचूरत॥
अहो भक्त प्रिय सुहृद कृतज्ञ। तजि तोहि और भजै सो अज्ञ॥
तुम भक्तहिं देहु तन पर्य्यन्त। तुमरौ घटै बढ़ै न अनन्त॥
तुम जोगीस सुरीसनि दुर्ल्लभ। हे साँचे मोकों भए सुल्लभ॥
सुत, तिय, तन, धण-मोह सु बेरी। वोग काटि यह माया तेरी॥

श्री शुक उवाच—

यों अक्रूर भक्त ने हरी। पूजे पुनि अस्तुति विस्तरी॥
तब हरि ताहि कही इक बात। बीच बीच हँसि मोहत जात॥

श्रीभगवानुवाच—

अहो हमरे तुम गुरु सुखदायक। का काबन्धु सिलाघा लायक॥
रच्छक पोषक तुम्हीं हमारे। दयापात्र हम पुत्र तिहारे॥
हे महाभाग, भलौ चाहै जो। तुमसे पूज्य साधु पूजै सो॥
सुर तौ सदा सु चाहत स्वारथ। साधु ही एक करत परमारथ॥

माँटी सिल के देव घनेरे। जल हू के तीरथ बहुतेरे॥
ते पवित्र बहु दिन में करें। साधु दरस ही सों सब हरें॥
सो तुम सुहृद श्रेष्ठ हो भारे। कछूक मङ्गल करौ हमारे॥
आप हस्तिनापुर कों जावौ। कुन्ती पुत्रनि की सुधि ल्यावौ॥
मात सहित ते दुःखित भारे। जब तें उनके पिता पधारे॥
पुनि हम सुनीं तिनें निज धाम। लै गयौ नृप धृत्तराष्ट्र नाम॥
सो तौ अन्ध दीन मति छयौ। दुष्ट सुतनि के बस परि गयौ॥
निश्चें पुत्र भतीजनि माँहीं। अहो सो सम वर्त्तत है नाँही॥
तातें अब तुम तहाँ पधारौ। भलौ बुरौ तिन चलन निहारौ॥
पुनि तुम आय कहौगे जैसें। सुहृदनि कों सुख दैहें तैसें॥

श्री शुक उवाच

यों तिन सों कहि हरि घरु आए। संग बल उद्धव अति छवि छाए॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
अष्टचत्वारिंशोऽध्याय: ॥ ४८ ॥

उनचासवाँ अध्याय

दोहा—उनचासें अध्याय में, अक्रूरौ तहाँ जाय।
पुत्र भतीजनि में विषम, नृपहिं देखि फिर आय॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

गए हस्तिनापुर अक्रूर। जो पुर कौरव जस भरिपूर॥
तहाँ भीषम धृतराष्ट्र निहारे। कुन्ती बहुरों विदुर सु प्यारे॥
पुत्र सहित वाल्हीकहि देख्यौ। कृपाचार्य्य पुनि कर्ण हूँ पेख्यौ॥
सुतजुत द्रोण सुजोधन देखे। पाण्डव सुहृद और बहु पेखे॥
पाण्डव आदि बन्धु हे जिते। इनसों मिले यथाविधि तिते॥
सुहृदनि की पूछी सब तिननें। तिनकी कुसल सु पूछी इनने॥
कछू मास तहीं ते रहे। राजा के सब चरित सुलहे॥
अलप धीर सब सुत अन्याई। दुर्योधन बस रहै सदाई॥

बल, वय, तेज, पराक्रम हूँ पुनि। बहुरों बिने आदि सबही गुण॥
सबकी प्रीति पाण्डवनि माँही। सा नृप-पुत्र सह सकें नाँही॥
तब तिन निन्द कर्म बहु किये। कहा कहियँ विष हूँ लों दिये॥
कुन्ती और विदुर सुखदाई। यह सब अक्रूरहिं सु जनाई॥
कुन्ती लख्यौ भ्रात अक्रूर। नैननि भरि आयौ जल पूर॥
अपनी जन्म भूमि सुधि आई। निकट आय कछु बात चलाई॥

श्री कुन्त्युवाच

अहो साधु मम मात पिता जे। हमकों कबहूँ सुमिरत हैं वे॥
भईया बहिन भतीजे साथनि। कबहूँ सुमिरत हमें अनाथनि॥
राम स्याम कमल दल नेंन। सरनागत पालक सुख दैंन॥
ते मम आहि भतीजे प्यारे। कभूं सँभारत पुत्र हमारे॥
रिपुनि माँहि मैं दुखित ऐसें। अहा ल्यारिण में हरिनी जैसें॥
पुनि ये पिताहीन बालक सब। आनि कें समाधान करि हैं कब॥
कृष्ण कृष्ण हे विश्व सरूप। हे जग पालक भक्तनि भूप॥
लरकनि सहित दुखित मैं भारी। राखि लेहु प्रभु सरन तिहारी॥
तुमरे चरन कमल तें और। नरनि कों प्रभु नहिं उत्तम ठौर॥
मृत्यु रूप जग तें जे डरें। तुव पद तिन्हें भक्ति विस्तरें॥
हे परमातम शुद्ध सरूप। हे योगेसुर योग अनूप॥
परब्रह्म मैं सरन तिहारी। तुमकों है दण्डौत हमारी॥

श्री शुक उवाच

जगत ईस श्री कृष्ण मुरारी। बहुरों अपनें सज्जन भारी॥
हे नृप दादी दुखित तिहारी। तिनहिं सुमिरि पुनि रोई भारी॥
हे नृप बहुरि विदुर अक्रूर। कुन्ती सम दुख सुख रहे पूर॥
तास सुतनि कौ जनम बखान। कीनों समाधान सन्मान॥
चलती बेर गए नृप के घर। पुत्र सनेही सुतौ विषम तर॥
जो सनेह करि कही मुरारी। सुहृदनि में सो जाय उचारी॥

श्री अक्रूर उवाच—

अहो पवित्र वीर्ज सुत प्यारे। कौरव कीर्ति बढ़ावन हारे॥
भैया पाण्डु पधारे जबै। नृप आसन तुम बैठे तबै॥
धरन धर्म करि पालन कैहौ। प्रजहिं सील करि आनन्द दैहौ॥
बन्धुनि में सम रहिहौ जौपै। मङ्गल जस तुम पैहौ तौ पै॥
और भाँति जौ पै तुम कैहौ। निन्दा पैहौ नरकहिं जैहौ॥
तातें अन्तर मानौं नाँहौ। निज सुत पाण्डु सुतनि के माँहीं॥
हे नृप या जग में को काकौ। और की कहा न तन हूँ याकौ॥
इकलौ उपजै इकलौ मरै। इकलोई दुख सुख भोज सु करै॥
मूढ़ पाप करि धन सञ्चै जो। बैरी आनि पुत्र ह्वै हैं सो॥
तास बधन कों खात सु ऐसें। जलवासिन के जल को जैसें॥
धन सुत प्राण सु अपनें मानि। निसि दिन यह पोषत अज्ञान॥
ते छिन में तजि जात हैं अहौ। तिनसों भयौ न पूरन यहौ॥
धर्म सों विमुख होय गहि पाप। नरकहिं जाय अकेलौ आप॥
तातें नृप यह लोक है ऐसौ। माया सुपन मनोरथ जैसौ॥
हे प्रभु मनहिं बुद्धि करि गहौ। सान्त होय सब में सम रहौ॥

धृतराष्ट्र उवाच—

अहो तुम भाष्यौ वचन अनूप। जो है सब कल्याण सरूप॥
पै मैं तृपति होत नहिं ऐसें। सुन्दर अमृत पाय नर जैसें॥
अहो साधु तुम वचन कह्यौ भल। मो चित सुत सनेह करि चंचल॥
तामें सो ठहरत यों नाँहीं। ज्यों दामिनी फटकगिरि माँहीं॥
अहो ईसुर की विधि जो आहि। को नर करै अन्यथा ताहि॥
जो धर भार उतारन हेत। प्रगटे हैं जादवनि निकेत॥
निज माया करि सबै बनावें। करि प्रवेस पुनि भोग भुगावें॥
जिन दुर्गम विहार के हेत। रच्यौ जगत यह परम निकेत॥
ताकों जो हरि आश्रै भारी। ताकों है दण्डवत हमारी॥

श्री शुक उवाच—

इँह विधि नृप हिय कौ अभिप्राय। श्री अक्रूर लयौ सो पाय॥
सब सों आज्ञा लै पुर आए। राम स्याम कों चरित सुनाए॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥
॥ श्रीदशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध समाप्तः॥

॥ श्रीराधारमणो जयति ॥

दशम स्कन्धः (उत्तरार्द्धः)

पञ्चासवाँ अध्याय

दोहा:—जरासन्ध तें डरपि जनु, कियौ समुद्र में कोट ॥
पञ्चासें अध्याय में, लीनी ताकी ओट ॥१॥

श्री शुक उवाच

कंस की द्वौ तिया अभिराम। अस्ति प्राप्ति हैं तिनके नाम ॥
पति के मरें दुखित ते भईं। जरासन्ध पित के घर गईं ॥
मगध देस को राजा आहि। विधवा कौ कारन कह्यौ ताहि ॥
सुनि अप्रिय सु क्रोध भरि गयौ। जादव कुल मारन मन दयौ ॥
सेना लै तेईस छौहिनी। घेरि लई मधुपुरी सोहनी ॥
जदुवंशिन की है रजधानी। सो मथुरा अति ही अकुलानी ॥
सो लखि हरि रिपु फौज निहारी। समुद सी पूरि रही है भारी ॥
तब भगवान चिन्तवन ठान्यों। कारन हित नर वपु सुख सान्यों ॥
मम अवतार प्रयोजन जोई। देश काल को उचित सु होई ॥
जरासन्ध के बस सब भूप। तिनकी यह सेना सु अनूप ॥
अनगन ये अनेक छौहिनी। भट हय गय रथ करि सोहनी ॥
जरासन्ध ल्यायौ हम मारें। या धरनी के भार उतारें ॥
जरासन्ध कों हानयें नाँही। यह बहु लै ऐहे इँह ठाँही ॥
हम प्रगटे इतने ही कारन। दुष्टनि मारन भक्त उधारन ॥
जब कबहूँ अधर्म बढ़ि जाय। तबहूँ हम प्रगटत हैं आय ॥
ता अधर्म को दूरि सु करें। बहुरि धर्म रक्षा बिस्तरें ॥
यों हरि करत चिन्तवन जहाँ। नभ तें द्वै रथ उतरे तहाँ ॥
रवि से दिपत भरे सब सामा। हाँकनिवारे हू अभिरामा ॥
दिव्य शस्त्र आए अनयास। लखि भैयहिं बोले सुख रासि ॥

है भैया यदुवंश तिहारौ। देखौ किनि अब दुखित भारौ॥
ये रथ तुमरे हे तपधारे। बहुरों ये आयुध अति प्यारे॥
इन पै चढ़ि इनकों संघारौ। दुःख तें अपनें बन्धु उवारौ॥
याही हित यह जन्म हमारौ। साधुनि कों सुखदाई भारौ॥
यह तेईस छौंहिनी मारौ। अहो भ्रात धर भार उतारौ॥
यह कहि बकतर पहरि सु लए। रथ चढ़ि पुर तें निकसत भए॥
सुन्दर शस्त्र धरें छवि छाजत। थोरी सी संग फौज विराजति॥
संख बजायौ हरि अभिराम। संग सारथी दारुक नाम॥
ता करि रिपु सेंना हिय डरी। बहुरि देह सबकी थरहरी॥
जरासन्ध तब दुहुनि उचारी। अरे कृष्ण पुरुषाधम भारी॥
नीके सुनिये बचन हमारौ। जामें निपट धर्म है भारौ॥
तू डरपोका निन्द-बन्धु हा। तोकों हम सु युद्ध करिहें कहा॥
तू किनि मो आगें तें सरकै। लज्जा आवत मारत लरकै॥
अहो राम जौ कछु तुव मन में। तो धरि धीर रोपि पग रन में॥
मो बाननि करि तन तजि जैहौ। स्वर्गहिं अथवा मोहि पठैहौ॥

श्री भगवानुवाच

अहो सूर यों बकत सु नाँहीं। देत दिखाय जु बल अपु माँहीं॥
हम तुव वचन साँच नहिं मानें। तू आतुर मरिबे की ठानें॥
बड़ी बली सेंना लै तबै। जरासन्ध ने घेरे सबै॥
जैसे पवन मेघ रज छाय। सूरज अगिनहिं ढाँपत आय॥
महलनि दरवाजेन अटारी। चढ़ि देखत सब पुर की नारीं॥
गरुड़ ताल करि चिन्हित नीके। राम स्याम रथ जीवनि जी के॥
तिनकों रन में तिनन लखे जब। सो चित व्याकुल भई सबै तब॥
रिपु की सेना मेघ समान। सरनि की वर्षा करत महान॥
सुर असुरनि करि पूजित भारी। सो सेंना हरि दुखित निहारी॥
तब सारंग धनुष अभिराम। लै टङ्कारयौ श्री घनस्याम॥

पैंने सर तरकस तें खेंचे। धनुष में साँधि बहुरि ताहि ऐंचे॥
तिनहिं चलाय रिपुनि कों मारत। हय गय रथ प्यादनि धर डारत॥
परतन अन्तर सोहत ऐसें। फेरत माँहिं टिमीटी जैसें॥
हाथिन के माथे फटि गए। घोड़न के कन्धा कटि गए॥
रथ हू टूट धरनि पर परे। हय ध्वज सूत रथी सब मरे॥
बहुरि पयादनि धरती लई। भुज ग्रीवा कटि हू कटि गई॥
हय गय पैंदर सब छिद रहे। तिनतें बहुर रुधिर नद बहे॥
भुजा साँप सिर कछु बाजिन में। गय रेती हय ग्राह सु तिनमें॥
कर उर मीन रु केश सिवार। धनुष तरङ्ग झार हथियार॥
भोंर भयानक ढाल ही जिनमें। मनि भूषन ही पाथर तिनमें॥
मूसल सोहत रिपु दुखदाई। बलीं राम ये नदी बहाई॥
शूरनि कों आनन्द बढ़ावें। कायर देखत ही भय पावें॥
जरासन्ध करि पालित सेना। समुद सी दुर्गम कहत बनैना॥
निपट भयानक दुस्तर पार। सो दुहुवनि कीनी सघार॥
सुत बसुदेव जगत प्रतिपाल। तिनकौ एक यह है ख्याल॥
जो अनन्त इक खेल सौं धारे। त्रिभुवन रचि पालें संघारें॥
रिपुनि कौ ताहि मारिवौ कहा। पै नरनाट में अचिरज महा॥
सेना मरी रहे तन प्राण। जरासन्ध है बली महान॥
विरथ कौ राम गहि लयौ ऐसें। बलकरि सिंघ सिंघ कों जैसें॥
रिपु हन्ता वह जरासन्ध जो। पासनि करि बलि बाँधि लयौ सो॥
दयौ छुटाय कृष्ण जू ताहि। तासों और काज वहु आहि॥
लोक के नाथनि ताहि तज्यौ जब। बड़ौ बीर मन माँहि लज्यौ तब॥
तप करिवे कों मन तिन धारयौ। बन में भूपनि आय निवारयौ॥
राजनीति पुनि लौकिक बातें। कहीं बहुत नृप समैं जातें॥
जदुबंसिन तें तुव लह कई। हे नृप निज कर्मनि करि भई॥
विमन ह्वै जरासन्ध घर गयौ। सेंना मरें छोड़ि हरि दयौ॥

हरि की सेना नेंकु न मरी। तरे समुद रिपु सैंना हरी॥
भलें भलें यों सुरनि बखानी। फूलनि की वर्षा बरसानी॥
पुरजन हरषे तपनि सिरानी। हरि सन्मुख आए सुख दानी॥
मागध सुत बन्दी जन जिते। हरि की जीतनि गावति तिते॥
वीना बेंणु मृदङ्ग नगारे। तुरहीं संख भेरि पुनि भारे॥
बजनि लगे अति ही सुखकारी। जब पुर बैठन लगे मुरारी॥
हरषित जन छिरकीं सब गलीं। सोहति बहुत पताका भली॥
होत वेदधुनि करन रसाला। द्वारनि उत्सव वन्दनमाला॥
दधि अच्छत अंकुर पुनि फूल। बरषावति तिय हरि अनुकूल॥
प्रेम सहित हरि तियनि निहारे। आनद सों दृग प्रफुलित भारे॥
भूपनि के जु खजानें तिते। रन में तें हरि ल्याए तिते॥
उग्रसेन यदुराजा आहि। सो सब लै हरि दीनें ताहि॥
सत्रहबार जरासन्ध आयौ। तितनीं हीं सेना पुनि ल्यायौ॥
तब तब कृष्ण तेज करि छयौ। जदुकुल तिनकों मारत भयौ॥
क्यों ही त्यों पुनि छोड़ि सु दयौ। वैसें ही जरासन्ध पुर गयौ॥
पुनि अठारहीं वेरि सु आयौ। कालजमन नारद सु पठायौ॥
तीनि करोर म्लेच्छ संग जाकें। पृथ्वी में कोऊ सम नहिं ताकें॥
आप समान सुनें जादव जब। आय मधुपुरी घेरि लई तब॥
ताहि देखि श्री कृष्ण मुरारी। भईया सों मिलि बात विचारी॥
अहो जादवनि कों दुख भारौ। दुहु घां तें आयौ सु विचारौ॥
कालजवन हम घेरे सबै। जरासन्ध हू ऐहैं अबै॥
बड़ौ बली सो टिकि है नांही। ऐहै काल्ह परों के माँहीं॥
हम या सों अब लरत हैं जौ पै। जरासन्ध ह्यां आयकें तौ पै॥
हमरे बन्धूनि कौ वध कैहै। अथवा निज पुर कों लै जैहै॥
तातें अब इक किलौ बनावें। जामें नर कोऊ जानि न पावें॥
तामें राखि बन्धु सब आछें। या मलेच्छ कों हतियें पाछें॥

यह विचार करि समुद मँझारी। बारह जोजन कौ गढ़ भारी ॥
विसकर्महिं कहि तुरत करायौ। तिनहूँ सब चातुर्य्य लगायौ ॥
सुन्दर चौक रु गली गल्यारे। जथा जोग करि सबै सँवारे ॥
बहुर विचित्र बाग छबि छाजें। स्वर्ग ही के द्रुम लता सु राजें ॥
फटिक मनिन के द्वार अटारी। कनक सृंग पुनि ऊँचे भारी ॥
पितल लोह रूपे की साला। तिन पर कञ्चन कलस रसाला ॥
पद्म राग मनि के ग्रह गुम्मट। धरनी मरकतमनि दई जट ॥
बहुत देहरे सोहत छाजे। चारों वरन रहत सुख साजे ॥
जादव मुखियन के सोहत घर। सभा सुधर्मा पारिजात तर ॥
हरि कों इन्द्र पठाए आप। जहाँ रहि नरन लहें तन ताप ॥
वरुन मनोज बहाय दए आनि। सबै स्वेत कारौ इक कान ॥
बहुरों अपनी आठौ निधि जे। हरिहिं कुवेर पठाय दईं ते ॥
ओरौ जो जो सम्पत्ति आहि। हरि अधिकार हेत जाहि ॥
ते ते हरि हीं कों दीनीं सब। या धर में हरि प्रगट भए जब ॥
अपनी ही सु योग माया करि। ता गढ़ में सब जन राखे हरि ॥
जन पालनता रामहिं दई। तिनसों आप सु आज्ञा लई ॥
बिना शस्त्र पुर बाहिर आए। कमल माल पहिरें छबि छाए ॥
कमल से पाय सु कोमल भारी। बहुत दूरि लों गए मुरारी ॥

इति श्री भागवते महा पुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि
कृते पंचाशत्तमो ऽध्यायः ॥ ५० ॥

इक्यावनवाँ अध्याय

दोहाः—कालजवन मुचकुन्द कें, दृग सों दयौ जराय ॥
पुनि ताकी अस्तुति सुनीं, इक्यावन अध्याय ॥

श्री शुक उवाच—

पुर में तें हरि निकसें ऐसें। नभ में उदै होय शशि जैसें ॥
सुन्दर स्याम देखिबे लायक। धरें पीत पट अति सुखदायक ॥

उर में लच्छमी रेख बिराजै। कण्ठ कौस्तुभ मनि छवि छाजै॥
लांबी पुष्ट चारि भुज सोहैं। अरुन कमल दल दृग मन मोहैं॥
सुन्दर बदन कमल मुसिक्यात। जातें नित आनन्द बरषात॥
मकराकृति पुनि कुण्डल कान। बहुरि कपोल रूप की खानि॥
काल जवन लखि कें यह कही। यह सु बासुदेव है सही॥
सुन्दर चारि भुजा बनमाला। कमल नैंन श्री रेख रसाला॥
नारद कही सु सब या माँहीं। निश्चें या बिन और सु नाँहीं॥
बिना शस्त्र यह डोलत है ज्यों। बिना शस्त्र या सों लरिहों त्यों॥
काल जवन यह मन में करी। तिह आगें ते भाजे हरी॥
सो पकरनि कों भाज्यौ पाछें। हरि योगिन कों दुर्लभ आछें॥
हरि ज्यों भाजत जनु अवगहे। खिज खिज जवन वचन अस कहे॥
तू उपज्यौ यदुकुल के माँही। तोकों भजिवौ उचित है नाँहीं॥
ऐसें खिजन सुनत हू भए। ऐ पै ताहि दूरि लै गए॥
हरि कों पकरि सक्यौ नहिं यातें। छीन भए न अमङ्गल जातें॥
हरि पैठे गिरि गुहा मँझारी। पाछें पैठ्यौ यहौ अनारी॥
तहाँ इक सोवत पुरुष निहारयौ। काल जवन तव बचन उचारयौ॥
देखौ इती दूरि मोहि ल्याय। आपु साधु ज्यों सोवत आय॥
मूढ़ ताहि यों जानि मुरारी। रिस करि एक लात लै मारी॥
बहुत दिननि तें सोवत जाग्यौ। मींड़ि खोलि दृग देखनि लाग्यौ॥
ढिग ठाढ़ौ ता जवनहिं देख्यौ। रिस करि तब ताकी दिसि पेख्यौ॥
जवन देह तें आगि उठी तब। ता करि जवन ही भस्म भयौ सब॥

श्री राजोवाच—

जिह यह जवन जरायौ हे मुनि। कहा नाम काकौ सुत है पुनि॥
क्यों सोयौ गिरि गुहा मँझारी। काहे तें प्रभाव अस भारी॥

श्री शुक उवाच—

यह इक्ष्वाक बंस कौ भूप। मांधाता को पुत्र अनूप॥

सत्य प्रतिज्ञ द्विजनि कौ दास। पुनि मुचुकुन्द नाम है तास॥
असुरनि तें इन्द्रादि डरे जब। नृप मुचुकुन्द पास आए तब॥
रच्छा हेत बिथा कहि दीनीं। इन्हूँ बहुत दिन रच्छा कीनीं॥
स्वामकार्थ सुर पाल भयौ जब। मुचुकुन्दहिं इन्द्रादि कही तब॥
अहो हमरौ पालन दुःख रूप। तातें अब पूरन होय भूप॥
अहो धर कौ निष्कण्टक राज। सो तुम तजि आए हम काज॥
हमरी रच्छा में मन दयौ। तहाँ कौ राजनास सब भयौ॥
मन्त्री प्रजा ज्ञाति सुत रानी। जिनकी तुम सम आयु बखानी॥
काल सों नष्ट भए तिह ठाहीं। हे नृप अब कोऊ बाकी नाँहीं॥
काल है अविनासी भगवान। बलियन में है बली महान॥
सोई प्रजहिं चलावत ऐसें। पशु पालक सब पशु कों जैसें॥
वर माँगौ होहु छेम तिहारैं। हे नृप इक नहिं मुक्ति हमारें॥
जो अव्यय ईश्वर भगवान। सोई इक ताकौ करत है दान॥
बड़े जसस्वी सों यों कही। तब तिन सनमानें सुर सही॥
पुनि कही देहु नींद के वरै। जो मम मूढ़ नींद कौं हरै॥
ताकी तुरत राख होय सही। होहु होहु यों सुरनि सु कही॥
देवनि की दई निद्रा पाय। गिरि कन्दर में सोयौ आय॥
जवन के राख भए भगवान। मुचुकुंदहिं दयौ दरस महान॥
धरें पीट पट सुन्दर स्याम। उर में श्री रेखा अभिराम॥
कौस्तुभ धरें चारि भुज छाजें। बैजयन्ति माला करि राजें॥
सुन्दर बदन छई मुसिक्यान। मकराकृति पुनि कुण्डल कान॥
प्रेम सनीं मुसिक्यान चितौंन। सबही सुन्दर अङ्ग सु ठौंन॥
दर्शनीय पुनि त्रिभुवन इष्ट। मत्त सिंह हू सों सु बलिष्ट॥
देखि महामति तेज सु छयौ। धर्षित भयौ बहुरि सकि गयौ॥
हरें हरें पुनि पूछत ऐसें। अति तेजस्वी सो कोऊ जैसें॥

मुचकुन्द उवाच—

अहो ये बन गिरि गह्वर भारे। तहाँ आप कौंन आनि पधारे॥

तुव पद पङ्कज कोमल भारी। ह्यां कांकर कांटे दुखकारी॥
तुम कोऊ हौ तेज महान। अथवा आप अगिन भगवान॥
कै रवि शशि कै हौ स्वर्गेश। अथवा हौ कोऊ लोकेश॥
सुरनि में उत्तम तीनि बखाने। तिनमें तुम उत्तम हम जाने॥
जाते यह कन्दर अँधियार। तुमनि प्रभा करि दियौ निवारि॥
मन दै सुनिये हे पुरुषोत्तम। ह्वै निसकपट सुन्यों चाहत हम॥
जन्म कर्म पुनि गोत तिहारौ। मन आवै तौ हमें उचारौ॥
हम तौ हैं छत्रिन में नीच। उपजे इछ्वाकनि के बीच॥
पुनि मुचकुन्द नाम यह जानों। पुत्र मान्धाता कौ मानों॥
जागत बहुत श्रमित मैं भयौ। या निर्जन में सोय सु गयौ॥
मोहि जगावत भयौ अबै जो। आप पाप सों आप जरयौ सो॥
हे बैरिन के मारन हारे। पुनि सुन्दर तुम हमनि निहारे॥
हे महाभाग तेज मम गयौ। तुमरौ दुःसह तेज सु छयौ॥
हम तौ देखि सकें हूँ नाँहीं। तुम सब पूज्य सबनि के माँहीं॥
यों मुचकुन्द नृपति जब कही। जग पालक हरि हू तब सही॥
मेघ नाद गम्भीर जु बानी। हँसत हँसत ता नृपहिं बखानी॥

श्री भगवानुवाच—

जन्म कर्म मम नाम हजारनि। हे नृप कोऊ पावै पार न॥
हम हूँ गनि न सकत हैं याते। हे नृप गुण तीके नहिं जाते॥
रज - कन हूँ कों पुरुष गने पुनि। पै न गने मम नाम रूप गुण॥
मेरे जन्म कर्म सब गावत। अहो अनघ मुनि पार न पावत॥
पै अबके मम जन्म कर्म जे। हे नृप कहों सुनों मन दै ते॥
पहले ब्रह्मा विनती करी। धर्म चलावनि हित हे हरी॥
भूमि भार ये असुर हतौ सब। हम बसुदेव धाम प्रगटे तब॥
हम बसुदेव पुत्र भए जाते। बासुदेव सब कहत हैं याते॥
भूमि भार ये असुर हतौ सब। हम बसुदेव धाम प्रगटे तब॥

कन्स प्रलम्बादिक सब मारे। जे साधुनि के द्वेसी भारे ॥
पुनि यह काल जबन जौ गायौ। तुमरी तीक्षण दृष्टि जरायौ ॥
तुमरे बहुरि अनुग्रह हेत। आए इंह गिरि गुआ निकेत ॥
तुम पहलें हम पूजे भारी। मैं सु भक्तवत्सुल सुखकारी ॥
वर माँगौ हे नृप अभिराम। हम तुम कों सब देहें काम ॥
मोहि प्रसन्न भयौ है जन जो। फेरि कभूं नहिं सोच करै सो ॥

श्री शुक उवाच

सुनि मुचिकुन्द सु हरषित भयौ। ये नारायण जानि सु लयौ ॥
गर्ग बचन सुमिरयौ पुनि राजा। सीस नाय बोल्यौ सुख काजा ॥

श्री मुचकुन्द उवाच

हे प्रभु यह तुव माया भारी। याने ठगे सर्व नर नारी ॥
विषै परम पुरुषारथ जान्यों। तुम सों मोह तनक नहिं ठान्यों ॥
दुख की खाँनि ग्रेह यह भारी। सुख हित तिनमें बसत अनारी ॥
अहो यह नर तन दुर्लभ गायौ। सुन्दर अनायास पुनि पायौ ॥
हे अघमोचन मूढ़ सु ते नर। तब पद पङ्कज भजत न जे नर ॥
अन्ध कूप घर माँहिं परें यों। तृण लोभी पसु परै कूप ज्यों ॥
अहो अजित यह काल हमारौ। निश्चे निष्फल गयौ सु सारौ ॥
नित्य राज्य ही कौ मद हरयौ। जड़ यह देह आत्मा लह्यौ ॥
तिय सुत भूमि भण्डारनि माँहीं। सनि गयौ मन छिन छूटयौ नांहीं ॥
यह तन माँटी कलस समान। ता में करि नृप कौ अभिमान ॥
फौज लै मूढ़ फिरयौ धर माँहीं। तुमको मन में ल्यायौ नाँहीं ॥
नित ही कारज चिन्ता रही। सावधानता कबहुँ न गही ॥
लोभी विषै लालची भारौ। काल रूप तुम सदा सँभारौ ॥
ता जन कों गहि लेत हैं ऐसें। छुधित साँप मूँसे कों जैसें ॥
पहलें जो तन भूप कहावै। सुन्दर रथ गज पर चढ़ि धावै ॥
सो दुरत्यय कालहिं पाय। कृमि विट भस्म नाम ह्वै जाय ॥

जे सब दिसि जीतें बिन लरें। पुनि बड्डे नृप पायनि परें॥
तेऊ तिय बस होत हैं ऐसें। बाजीगर कौ बन्दरा जैसें॥
भोगनि तजि जे तप कों करें। बहुरि भूप ह्वैबौ मन धरें॥
दान देत पुनि मन ता माँही। ते कबहूँ सुख पावत नाँहीं॥
जनकों जगत छुट्यौ चाहें जब। हे हरि तुमरे साधु मिलें तब॥
बहुरों तुम में लागति है मति। तुम जगपालक साधुनि की गति॥
अहो अनुग्रह तुमरौ भयौ। अनायास मम राज्य सु गयौ॥
यह सब साधु भूप मन धरें। राज गए बन में तप करें॥
तुव पद चहत अकिञ्चन सबै। तातें और कहा बर अबै॥
मुक्ति के दाता कों आराध। मागै विषै कौंन सौ साध॥
तातें मायिक भोग हैं जिते। हे प्रभु हम सब त्यागे तिते॥
अद्वय निर्गुण ज्ञान सरूप। मैं तुव सरन हों अहो अनूप॥
हे सरनागत पालक ईस। हे परमातम हे जगदीस॥
ताप तपत हों दुखित मुरारी। छह इन्द्री रिपु दुर्जय भारी॥
क्योंहूँ सान्त सु पावत नाँहीं। आय परयौ तुव चरननि माँही॥
तुव पद अभय अशोक रु सत्य। राखि लेहु मोहि गिलत विपत्य॥

श्री कृष्ण उवाच

अहो चक्रवर्ती कहौ कहा। तुम मति विमल विशाल सु महा॥
मैं सु बहुत लोभित हू करी। पै मो तें मति तनक न टरी॥
बर करि तुमें जु लोभित कियौ। सावधान करिवे कों हियौ॥
मेरे भक्तनि की मति जोई। बर करि कभूं न लोभित होई॥
बहुरि अभक्तनि जे मन जीते। करि प्राणायामादिक रीते॥
छीन बासना भई जु नाँहीं। कबहूँ जात विषै के मांहीं॥
अब तुम मो में मनहिं लगावौ। जहाँ इच्छा आवै तहाँ जावौ॥
नित ही मो में भकित तिहारी। नास रहित अति ही सुखकारी॥
छत्र धर्म करि तुमनि अनन्त। खेलि सिकार हते नृप जन्त॥

अब तप करि सो पाप निवारौ। सावधान मम आथै धारौ॥
और जन्म में द्विज तुम ह्वै हौ। सबसों बहुरि सुहृदता कैहौ॥
हे मुचकुन्द तास के पाछें। मोही कों तुम पैहौ आछें॥
इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
एक पञ्चाशत्तमोऽध्याय: ॥ ५१ ॥

बावनवाँ अध्याय

दोहा:—बावन के अध्याय हरि, गए द्वारिका देश॥
बहुरों द्विज मुख तें सुनें, रुक्मिणि के सन्देश ॥१॥

श्री शुक उवाच

यों हरि नें सु अनुग्रह करयौ। नृप हरि चरननि पै सिर धरयौ॥
दै परिक्रमा बाहिर आए। नर पशु द्रुम छोटे दरशाए॥
कलियुग आयौ मानत भए। बहुरों नृप उत्तर दिसि गए॥
तप में श्रद्धा करि ह्वै धीर। संग त्यागि संशय तजि बीर॥
मन कों लै हरि में धरि दयौ। आप गन्धमादन कों गयौ॥
जाय बदरिकाश्रम अभिराम। तहाँ नर नारायण कौ धाम॥
शान्त होय दुख सुख सहि लए। तप करि हरि कों पूजत भए॥
बहुरों कृष्ण मधुपुरी आए। जाकें म्लेच्छ चहूँ घाँ छाए॥
तिनें मारि सबरे धन लए। लादि द्वारिका चलत सु भए॥
तबही जरासन्ध तहाँ आयौ। संग तेईस छोहनी ल्यायौ॥
रिपु की सेना धाई आई। दूरि ते राम स्याम लखि पाई॥
नर की सी कछु लीला करी। देखत ही भाजे तिह घरी॥
तिह ठांहीं सब पटकि खजानें। हैं निर्भै पै जनों डराने॥
कमल से कोयल पाय सु नागे। बहुत दूरिलों दोऊ भागे॥
दोऊन कों भाजे देखे जब। जरासन्ध पुनि बली हँस्यौ तब॥
सेना लै पुनि दौरयौ पाछें। हरि महिमा जानत नहिं आछें॥
बहुत दूरि भजि राम रु स्याम। गिरि इक आहि प्रवर्षन नाम॥

दौरि डरपि से चढ़ि गए तापै। बरसत इन्द्र नित्य ही जा पै॥
ते दोऊ दवकि गए गिरि माँहीं। तिह ढूँढे पै पाये नाँहीं॥
तब तिह चहुँ दिसि आगि लगाई। काठनि की लै बारि बनाई॥
ग्यारह जोजन गिरि ऊँचौ जो। चारों घां तें जरन लग्यौ सो॥
तब तहाँ ते कूदे धर माँहीं। रिपुनि हूँ पुनि देखे ते नाँहीं॥
पुनि निज पुर आए दोऊ भाई। चहुँ घाँ जाकें समुद ही खाई॥
जरासन्ध यों मानत भए। राम स्याम दोऊ जरि गए॥
मगध देस पुनि जात सु भयौ। सेना हूँ सब संग लै गयौ॥
रैवत नृप श्री मान महान। ब्रह्मा जू की आज्ञा मानि॥
सुता रेवती रामहिं दीनी। हम यह वही तुमनि सुनि लीनी॥
देस विदर्भ भीष्मक भूप। ताकी सुता रमा अनुरूप॥
ताकों हरि ने व्याही आदि। हते चैद्य पंछी सात्यादि॥
सब देखत हरि ताहि हरी यों। हे नृप अमृतहिं गरुड़ हरै ज्यों॥

श्री राजोवाच

भीष्मक सुता रुक्मिनी नारी। बदन कमल अति सुन्दर भारी॥
सो दानव विधि करि व्याही पुनि। हमनें ऐसी भाँति सुनी मुनि॥
बड़े बली हरि कौ चरित्र जो। हे भगवन हम सुन्यों चहैं सो॥
ज्यों मागध साल्वादहिं मारि। कन्या कों लै गए मुरारि॥
हरि की कथा महा फल छई। मधुर लोक पावनि नित नई॥
हे मुनि जो कोई स्रुति जानें। सुनि सों क्यों पूरनता मानें॥

श्री शुक उवाच

देस विदर्भ बड़ौ अभिराम। तहाँ कौ भूप भीष्मक नाम॥
पहलें पाँच पुत्र हैं वाकें। पुनि इक सुन्दर कन्या ताकें॥
रुक्मी रुक्म केश अभिराम। रुक्म सुबाहु रुक्म रथ नाम॥
बहुरि रुक्म माली बल सागर। बहनि रुक्मणी सब गुण आगर॥
हरि कौ बल गुण संपति रूप। कह्यौ नारदादिकनि अनूप॥

सो सुनि ही के रुक्मिणि तिया। अपनी सनमाने सो पिया ॥
रूप सील गुण बुद्धि उदार। औरौ सुलभ लछन सु अपार ॥
हरि हूँ निज सम सो तिय मानी। ताहि विवाहन की मन ठानीं।
सब बन्धुनि की इच्छा यही। हरिहिं रुक्मिणी दीजै सही ॥
हरि रिपु रुक्मी सबै निवारे। बहनेऊ सिसुपाल विचारे ॥
रुक्मिणि विमन भई सुभि बैना। अति सुन्दर कजरारे नैना ॥
विपति जानि इक द्विजहिं बुलायौ। बेगि ही हरि के पास पठायौ ॥
सोऊ द्वारका जात सु भए। द्वारपाल हरि ढिग लै गए ॥
कनक सिंहासन पै जदुराय। बैठे द्विज ने देखे जाय ॥
हरि ब्राह्मण देव लखि विप्र। निज आसन बैठायौ छिप्र ॥
बहुरों पूजन कीनों ऐसें। हरि कों सुर पूजत हैं जैसें ॥
भोजन करि विश्राम कियौ जब। जन प्रिय हरि ता ढिग आए तब॥
हरें हरें पग दावत जात। बहुरों पूछन लागे बात ॥
कहिये हे द्विज उत्तम भारे। बड़नि के संमत धर्म तिहारे ॥
सुख सों चले जात हैं कहौ। मन तौ नित सन्तुष्ट ही अहौ ॥
जो कछू अनायास मिलि जाय। ताही सों द्विज रहै अघाय ॥
जौ निज धर्महिं त्यागै नाँहीं। तौ सब मिलै धर्म हीं माँहीं ॥
जौ जाके सन्तोष न आवै। तौ सुरेश हू ह्वै दुख पावै ॥
निसकिञ्चन हूँ तुष्ट रहै जौ। सुख सों पग पसारि सोवै तौ ॥
जे द्विज सबही के हितकारी। साधु शान्त पुनि निरहङ्कारी ॥
जथा लाभ करि जे सुख पावत। तिनकों हम नित सीस नवावत ॥
हे द्विज कहौ कुशल घर माँहीं। राजा तें कछु दुख तौ नाँहीं ॥
सो नृप मेरौ प्यारौ भारी। जो नृप राखै प्रजा सुखारी ॥
जहाँ तें जा कारज के हेत। तुम आए या दुर्ग निकेत ॥
जोग्य होय तौ कहियै सारौ। कोंन काज हम करें तिहारौ ॥
परम पूज्य श्री कृष्ण मुरारी। नर वपु सों लीला विस्तारी ॥

ता द्विज सों ऐसें पूछ्यौ जब। सब वृत्तान्त कह्यौ तानें तब॥

श्री रुक्मिन उवाच—

हे त्रिभुवन सुन्दर तुमरे गुण। एक बार जिह कान परें पुनि॥
ताके सबै ताप हरि लेत। तब वपु दृगनि सबै सुख देत॥
तुव गुण रूप सुन्यौं मैं जब तें। तुम में लग्यौ निलज चित तब तें॥
हे मुकुन्द पुरुषोत्तम प्यारे। सबही कों सु मनोहर भारे॥
तुव वय विद्या सम्पति रूप। तेज सील कुल परम अनूप॥
ऐसी धीर कुलवन्ती कौंन। हे सुन्दर तोहि बरै नहिं जो न॥
कमल नेंन मैं तुव पिय बर्यौ। तोही कों तन अर्पन कर्यौ॥
अब पिय आय मोहि तिय कीजै। अहो वीर निज भागहि लीजै॥
याहि लेहु सिसुपालन ऐसें। स्यार सिंह के भागहिं जैसें॥
जज्ञ पुण्य व्रत नेंम रु दान। गुरु द्विज देवनि कौ सनमान॥
करि में हरि आराधे जो पै। श्री यदुनाथ हाथ गहौ तौ पै॥
पुनि ये सिसुपालादिक जिते। सुपनें हूँ जिन दरसौ तिते॥
काल्हि ब्याह दिन आहि हमारौ। सेंना लै ह्यां गुप तप धारौ॥
सिसुपालादिक सेना जिती। अहो अजित सब मथियै तिती॥
राछस विधि करि लेहु विवाहि। तुव बल ही मम मोल सु आहि॥
जौ कहौ तुम सुमहल में रहौ। बिन तुव बन्धुनि मारें अहौ॥
कैसें मैं तुमकों हो पाऊँ। तहाँ मैं एक उपाय बताऊँ॥
इक कुल देवी बड़ी हमारी। पहल द्यौस तिंह उत्सव भारी॥
तिंह पूजन नव दुलही हू जो। हे हरि पुर बाहिर आवति सो॥
तुव पद पङ्कज रेंनु महान। अपनों दूरि करन अज्ञान॥
बड़ड़े जन जाचत हैं ऐसें। भक्त राज सिव जाचत जैसें॥
ता तुमरौ प्रसाद सुखकारी। जो नहिं पैहै रुक्मिणि नारी॥
तौ व्रत कर्षित तन छिटकैहै। सौ जन्मनि हूँ में तौ पैहै॥

ब्राह्मन उवाच—

हे हरि यह सन्देस कह्यौ सब। जो करिवें सो सीघ्र करौ अब॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
द्वापञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

त्रेपनवाँ अध्याय

दोहा—हरी रुक्मिणी तिय हरी, द्वारापुर तें आय।
रिपु सेना देखति रही, त्रेपन के अध्याय॥ १॥

श्री शुक उवाच—

रुक्मिनि के सन्देस सुनि लए। हँसि द्विज कर गहि बोलत भए॥
अहो मेरौ ऊ मन ता माँही। निसि हूँ नींद परति मोहि नाँहीं॥
हमरौ रिपु रुक्मी हम जानें। मेरौ ब्याह निवारयौ तानें॥
रुक्मिन मो बिन जानति नाँहीं। अति सुन्दर है सब अङ्ग माँहीं॥
नृप मथि ताहि ल्याय हों ऐसें। काठनि कों मथि आगिहि जैसें॥
रुक्मिन ब्याह मुहूर्त्त आयौ। कृष्ण जान रथवान बुलायौ॥
कही कि जाय जोरि रथ ल्यावौ। आवौ बेगि ढील जिनि लावौ॥
सैन्य मेघ पुष्पक अभिराम। पुनि सुग्रीव, बलाहक नाम॥
चारों अस्व जोरि रथ ल्यायौ। हाथ जोरि कही रथ प्रभु आयौ॥
चढ़ै कृष्ण पुनि द्विजौ चढ़ाए। एक राति ही में तहाँ आये॥
कुन्दनपुर कौ राजा जोई। सुत सनेह के बस है सोई॥
सिसुपालहिं निज सुता विवाहनि। करत भयौ विवाह उत्साहनि॥
पुर के चौक रु गली गलयारे। बुहरवाय छिरकाए सारे॥
धुजा पताका बन्दन माला। ठां ठां राजति परम रसाला॥
पट भूषण सुगन्ध करि भारी। भलें सिंगारी पुर नर नारी॥
धाम धाम अभिराम अनूप। ठां ठां दई अगर की धूप॥
देव पितर पुनि द्विज हैं जिते। भली भाँति नृप पूजे तिते॥
जथा जोग पुनि सबै जिंवाए। विप्रनि आसिर्वाद सुनाए

पुनि सुन्दर कन्या अन्हवाई। सब विवाह मंगल करि छाई॥
पुनि नवीन द्वै पट पहिराए। पहिराए भूषन छवि छाए॥
द्विजनि करी तिह रछा पाछें। रिग जजु साम मन्त्र करि आछें॥
पुनि अथर्व बेत्ता जु पुरोहित। होंम कियौ गृह शांति करन हित॥
रुकम रजत पट तिल गुड़ धेन। नृप विप्रनि कों दईं सुखेंन॥
पुनि दमघोष चन्देरी राजा। यों ही निज सुत के सुख काजा॥
द्विज मन्त्रज्ञ बुलाय करायौ। जो विवाह के उचित बतायौ॥
मद चुचात हाथिन की कोंरें। घोरा पैदर संग करोरें॥
कनक साज के रथ बहु लए। पुनि राजा कुन्दनपुर गए॥
आनि भीष्मक आगें लयौ। पूजन कै जनवासौ दयौ॥
पौंड्रक साल्व जरासन्धादि। दन्तवक्र रु विदूरथ आदि॥
औरौ भूप हजारनि आए। जे सिसुपाल पछ के गाए॥
हरि रिपु सब यह मन में धरी। राम सहित जदुकुल लै हरी॥
आइकें कन्या कों हरि हें जौ। हम ये सब तिनसों लरिहें तौ॥
ताहि जीति कें याहि दिवेंहें। कन्यहिं इक सिसुपाल विवैंहें॥
यही विचारि तहाँ मिलि आए। सबही बल पौरुष करि छाए॥
बैरिन की सब सुनि बलराम। सुनी कि इकले गमने स्याम॥
भ्रात प्रीति करि विह्वल अङ्ग। कही ह्वां ह्वै है कलह प्रसंग॥
बेगिहीं कुन्दनपुर कौं आए। हय, गय, रथ प्यादे बहु ल्याए॥
सुन्दर अंग रुक्मिणी कन्या। हरि मग में दृग बिछए धन्या॥
द्विज हू पुनि जब आयौ नाँहीं। डूबि गईं चिन्ता के माँहीं॥
अहो मैं मन्दभाग हों सही। ब्याह बीच एकै निसि रही॥
आए पङ्कज नेंन अजों न। मैं नहिं जानत कारन कौंन॥
अबलों हूँ सो द्विज नहिं आयौ। जाके हाथ सन्देस पठायौ॥
हरि निर्दोष परम सुखकारी। पहलें आवन की मन धारी॥
पुनि कछु दोष लख्यौ मो माँहीं। तातें रहि गए आए नाँहीं॥

मैं दुर्भाय दैव प्रतिकूल। शिव हू मोहि नहिंन अनुकूल ॥
पुनि गौरी गिरिजा रुद्रानी। देवी है प्रतिकूल इंद्रानी ॥
यों रुक्मिनी चिन्तवन करयौ। मन तौ जदुनन्दन नें हरयौ ॥
कालहि जानि मूँदि दृग लए। जे दृग जल करि पूरन भए ॥
हरि आगमन चहति यों भाम। इतने दृग फरू भुज बाम ॥
फरके पिय आगमन जनायौ। हरि हू नें सो विप्र पठायौ ॥
तिह महलनि में जाय निहारी। रुक्मिन लच्छन जाननिहारी ॥
द्विज अव्यग्र प्रसन्न निहारि। हँसि पूछी हैं कहाँ मुरारि ॥
आए हरि तिन ताहि बखानी। पुनि कही हरि की सुनों कहनी ॥
मोहि कही हरि साँच है यही। रुक्मिन को मैं हरिहों सही ॥
हरि आए रुक्मिणी सुन्यौ जब। मन आनन्द माँहि डूब्यौ तब ॥
द्विज लायक कछु देख्यौ नाँहीं। धरि दीनों सिर चरननि माँहीं ॥
सुनी भीष्मक राम रु स्याम। आए लखनि ब्याह अभिराम ॥
बाजे बजवत सन्मुख आयौ। पुनि नृप बहुत भेट हू ल्यायौ ॥
उज्जल बसन बहुरि मधु ल्याय। उत्तम उत्तम भेट चढ़ाय ॥
विधि सों पूजन करयौ महामति। रहन कों ठौर दँई सुन्दर अति ॥
बहुरि जिते सेना सेनानी। सबही की कीनी महिमानी ॥
ऐसें ही राजा आए जिते। यथा जोग सन्माने तिते ॥
पुनि विदर्भ पुर बासी जिते। आए कृष्ण सुनत भए तिते ॥
आय आय दृग अञ्जुलि भरें। हरि मुख कमलहिं पान सु करें ॥
कहें कि रुक्मिन याही जोग। औरहिं तौ यह निपट अजोग ॥
पुनि येऊ रुक्मिन के लायक। भागनि तें अस पैयै नायक ॥
हमनि पुण्य कछु कीनैं जौ पै। त्रिभुवन नाथ तुष्ट होहु तौ पै ॥
बहुरों करौ अनुग्रह यही। येइ रुक्मिन पति होंय सही ॥
प्रेम बँधे पुरबासी जिते। ऐसें ठाढ़े कहत सु तिते ॥
पुनि रुक्मिन देवी गृह चली। फौज संग जोधनि की भली ॥

महलनि हीं तें निकसी पायनि। देवी पद देखनि के चायनि॥
हरि पद कमल ध्यान मुख मोंन। मात सखी संग परम सु ठोंन॥
संग बड़े नृप सूर हजारनि। पहरें कबच लयें हथियारनि॥
ढोल मृदङ्ग रु तुरही भेर। बाजे बजे एक ही बेर॥
पट भूषण सुगन्ध बनमाल। नाना भेटनि लै तत्काला॥
करि सिंगार द्विज पत्नी चलीं। बार मुखी नाचति पुनि भलीं॥
मागध सूत बन्दीजन जिते। चले घेरि दुलहिनि कों तिते॥
अस्तुति करत गवैया गावत। बाजे बारे बाज बजावत॥
तहाँ जाय धोये कर पाय। ह्वै पवित्र मन कों बस ल्याय॥
दुलहिन बहुरि आचवन लीनों। गमन आंम्बका के ढिग कीनों॥
पुनि जे संग बृद्ध पंड़ियानी। पूजा बिधि में निपट सयानी॥
तिननि पहल दण्डौत कराई। सिवहिं सहित शिव तियहिं पुजाई॥
अहो अम्बिके शिबे सुखारी। सुतनि सहित तोहि नमो हमारी॥
हमरी यह अनुमोदन कीजै। कृष्ण कुँवर पति हमकों दीजै॥
धूप दीप फल फूल रसाला। पट भूषण जल अछत माला॥
पुवा कचौरी पान गंडेरी। अतर अरगजा और घनेरी॥
पहलें पूजि भवानी आछें। बहुरि सुहागिन द्विज तिय पाछें॥
दुलहिन कों आसीस सु कीनी। देवी की परसादी दीनी॥
पुनि दुलहिन देवी कों नई। सबही की परसादी लई॥
बहुरि मोंन तजि बाहिर आई। दासी भुजा गहें छबि छाई॥
रतननि की मुंदरी कर राजें। काननि कुण्डल अति छवि छाजें॥
सूछम कटि पुनि सब गुण सनीं। रतन मेखला अति छवि बनी॥
उठत उरोज कछुक मुसिक्याति। लटकति कुन्तल सों झझकाति॥
सुन्दर कुन्दकली से दाँत। जिनमें अधर बिंब की कांत॥
बिछिया बजत चरन छवि पावत। सुन्दर हंस चलनि मन भावति॥
बडे जसस्वी वीर हे जिते। भए काम करि पीड़ित तिते॥

देखत ही मोहित भए ऐसें । हरि की माया करि जन जैसें ॥
बहुरों चितवनि हास लजौंहीं । तिन करि सबही की मति मोहीं ॥
गज रथ घोरनि तें गिरि परे । ठां ठां सबें शस्त्र हू डरे ॥
रुक्मिन उत्सव कौ मिस धरै । निज छवि हरिहिं समर्पन करै ॥
हरें हरें पग कमलनि धरै । हरि मिलिवे की आसा करै ॥
लटकत कुन्तल तिनें सुधारति । नृप निलजौंही दीठि निहारति ॥
इतनें हरि पिय देखि सु लयौ । तिह रथ चढ़िवे कों मन भयौ ॥
रिपु देखत हरि भुज गहि लीनी । निज रथ पै चढ़ाय ही दीनी ॥
नृपनि तुच्छ करि चले मुरारी । संग राम जदुकुल सुखकारी ॥
अपनों भाग लै चले ऐसें । स्यारनि में तें नाहर जैसें ॥
जरासन्ध आदिक अभिमानी । सही न अपुन हीनता मानी ॥
कही कि हम सु बड़ें धनुधारी । पै अब तौ धिक्कार है भारी ॥
हम जस हरयौ ग्वारियन ऐसें । सिंहनि के जम कौ मृग जैसें ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
त्रिपंचाशत्तमो ऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चौवनवाँ अध्याय

दोहा—बैरी हत रुक्मी बहुरि, करि विरूप पुर आय ।
विधि सों ब्याही रुक्मिणी, चौवन के अध्याय ॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

यों सबही नृप क्रोध सु छए । कवचनि पहरि धनुष कर लए ॥
हय गय रथनि चढ़ि लए आछें । फौजनि लै दौरे हरि पाछें ॥
तिनकों आवत देखे जबौ । सब जादव सन्मुख भए तबौ ॥
अप अपने सु धनुष टङ्कारे । ते नृप निपुन युद्ध में भारे ॥
बरषा करी सरनि की ऐसें । गिरि पर मेघ जलनि की जैसें ॥
सुन्दर रुक्मिन पिय सेना जो । सर बर्षा करि ढंपी लखी सो ॥
लाज सहित पिय ओर निहारी । भय कर नैंना विह्वल भारी ॥

हँसि हरि कही अहो मृगलोचनि। जिनि भय करौ महा दुखमोचनि॥
बैरिन की सेना जो आहि। तुमरी फौज हतति अब याहि॥
गद संकर्षन आदिक जिते। रिपु बल कों सहि सके न तिते॥
बैरिन के हय गय रथ जिते। बाननि करि बिछाय दए तिते॥
हय गय रथनि चढ़े जे भूप। तिनके कोरनि सीस अनूप॥
परे धरनि कटि नीके लागें। सोहत कुण्डल मुकट रु पागें॥
कटि कटि भुजा परीं रन माँहीं। धनुष गदा अस हैं जिन माँहीं॥
घोंटू जांघें पहुँचे पाय। काट काट धर दए बिछाय॥
हय गय नर, खर, खच्चर, ऊँट। इनके भए सिरनि के कूट॥
यादव निज जय चाहत भारी। बैरिन की सब सेंना मारी॥
बहुरि जरासन्धादिक जिते। रन में ते भाजे सब तिते॥
पुनि सिसुपाल दुखित अति भारी। जनु याकी हरि लीनी नारी॥
गयौ हरष मुख सूकत जाय। तासों सब नृप बोले आय।
अहो अहो पुरुषव्याघ्र सुनि लीजै। क्यों न विमनता कों तजि दीजै॥
हे नृप तन धारिन के माँही। नित ही भली बुरी है नाँहीं॥
काठ पुतरिया नर बस जैसें। यह जग ईसुर के बस तैसें॥
चाहै जैसें याहि नचावै। ईसुर ही करि दुख सुख पावै॥
देखौ हम ये कै बर लरे। दल तेईस छोहिनी मरे॥
सत्रह बार पराजय पायौ। एक बेर हम यहौ हरायौ॥
तऊ कभू मैं सोच न ठानों। जीते कौ आनन्द न मानों॥
ईसुर के बस काल निदान। ता बस जगत लयौ हम जानि॥
अब हूँ हम देखौ ये सारे। बड्डे वीरन के रखवारे॥
कहा सु तुच्छ कृष्ण के जादव। तिननि हमारौ करयौ पराभव॥
बैरिन कों अनुकूल काल अब। ताही तें हम जीति लए सब॥
हमें दाहनों ह्वै है जबै। हे नृप हम सु जीति हैं तबै॥
ऐसें सिसुपालहिं समझायौ। अनुगनि सहित सोऊ घर आयौ॥

रन में तें पुनि उबरे जे जे। निज निज धाम गए सब ते ते॥
दानव विधि करि हरी बहिन जो। हरि रिपु रुक्मी सहि न सक्यौ सो॥
बड़ौ बली धायौ हरि पाछें। एक छोहनी दल लै आछें॥
महाबाहु रुक्मी रिस छयौ। बकतर पहरि धनुष कर लयौ॥
सब नृप सुनत प्रतिज्ञा करी। मैं रन में बिन मारें हरी॥
बहनहिं बिन ल्याए पुर माँहीं। सत्य कहत पुर ऐहों नाँहीं॥
यह कहि पुनि रथ में चढ़ि लयौ। रथवानहिं यों कहत सु भयौ॥
बेगि हाँकि मोहि लैं चलि तहाँ। मेरौ बाकौ रण होय जहाँ॥
सु तौ गुपाल सु दुर्मति भारी। बल करि भगनी हरी हमारी॥
आजु सु तीछन बान चलाय। ताके मद कों देत मिटाय॥
ऐसें बकत कुमति अति भारी। हरि महिमा जानत न अनारी॥
इक रथ ही करि हरि ढिंग गयौ। रहु रहु ऐसें टेरत भयौ॥
धनुष खेंच पुनि तीनि सु बान। सुदृढ़ कृष्ण कें मारे तानि॥
कही कि रे यदुकुल के दूषन। मो आगें ठाढ़ौ रहि इक छन॥
कहाँ जैहै हरि बहनि हमारी। जज्ञ वस्तु ज्यों काक अनारी॥
कपट लरैया मायावी तें। आजु मूढ़ तुव मदहिं हरौं मैं॥
मम बाननि करि गिरै न जौ लों। तू मम बहिन छोड़ि दै तौ लों॥
हरि मुसिक्याय बान तानें छह। धनुष काटि पुनि वेधि लियौ यह॥
चारि अश्व के आठ सु बान। त्रै सोंधज द्वै रथ बान॥
धनुष और रुक्मी नें लयौ। हरिहिं पाँच सर मारत भयौ॥
सरनि सों हरि सो काटयौ अहौ। और लयौ पुनि काटयौ वहौ॥
बेंडे मुद्गर खड्ग दुधारे। बरछी ढाल त्रिशूल अन्यारे॥
रुक्मी आयुध लेत है जा जो। हरि अविनासी काटत सो सो॥
तब रथ तें कूद्यौ रिस भीनों। मारन हेत खड्ग कर लीनों॥
हरि के सन्मुख आयौ ऐसें। दीपक पै पतङ्ग कोऊ जैसें॥
ढाल खड्ग जे हैं तिंह हाथ। सरनि सों तिल तिल करि जदुनाथ॥

तीछन खड़ग हाथ में लियौ। ताकों मारन उद्यम कियौ॥
लख्यौ भ्रात बध कौ उद्यम जब। भय विह्वल रुकिमनी भई तब॥
पति के पायनि में परि गई। दया सनी पुनि बोलति भई॥
हे कल्यान महा भुज ईस। हे अनन्त जगपति जोगीस॥
देव देव यह भ्रात हमारौ। नहीं मारिबे जोग तिहारौ॥

श्री शुक उवाज

डर करि रुक्मिन काँपति जाति। सूक्यौ वदन न निसरत बात॥
सोचत पुनि कायर ह्वै गई। कनक माल सब ढ़ीली भई॥
पायनि परी हरी देखी जब। करुणा करि ताहि छोड़ि दयौ तब॥
पुनि रुक्मी की पाग उतारि। हाथ बाँधि लए नाथ मुरारि॥
मूंड़ि विरूप कियौ ताहि जौ लों। ताकी उद्धत सेना तौ लों॥
जदुवंसीनि बिलोई ऐसें। बड़े सरोवर कों गज जैसें॥
पुनि जादव सब हरि ढिग आए। ता रुक्मी के दरसन पाए॥
तैसोई रुक्मी मृतक समान। संकर्षन हू देख्यौ आनि॥
बंधन छोरयौ करुणा छए। पुनि हरि जू सों बोलत भए॥
अहो कृष्ण तुम भली न कीनी। हम सबकों अपकीरति दीनी॥
बार मूँड़ि करि करयौ विरूप। यह सुहृदनि कौ बध ही रूप॥
भ्रात विरूप देखि हे रुक्मिन। हरि में कछू दोष आनों जिन॥
सुख दुख कौ दाता नहिं कोई। अपुन कियौ जो पावत सोई॥
हे हरि बन्धु दोष बड़ ठानें। तौहू बन्धु ताहिं सनमानें॥
सुतौ दोष ही करि मरि रह्यौ। मृतक मारिबौ पुनि किन कह्यौ॥
बुरौ धर्म छत्रनि कौ गायौ। हे रुक्मिन विधि आप बनायौ॥
रन में भ्रात भ्रात कों मारै। तबही छत्री धर्महिं धारै॥
हे हरि धन तिय तेजमान धर। इनहिं तजे धनांध गरवित नर॥
ते बन्धूनि कों हते मुरारी। हमकों तौ अनुचित है भारी॥
हे रुक्मिन मति विषम तिहारी। जे सबके दुखदाई भारी॥

तिन सुहृदनि कौ भलौ जु आहि। बुरौ अज्ञ ज्यों मानत ताहि॥
यह रिपु उदासीन यह मीत। हे रुक्मिन यह अति विपरीत॥
तन अभिमानी नर कों यही। हरि माया कृत मोह सु सही॥
सबमें सुद्ध आतमा एक। मूरख जन हीं लखत अनेक॥
जैसें नभ ससि घट जल माँहीं। एकै नाना विधि दरसाहीं॥
द्रव्य प्राण गुन मय तन सही। नित ही उपजै विनसै यही॥
यही करै आतमा संसारी। केवल सु तौ अविद्या भारी॥
अहो आतमा कौ जोग वियोग। अस ततनादिक सों न प्रयोग॥
सबहिं प्रकासै न्यारौ ऐसें। दृग रु रूप करि सूरज जैसें॥
तनहीं के जन्मादि विकार। आतमा तौ नित ही अविकार॥
ज्यों विकार है कलानि माँहीं। ससि में कभू विकृतिता नाँहीं॥
कला बिना ससि नास है जैसें। तन बिन आतमा हूँ कौ तैसें॥
सोवत झूठे स्वपन न साँच ज्यों। यह संसार अज्ञ कों है त्यों॥
तातें हे रुक्मिन यह शोक। कृत अज्ञान मोह कौ ओक॥
तत्व ज्ञान करि तजि सुख पावै। नाँही तौ यह तनहिं सुकावै॥

श्री शुक उवाच—

ऐसें तिय रुक्मिन सुखदाई। श्री संकर्षन जू समझाई॥
बुधि करि मन कों बस करि लीन। बहुरि विमनता कों तजि दीन॥
प्राण मात्र रुक्मी तजि दयौ। निज विरूपता सुमिरत गयौ॥
सेना मरी प्रभा पुनि गई। बहुरि प्रतिज्ञा भंग सु भई॥
बसिवे कों इक पुर अभिराम। कीनों तास भोजकट नाम॥
कही कि कृष्णहिं हतों न जौ लौं। निज बहनहिं फेरों नहिं तौलों॥
कुन्दनपुर में जैहों नाँहीं। यह कहि कुमति बस्यौ ता माँहीं॥
रिपुनि जीति हरि तिय लै गए। पुर में विधि सों ब्याहत भए॥
भये महोत्सव घर घर माँहीं। पुरजन हरि बिन जानत नाँहीं॥
आनन्द छए सबै नर नारी। झलकति काननि कुण्डल भारी॥

उचित भेट कों ल्यावत सारे। दूलह दुलहिनि भलें सिंगारे॥
बहुरि द्वारिका भले सिंगारी। सोहति बड़ी ध्वजनि करि भारी॥
धूप दीप पुनि बन्दनमाला। सुन्दर अम्बर रतन रु माला॥
द्वार द्वार घट जल के भरे। मंगल सबै पदारथ धरे॥
पुनि जे प्यारे भूप बुलाए। तिन संग मतवारे गज आए॥
तिन मद करि मृग छिरके भारी। द्वार द्वार पै केरा सुपारी॥
कुरु सृंजय केकय जदुकन्त। हरषे डोलत बन्धु अनन्त॥
जौ भट भरे होय कहुँ जात। हरषि परस्पर तब लपटात॥
रुक्मिन कों ज्यों हरी मुरारी। सो जहाँ तहाँ गावत नर नारी॥
नृप रु नृपनि की कन्या जितीं। सुनि सुनि अति विस्मै भईं तितीं॥
रमाकान्त श्री कृष्ण सु प्यारे। रमा रुक्मिनी संग निहारे॥
तब पुर के बासी हे जिते। महामोद पावत भए तिते॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
चतुः पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

पचपनवाँ अध्याय

दोहा—कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न कों, संबर हरि लै जाय।
ताहि मारि कान्ता सहित, ऐहें पंचपचन ध्याय॥ १॥

श्री शुक उवाच

बासुदेव कौ अंस काम जो। पहल रिसाय रुद्र जारयौ सो॥
बहुरि देह धरिबे कों चह्यौ। बासुदेव ही में तब रह्यौ॥
सोई कृष्ण बीरज तें भयौ। जन्म रुकिमनी जू में लयौ॥
है प्रद्युम्न नाम अभिराम। कृष्ण बरोबर सब गुण धाम॥
इच्छा रूपी संवर आहि। दस दिन हूँ के पहलें ताहि॥
बैरी जानि चुरावत भयौ। डारि समुद में निज घर गयौ॥
बड़े मीन नें गील्यौ बाल। तहाँ धींवरनि डारयौ जाल॥
तामें आये मीन अनेक। तिनमें बहू आय गयौ एक॥

सो धीवरनि संवरहिं दयौ। बहुरि रसोई में सो गयौ ॥
तहाँ ताकों दरांत करि फारयौ। तामें निकस्यौ बाल निहारयौ ॥
सो लै कें पुनि रति कों दयौ। ताहू के मन में डर भयौ ॥
तब नारद सब बात सुनाई। जन्म रु मत्स गीलबे ताँई ॥
सो पतिव्रता काम की तिया। चहत ही ताहि जरयौ जो पिया ॥
संवर नें राखी ही सोई। दई हुती ताहि टहल रसोई ॥
काम देवता लरकहिं जान्यों। तामें नित सनेह तिन ठान्यों ॥
तिनहूँ बेगि ही जौवन पायौ। देखत तियनि मोह उपजायौ ॥
लांबी बाहु कमल दल नैंन। त्रिभुवन सुन्दर परम सुखेंन ॥
रति ता पतिहिं निहारत भई। सलज हास भोंहें चढ़ि गईं ॥
करति प्रीति सों हाव भाव सब। लखि प्रद्युम्न ताहि बोले तब ॥
अहो मात तजि मात सुभाव। काहे करति कामिनी भाव ॥

रति रु वाच

तुम श्री नारायण सुत आए। संवर घर में ते हरि ल्याए ॥
मैं सदैव की तिया तिहारी। तुम सु काम में रति हों नारी ॥
तुमकों सम्वर दानव भारी। हरि के ड़ारे समुद मँझारी ॥
तहाँ बड़ मीन तुमें गिल गए। तिंह उर तें अब आ पति भए ॥
यह दुर्जय मायावी भारौ। याकों अपनों शत्रु विचारौ ॥
अपनी मोहनी माया डारि। या सु दुष्ट कों लीजै मारि ॥
दीन मात तुव रोवति ऐसें। पुत्र मरें सों कुररी जैसें ॥
सुत सनेह करि व्याकुल है यों। बिन बछरा गैया आतुर ज्यों ॥
महामना प्रद्युम्न जु आहि। या विधि सों रति कहि कें ताहि ॥
पुनि महा माया विद्या दीनी। सब माया नासन सु नवीनी ॥
तब प्रद्युम्न तास ढिंग गए। युद्ध हेत पुनि बुलवत भए ॥
दुःसह बानी ताहि सुनाई। आपस माँहि कलह उपजाई ॥
बचननि करि सो छुभित भयौ यों। ठोकर लागें साँप होय ज्यों ॥

गदा हाथ लै दौरयौ आयौ। बहुत क्रोध आँखिन में छायौ॥
बड़े बली प्रद्युम्न जु आहि। वेगि ही गदा चलाई ताहि॥
गदा चलाय दई किलकारी। बज्र हू तें कठोर सो भारी॥
बैरी नें जो गदा चलाई। ताहि गदा करि मारि फिराई॥
पुनि प्रद्युम्न क्रोध में छए। अपनी गदा चलावत भए॥
बहुरि आसुरी माया जितीं। प्रगट करी संवर ने तितीं॥
थित ह्वै कैं आकास मँझारी। अस्त्रनि की करी बरषा भारी॥
रुक्मिन सुत पीड़ित ह्वै गए। निज माया फैलावत भए॥
सत्व मयी महा विद्या नाम। सब माया नासनि अभिराम॥
तब संवर गुह्यक गन्धर्व। राछस उरग पिसाची सर्व॥
सैकरानि फैलाय सु दीनीं। प्रद्युम्नों पुनि दूरि सु कीनी॥
पुनि संवर कौ सिर जो आहि। तीच्छण अस करि काटयौ ताहि॥
सोहत कुण्डल मुकट रु जामें। डाढ़ी मूछ तांमु से तामें॥
अस्तुति करत सबै सुर हरषे। बहुरों सुन्दर फूलनि बरसें॥
पुनि प्रद्युम्न गगन मग धाए। तिय लै संग निज पुर में आए॥
सैकरानि तिय सोहति जहाँ। ऐसें अपने महल हे तहाँ॥
तिय संग नभ तें उतरें ऐसें। मेघ बीजुरी के संग जैसें॥
मेघ स्याम पीताम्बर छाजत। कुञ्चित नील अलक मुख राजति॥
अरुण नेंन पुनि लांबी बांहैं। पुनि मुसिक्याय भली विधि चाहैं॥
तिन्हें कृष्ण तिय मानति भईं। पुनि लजाय जहाँ तहाँ छिपि गईं॥
हरषीं देखि कछुक अधिकईं। हँसति हँसति दुहुँवनि ढिग गईं॥
रुक्मिन तिय कजरारे नेंना। बोली कछुक मनोहर बेंना॥
देखत निज सुत सुमिरन भयौ। स्नेह तें दूध कुचनि तें श्रयौ।
अहो यह नर वर पङ्कज लोचन। काकौ सुत को है दुख मोचन॥
पुनि यह जन्म्यों उदर सु काके। सुन्दर कौन तिया संग याके॥
अहो मेरे सुत भयौ हुतौ जो। सोबर घर तें किन्हूँ हरयौ सो॥

काहू के घर जीवित है जौ। इतनो ऐसो ई ह्वै है तौ ॥
बोलनि चलनि हँसनि उनिहार। पुनि हरी के से अंग सु ढार ॥
तैसी ये चितवनि छवि छाई। इन हूँ तौ काहू विधि पाई ॥
होय न होय यही है वही। जो मेरे उर जन्म्यों सही ॥
यामें होति है प्रीति घनेरी। बहुरि बाम भुज फरकति मेरी ॥
यों रुक्मिन जू करत विचार। आय गए वसुदेव कुमार ॥
संग देवकी पुनि वसुदेव। जानि बूझि हरि कह्यौ न भेव ॥
तब नारद जू सबै कही सो। संवर हरनादिक लीला जो ॥
सो सुनि सबकें अचरज भयौ। बहुत दिननि कौ लरिका गयौ ॥
ताहि पाय तिय हरषी ऐसें। मृतकहिं फिरि आए ते जैसें ॥
पुनि वसुदेव देवकी नारी। राम स्याम रुक्मिन सुख कारी ॥
सब ही दुहुवनि सों मिलि गए। अति आनन्दहिं पावत भए ॥
पुनि प्रद्युम्न गए जब आए। सुनि पुरजन सब ही हरषाए ॥
कही भई बालक घर आयौ। यह सु दैव ने मृतक फिरायौ ॥
ताहि देखि हरि तिय पिय मानें। पुनि तैसेई भावनि ठानें ॥
हरि प्रतिबिम्ब काम जो महा। सो हग आगें अचिरज कहा ॥
और तिया लखि मोहहिं पावें। इन बातनि कों कोंन चलावें ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि
कृते पंच पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

छप्पनवाँ अध्याय

दोहा:—दोष लगें सनि लेंन हरि, गए छप्पन के ध्याय ॥
जांबवान शत्राजित रु, दईं कन्या सुख पाय ॥१॥

श्री शुक उवाच—

शत्राजित करि हरि अपराध। आपहिं मान्यों निपट असाध ॥
तब निज सुता सिमन्तक मनी। हरि कों दई परम गुण सनी ॥

श्री राजोवाच

शत्राजित रवि कौ अपराधु। कीनों कहा अहो मुनि साधु॥
कहाँ तें मनि सिमन्त पाई उन। क्यों हरि कों बेटी दीनी पुनि॥

श्री शुक उवाच—

शत्राजित सूरज कौ भक्त। परम सखा बहुरों अनुरक्त॥
तापै सूर्य तुष्ट अति भयौ। रतन सिमन्तक ताकों दयौ॥
सो मनि पहरि द्वारिका आयौ। सूरज ही सम तेज सु छायौ॥
काहू नें सो जान्यों नाँहीं। भई चकचौंध दृगनि के माँहीं॥
चौपर खेलत हे हरि जहाँ। संकित ह्वै सब आए तहाँ॥
हे नारायण हे दामोदर। अहो गदाधर शंख चक्रधर॥
एहो कमलनेंन जदुनन्दन। हे गोविन्द करत हम बन्दन॥
यह रवि तुमरे दरसन हेत। आवत है जादवनि निकेत॥
पुनि याकी फैलति जो जोति। सबके दृग चकचौंधी होति॥
बड़डे देव त्रिलोक मँझारी। हे प्रभु ढूंढ़त गैल तिहारी॥
जदुकुल दुरे तुमें रवि जानि। आवत दरसन कों सुख मानि॥

श्री शुक उवाच—

भोरे भोरे वचन सुने जब। हँसि कें कमलनेंन बोले तब॥
हे शत्राजित सूरज नाँहीं। पहरें मनि प्रकास ता माँहीं॥
पुनि शत्राजित निज घर आयौ। अति सुन्दर सब मङ्गल छायौ॥
पुनि सो मनि विप्रनि पकराई। देव देहरे में धरवाई॥
हे नृप आठ भार सोंनों जो। दिन दिन मनि उपजावति है सो॥
अहो या मनिहिं पूजियै जहाँ। मायावी नहिं आवत तहाँ॥
काल व्याल पुनि मरी न आवें। आधि व्याधि सब अशुभ नसावें॥
कबहूँ उग्रसेंन कों दैंन। सो मनि माँगी पङ्कज नेंन॥
तिह धन-लोभी मनि नहिं दीनी। हरि की मांगनि हूँ नहिं चीन्हीं॥
इक दिन ताकौ भ्रात प्रसेंन। सो मनि पहरि तेज कौ ऐंन॥

हय पै चढ़ि सिकार कों गयौ। बन बन में पुनि बिचरत भयौ॥
अस्व समेंत प्रसेंनहिं मारि। सो मनि लीनी सिंह उतारि॥
जांववान ता मनि के हेत। सिंहहिं मारयौ धसत निकेत॥
ता मनि कौ सु खिलौंना कीनों। बेटी के खेलनि कों दीनों॥
भ्रातहिं शत्राजित नहिं पायौ। तब सो निपट दुःख में छायौ॥
कही कि हरि ही ने सो मारयौ। मनि कों पहरि सु बनहिं सिधारयौ॥
यह पुनि काना कीनी भई। बहुरों हरि हू ने सुनि लई॥
तब हरि अपनों दोष निवारन। चले नरनि लें खोज निहारन॥
अस्व समेंत प्रसेनहिं मारयौ। सिंह सु बन में जाय निहारयौ॥
पुनि सो सिंह रीछ्नि ने मारयौ। गिरि ऊपर सो जाय निहारयौ॥
रीछ राज कौ बिल भयकारी। फैल रह्यौ अँधियारौ भारी॥
तहाँ इकले हरि पैठत भए। सबकों बाहर राखि सु गए॥
ता मनि कों तहाँ देखी हरी। जो मनि खेल खिलोंना करी॥
पुनि ता मनि कों लेंन मुरारी। ठढ़े भए जहाँ सुकुमारी॥
पुनि अपूर्व नर देखे जबहीं। धाय उरपि कें कूकी तब ही॥
बड़ौ बली है जाम्बवान जो। सुनि रिसाय धायौ आयौ सो॥
अपने स्वामी श्री भगवान। तिनकों प्राकृत पुरुष सु मानि॥
बहुरों हरि प्रभाव नहिं जान्यों। आवत हीं तिन सों युध ठान्यों॥
अप अपनी जीतनि मन दीन। आयुध पाथर द्रुम मूकीन॥
लरत परस्पर दोऊ ऐसें। मांस हेत ह्वै सिकरा जैसें॥
बज्र समान मूकियन लरें। अट्ठाइस दिन तनक न टरें॥
हरि मूकिन करि तन पिसि गयौ। निर्बल भयौ पसीना छयौ॥
तब तौ तिन अति अचरज पायौ। पुनि हरि जू सों वचन सुनायौ॥
अहो पुराण पुरुष मैं जाने। तुम्हीं विष्णु जगदीस बखाने॥
सबके तन मन इन्द्री कौ बल। तुम ही हौ हम जानि लए भल॥
तुमहीं सब सरजे ब्रह्मादि। तुमहीं सबके हेतु अनादि॥

जीवनि के परमातम रूप। तुम्हीं काल सर्वेश अनूप॥
तनक क्रोध करि तुमनि लख्यौ जब। जीवनि सहित समुद काँप्यौ तब॥
बहुरों तुमकों मारग दियौ। तुम जस हेत सेत तहाँ कियौ॥
लङ्का जारी दानव मारे। बाननि करि धर पर सिर डारे॥
रिछराज यों तत्व लह्यो जब। कमल नेंन बहु कृपा करी तब॥
मंगल रूप जु अपनों हाथ। ताके तन फेरयौ जदुनाथ॥
पुनि गम्भीर मेघ सी बानी। ता निज भक्तहिं कृष्ण बखानी॥
अहो रिछपति ग्रेह तिहारे। हम या मणि के हेत पधारे॥
झूठ कलङ्क लग्यौ मोहि याकौ। दोष मिटाबन आयौ ताकौ॥
ऐसें हरि जब ताहि सुनायौ। जम्बुवान तब आनंद पायौ॥
जाम्बुवती कन्या अरु मनी। हरि कों दई सबै गुण सनी॥
बिल में पैठि न फिरे मुरारी। बारह दिन लों बाट निहारी॥
पुनि सबरे जन अति दुखताए। रोवत रोवत पुर में आए॥
तहाँ बसुदेव देवकी रुक्मिन। ज्ञाति सुहृद औरौ पुनि जिन जिन॥
सुनी कि बिल तें निकसे नाँहीं। सोच करत डूबे दुख माँहीं॥
सब पुरबासी दुःखित भारी। सत्राजित कों देत सु गारी॥
पुनि महा माया दुर्गा आहि। हरि प्रापति हित पूजी ताहि॥
साँच करन हरि बर दुर्गा के। तिया सहित प्रगटे मठ ताके॥
सबही कों आनन्द सु देत। सिद्ध मनोरथ के हरिषेत॥
तिया संग मनि गरे मँझारी। तिनकों देखि सबै नर नारी॥
अति आनन्द पावत भए ऐसें। मृतकहिं फिरि आयें तें जैसें॥
पुनि हरि शत्राजित जो गायौ। सभा माँहि नृप निकट बुलायौ॥
पहलें मनि की कथा सुनाय। पुनि ताकों दई सबनि दिखाय॥
तिन अति लज्जित ह्वै मनि लई। बहुरों नारि निपट नै गई॥
निज अपराध सुमिरि पछितायौ। सोच करत अपनें घर आयौ॥
निज अपराध चिन्तवन करै। बली बैर तें पुनि सो डरै॥
कहै कि हरि क्यों करि सुख पावें। क्यों करि हम अपराध छमावें॥

अब मम भलौ होइ है कैसें । पुनि जनु बुरौ कहैं नहिं जैसें ॥
मैं तो मूढ़ कृपन अविचारी । बहुरों धन कौ लोभी भारी ॥
कन्या रतन बहुरि यह मनी । हरि कों दीजें सब गुण सनीं ॥
ताहि प्रसन्न करन कों यही । यातें आन उपाय न सही ॥
ऐसें सत्राजित सु बिचारी । पुनि आपै करि उद्यम भारी ॥
सुन्दर सुता बहुरि मनि जोई । हरि जू कों दीनीं तिन दोई ॥
तास सुता सतभामा नाम । बिधि सों ताहि बिवाही स्याम ॥
रूप सील अरु गुणनि उदार । जाहि जाचत हे भूप अपार ॥
पुनि हरि कही न मनि हम लेंहैं । धन याकौ अंगीकृत केंहे ॥
आप सूर्य के भक्त हौ जातें । मनि तौ तुमहीं राखौ यातें ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

सत्तावनवाँ अध्याय

दोहा—सतधन्वा बध कौ कुजस, मेटयौ है जदुराय ।
मनि दिखाय अक्रूर पै, सत्तावन के ध्याय ॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

पाण्डव कुन्ती जरे सुने जब । जद्दिप हरि जानत नीकें सब ।
तद्दिप राम स्याम मुह कान । जात भए कुरु देस महान ॥
तहाँ बिदुर भीषम गान्धारी । द्रोण कृपाचारज सुखकारी ॥
दुखी दोऊ तिन सों लपटाय । कही कि बड़ौ दुःख है हाय ॥
कृत वर्मा बहुरों अक्रूर । औसर लह्यौ गए हरि दूरि ॥
तब शतधन्वा सों यह कही । मनि अब क्यों न लीजियै सही ॥
शत्राजित निज सुता जु आहि । हमकों देंन सु कहि कें ताहि ॥
हरिहिं दई हम गनें सु नांही । यहौ जाहु भ्राता मग माँहीं ॥
यों दुहुवनि ताकों भरमायौ । सो असाधु पुनि पाप सु छायौ ॥
थोरी आयु लोभ पुनि भारौ । सोवत शत्राजित कों मारयौ ॥

पुनि अनाथ सी जितनी नारी। रोवति कूकति रहीं सु भारी॥
सो मनि पुनि लै आयौ ऐसें। पशु कों कोऊ कसाई जैसें॥
पितहिं देखि सतभामा नारी। भई मूर्च्छित दुःखित भारी॥
हाय हाय पित मैं तौ मरी। या विधि सों विलपि अति खरी॥
पितहिं तेल कोठी में डारि। आय गई जहाँ हुते मुरारि॥
दुःखित होय पिता कौ बध जो। हरि सर्वज्ञहिं जाय कह्यौ सो॥
राम स्याम नर लों अनुसरे। सुनत ही बहुत विलापनि करे॥
हाय हमें दुख आयौ भारी। यों कहि रोवन लगे मुरारी॥
बहुरों तिया भ्रात पुनि स्याम। लै आए निज पुर अभिराम॥
मनि लेवे कों कानी हरी। सतधन्वहिं मारन मन धरी॥
सो हरि उद्यम जानि सु डरयौ। प्राननि रच्छा हित अनुसरयौ॥
कृतवर्महिं कही करौ सहाय। तिन यह ताकों दई सुनाय॥
हम तौ तिन सों बैर न करिहैं। राम स्याम सब के ईसुर हैं॥
तिन सों बैर कियो है जानें। नेंकहु सुख नहिं पायौ तानें॥
अनुगनि सहित कंस हू मारयौ। सत्रह बार जरासन्ध हारयौ॥
सुनि अक्रूर पास पुनि गयौ। करौ सहाय कहत यों भयौ॥
तिन कही जो तिन कौ बल जानें। सो तिन सों बिगार क्यों ठानें॥
जो हरि एक खेल सों करैं। या जग कों रचि पालें हरें॥
ताकी लीला जानत नाँहीं। विधि लों उरझि माया माँहीं॥
जो यह सात बरष कौ बाल। इक ही करसों करि कछु ख्याल॥
गोधन लयौ उठाय सु ऐसें। सांप छतोंनहि लरिका जैसें॥
अद्भुत कर्म आदि अविकार। ता अनन्त कों नमो हमार॥
सतधन्वा सु निरास भयौ सुनि। मनि अक्रूरहिं सौंपि दई पुनि॥
सौ जोजन इक अस्व चलै जो। ता पर चढ़ि के भाजि चल्यौ सो॥
राम स्याम पुनि रथ चढ़ि आछें। भाजे गुरु द्रोही के पाछें॥
पवन समान जुरे हय जामें। बहुरि गरुड़ कौ छापौ तामें॥

मिथिलापुर को बाग हौ जहाँ। घोरा हारि गिरि परयौ तहाँ॥
तब पायनि भाग्यौ डर भारी। रिस करि पाछें भजे मुरारी॥
तीक्षण चक्र काटि करि सीस। मनि ढूँढ़ी नहिं पाई ईस॥
आय भ्रात सों वचन उचारयौ। मनि नहिं पाई व्यर्थ सु मारयौ॥
राम कही वह मनि जो आहि। तहाँ सौंपि आयौ यह ताहि॥
तुम पुर जाय सु ढूँढ़ौ ताकों। हम तौ जात सु पुर मिथिला कों॥
ह्यां विदेह है हमरौ प्यारौ। ताकों देखनि चित्त हमारौ॥
यह कहि बलि विदेह ढिंग गए। ते देखत उठि ठाढ़े भए॥
पूज्य राम लखि हरषे राजा। विधि सों पुनि पूजे सुख काजा॥
महामना जे जनक बखानें। बड़ी प्रीति सों नित सन्मानें॥
बहुत वर्ष रहि गदा जुद्ध जो। दुर्योधन तहाँ सीखि लयौ सो॥
हरि पुर आय प्रिया सों कही। सतधन्वहिं हति मनि नहिं लही॥
पुनि सुहृदनि जुत मृतक क्रिया जे। कृष्ण, ससुर की करवाईं ते॥
कृतवर्मा अक्रूर जु गाए। सतधन्वा बध सुनि भय छाए॥
पुर तें येऊ भाजे यातें। सतधन्वहिं दई मम लति जातें॥
जब अक्रूर और ठां गए। पुरजन त्रिविद ताप तब छए॥
हरि महिमा नहिं जान तजे मुनि। हे नृप ऐसें भाषत ते पुनि॥
मुनि निवास हरि वास है जहाँ। हरि इच्छा बिन बनें न तहाँ॥
जाय कृष्ण ढिंग सबै पुकारे। अहो महामति हे प्रभु प्यारे।
श्री अक्रूर पधारे जब तें। ह्यां उतपात होत हैं तब तें॥
कासी में वर्षा न भई जब। कासी कौ नृप सुफलक कों तब॥
सुता गान्दिनी ब्याहि सु दई। तब ताके पुर वर्षा भई॥
ताही कौ सुत है अक्रूर। तैसेई गुण करि भरि पूर॥
यह अक्रूर रहत है जहाँ। दुःख अकाल मरी नहिं तहाँ॥
पुरजन तें यह सुनी मुरारी। यही न इहाँ हेत कछु भारी॥
दूत भेजि अक्रूर बुलाय। पूजन करि प्रिय कथा चलाय॥

हरि तौ सब ही जानत सही। तऊ हँसि अक्रूरहिं यह कही॥
अहो अक्रूर खबरि यह मोहि। सतधन्वा मनि सौंपी तोहि॥
सत्राजित के सुत नहि तातें। तात दोहते ही सब यातें॥
जल पिण्डादि तास कों देहैं। पुनि बाकी धन कों ते लेहैं॥
तऊ और नहिं सौंपि है जातें। यह मनि तुमही राखौ यातें॥
ऐ पै यह मानत बलराम। मो तें मनिहिं छिपाई स्याम॥
हे महाभाग दिखावौ यातें। बन्धु सबै सुख पावें जातें॥
तुमरे कनक चौतरी यज्ञ। मनिहिं जनावत हैं सर्वज्ञ॥
यों मीठी विधि सों पूछी जब। सूरज की समता मनि कों तब॥
खोलि कृष्ण की भेट चढ़ाई। हरि सबरे बांधवनि दिखाई॥
ऐसे अपनों दोष निवारि। पुनि अक्रूरहिं दई मुरारि॥
यह हरि कौ है चरित अनूप। पाप हरण पुनि मङ्गल रूप॥
जो कोऊ सुमिरै सुनै सुनावै। तास कलङ्क नास सब पावै॥
बहुरि कलङ्क मूल मिटि जाय। शान्ति पाय करि रहै अघाय॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
शप्त पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५७॥

अट्ठावनवाँ अध्याय

दोहा—कालिन्दी कों आदि दै, पाँच ब्याह जदुराय।
कीने हैं सुख पाय कें, अट्ठावन के ध्याय॥ १॥

श्री शुक उवाच—

एक समें पाण्डव सुखकारी। बचें अगिन तें सुनी मुरारी॥
तिन हित इन्द्रप्रस्थ कों गए। संग सात्वकादिक सब लए॥
श्री मुकुन्द सब ही के प्यारे। ते आवत पाण्डवनि निहारे॥
इक ही बार उठे सब ऐसें। प्राननि आए इन्द्री जैसें॥
बहुरि कृष्ण सों सब लपटाए। अंग संग करि पाप बिलाए॥
प्रेम सनी मुसिक्यानि निहारी। सबही नें पायौ सुख भारी॥

बहुरि जुधिष्ठर भीम सु नाम। तिनके पाय गहे घनस्याम ॥
अर्जुन सों पुनि लपटि सु गए। छोटे दोऊ हरि कों नए ॥
पुनि हरि आसन पर बैठे जब। नव दुलहिनी द्रौपदी जू तब ॥
हरें हरें हरि कें ढिंग आई। लज्जा ही सों नारि नवाई ॥
त्यों सात्वक पूजे सन्माने। बहुरों आसन पर बैठानें ॥
पुनि सबही कों पूजत भए। हरि कुन्ती ढिंग जाय सु नए ॥
स्नेह सों कुन्ती दृग भरि आए। जदुनन्दन उर लौ लपटाए ॥
हरि कही सबै कुसर हौ आछें। कुन्ती हू पुनि पूछी पाछें ॥
कुन्ती भई प्रेम करि व्याकुल। गरौ रुक्यौ दृग जल करि आकुल॥
दुखनासन हरि सों कही बात। अपने दुःखनि सुमिरत जात ॥
तबही हम सब भए अनाथ। बहुरि कुसर पाई जदुनाथ ॥
जब भ्राता अक्रूर पठाय। हमरी सुधि लीनी जदुराय ॥
तुम आत्मा प्यारे सब माँहीं। अपुन पराई तुमरे नाँहीं ॥
तऊ जे तुमरे भक्त कहावत। तिनके हिय बसि दुखनि मिटावत॥

श्री युधिष्ठर उवाच—

हे हरि पुण्य चरित जो महा। हम नहिं जानत कीनों कहा ॥
तुम योगीशनि दुर्लभ भारे। तिनकों हम कुमती न निहारें ॥
कछुक मास तहाँ रहे मुरारी। राजा ने हठ कीनों भारी ॥
इन्द्रप्रस्थ के बासी जिते। हरि तें सुख पावत भए तिते ॥
इक दिन रिपुहन्ता जो अर्जुन। कवच पहरि गाण्डीवहिं लै पुनि ॥
अछय सर तरकस छबि छए। कृष्ण सहित रथ में चढ़ि लए ॥
बन बिहरन हित बन में आए। जहाँ मृग बाल करोरनि छाए ॥
व्याघ्र रोझ मृग गेंडा स्यार। भैंसा सूकर सेह अपार ॥
मारि मारि नृप हेत पठाए। जे उत्सव के हेत बनाए ॥
हाय श्रमित पुनि प्यासे भए। जल पीवन जमुना तट गए ॥
तहाँ दुँहुवनि उज्ज्वल जल कों पिय। बिचरति इक देखी सुन्दर तिय ॥

सुन्दर दन्त बदन छवि छयौ। हरि पठयौ अर्जुन ढिग गयौ॥
पूछत भयौ सुन्दरी अहौ। कौन कहाँ ते आइं कहौ॥
काकी सुता कियौ कहा चाहति। हम मानत तुम पति अवगाहति॥

श्री कालिन्दीवाच—

बरदाता पुनि वर के लायक। ऐसे कृष्णचन्द्र जे नायक॥
मैं सूरज - तनया सुखकारी। ताहित करी तपस्या भारी॥
ता बिन और पतिहि नहिं वरि हों। श्री निकेत ही कों पति करि हों॥
अब मो पर प्रसन्न होहु तेई। निपट अनाथनि कों गति वेई॥
कालिन्दी है हमरौ नाम। जल में पिता रच्यौ इक धाम॥
तामें मैं नित रहति सुखारी। जौ लों दरस न देंहि मुरारी॥
त्यों ही अर्जुन हरि सों कही। हरि पहिले ही जानत सही॥
रथ में ताहि चढ़ाय सु ल्याए। भूप जुधिष्ठिर के ढिंग आए॥
जब पाण्डवनि प्रार्थना करी। तब बिसकर्मा बुलायौ हरी॥
तिन हित एक नगर बनवायौ। अति विचित्र सबही छवि छायौ॥
अपने सुहृदनि कों सुख दैन। तामें वसे कमल दल नैन॥
अगिनहिं खाण्डव बन देवे करि। अर्जुन के रथवान भए हरि॥
अगिन तुष्ट अर्जुन पै भयौ। धनुष स्वेत हय रथ पुनि दयौ॥
बकतर दयौ छिदैं जो नाँहीं। तरकस अछय सर जिन माँहीं॥
अर्जुन मय की जरनि बचाई। तिन इक कों इक सभा बनाई॥
जामें दुर्योधन जब गयौ। ताकों जल थल कौ भ्रम भयौ॥
पुनि हरि नृप सों आज्ञा लई। सुहृदनि हूँ सब आज्ञा दई॥
तब हरि पुनि द्वाराबति आए। संग सात्वादिक छवि छाए॥
सुन्दर रितु नछत्र आयौ जब। हरि कालिन्दी कों ब्याही तब॥
बन्धुनि कों अति आनन्द दयौ। सब ठां परम सु मङ्गल छयौ॥
नृप उजेन के बिन्दनुबिन्द। दुर्योधन बस नहिन सुछिन्द॥
हरि सों पगी बहनि जो आहि। मनें स्वयं वर में करी ताहि॥

जो राजाधि देविका नाम। सो हरि की फूफी अभिराम ॥
ताकी सुता मित्रविन्दा जो। सब नृप देखत हरी हरी सो ॥
बहुरि अजोध्या नृप अभिराम। अति धर्मज्ञ नग्नजित नाम ॥
ताकी कन्या सत्या आहि। नाग्निजिती हू कहत हैं ताहि ॥
ताकों ब्याहि सके कोऊ नांहिं। सांत बैल नाथे नहिं जाँहिं ॥
पैनें सींग दुष्ट हिय माँही। वीर वासु हू सहें सु नाँहीं ॥
ताकों बहुरि सुनी यदुनाथ। पैयत सात बैल कों नाथ ॥
बहुरें कृष्ण अयोध्या गए। सेना सहित तेज करि छए ॥
नृप लखि हरषि समोंहें आयौ। बड़ी बड़ी पुनि वस्तुनि ल्यायौ ॥
सुन्दर आसन पर बैठानें। पूजा करि हरि कों सनमानें ॥
कन्या हूँ श्रीपति सु निहारे। अपनी लायक कान्त विचारे ॥
कही कि जौ मैं ब्रत कछु कीनें। तौ ये मम पति होहु नवीनें ॥
लछिमी लोकपाल शंकर अज। जिनकी सिर पर धरत चरन रज ॥
प्रगटे धर्म सेत पालन जे। मो पै कैसें तुष्ट होंय ये ॥
पुनि कही हे नारायण स्वामी। अहो जगत्पति अन्तर्यामी ॥
तुम निज सुख परिपूरन महा। हम असमर्थ करें प्रभु कहा ॥

श्री शुक उवाच—

हरि हँसि पूजा लै सु बखानी। मेघ समान गंभीर जु बानी ॥
हे नृप जे छत्री धर्मिष्ट। तिनहिं माँगिवौ निपट कनिष्ट ॥
कहत विवेकी पै हम माँगत। तुव सज्जनता नीको लागति ॥
निज कन्या दीजै सुख पाय। मोल न हम पै दीनों जाय ॥

राजोवाच—

हे हरि तुम सब गुंण के धाम। तुम तें को वर है अभिराम ॥
रहति रमा जिन के तन माँहीं। छिन हूँ इत उत टरति सु नाँहीं ॥
पै हम पहल प्रतिज्ञा करी। कन्या सम बर ढूँढन हरी ॥
सबकौ बल जाननि यदुनाथ। सात बैल राखे बिन नाथ ॥

गहे न जात सु दुर्जय भारे। बहुतक राजकुमार पछारे॥
इनकों जौ तुम नाथौ श्रीपति। तौ मन मानें कन्या के पति॥
यह सुनि फेंटहिं बाँधत भए। सात रूप धरि ते गहि लए॥
गर्व रु बल तौ जात रह्यौ तब। स्याम दाम करि नाथि लए तब॥
खेल सौ करत कढेरे ऐसें। बाल काठ के बैलहिं जैसें॥
तब नृप नें बड़ अचिरज पायौ। हरि कों बेटी दै हरषायौ॥
हरि विधि सों पुनि ब्याही ताहि। अपनी ही जु बरोबरि आहि॥
बेटी नें हरि पिय पाए जब। रानिन कों आनन्द भयौ तब॥
बहुरों उत्सव भए सु भारे। बाजे भेरी संख नगारे॥
द्विज असीस देंहि गावति नारी। हरषित सब सिंगारे भारी॥
हरिहिं दई गो दस हज्जार। तीनि सहस दासी सिंगार॥
नौ हजार हाथी दीनें पुनि। रथ दीने तिनहूं ते सत गुण॥
तिन तें सत गुण हय अभिराम। तिन तें सत गुण दए गुलाम॥
राजा निपट ही प्रेम भिजाए। रथ पै वर अरु बधू चढ़ाये॥
सेना बड़ी संग पुनि दीनी। बर रु बधू की बिदा सु कीनी॥
बैलनि पुनि जादवनि हते जे। यह सुनि निपट रिसाए नृप ते॥
कन्या लियें जात सुख छए। तिन हरि कों ले घेरत भए॥
बहुरों बान चलावनि लागे। अर्जुन तौ हरि के सुख पागे॥
लै गाण्डीव भजाए ऐसें। छुद्र मृगनि कों सिंह जु जैसें॥
लै सुदाय जौ पुर में आए। क्रीड़ा करत परम सुख छाए॥
पुनि पूफी श्रुतिकीरति नाम। तास सुता भद्रा अभिराम॥
ताके भैयनि हरि कों दई। सोऊ हरि विवाह पुनि लई॥
मद्र देस राजा की बेटी। नाम लछमना लछन लपेटी॥
इकलें ताहि हरी हरि ऐसें। गरुड़ हरै अमृत कों जैसें॥
औरौ हरि की तिया हजारनि। अति सुन्दर सब ही गुण धारनि॥
हे नृप नर्कासुर कों मारि। जिनकों ल्यावत भए मुरारि॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते अष्ट पञ्चाशत्तमोऽध्याय: ॥ ५८ ॥

उन्सठवाँ अध्याय

दोहा:—तिया हजारनि भौम हति, ल्याए श्री जदुराय ॥
आन्यों सुरतरु स्वर्ग तें, उनसठ के अध्याय ॥ १ ॥

श्री राजोवाच—

जिह नर्कासुर तिय रोकी मुनि। कैसें क्यों मारयौ ताकों पुनि ॥
यह हरि कौ प्रभाव अति नीकौ। हे मुनि कहियै जीवनि जी कौ ॥

श्री शुक उवाच—

मणि गिरि छत्र मात के कुण्डल। छीन लए तब ह्वै अति विह्वल ॥
इन्द्र कृष्ण ढिग धायौ आयौ। नर्कासुर कौ चरित सुनायौ ॥
तब नर्कासुर पुर गमने हरि। गरुड़ पै चढ़ि सतभामहि लै करि ॥
सो पुर गिरि शस्त्रनि करि घिरयौ। अगिन पवन जल चहुँ दिस फिरयौ ॥
जवर घोर लपटि मुर पासें। कोउ न पैठि सकत है तासें ॥
कृष्ण गदा करि गिरिनि विदारे। शस्त्र सरनि सों काटि सु डारे ॥
चक्र सों अगिन ब्यार पुनि बारि। असि सों मुरकी पासि विदारि ॥
सबके हिये तो बखानें पुनि। फाटि गए जब सुनी संख धुनि ॥
बहुरि गदाधर बड़ी गदा करि। किये कोट के टूक टूक हरि ॥
पाञ्चजन्य की धुनि सु महान। प्रलै काल के बज्र समान ॥
सुनत ही पाँच सीस कौ मुर जो। सोवत जल तें उठत भयौ सो ॥
लख्यौ न जात भयानक ऐसौ। प्रलै समय कौ सूरज जैसौ ॥
लिये त्रिशूल पाँचमुख धायौ। त्रिभुवन कों गीलत सौ आयौ ॥
पुनि हरि के सनमुख भयौ ऐसें। साँप गरुड़ के सन्मुख जैसें ॥
गरुड़हिं फेरि त्रिसूल चलाई। पञ्च बदन करि कूक मचाई ॥
धर अकास दिसि विदिसिन छई। सब ब्रह्माण्ड माँहिं भ्वै गई ॥
ता त्रिशूल कों दोय बान करि। बीच ही तीन टूक कीनी हरि ॥

पाँच बान पाँचों मुख ताने । रिस करि गदा चलाई बाने ॥
अपनी गदा चलाय मुरारि । ताके कीने टूक हजार ॥
बहुरि चक्र करि पाँचौ सीस । ताके काटि लए जगदीस ॥
मूड़ कटें जल माँहि फिरयौ । वज्र तें शृंग कटे तें गिरि ज्यों ॥
तास सात सुत क्रोध सु छुए । पिता बैर हित उद्दित भए ॥
अन्तरिक्ष नभ स्वान विभावसु । ताम्र अरुन पुनि श्रवन बहुरिवसु ॥
पीठ नाम हर बल करि आए । शस्त्रनि लै लौ भौम पठाए ॥
सैल सूल असि गदा रिष्टि सर । हरिहिं चलाई निपट क्रोध भरि ॥
हरि अमोघ बल बीरज भरे । बाननि करि ते तिल तिल करे ॥
पुनि सब जमघर दए पठाय । काटि भुजा सिर बक्तर पाय ॥
नर्कासुर निज वीर निहारे । हरि ने चक्र सरनि करि मारे ॥
तब रिसाय आपुनबहीं निकसे । मद चुचात गज संग समुद के ॥
तिय संग लखे गरुड़ पर हरि यों । बिजुरी सहित मेघ रवि पर ज्यों ॥
हरि कों बरछी फेंकी बानें । सबनि शस्त्र इक बेर ही तानें ॥
पुनि हरि सुन्दर बान चलाए । हय गय सब छिन माँहिं बिछाए ॥
पुनि अस फौज करी जगदीस । जिनके नहिं भुज तन कटि सीस ॥
रिपुनि चलाए अस्त्र शस्त्र जे । तीन तीनि सर करि काटे ते ॥
गरुड़ परनि करि गजनि पछारत । बहुरि पीठ पर कृष्णहिं धारत ॥
गरुड़ चोंच नख पांखनि मारे । पुरहिं भजे गज पीड़ित भारे ॥
नर्कासुर निज फौज निहारी । भजी गरुड़ करि पीड़ित भारी ॥
तब गरुड़हिं बरछी मारी यों । बज्रहिं कोऊ मारत है ज्यों ॥
गरुड़ न कँप्यौ लगे ताहि ऐसें । माला के मारे गज जैसें ॥
यह तौ उद्दिम व्यर्थ भयौ जब । मारन हरिहिं त्रिशूल लई तब ॥
सो ताकों न चलावनि पायौ । हरि ने पैनो चक्र चलायौ ॥
ताकरि ताकौ सिर हरि हरयौ । गज पैं तें धरनी पर परयौ ॥
मुकट कुण्डलनि करि सु दिपत अति । हाहाकार करत भए दुर्मति ॥

सुर मुनि भले कहत सुख पावत । अस्तुति करत फूल बरसावत ॥
धरा मात तब हरि ढिग आई । रतन जटित दोऊ कुण्डल ल्याई ॥
मणि गिरि वरुन छत्र बनमाला । दई बैजयन्ती सु रसाला ॥
हाथ जोरि पुनि हरि कों नई । भक्ति पाय बुधि हू नै गई ॥
देव देव करि पूजत हरि जो । तिनकी अस्तुति करन लगी सो ॥

भूमि रु वाच—

हे परमातम संख चक्रधर । देव देव के ईस अहो हरि ॥
प्रगटे भक्तनि की इच्छा हित । तुमकों मैं दण्डौत करति नित ॥
हे गोविन्द कमल दल लोचन । कमल नेंन सबके दुखमोचन ॥
कमल नाभि बनमाला धरें । तुमकों नमों नमों हम करें ॥
बासुदेव हे पूरन ज्ञान । एहो विष्णु पुरुष भगवान ॥
सबके आदि सु कारन आहि । मेरे हैं दण्डौत सु ताहि ॥
तुम अज ब्रह्म अनन्त सु शक्ति । तुम हीं नें सु रच्यौ सब जक्त ॥
तुम सर्वातम परमातम विभु । तुमकों मैं दण्डौत करत प्रभु ॥
तुमहीं सरजन पालन मारन । रज सत तम कौ करत सुधारन ॥
तुम हीं काल पुरुष पुनि माया । सब तें परें न गुन की छाया ॥
मैं नभ अगिन पवन सन ब्यार । तिपै सुरेन्द्रिय महधकार ॥
हे प्रभु इन करि रच्यौ जगत जो । तुम अद्वय यह भ्रम ही है सो ॥
हे दुखनासन यह ताकौ सुव । हरि के तुमरी चरन सरन हुव ॥
भगदन्त नाम सु रच्छा करौ । सिर कर धरौ पाप सब हरौ ॥

श्री शुक उवाच—

धरा नाम यों नम्र भक्ति करि । बानीं ही सों सन्मानें हरि ॥
ताहि अभै दै तिहं ग्रह हरी । पैठे जहाँ बहु सम्पत्ति भरी ॥
तहाँ इक सत सोरह हज्जार । लखी नृपति की सुता मुरारि ॥
नृपति जीति नर्कासुर ल्यायौ । सुन्दर हरि लखि मोह सु पायौ ॥
मन मान्यों पति दीनों दई । मन हीं करि सब बरति सु भई ॥

कही कि यह पति हमकों दीजै। अहो देव अनुमोदन कीजै॥
यों सबरी तिय न्यारी न्यारी। भाव सहित हरि में मन धारी॥
ते हरि डोलनि में बैठाय। द्वारवती कों दई पठाय॥
सब हों तिया परम कमनीय। पट भूषणनि पटै रमनीय॥
हय रथ धन पुनि जो कछु आहि। द्वारावती पठायौ ताहि॥
चौसठ पुनि हाथी पठआए। चारु सु दन्त स्वेतता छाए॥
ऐरावत के कुल में भए। चलत उतावल अति छबि छए॥
सतभामहिं लै स्वर्ग पधारे। दए अदित कों कुण्डल प्यारे॥
बहुरि इन्द्र इन्द्रानी पाछें। सतभामा हरि पूजे आछें॥
पुनि तिय बचनहिं मानि मुरारि। पारिजात कों लयौ उखारि॥
धरि सु गरुड़ पर पुर कों आए। इन्द्र सहित सब देव हराए॥
सो तरु सतभामा के बाग। दयौ लगाय कृष्ण बड़ भाग॥
जाके मधु सुगन्ध के कारन। स्वर्ग तें आए भौंर अपारनि॥
पहल काज हित इन्द्र सु आज। मुकट छुवायौ हरि के पाय॥
काज भएं पुनि लरयौ अपार। इनके धन क्रोधहिं धिककार॥
पुनि ते तिय नाना घर माँहीं। दोय घरी में सबै बिवाही॥
जथा जोग परिपूर्ण मुरारि। तितनेई अपने वपु धारि॥
पुनि अबिनासी परिपूरन जो। बहुरि अतर्क कर्म कर्त्ता सो॥
अति अद्भुत अनूप जे धाम। तिनके सबै सुधारत काम॥
तियनि संग हरि बिहरत ऐसें। प्राकृत नर घर माँहीं जैसें॥
जा कौ मग ब्रह्मादि न पावत। ता पिय कों तिय सुख उपजावति॥
नित ही बढ़ै सु मोद महान। प्रेम सहित चितवनि मुसिक्यान॥
नव सङ्गम में कछु बतरात। बहुरों ते फिरि जात लजात॥
जद्दिप सैकरनि दासी नीकी। आप ही टहल करति तऊ पी की॥
देखत उठि आसनहिं बिछावें। पाय धोय पुनि पान खवावें॥
पाय पलोटें पांखा करें। केस संवारि सुखहिं बिस्तरें॥

उबटि न्हवावें सेज बिछावें। सोंधौ लाय माल पहिरावें॥
इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
एकोंनषष्ठतमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

साठवाँ अध्याय

दोहा:—करि परिहास सु रुक्मिनी, कुपित करी जदुराय॥
मधुर बचन कहि सान्ति पुनि, करी साठएं ध्याय ॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

कबहुँ कि सुख सों सेज मुरारी। बैंठे सबही के हितकारी॥
तब तिय रुक्मिन सखियन संग। चँवर करन लागी भरि रंग॥
जो या जग कों रचै रु पारै। बहुरि खेल सौ करि संहारै॥
सोइ धर्म की रच्छा हेत। प्रगट भए जादवनि निकेत॥
सुन्दर महल चंदोवा तनें। मोतिन की झालरि करि बनें॥
मनि मय दीपक सोभा पावत। पारिजात कौ सौरभ आवत॥
बहु बिधि फूल रु माला भली। पाय सुगन्ध गुञ्जरत अली॥
रन्ध्रनि ह्वै ससि किरन सु छईं। अगर धूप बाहर कों गईं॥
कोमल उज्जल जनु पय फेन। ता पलका पर परम सुखेन॥
बैंठे जगत ईस निज पिया। सेवन लगी रुक्मिनी तिया॥
चँवर रतन डाडी कौ आहि। सखी हाथ तें लै करि ताहि॥
आपही फेरन लागी चायनि। बजत जात मनि नूपुर पायनि॥
मुंदरी चूरी चंवर बिराजें। कटि में छुद्र घंटिका राजै॥
पट ढांपे कुङ्कुम रञ्जित कुच। तिन सों लगि भए हार अरुन रुच॥
कुण्डल अलक धुकधुकी राजति। हँसति सुधाकर बदन बिराजत॥
प्रगटे लीला होंति जु ह्वरी। तिनके लायक रूप सु भरी॥
बहुरि रमा है मूरति मान। पिय बिन कछू न जानति आनि॥
ताहि निरखि हरषे जदुराय। बहुरि कछुक बोले मुसिकयाय॥
अहो राज पुत्री बहु भूप। लोक पालकनि के सु अनूप॥
धन बल रूप प्रभाव उदार। ऐसे सिसुपालादि अपार॥

काम मत्त तोहि जाचत हे वे। अपनी सम तुम पाए हे ते॥
पिता भ्रात हू तिनकों दई। हम न्यूननि क्यों बरति सु भई॥
हे सुन्दरि हम भूपनि तें डरि। समुद्र माँहि घर कियौ आनि करि॥
बलियन साथ बैर है भारी। नृप आसन के नहिं अधिकारी॥
जिनकी चलनि जानियतु नाँहीं। चलत अलौकिक मारग माँहीं॥
तिनकौ जे तिय आश्रै करें। हे सुन्दरि ते नित दुख भरें॥
हमतौ हैं निसकिञ्चन भारी। तेऊ सेवा करत हमारी॥
हे सुन्दरि धनाढ्य हैं जे जन। मो तें दूरि भजत हैं ते जन॥
उमर प्रभाव जन्म धन रूप। होय बराबर परम अनूप॥
प्रीति ब्याह सोहत तिन माँहीं। औरनि कों सोहत सो नाँहीं॥
तुम तौ कछू विचार न करयौ। मैं गुणहीन ताहि तुम वरयौ॥
हमरी झूठ बड़ाई सही। तुम ढिग किन्हूँ भिखारी कही॥
अब हूं काऊ अपने लायक। ढूँढ़ि लेहु छत्री वर नायक॥
जा करि दोऊ लोक मँझारी। सिद्ध कामना होंय तिहारी॥
दन्तवक्र सिसुपाल अनूप। साल्त्र जरासन्धादिक भूप॥
बहुरों रुक्मी भ्रात तिहारौ। हमसों करत है बैर घनेरौ॥
ते बल अन्ध गर्व कों धरें। हम दुष्टनि के तेजहिं हरें॥
हम तिन गर्व हरन मति ठानी। हे सुन्दरि तब तुमको आनी॥
निश्चें उदासीन हम नित्त। तिय धन सुत नहिं चाहत चित्त॥
आपही पूरन अक्रिय ऐसें। द्रष्टा अक्रिय दीपक जैसें॥

श्री शुक उवाच—

रुक्मिन सों बिछुरें न मुरारी। तातें मानें आपहिं प्यारी॥
ताहू को यों गर्व निवारि। पुनि चुपके ह्वै गए मुरारि॥
त्रिभुवन ईस बहुरि निज प्यारे। तिय तें अप्रिय वचन उचारे॥
सुनि सु अपूरव तिय भय छाई। काँपी रोई चिन्ता पाई॥
कोमल पाय अरुन नख सोहति। खोदत भूमि महा दुख मोहति॥

रुक्यौ कण्ठ मुख नाएँ रोवति। कजल बहुत कुच कुंकुम धोवत ॥
भय दुख सोक विकलता छाई। तन की सुधि बुधि सबै नसाई ॥
चूरनि कों बरसन लागे कर। चँवर हूँ कर तें खिसल पर्यौ धर॥
खुलि गए केश गिरि परी ऐसें। पवन पाय करि कदली जैसें ॥
परिसह समुझति नाहिन तिय। प्रेम दसा लखि भीजि गए पिय ॥
कूदि सेज तें लई उठाय। चारि भुजा करिकें जदुराय ॥
खुले केश पिय बाँधि सु लए। निज कर सों मुख पोंछत भए ॥
आँसू पोंछि पोंछि कुच प्यारी। उर सों लई लगाय मुरारी ॥
पतिवर्त्ता अनन्य पुनि दीन। सुनि परिहास भई भय लीन ॥
ताकों समझावनि लागे हरि। साधुनि के पति परम कृपा करि ॥

श्री भगवानुवाच—

अहो प्रिया कछु दोष न ठानों। तुम अनन्य मैं नीकें जानों ॥
तुमरे वचन सुननि की आस। मैं यह कीनों है परिहास ॥
अरुन नेंन पुनि वक्र चितोंन। चढ़ी भौंह मुख सुख को भोंन ॥
प्रेम कोप करि अधर कँपात। यह देखनि कों मन ललचात ॥
सुख गृहस्थ कों इतनों ई आय। तिय सों हँसत कछुक दिन जाँय॥

श्री शुक उवाच—

पिय सों कही सही मानी सब। त्याग करन संका त्यागी तब ॥
स्नेह सों चितवति हँसति लजोंहीं। पिय मुख चितवति बोली त्योंहीं ॥

रुक्मिन उवाच—

अहो कमल दल नेंन पियारे। तुमनें सत्य वचन कहे सारे ॥
तुम तीनों देवनि के ईस। निज सरूप में थित जगदीस ॥
कहाँ मैं प्रकृति गुण मयी नारी। पूजन मोहि सकाम अनारी ॥
साँच गुणनि तें डरत से अहौ। तुम जन हिये समुद में रहौ ॥
बड़े बली तुम परम अनूप। पुनि चिदघन सु आत्मा रूप ॥
पुनि ये कुत्सित इन्द्री भारी। तिनहीं सों नित कलह तिहारी ॥

पुनि अज्ञान रूप नृप आसन। तिंह अधिकार तज्यौ तुव दासनि॥
तुव पद पङ्कज कौ मकरन्द। हे मुनि सेवत भरि आनन्द॥
नर पशु तिनहूँ कौ न लखत मग। पुनि जे तुमहीं माँहि रहे पगि॥
तिनकौ चरित अलौकिक महा। हे प्रभु तुमरी कहियै कहा॥
साँच ही तुम सु अकिञ्चन याते'। तुम बिन और कछू नहिं जातें॥
सब पै भेट लेत ब्रह्मादि। ते तोहि भजत हैं अहो अनादि॥
तन पोषक धन अन्ध हैं जिते। तुम अंतक ताहि लखत न तिते॥
तुम तौ हौ भक्तनि के प्यारे। बहुरि भक्त ही प्रीय तिहारे॥
तुमहीं सब पुरुषारथ रूप। तुमहीं परमानन्द सरूप॥
जे कोऊ सुमति तिहारे हेत। अपनी सबै क्रिया तजि देत॥
तिनहीं कौ तुम सों सम्बन्ध। जे तिय पुरुष काम करि अन्ध॥
ते तौ कभूं सु पावत नाँहीं। रहत नित्य ही दुख सुख माँहीं॥
तुम सबही की अत्मा आहि। न्यस्त दण्ड मुनि गावत ताहि॥
देत अपनपौ तुम में बरें। ब्रह्मादिक सब त्याग सु करें॥
तुम भृकुटी करि प्रेरित काल। जिनकों गीलि लेत ततकाल॥
तुम शारङ्ग धनुषहिं टङ्कार। दए भजाय सु भूप अपार॥
पुनि मो कों हरि ल्याए ऐसें। पशु भजाय बलि नाहर जैसें॥
बसे समुद में भूपनि सों डरि। यह कहिबौ खोटौ है हे हरि॥
प्रथुज जाति गय भर तरु अङ्ग। इत्यादिक नृप परम उतङ्ग॥
तुमरे हेत बिपन कों गए। राज चक्रवै हूँ तजि दए॥
कमल नैन जे तुव मग धावत। कहियैं क्यों न कहा दुख पावत॥
तुव पद पङ्कज हे गुण धाम। मोक्ष रूप लछिमी विश्राम॥
गावत साधु बांस आवै जौ। ता बिन औरहिं कौन भजै तौ॥
जौ बिचारि देखें नर नारी। तौ तो बिन सब डरपत भारी॥
तुम जगदीस आत्मा रूप। सब ठां अर्थनि देत अनूप॥
तुम संसारहिं नास सु करौ। भक्तहिं अपनों करि हिय धरौ॥

ता तें मैं तुव बरे मुरारी। इक बिनती पुनि सुनों हमारी ॥
जा जा जोंनि माँहिं मैं जाऊं। तुमरी चरन सरन तहाँ पाऊं ॥
तुमरी कथा परम सुखदाई। सिव विधि सभा माँहिं जे गाई ॥
तें नहिं कान परी प्रभु जिनके। तुमनि कहे ते पति होहु तिनके ॥
जे खर कूकर बैल बिलाव। हैं घर के करि तिय सों भाव ॥
तुचा रोम नख डाढी केश। इन करि बाहिर मढे नरेश ॥
भीतर विष्टा कफ पित बात। हाड़ माँस क्रमि लोहू ख्यात ॥
जीवत मरयौ ताहि मानति पिय। हे प्रभु निपट मूढ़ सोई तिय ॥
तुव पद पङ्कज कौ मकरन्द। ताहि न पीवति भरि आनन्द ॥
मो पै तुम प्रसन्न हो भारी। तुव पद में होहु प्रीति हमारी ॥
हे आतमरत पङ्कज नैन। जब रचिवे कों त्रिभुवन ऐन ॥
रज गुण लै मो ओर निहारौ। सोई आहि अनुग्रह भारौ ॥
हे प्रभु जो तुम मोहि बखानी। सोउ मैं या तें झूँठ न मानी ॥
कहूंक कन्या हूं रति ठानें। साल्व माँहिं जैसे अम्बा नें ॥
कोऊ व्यभिचारनि व्याहौ पाछें। नयौ नयौ पति चाहति आछें ॥
ताहि विवेकी कभूं न धारें। धारें दोऊ लोक बिगारैं ॥

श्री भगवानुवाच—

हे नृप पुत्री सुनिबे यही। मैं हाँसी कीनी ही सही ॥
मेरी कहनि तुमनि भाषी ज्यों। है सब ही साँची ज्यों की त्यों ॥
हे भामिन तुम भक्त हमारी। मो में जे जे चाह तिहारी ॥
ते नित हैं निष्काम सुहेत। हे अनघे कल्याण - निकेत ॥
तुमरौ प्रेम पतिव्रत भारी। निश्चै है मो कान्त मँझारी ॥
मे वचननि करि तुव मति हरी। पै तुम मोतें तनक न टरीं ॥
हम सु मुक्ति के दाता भारी। तब व्रत करि सकाम नरनारी ॥
विषै हेत मम भजन करें जे। मम माया करि मोहित हैं ते ॥
मैं हों मुक्ति रूप धन रूप। पुनि तिनकौ दाता सु अनूप ॥

मो कों सेय विषै जे चाहें। हे भामिन ते मन्द महा हैं॥
नीच जोनि हूँ में ते पैयत। तिनतें बहुरि नरक में जैयत॥
भली भई निष्काम प्रेम जो। हम में तुमने करयौ घनो सो॥
जे तिय कुमति उदर भरि जानें। ठगिवे ही की घातनि ठानें॥
ते तौ यह कबहूँ नहिं पावति। दुष्टनि हूँ के हाथनि आवति॥
तुम सी प्रेमवती जे नारी। हम नहिं देखत घरनि मँझारी॥
जिह तुम निज विवाह के माँहीं। आए भूप गनें ते नाँहीं॥
पुनि दुरि मो ढिग द्विजहिं पठायौ। सुनि मम चरितनि चित ललचायौ॥
पुनि युध में हत भ्रात तिहारौ। जीति विरूप कियौ अति भारौ॥
पुनि उत्सव में चौपरि ख्याल। तहाँ ताकों मारयौ तिह काल॥
सो तुम देखि बहुत दुख पायौ। ऐ परि मोहि न तनक सुनायौ॥
तुमरौ मन मो में पगि गयौ। इन गुण करि तुम जीति सु लयौ॥
अहो तुम मो हित दूत पठायौ। ढील लगें तोहि कछु न सुनायौ॥
पुनि मेरी लायक रंग भीनों। सो तन छोड़नि कों मन कीनों॥
यह इक तुमहीं पै बनि आई। हम केवल करि सकें बड़ाई॥

श्री शुक उवाच—

ऐसें कृष्ण आतमाराम। प्रेम के सने वचन अभिराम॥
रमत भए निज तियहिं रमावत। नर अनुकरन करत छवि पावत॥
बहुरि लोक गुरु हरि अभिराम। ऐसें ही सबै तियनि के धाम॥
रहत करत गृह धर्मनि ऐसें। गृह धारी जन करत हैं जैसें॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

इकसठवाँ अध्याय

दोहा—इकसठ के अध्याय में, कृष्ण के बस अभिराम।
ब्याह माँहिं अनिरुद्ध के, रुक्मी मारयौ राम॥ १॥

श्री शुक उवाच—

हरि की जितीं तिया रमनीय। इक इक दश दश सुत कमनीय ॥
सब पावति भईं सुन्दर भारे। पिता समान गुणनि करि प्यारे ॥
सबही के घर माँहि रहत पिय। कोऊ कहूँ न जात लखै तिय ॥
सब अपुही कों प्यारी मानें। पुनि ताके तत्वहिं नहिं जानें ॥
कमल नेंन सब कों सुखदाई। बड़े नेन भुजा छवि छाई ॥
प्रेम सनी मुसिक्यान चितौंन। सुन्दर बैंन चैंन के भौंन ॥
इन करि मोहित तिय पिय कौ हिंय। बस करि सकीं न बहु विलास किय॥
तनक चितै हँसि भाव जनावें। बहुरि मनोहर भृकुटि नचावें ॥
पुनि सुन्दर सु सुरत बतरान। इत्यादिक मन्मथ के बान ॥
इन करि सोरह सहस जु तीय। मथि न सकीं ता पिय कौ हीय ॥
जाकौ मग ब्रह्मादि न पावत। ता पिय कों तिय सुख उपजावति ॥
नित ही बढ़ै सु मोद महान। प्रेम सहित चितवन मुसिक्यान ॥
नित नव संगम में मन धरें। हाव भाव बहुतै बिस्तरैं ॥
देखति उठि आसनहिं बिछावें। पाय धोय पुनि पान खवावें ॥
पाय पलोटें पांखा करें। केश सँवारि सुखहिं विस्तरें ॥
उबटि न्हवावें सेज बिछावें। सोंधौ लाय माल पहिरावें ॥
दश दश पुत्र कहे हम जिनके। तिनमें गनवत आह तियनिके ॥
चारु देष्ण रु सुदेष्ट सुचारु। चारुदेह पुनि चारु विचारु ॥
चारु गुप्त पुनि चारु चन्द्र हुव। भद्र चारु अतिही सुन्दर सुव ॥
सब में है प्रद्युम्न महान। ये रुक्मिन-सुत पिता समान ॥
भानु मान स्वर्भानु प्रभानु। चन्द्रभानु श्री भान स्वभानु ॥
बहद्भानु रतिभानु रु भानु। इक सतभामा-सुत प्रतिभानु ॥
सांब सुमित्र विजय ऋतु पुरुजित। चित्रकेत बसुमान सहसजित ॥
सतजित बहुरि द्रविन इक नाम। जाम्बवती के सुत अभिराम ॥
चित्रगुवंग वानवृष आम। संकु कुंति वसुवीर सु नाम ॥

अस्वसेन पुनि चन्द्र सु नीके। ये दस सुत हैं नाग्निजिती के॥
पूरन मास दर्शश्रुत सेमक। सांति सुबाहु वीर बृष भद्रक॥
कवि समेत सुत रवि-तनया के। अपराजित सह लछिमना के॥
गात्रवान महाशक्ति ओजबल। सिंह प्रघोष रु अर्द्धग परबल॥
हर्ष अनिलवर्द्धन महीस ब्रक। छुधि अन्नादगृध्र पुनि पावक॥
बन्हि समेत मित्रविन्दा के। बृहतसेन सत्यक भद्रा के॥
प्रहरन सूरत्राम संगरजित। आयु सुभद्र बहुरि जय अरिजित॥
ताम्रतप्त आदिक सुत नीके। नाम रोहिनी हरि की तीके॥
रुक्मी - पुत्री रुक्मवती जो। श्री प्रद्युम्न विवाही है सो॥
तामें भयौ पुत्र अभिराम। जिनकौ है अनिरुद्ध सु नाम॥
इनके सुत नाती सु करोरनि। हे नृप तिनकों कौन सकै गनि॥
सोरह सहस कछुक अधिकानी। कृष्ण सुतनि की मात बखानी॥

श्री राजोवाच—

हरि तें रन में रुक्मी हारयौ। पुनि हरि कों मारन मन धारयौ॥
तिंह रिपु सुतहिं सुता दई कैसें। हे मुनि यह कहियै है जैसें॥
तीनि काल की बात जिती मुनि। दूरि देस की ओझल की पुनि॥
बहुरि अगोचर इंद्रिन कों जो। भली भाँति जोगी जानत सो॥

श्री शुक उवाच—

रुक्मवती प्रद्युम्न सु नाम। बरे स्वयंवर में अभिराम॥
तब ताकों इकले लैं आए। रन में बहु नृप मारि भगाए॥
हरि नें करी अवज्ञा जातें। राखत रुक्मीं बैर सु यातें॥
तऊ भानजहिं बेटी दीनी। बहनि भलौ मानें मन कीनी॥
चारुमती विसाल नैंनी जो। हे राजन रुक्मिनी सुता सो॥
कृतवर्मा - सुत बली जु आहि। ताकों ब्याहि सु दीनी ताहि॥
बैर हू रुक्मी राखत जद्दपि। नाम रोचना पोती तद्दपि॥
श्री अनिरुद्ध दोहितहिं दीनी। बहन भलौ मानें मन कीनी॥

या विवाह कों जानत पाप। पै सनेह सों बँधि गयौ आप ॥
या विवाह में रुक्मिन स्याम। राम प्रद्युम्नादिक अभिराम ॥
सबै भोज कटपुर कों गए। करि विवाह सब ही रंग छए ॥
नृप-कलिङ्ग देसादिक जिते। गर्वित रुक्मी सों बोले ते ॥
अहो बल चौपर खेलि न जानें। पै खेलन के बिसनहिं ठानें ॥
इनकों चौपर माँहिं हरैयै। खेलन के हित इहाँ बुलैयै ॥
तब रुक्मी श्रीराम बुलाए। चौपर खेलन लगे सुहाए ॥
सतसहस्र पुनि दस हज्जार। राम लगायौ दाव अपार ॥
सो रुक्मी जीतत भयौ जबै। कलिङ्ग देस कौ राजा तबै ॥
हँस्यौ राम कों दाँत दिखाय। बल चुपके ह्वै रहे रिसाय ॥
बहुरि लाख कौ दाव जु आहि। श्री बलदेव जीति लयौ ताहि ॥
तव रुक्मी नें रोंठ सु साजी। अहो हमहीं जीते यह बाजी ॥
तब बल के रिस उमड़ी ऐसें। समुद पूर्णमासी कों जैसें ॥
रिस सों दृगनि अरुनता भारी। दश करोर की बाजी धरी ॥
सोऊ राम जू जीति सु लियौ। करि अधर्म रुक्मी छल कियौ ॥
देखौ मैं जीत्यौ यों कही। तुम सबरे साछी हौ सही ॥
तब भई नभ-बानी अभिराम। कही धर्म सों जीते राम ॥
रुक्मी झूँठी भाषत बानी। तिन असाधु सोऊ नहिं मानी ॥
कुछ तौ दुष्ट नृपनि ने प्रेर्यौ। बहुरों ताहि काल ने घेर्यौ ॥
करि परिहास कहे ये बेंन। तुम बनबासी धारत धेंन ॥
सर पासे नृप ही पहिंचानें। तुमसे बपुरे कहा सु जानें ॥
रुक्मी करी अवज्ञा यों जब। बहुरि हास भूपनि कीनों सब ॥
तब बल बेड़ौ लयौ रिसाय। रुक्मी तौ दयौ तहीं बिछाय ॥
पुनि कलिङ्ग कौ राजा आहि। दस डग दौरि गहि लयौ ताहि ॥
रिस करि लीनें दांत उखारि। हँस्यौ हुतौ जिन दाँतनि फारि ॥
और नृपनि के सिर भुज पाय। टूटि रुधिर करि रहे भिजाय ॥

बल ने बेड़े करि सब मारे। भाजि गए डरपें ते भारे॥
सारौ रुक्मी मारि लियौ जब। भली बुरी हरि कछु न कही तब॥
भली कहें रुक्मिन दुख मानें। बुरी कहें भैया रिस ठानें॥
वर अनिरुद्ध बहुरि नव दुलहिन। रथ पर लए चढ़ाय तिहीं छिन॥
पुनि रामादिक जादव जिते। तहाँ ते निजपुर आए तिते॥
स्याम सरन तें काम हें जिते। होत सिद्धि जदुकुल के तिते॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृत
एकषष्टितमोऽध्याय: ॥ ६१ ॥

बासठवाँ अध्याय

दोहा—बासठ के अध्याय में, परम सुखद अनिरुद्ध।
रमन कियौ ऊषा सहित, बानासुर करि रुद्ध॥ १॥

श्री राजोवाच–

बानसुता ऊषा जो आहि। श्री अनिरुद्ध विवाही ताहि॥
हरि शिव बड़ौ जुद्ध कीनों पुनि। यह सब कथा हमें कहियै मुनि॥

श्री शुक उवाच—

बलि नृप बड़े उदार बखानें। बामन कों धरि दीनीं जानें॥
ताकें सौ बेटी अभिराम। जेठौ है बानासुर नाम॥
सो सिव जू कौ भक्त महान। आदरनी दृढ़ व्रत धीमान॥
सत्य प्रतिज्ञ उदार अनूप। सुन्दर सोनितपुर कौ भूप॥
सिव प्रसाद तें सुर हैं जिते। ताके किंकर से भए तिते॥
सहस भुजनि करि बाद्य बजावै। नाच गाय करि सिवहिं रिझावै॥
सरनागत पालक भगवान। बहुरि भक्तवत्सल सुख खानि॥
सबके ईसुर सङ्कर आहि। ह्वै प्रसन्न यह भाषी ताहि॥
अहो कछू वर माँगि सु लीजै। तिन कही पुर की रच्छा कीजै॥
इक दिन बल करि सत्त महान। बानासुर सिव के ढिग आनि॥
रवि सम मुकट चरन पर राख्यौ। बहुरों हाथ जोरि यह भाख्यौ॥

अहो ईस दण्डौत हमारी। महादेव सबके हितकारी ॥
जे नर आहि अपूरन काम। तिनकों तुम सुरतरु अभिराम ॥
तुम मोकों भुज दई हजार। सो प्रभु मोकों केबल भार ॥
तुम बिन मोहि त्रिलोकी माँही। जोधा कोऊ मिलत सु नाँहीं ॥
हमारी भुजा खुजान लगति जब। बड़े गिरिन कौ चूर्न करत तब ॥
लरनि दिगाजनि सों हम गए। तेऊ डर करि भाजत भए ॥
सुनि रिसाय शिव जू भाषी तब। अरे मूढ तुव धुज टूटै जब ॥
तब मो से ही सों युध ह्वै है। तेरौ गर्ब नास सो कैहै ॥
यह सुनि कुमति निपट हरषायौ। बहुरों अपने घर कों आयौ ॥
नित ही कुमति बिचारै यही। कब ह्वै है जो सिव जू कही ॥
तास सुता ऊषा सुख झिली। सुपन माँहिं अनिरुद्धहिं मिली ॥
पहलें कभूं न सुनें निहारे। सुपन माँहिं ते पाए प्यारे ॥
पुनि बिन देखैं यों बिलकानी। कहाँ गए हैं पिय सुखदानी ॥
पुनि विह्वल ह्वै गई लजाय। सखियन में उठि बैठी आय ॥
है कुम्भाण्डदि बान बान कौ। पिता चित्रलेखा सुजान कौ ॥
ऊषा की सो सखी सु आहि। करि कौतुकनिन पूछी याहि ॥
हे सुन्दरि ते कहाँ मन दयौ। चहति कन्त पुनि ब्याह न भयौ ॥

ऊषा उवाच—

अहो इक स्याम कमलदलनैंन। तियनि कों हियहिं परम सुख दैंन॥
लांबी बाहु पीत पट आहि। सुपन माँहिं मैं देख्यौ ताहि ॥
जात रह्यौ अधरामृत प्याय। दुख के समुद माँहिं छिटकाय ॥
अहो गड़यौ है मन के माँहीं। ढूँढति ताहि सु पावति नाँहीं ॥

चित्रलेखा उवाच—

हे सखि जिन मन हरयौ तिहारौ। जौ त्रिभुवन में है सो प्यारौ॥
तौ दुख हरों तास कों ल्याय। पै तूँ ताकों मोहि बताय ॥
यह कहि सुरपन्नग विद्याधर। चारन सिद्ध जछ राछस नर ॥

सब ही तिन चीते अभिराम। पुनि सु जादवनि के चित्राम॥
बहुरि लखे वसुदेव रु शूर। पुनि श्रीराम कृष्ण छवि पूर॥
लिखि प्रद्युम्न दिखाए जबै। लज्जित भई सु ऊषा तबै॥
लिखि अनिरुद्ध दिखाए जबहीं। लज्जा पाय नै गई तब हीं॥
पुनि मुसिक्याय सखी सों कही। हे सखि यही वही हैं सही॥
अहो चित्रलेखा बड़ जोगिन। ताहि कृष्ण नाती जान्यों तिन॥
नभ मग करि द्वारावति आई। जहाँ कृष्ण की फिरति दुहाई॥
तहाँ सूते अनिरुद्ध सेज परे। सो तिय ताहि जोग के बल करि॥
सो सो निजत पुर लै गई। ऊषहिं सो पिय दिखवति भई॥
ऊषा सो सुन्दर वर पाय। अति आनन्द माँहि गई छाय॥
पुनि अलछ घर में लै गई। तहाँ तिनके संग रमति सु भई॥
सुन्दर पट स्त्रज दीपक धूप। आसन पान सुगन्ध अनूप॥
भोजन बचन बहुरि सतकार। इन करि दीनों मोद अपार॥
नित ही प्रेम अधिक मन हरै। काहू पै सो जानि न परै॥
रमत बहुत दिन बीति सु गए। पै अनिरुद्ध न जानत भए॥
यों तिय रमी तास के संग। होय गयौ कन्या व्रत भङ्ग॥
आनन्दादि प्रगट जे आहि। तिन लछन करि जानी ताहि॥
खोजनि कही निकट राजा के। हे नृप तुव बेटी ऊषा के॥
कन्या कों कुल दूषन भारे। ऐसे तास चरित्र निहारे॥
हे प्रभु सावधान हम भारी। ताकी भलें करत रखवारी॥
नर करि है दुर्लछ निकेत। हम नहिं जानत दूषन हेत॥
दुराचार बेटी कौ सुन्यौं। बान दुखित ह्वै मांथौ धुन्यौं॥
वेगि ही कन्या के गृह गयौ। श्री अनिरुद्धहिं देखत भयौ॥
कमलनेन मन्मथ सुत स्याम। धरें पीत पट सोभा धाम॥
सुन्दर अलकें कुण्डल कानन। हँसि चितौन करि सोहत आनन॥
लांबी भुज चौपरि कों खेलत। प्रेम सनी तिय की भुज पेलत॥

पहरें रायबेल की माल। तिय कुच कुंकुम करि सो लाल ॥
देखि भयौ बिस्मै राजा कें। बहुत शस्त्रधारी संग ताकें ॥
ताहि देखि अनिरुद्ध सु धाय। लयौ लोह कौ परिघ उठाय ॥
मारन कों ठाढ़े भए ऐसें। मूरतिमान काल कोऊ जैसें ॥
ताकों ते पकरन दौरे यों। सूकर कों नृप के कूकर ज्यों ॥
तें अनिरुद्ध सु दए बिछाय। टूटि गए भुज मस्तक पाय ॥
बचे बचाए सब भजि गए। बली बान लखि रिस में छए ॥
जे अनिरुद्ध महाबल भीनें। नाग पास करि बाँधि सु लीने ॥
लखि ऊषा अति रोवति भई। दुख रु सोक के बस परि गई ॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
द्वाषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

त्रेसठवाँ अध्याय

दोहा—रन में बानासुर भुजा, काटी हैं यदुराय।
पुनि हर जुर अस्तुति करी, त्रेसठ के अध्याय ॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

चारि मास बीते बर्षा के। पै न सन्देस सुनें लरिका के ॥
दुखित बन्धु तब नारद आए। लरिका के सब चरित सुनाए ॥
तब सब हरि के जादव जिते। सोनितपुर कों गमने तिते ॥
भद्रसाँब सारन उपनन्द। श्री प्रद्युम्न गद सात्यकनन्द ॥
द्विदस छोहिनी सेना भली। राम स्याम के पाछें चली ॥
जाय बान कौ पुर जो आहि। चारों घां तें घेरयौ ताहि ॥
दरबाजे गढ़ बाग अटारी। तोरि फोरि ते डारीं सारी ॥
बानासुर लखि निपट रिसायौ। तितनी हीं सेना लै आयौ ॥
बानासुर के हित त्रिपुरारि। संग सुत सेवक लए अपार ॥
चढ़ि नन्दी पै रण अनुसरे। बहुरों राम कृष्ण सों लरे ॥
तहाँ अलौकिक भयौ बड़ौ रण। जाके सुनत होत रोमांतन ॥

कृष्णचन्द्र सिव सों युध करें। गुह सों श्रीप्रद्युम्न सु लरें॥
पुनि कुम्भाड रु कूपकरन जो। श्री बल जू सों युद्ध करें सो॥
बानासुर सों सात्यक लरें। सांब बान सुत सों जुध करें॥
ब्रह्मादिक गन्धर्व सिद्ध मुनि। चारन जच्छ अप्सरा हू पुनि॥
चढ़ि चढ़ि बिमान पै आए। रन देखन कों मन ललचाए॥
मातृ पिसाच डाकिनी गुह्यक। भूत प्रेत कूष्माण्ड विनायक॥
प्रथम ब्रह्मराछस बेताल। बहुरों जातधान ततकाल॥
हरि जू नें हर के ये अनुचर। दए भजाय तानि तीछण सर॥
पुनि नाना विधि अस्त्र जु गाए। ते सिव जू नें हरिहिं चलाए॥
पुनि तिनके बाधक हे जिते। हरि जू अस्त्र चलाए तिते॥
ब्रह्मस्त्रहिं ब्रह्मास्त्र चलायौ। पवनस्त्रहिं गिरि अस्त्र जु गायौ॥
अगिनि अस्त्र कों मेघ अस्त्र पुनि। रुद्रस्त्रहिं नारायणास्त्र सुनि॥
तान्यों जृंभणास्त्र जदुराई। मोहित ह्वै सिव लई जंभाई॥
इतनें में असि गदाबान करि। फौजवान की मारि लई हरि॥
पुनि प्रद्युम्न सरनि करि सिव सुत। भयौ जुद्ध में अति पीड़ा जुत॥
तन तें लोहू बहन सु लाग्यौ। चढ़ि मयूर पै रन ते भाग्यौ॥
कूप कर्ण कुम्भाण्ड जु दोऊ। रन में ते पुनि उठे न सोऊ॥
बल के मूसर करि पिस गए। तन तें लोहू बहत सु भए॥
मुखिया तौ सब मारि लए जब। बाकी सेना भाजि गई तब॥
अपनी सेना दुखित निहारी। तब बानासुर रिस करि भारी॥
लरतें सात्यकि कों तजि आयौ। कृष्णचन्द्र के सन्मुख धायौ॥
बानासुर दुर्मद सु अपार। धनुष पाँच सै इकही बार॥
द्वै द्वै सर लै खैंचे जबै। हरि इक बेर ही काटे सबै॥
रथ रथवान अस्व पुनि मारि। संखहिं दयौ बजाय मुरारि॥
ताकी मात कोटरा गाई। सुतहिं बचावन हरि ढिंग आई॥
नांगी बहुरि बखेरें बार। देखि फेरि लयौ बदन मुरारि॥

तौलों बानासुर पुर गयौ। टूटे धनुष विरथ पुनि भयौ ॥
भूतनि के गन भाजि गए जब। जुरहिं पठायौ सिव जू नें तब ॥
तीन पाँव पुनि तीनिहीं सीस। ढिग आयौ देख्यौ जगदीस ॥
आपहू तब इक जुर उपजायौ। दोऊ जुर मिलि युद्ध रचायौ ॥
हरि जुर नें सिव जुरहिं सतायौ। तिह न कोऊ निर्भय पद पायौ ॥
तब डरि हरि के सरन सु गयौ। हाथ जोरि पुनि बोलत भयौ ॥

जूर उवाच—

हे सर्बेश विशुद्ध नवत हम। तुम्हीं अनन्त-शक्ति सर्वातम ॥
ब्रह्म प्रसान्त वेद तोहि गावत। तुम चैतन्य घनहिं सिर नावत ॥
जग कौ उत्पति पालन नास। इनके तुमहीं हेतु प्रकास ॥
काल कर्म जिय दैव लिंग तन। पाँच विषे दस इन्द्री इक मन ॥
प्रान्हङ्कार सुभाव धरादिक। इनहीं कौ यह देह बन्यों इक ॥
सु तौ बीज अंकुर लौं बहै। हे प्रभु तुमरी माया यहै ॥
सोऊ नहिं तुम माँहि मुरारी। हम तौ हैं प्रभु सरन तिहारी ॥
तुम लीला करि बहु अवतारनि। करौ साधु सुर धर्म निधारन ॥
दुष्ट ऊबटनि मारत आप। प्रगटे हरन धरनि कौ ताप ॥
हे प्रभु करत है नास हमारौ। दुसह सीत जुर तेज तिहारौ ॥
आसा बांधि सु तुव पग जौलों। भजै न नर दुख पावै तौलों ॥

श्री भगवानुवाच—

अहो त्रिसीस तुष्ट में भयौ। मो जुर तें तेरौ भय गयौ ॥
यह सम्बाद सुमिर है जो नर। तो तें भय जिन पावौ सो नर ॥
यह सुनि श्रीहरि जू कों नयौ। बहुरों सिव जू कौ जुर गयौ ॥
पुनि रथ चढ़ि बानासुर आयौ। जुद्ध हेत हरि सन्मुख धायौ ॥
सहस भुजनि में बहु हथियार। रिस करि ताने शस्त्र अपार ॥
हरि सु चक्र करि भुज काटी यों। बड़े बेर द्रुम की डारी ज्यों ॥
बानासुर की भुजा कटीं जब। श्री सिव तापै कृपा करन तब ॥

जाय कृष्ण के ढिंग यह कही। तुम परब्रह्म ज्योति हौ सही॥
बेद हू में तुम दुरे मुरारी। पुनि अकास से निर्मल भारी॥
जे कोऊ निर्मल मन प्रानी। ते तुमकों देखत सुखदानी॥
नाभि गगन मुख अगिन बीज जल। स्वर्ग सीस दिसिकान चरन थल॥
मन सासि दृग रवि में हङ्कार। इन्द्र भुजा उर समुद अपार॥
रोम औषधी मेघ सुकेस। विधि ही बुधि पुनि लिङ्ग प्रवेश॥
धर्म ही तुमरौ हृदै अनूप। सर्व लोक मय तुमरौ रूप॥
हे अच्युत यह तुव अवतार। धर्म हेत त्रिभुवन सुख सार॥
तुम करि हम सब सुख विस्तरें। सात लोक कौ पालन करें॥
तुम हौ स्वयं सर्व परकासिक। आदि पुरुष चौथे अद्वय इक॥
तऊ तुम हरि नाना विधि भासत। निज माया करि गुणनि प्रकासत॥
ज्यों रवि मेघनि में ढँपि जावै। पै सब मेघ सहित दरसावै॥
त्यों हीं तुम गुण ढंके न भासौ। पै गुण जीवनि सहित प्रकासौ॥
तुमरी माया करि मोहित जे। तिय सुत घरनि माँहिं अटके ते॥
राति द्यौस दुख समुद मँझारी। डूबत उछरत रहत अनारी॥
जिन बिषई यह नर तन पाय। हे प्रभु जे न तुमारे पाय॥
सो वह आतमघाती आहि। तुमरे जन रोवत हैं ताहि॥
हे प्रभु तुम ईसुर निज प्यारे। तिनकों जिन नर मानें न्यारे॥
बहुरि विषै सों नातो कियो। तिन अमृत तजि बिष कों पियो॥
अहो ईस मैं विधि रु बिबुध मुनि। जिनके हिये निपट उजले पुनि॥
ते सबही बिधि सरन तिहारे। तुम हीं आहि आतमा प्यारे॥
तुम हीं देव आतम हितकारी। तुम ही सम प्रसान्त पुनि भारी॥
तुम उत्पति थित नासन हेत। एक अनन्य रु सर्व निकेत॥
हम जग तें छुटिबौ मन धरें। हेप्रभु तुमरे भजनहिं करें॥
हे प्रभु यह मन भक्त है प्यारौ। याहि अभै पद दयौ हमारौ॥
तुम हूँ करौ अनुग्रह ऐसें। पहल कियौ प्रह्लादहिं जैसें॥

श्री भगवानुवाच—

हम तुमरे मन की जानी सब। जो तुम कही सोई करि हैं अब ॥
यह श्रीबलि जू कौ सुत जातें। मोहू कों अबध्य है या तें ॥
पुनि यह प्रह्लादहिं बर मेरौ। सो करि है अबध्य कुल तेरौ ॥
याकौ दूरि करन मद भारी। हम याकी भुज काटि सु डारी ॥
सेंना हूँ पुनि मारी यातें। धर कौ भार रूप ही जातें ॥
चारि भुजा जे बाकी रही। अजर अमर ते ह्वै हैं सही ॥
यह तुमरौ सुखिया है दास। काहू तें नहिं पैहै त्रास ॥
यों बानासुर अभै सु पाई। पुनि हरि जू कों नारि नवाई ॥
पुनि अनिरुद्ध दुलहिनी संग। ल्यायौ रथ चढ़ाय भरि रंग ॥
एक छोहिनी सेंना दीनी। बर अरु बधू अलंकृत कीनी ॥
तिनकों आगें करि हरि चलें। शिव जू ने सु सराहे भले ॥
द्विजनि अलंकृत निज रजधानी। छिरके मग मंगल करि सानी ॥
बाजत ढोलक संख नगारे। आगें आए पुरजन सारे ॥
आए हरि पुर अति छबि छायौ। यह हरि जू कौ विजय सु गायौ ॥
जो प्रभात उठि सुनें सुनावें। सो नहिं कभूं पराजय पावै ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

चौंसठवाँ अध्याय

दोहा—नृगहिं छुटायौ साप तें, चौसठ के अध्याय।
बहुरों द्विज धन हरन कौ, दोष कह्यौ जदुराय ॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

एक दिना यदुवंस कुमार। सांब प्रद्युम्न गदादि अपार ॥
खेलनि हेत बाग में गए। तहाँ खेलत बहु प्यासे भए ॥
तहाँ इक आँधौ कूवा देख्यौ। तामें अद्भुत प्रानी पेख्यौ ॥
गिरि सों इक कृकेंटिया आहि। बिस्मित भए देखि सब ताहि ॥

पुनि सबकौ हिय दया सु सान्यों। काढ़न ताहि जतन कछु ठान्यों॥
सूत बरत सों बाँधि सु लयौ। पै तिन पै नहिं ऐंच्यौ गयौ॥
तब सब हरषि हरिहिं जाय कही। कमलनैन तहाँ आए सही॥
पुनि तहाँ कछू ख्याल सों कीनों। ऐंचि बाम करहो सों लीनों॥
हरि कर छियत ही तन तजि दयौ। पुनि सुन्दर सु देवता भयौ॥
सुन्दर पट भूषन स्रज राजति। तपति कनक सम बरन बिराजत॥
तास नाम हरि जानत जद्दिप। सबनि जनावनि पूछी तद्दिप॥
हे महाभाग कोंन सुन्दर तर। हमकों तुम भासत हौ सुर बर॥
पुनि यह न्यून दशा जो गाई। तुमने कोंन कर्म करि पाई॥
हम सुनिबे लायक हैं जौ पै। यह सब बात कहौ तुम तौ पै॥

श्री शुक उवाच—

कृष्ण अनन्त मूर्त्ति जो आहि। ऐसे यह जब पूछी ताहि॥
तब नृग रवि सम मुकट नवायौ। पायनि छुवाय सब बचन सुनायौ॥

नृग उवाच—

हे प्रभु मैं नरेन्द्र नृग नाम। सुत इछ्वाक कौ हों अभिराम॥
दानिन के प्रसङ्ग हैं जहाँ। नाम सुन्यों ह्वै है तुम तहाँ॥
सदा अखण्डित ज्ञान तिहारौ। तुम जानत सब बुद्धि पसारौ॥
तुम तें कछू दुरयौ नाहिन हरि। तऊ कहत मैं तुव आज्ञा करि॥
हे प्रभु जिते गगन में तारा। बहुरों जितीं मेघ की धारा॥
पुनि जितनी धरनी करिन। तितनी मैं दीनी हैं धेन॥
पहल ब्यांत कपिला रु दुधारीं। सील रूप गुण सनीं सिंगारीं॥
रजत रुकम खुर सींग मढ़ानी। बछरनि सहित धर्म करि आनी॥
जे द्विज श्रेष्ठ तरुन ब्रत धारी। पुनि जिनकौ है कुटुंब दुखारी॥
तपसी बेद पढ़ैया जे पुनि। बहुरों साधु सनेह सील गुण॥
दीनीं तिन बिप्रनहिं सिंगार। औरौ दीनें दान अपार॥
हय गय रथ पट रतन सेज घर। दासिनि सहित कन्यका तिल घर॥

यज्ञ हू बहुत किये जदुराई। कुवा बावरी बहुत बनाई॥
एक विप्र उत्तम की गाय। मो गायनि में मिली सु आय॥
ताकों मैं बिन जानें हरी। और विप्र कों दान सु करी॥
मग में तिन सों गाय निहारी। तासों कही यह गाय हमारी॥
तिन कही हम नृप पै तें ल्याए। दोऊ झगरत मो ढिग आए॥
कही हे नृप तुम चोर, कि दाता। मैं भ्रम भयौ सुनत यह बाता॥
मोहि धर्म सङ्कट यह आयौ। तब मैं दुहुवनि कों समझायौ॥
हे महाराज गाय यह दीजै। सुन्दर लक्ष गाय पुनि लीजै॥
मैं बिन जानें नरक मँझारी। परत तिहारौ किंकर भारी॥
तातें मो पै कृपा सु कीजै। या कलेस तें काढ़ि सु लीजै॥
हे नृप हमकों चहियत नाँहीं। यह कहि धनी गयौ घर माँहीं॥
या बिन लेंहु न दशलख गाय। यह कहि सोऊ गयौ रिसाय॥
इतनें जम के दूत सु आय। लै गए मोहि जहाँ यमराय॥
जम कही दान धर्म नृप तेरौ। अन्त न पावत है मन मेरौ॥
तातें पहल भोग तें करिहौ। अथवा पहल असुभ कों हरिहौ॥
पहल असुभ हरिहैं हम कही। तौ गिरियै तिन भाषी यही॥
तब मैं गिरि कृकंटिया भयौ। तुम दरसन में मन दयौ॥
मैं द्विज पूजक दास तिहारौ। तातें गयौ न ज्ञान हमारौ॥
अमल हिये में वेद नेंन करि। मुनि जन तुमरौ ध्यान धरत हरि॥
दुःखनि करि मति अन्ध हमारी। कैसें दरसन दयौ मुरारी॥
मिट्यौ चहत जाकौ संसार। ताहि दरस तुव होत मुरारि॥
हृषीकेश नारायण ईश। देव देव अच्युत जगदीस॥
हे गोविन्द नरोत्तम अव्यय। हे प्रभु पुण्यचरित्र कृपामय॥
अब मैं स्वर्ग लोक कों जाऊँ। जौ तुमरी प्रभु आज्ञा पाऊँ॥
हे प्रभु अब मैं रहौं जहाँ जहाँ। तुव पद में मन रहौ तहाँ तहाँ॥
सर्व रूप हे ब्रह्म अनन्त। अहो योगपति तुमें नवन्त॥

श्री शुक उवाच—

यह कहि हरि पग मुकट छुवाय। दै परिकर्मा अति हरषाय॥
आज्ञा लै विमान चढ़ि लयौ। सबके देखत स्वर्गहिं गयौ॥
हरि ब्रह्मण्य धर्म करि छए। नृपनि सिखावनि बोलत भए॥
अहो ब्रह्मधन दुर्जय आहि। अति तेजस्वी हू जन ताहि॥
तनक हू सकै पचाय सु नाँहीं। धन अभिमानी नृप किहु माँहीं॥
हम न हलाहल कों विष मानत। ताहि निवारन यतन बखानत॥
विष इक द्विज ही कौ धन आहि। दूरि करन कौ जतन न जाहि॥
विष इक खानहार कों खाय। पानी करि आगौ बुझि जाय॥
द्विज धन अगिन कही नहिं जावै। जड़ समेत सब कुलहिं जरावै॥
तीन पुस्त द्विज धन तें जात। खोसि लए इक्कीस नसात॥
जे नृप अंध राज धन माँहीं। अपनी मीचहिं जानत नाँहीं॥
जो मूरख द्विज धन भल मानें। नरक ही मन में धारगौ तानें॥
द्विज गृहस्थ दाता कौ धन जो। नृप अथवा नृप लोग हर्यौ सो॥
जिती रैन द्विज असुवनि भीजत। तिते बरष ते नरकनि दीजत॥
दई आपुनी अथवा पर की। हरै जीवका जोहि जबर की॥
साठ हजार वर्ष लों सोई। बिष्टा में कौ कीरा होई॥
हमरें द्विज धन होहु न यातें। आयु नृपनि की घटति है जातें॥
जातें हरि राज कौ खोवै। पुनि दुखदाई साँप सु होवै॥
जो अपराधी हू द्विज आहि। मम जन तऊ न सतावै ताहि॥
मेरें बहुरों देय सराप। तऊ दण्डौत करत है आप॥
मैं विप्रनि कों नवत हौं जैसें। तुम हूँ नवत रहौ सब तैसें॥
और भाँति इनसों करि है जो। मो तें भलें दण्ड पैहै सो॥
बिन जानें हूँ द्विज धन हरै। सोऊ नरक में निश्चें परै॥
बिन जानें ही द्विज की गाय। देखौ हरी हुती नृगराय॥
यों मुकुन्द जदुनाथ मुरारी। सब लोकनि के पावन कारी॥

सब पुरजन कों कथा सुनाय। निज महलनि आए सुख पाय॥
इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
चतुः षष्टितमोऽध्यायः॥ ६४॥

पैंसठवाँ अध्याय

दोहा—पैंसठ के अध्याय में, सङ्कर्षन व्रज आय।
रमत तियनि संग जमुन कों, खेंचि लई मद छाय॥१॥

श्री शुक उवाच—

बल बन्धुनि के देखनि हेत। रथ चढ़ि आए नन्द-निकेत॥
उत्कण्ठित सब गोप रु गोपी। मिलीं राम सों अति रस ओपी॥
मात पितहिं बल सीस नवायौ। दै असीस तिन उर लपटायौ॥
कही अब छोटे भ्रात समेत। हमरौ पालन करौ सहेत॥
यह कहि बलहिं गोद बैठाये। नैननि ही के जल अन्हवाए॥
विधिवत बड़े गोप सन्माने। रामहिं नए हुते जे नान्हें॥
नातौ उमर मीतता जैसें। सबसों मिले राम जू तैसें॥
गोपनि के हँसि कर गहि लए। सुख सों बल जू बैठत भए॥
सबकों कुसल राम पूछी जब। प्रेम सों सबके गरे रुके तब॥
कमलनैंन ही में सब पागे। रामहिं कुसल सु पूछन लागे॥
अहो राम जे बन्धु हमारे। कहिये निपट कुसल हैं सारे॥
अहो राम तुम तिय सुत सङ्ग। कभू हमें सुमिरत भरि रंग॥
पापी कंस मरयौ भई आछें। सुहृद हू छुटे क्लेश ते पाछें॥
भली भई सब बैरी मारे। जाय रहे गढ़ माँहिं सुखारे॥
पुनि गोपी हँसि पूछति भईं। राम दरस करि आनन्द छईं॥
कहियै पुर अखिन के प्यारे। कृष्णचन्द्र हैं निपट सुखारे॥
मात पिता ये बन्धव ताके। कबहूँ खरकत हैं हिय बाके॥
पुनि हमारी सेवा जो आहि। कबहूँ वो सुमिरत हैं ताहि॥
बहन भ्रात पति सुत माता पित। दुस्तज बंध जे हम जाके हित॥

तिन हम हूं कों तजि सो गयौ। सबै सुहृदता काटत भयौ॥
ता ऐसे के बचन मँझारी। क्यों बिसवास करति पुर नारी॥
ते प्रबीन ह्वै भूलति काहे। सुतौ कृतघ्नी कहैं कहा हें॥
अहो तास हँसि चितवनि बोलनि। करति हिये में काम कलोलनि॥
ताकरि ते आतुर हैं जातें। बाके बचन सु मान तिया तें॥
और कहौ किन हे सखि महा। हमें ता सब तियनि करि कहा॥
हम बिन ताके दिन बीतत ज्यों। हमरे दिनों बीति जैहें त्यों॥
यह कहि हरि की चितवनि हास। बोलनि चलनि मिलनि सुखरास॥
सब ही के हिय खर की आय। रोईं एक बार डकराय॥
तब हरि के सन्देस जे प्यारे। समाधान हित राम उचारे॥
समाधान में चतुर महान। सब ही कौ कीनों सन्मान॥
श्री बलदेव चैत बैसाख। ब्रज में रहे पूर्न अभिलाष॥
पुनि जे निज नारी अति प्यारी। निसि में दए तिनें सुख भारी॥
जमुना के तट बन सुखदाई। कमल सुगन्ध चहूँ दिसि छाई॥
पूरनचन्द चाँदनी खिली। तहाँ बिहरे संग तिय सुख झिली॥
बरुन बारुणी मद सु पठायौ। ब्रछ खोंतरनि तें सु चुचायौ॥
सब ठां तास सुगन्ध सु छाई। सो सुगन्ध पुनि बल जू पाई॥
तब तहाँ गमनें तियनि समेत। ता मद कों पीयौ करि हेत॥
गावति तिय बिचरति बन माँहीं। घूमति नेंन मत्त सुधि नाँहीं॥
कुण्डल एक एक बनमाला। लसत स्वेद कन बदन रसाला॥
जल क्रीड़ा हित जमुन बुलाई। मत्त जानि सो नाहनि आई॥
तब बल ईसुर कें रिस छई। हल करि जमुनहिं खेंचि सु लई॥
कही हे पापिन मैं सु बुलाई। आई नहिं न मोहि मन ल्याई॥
अब सौ टूक करोंगौ हल करि। तू गुमान के माँहि रही भरि॥
सुनि जमुना डरपी चकि रही। पायनि परि बल जू सों कही॥
राम राम हे त्रिभुवन नाथ। अहो महाभुज मैं सु अनाथ॥

एक अंस करि तुम धर धारौ। मैं नहिं जान्यों तेज तिहारौ ॥
अहो भक्त वत्सल भगवान। मैं न लख्यौ तुव रूप महान ॥
हे बिश्वात्म सरन मैं आई। दीजै मोहि छोड़ि सुखदाई ॥
यों जमुना बिनती कीनी जब। श्री बल जू ने छोड़ि दई तब ॥
तियनि संग जल खेले ऐसें। हथिनिन के संग हाथी जैसें ॥
निज इच्छा करि कियौ बिहार। पुनि निकसे जदुराज कुँवार ॥
आनि दए तब रमा रसाला। नील बसन भूषन सुभ माला ॥
पहल नील-पट पहरे आछें। कञ्चन माल पहरि लई पाछें ॥
लाय अरगजा राजे ऐसें। सिंगारयौ ऐरावत जैसें ॥
हे नृप बड़े बली बलदेव। तिनके बल कौ सूचनि भेव ॥
अबलों जमुना देति दिखाई। जा मारग करि खेंची आई ॥
तिनकी देखि माधुरी नीकी। और ही दसा भई बल जी की ॥
यों सब ही निसि कियौ बिहार। पै इक निसि मानी सुखसार ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

छयासठवाँ अध्याय

दोहा—मीत सहित पौण्ड्रक हत्यौ, हरि कासी में जाय।
चरित सु दच्छिन कौ सबै, छयासठ के अध्याय ॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

ब्रज कों गए राम सर्वज्ञ। नृप करूख देसनि कौ अज्ञ ॥
कृष्णचन्द्र कों दूत पठायौ। बासुदेव मैं यह सु सुनायौ ॥
कृष्ण हैं बासुदेव भगवान। जग पालन कों प्रगटे आन ॥
यह तुमकों मूरखनि बखान्यों। आपहिं बासुदेव तुम मान्यों ॥
जा हरि कौ मग लख्यौ न जात। ताहि दूत पठयौ कहि बात ॥
बाल ख्याल कौ नृप होय जैसौ। यहौ अबुद्धी नृप है तैसो ॥
कमलनैन श्रीकृष्ण मुरारी। बैठे राज सभा जहाँ भारी ॥

ताही ठौर दूत सो आयौ। ता नृप कौ सन्देस सुनायौ॥
बासुदेव इक मैं अवतरयौ। सबही पैं सु अनुग्रह करयौ॥
दूजौ बासुदेव नहिं जातें। झूठौ नाम तजौ तुम यातें॥
बहुरों जे हैं चिन्ह हमारे। तें सु मूढ़ता करि ते धारे॥
ते तजि आवौ सरन हमारी। नातह कीजै युद्ध अनारी॥

श्री शुक उवाच—

अल्प बुद्धि पौण्डक अभिमानी। ताकी सबनि सुनी यह बानी॥
बहुरि उग्रसेनादिक जिते। खिल खिलाय कें हँसे सु तिते॥
हँसी रहें हरि दूतहिं कही। यह तुम जाय कहौगे सही॥
अरे मूढ़ जिन करि गरव्यौ अब। ते तुव चिन्ह दूरि करिहों सब॥
मुख पसारि रन माँहि सोय है। गीध कूकरनि सरन होय है॥
दूत ताहि सब जाय सुनाए। हरि हू रथ चढ़ि कासी आए॥
महारथी पौण्ड्रक हू आयौ। दोय छोहिनी सेना ल्यायौ॥
तास मित्र कासी नृप साथ। तीनि छोहिनी सेना साथ॥
पौण्ड्रक कृत्रिम वेस बनायौ। दूजौ अच्युत सौ दरसायौ॥
रंग भूमि में नट सौ आहि। निपट हँसे हरि देखि सु ताहि॥
संख चक्र असि गदा रह्यौ धर। श्री रेखा सारंग धनुष कर॥
कौस्तुभ मनि बनमाला राजति। सुन्दर पीताम्बर छवि छाजति॥
मकराकृति कुण्डल गरुड़ धुज। रतन जटित भूषन सोहत भुज॥
गदा त्रिशूल परिध असि बान। खाँड़े सेल मोंगरी आन॥
हरि हिं रिपुनि तानें इक बार। गदा चक्र असि सरनि मुरारि॥
तिनकी फौज मथी सब ऐसें। प्रलै समै की अगिन सु जैसें॥
हय गय ऊँट पयदि रथ खर। कटि कटि परे दिपैं रन की धर॥
सूरनि कों आनन्द सु देत। मनों भयानक रुद्र निकेत॥
पुनि हरि जू पौण्डकहि सुनायौ। तुम हम पै जो दूत पठायौ॥
नाना संदेस कहे जे। अब हम छोड़त हैं सु अस्त्र ते॥

पुनि झूँठे मम नाव धरयौ तें। ताहू कों अब दूरि करों मैं॥
अब हम जुद्ध न करि हैं जौ पै। तुमरी सरन आय हैं तौ पै॥
यह कहि तीक्षण बान चलाय। बिरथ कियौ पौंड्रक यदुराय॥
पुनि सिर हरयौ चक्र करि ऐसें। इन्द्र बज्र सों गिरि सिर जैसें॥
त्यों हीं कासी नृप कौ सीस। सर सों काटि लियौ जगदीस॥
पुनि कासी ही में डारयौ यों। पवन उड़ाय कमल कोसहिं ज्यों॥
यों मत्सरजुत पौण्ड्रक आहि। मीत सहित हरि मारयौ ताहि॥
बहुरि द्वारकापुर में आए। जिनके अमृत चरित मुनि गाए॥
पौण्ड्रक के बन्धन हे जिते। कृष्ण ध्यान में कटि गए तिते॥
नित धारत हरि जू कौ रूप। सो तौ हो गयो तद्रूप॥
कुण्डल सहित महल के द्वार। कासी नृप कौ सीस निहारि॥
सब ही नरनि सु विस्मै पायौ। यह सिर काकौ कित तें आयौ॥
कासीपति नृप कौ जान्यों जब। तिय सुत बन्धु बहुरि पुरजन सब॥
हाय नाथ नृप हम सब मरे। यों कहि रोय धरनि पर परे॥
ता नृप कौ सुत आहि सु दछिन। करयौ पिता कौ दाहादिक तिन॥
पुनि कही पित रिन उतरैगौ तब। पित के हन्ता कों हति हों जब॥
यह कहि संग पुरोहित लयौ। मन बस करि सिव पूजत भयौ॥
सिवहिं प्रसन्न भए माँग्यौ बर। पिता हन्ता बध जतन कहौ हर॥
सिव कही दछनागिन जो आहि। द्विजनि सहित तुम सेवौ ताहि॥
मारन विधि कौ करौ बिधान। तब भूतनि जुत अगिन महान॥
तुमरौ काज सिद्धि करिहै तौ। अब्रह्मण्यहिं प्रेरहु गे जौ॥
सुनि पुनि नियम बाँधि तिन कीनों। कृष्णहिं मारन में मन दीनों॥
तब भयदायक मूरति तान। अगिन-कुण्ड तें अगिन महान॥
प्रगटयौ दृग जनु बरत अंगार। तप्त ताम्र से डाढ़ी बार॥
बड्डी डाढ़ भौंह भयकारी। नांगौ क्रूर बदन पुनि भारी॥
चाटत होंठ जीभ लपकात। ज्वलत त्रिशूलहिं फेरत जात॥

बड़े पायनि धरनि कँपावत। बहुरों सबरी दिसनि जरावत॥
भूतनि संग द्वारिका धायौ। पुरजन ता कों देख्यौ आयौ॥
लखि सबही डरपत भए ऐसें। बन के जरन समें मृग जैसें॥
हरि चौपर कों खेलत जहाँ। भय व्याकुल सब दौरे तहाँ॥
कही हे रच्छा करौ मुरारी। अगिन जरावत आवत भारी॥
तिनकी सुनि हरि व्याकुल बानी। बन्धुनि कों दुख आयौ जानी॥
तब हँसि बोले हरि जन प्यारे। डरपौ जिन हम हैं रखवारे॥
प्रभु बाहर भीतर की जानें। यह शिव कृत्या जानीं तानें॥
पुनि ताहि दूरि करन मति कीनी। ढिग के चक्रहिं आज्ञा दीनी॥
हरि कौ चक्र सुदर्शन नाम। कोटि सूर्य की सम अभिराम॥
प्रलय अगिन सम तेज प्रकासी। फैली नभ दिसि धरनि उजासी॥
ता अगिनहिं बहु पीड़ा दई। चक्र तेज करि प्रतिहत भई॥
उलटि अगिन पुनि गमनी तहाँ। द्विजनि समेत सुदच्छिन जहाँ॥
आवत सबरे दए पजारि। यह अपनों कीनों अभिचार॥
चक्र सुदर्शन हूँ पुनि पाछें। जाय जराई कासी आछें॥
सभा दुकान ग्रेह भण्डार। कोठे अटा बहुरि पुनि द्वार॥
हय गय रथ गोसाला जितीं। एक ओर तें फूँकीं तितीं॥
बिन श्रम सबै करत जदुराय। पुनि तिनके ढिंग ठाढ़ौ आय॥
उत्तम जन श्री कृष्ण मुरारी। तिनकौ बल बरन्यों मनहारी॥
सावधान जो सुनें सुनावें। सो सब पापनि तें छूटि जावें॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानिकृते
षट्षष्टितमोऽध्याय ॥ ६६ ॥

सतसठवाँ अध्याय

दोहा—तियनि संग विहरत हली, सतसठ के अध्याय।
रैवत गिरि में दुविद कों, मारयौ है मद छाय॥ १॥

श्री राजोवाच—

श्रीबल अद्भुत कर्म अनन्त। जिनकौ कोऊ न पावत अन्त॥
तिननि और जो कछु कीनों मुनि। सुन्यों चहत हम सो कहिये पुनि॥

श्री शुक उवाच—

बानर द्विविद बड़ौ बलवान। नरकासुर कौ मीत महान॥
मैंद नाम बानर कौ भाई। पुनि सुग्रीव सचिव सुखदाई॥
सुतौ मीत कौ वैर उतारत। खरिकखानपुर अगिन पजारत॥
गिरिनि दाबि सब देस बिछावत। हरि पुर कों तौ अधिक सतावत॥
इक दिन सो समुद्र मधि गयौ। दश हजार हाथी बल छयौ॥
तहाँ दुहूँ कर तें जलहिं उछारि। दए बहाय सु नगर अपार॥
धाम मुनिन के डारत फोरि। बन द्रुम डारत तोरि मरोरि॥
बहुरि बिगारत जज्ञ स्थान। विष्टा मूत्र करत तहाँ आन॥
अति उन्मत्त गहै नर नारी। धरै जाय गिरि गुहा मँझारी॥
द्वार सिला दै रोकत ऐसें। बिल में भृंगी कीटहिं जैसें॥
ऐसें सबै देत दुख भारी। दूषित करत बहुरि कुल नारी॥
सुन्दर गीत सुनत सो भयौ। बहुरों रैवत गिरि कों गयौ॥
तहाँ देखे जदुपति श्री राम। पहरें कमल माल अभिराम॥
तियनि संग अति ही छवि पावत। मद करि दृग घूमत कछू गावत॥
सोहत बलजनु गज मतवारौ। बानर दुविद दुष्ट सो भरौ॥
इक द्रुम पै चढ़ि निपट हलायौ। आपहिं है किलकार जतायौ॥
बहुरि राम परकार की नारी। जाति चपल हाँसी ही प्यारी॥
ता बानर की देखि ढिठाई। सबै हँसीं अति सोभा पाई॥
बल के देखतहिं सु अनारी। तियनि की करी अवज्ञा भारी॥
भौंह चढ़ाय सु घुरकी दीनीं। बहुरों गदा तियनि दिसि कीनी॥
तब बल फूंक्यौ डेल रिसाय। ताकों तौ सो गयौ बचाय॥
पुनि मद-घट गहि दाँत निकारि। रिस उपजाई बलहिं अपार॥

बानरधृष्ट रु गर्वित भारी। रामहिं कछू न गनें अनारी॥
मदिरा के घटि फोरि सु डारे। बहुरि तियनि के पट गहि फारे॥
राम तास उद्धतता देखि। पुनि ता करि पुर दुखित सु पेखि॥
अति रिसाय करि मूसर लीनों। बैरी कों मारन मन कीनों॥
द्विविद नाम हूँ बली अपार। बड़ौ शाल इक लयौ उखार॥
बहुरि राम के सन्मुख आयौ। सीसहि लै सो साल चलायौ॥
बल जू ता शालहिं गहि लयौ। बहुरि तास सिर मूसल दयौ॥
रुधिर धार करि सोह्यौ ऐसे। गेरू करि कोऊ गिरिवर जैसें॥
ता घावहिं तिन गन्यों सु नाँहीं। बल करि भरयौ क्रोध के माँहीं॥
पुनि दूजौ इक पेड़ उखारयौ। हाथनि हीं करि छाँटि सु डारयौ॥
बहुरों ताने तान्यों जबै। राम किये सौ टूक सु तबै॥
रिस करि और हू तान्यों ऐसें। तिंते टूक ताके किये तैसें॥
यों बानर बल संग सु लरै। कटे कटे द्रुम कों परिहरै॥
नए नएन उखारत भयौ। सब बन बिन द्रुम कौ करि दयौ॥
पुनि रिसाय पाथर बरसाए। बल मूसल करि किरच उड़ाए॥
पुनि बानर मूकी करि भारी। आय राम के उर में मारी॥
राम हू हल मूसल छिटकाय। दुहूँ कर मूकी बाँधि रिसाय॥
तास ही कटे नीचें मारी। रुधिर उबाकत गिरयौ अनारी॥
तब धर गिरिनि सहित काँपी यों। पवन पाय जल में नौका ज्यों॥
सुर मुनि सिद्ध फूल बरसाए। भलें भले कहि सब हरषाए॥
जय जय कहें नमो नम करें। सब ही जन अस्तुति उच्चरें॥
यों दुखदाई कों हति राम। निज पुर आए अभिराम॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानिकृते
शप्तषष्टितमोऽध्याय ॥ ६७ ॥

अठसठवाँ अध्याय

दोहा—रन में बाँध्यौ कौरवनि, सांव अठसठें ध्याय।
ताहि छुटावन हस्तिनापुर खेंच्यौ यदुराय॥ १॥

श्री शुक उवाच—

हे नृप दुर्योधन की बेटी। नाम लक्षणा गुणनि लपेटी॥
जांबवती सुत साँव जु आहि। हरी स्वयंवर में तें ताहि॥
कुपित होय कौरवनि बखानी। यह सिसु दुर्विनीत अज्ञानी॥
बल करि हमें गनें हूँ नाँहीं। कन्या हरी स्वयंवर माँहीं॥
बाँधि लेहु याहि धृष्ट सु महा। यादव हमरौ करिहैं कहा॥
हमहीं ने ते बढ़ए भारी। भोगत हैं धर दई हमारी॥
जौ पै बाँधे लरका कों सुनि। सब जादव ऐहैं इंह ठां पुनि॥
तौ ते निर्बल ह्वै हैं ऐसें। दमन करें इन्द्रीगन जैसें॥
यह कहि यज्ञ केत शल भूरि। करन बहुरि दुर्योधन शूर॥
श्री भीषम जू कौ मत लीनों। सांवहिं बांधनि कों मन कीनों॥
चारों दिसि तें धाए भारे। महारथी श्रीसांव निहारे॥
तब इकले सु धनुष लै ऐसें। ठाढ़े भए सिंह कोऊ जैसें॥
सांवहिं पकरयौ चहें रिसाए। ठाढ़े होहु कहत यों आए॥
निकट आय कर्णादिक जिते। बाननि बरषावत भए तिते॥
जदिप घिरयौ कौरवनि मँझारी। तदिप सांब निर्भै है भारी॥
तिनके बलहिं सह्यौ नहिं ऐसें। सिंह मृगनि के बल कों जैसें॥
साँव हूँ रुचिर धनुष टङ्कार। कर्णादिक छह इकही बार॥
तिते सरनि करि न्यारे न्यारे। वेधि लिये महारथी सु सारे॥
चारि चारि हम चारि चारि सर। रथवानहिं कों एक एक करि॥
इक इक हीं करि रथी सु मारे। ते तब लगे सराहन भारे॥
सांवहिं सबनि विरथ पुनि कीनों। इक ने मारि सारथी लीनों॥
चारिनि मिलि चारों हम मारे। इक नें धनुष टूक करि डारे॥
यों कौरव बहु क्लेश सु पाय। सांवहिं रन में बाँध्यौ जाय॥

पुनि ताकों निज सुता समेत। लै गमने अपने सु निकेत॥
नारद ये सब चरित सुनाए। सुनि जादव सब रिस में छाए॥
उग्रसेन की आज्ञा पाई। करी कौरवनि पै सु चढ़ाई॥
बकतर पहरि सजे जादव सब। कलिमल नासन श्रीबल जू तब॥
करे निवारन यह मन माँहीं। कौरव जादव लरें सु नाँहीं॥
पुनि रबि से रथ पर चढ़ि लए। आप हस्तिनापुर कों गए॥
द्विज कुल वृद्धनि करि सोहत यों। तारनि माँहि चन्द्र पूरन ज्यों॥
जाय हस्तिनापुर सुखकारी। उतरे बाहर बाग मँझारी॥
पुनि उद्धव मन्त्री जे गाए। धृतराष्टर के पास पठाए॥
तहाँ धृतराष्ट्र भीष्म दुर्योधन। बाल्हिक द्रोण और बहुतै जन॥
जथा जोग सबसों मिलि आछे। आए राम कही यह पाछें॥
आए राम परम हितकारी। सुनि सब भए प्रसन्न सु भारी॥
उद्धव कों पूजन करि धाए। राम हेत बहु वस्तुनि ल्याए॥
आय जथा विधि पूजन कीनों। गाय समेत अरघ लै दीनों॥
तिन माँही प्रभाव जानत जे। बल कों सीस नवाय नए ते॥
पूछी बन्धुनि की कुसरात। आपस में कहि हरषे गात॥
पुनि बल बोले वचन अनूप। उग्रसेन भूपनि के भूप॥
मन दै सुनों तिननि जो कही। बहुरि सीघ्र करियै सो सही॥
इकलौ सिसु धर्मज्ञ जु आहि। तुम सब मिलि अधर्म करि ताहि॥
बाँध्यौ जीति अनीति सु कीनी। सो हम सुजन जानि सहि लीनी॥
बल रु प्रभाव सूरता सानी। अपनी शक्ति समान सु बानी॥
कही राम सुनि सबै रिसाए। पुनि बलदेवहिं वचन सुनाए॥
अहो अति अचरज कहियै कहा। लखौ काल गति दुस्तर महा॥
जो सिर सदा मुकट कों धरें। पनहीं तहाँ चढ़नि मन करें॥
जादव हमहीं सम करि लए। हम सों करि सगार्थ बढ़ि गए॥
हम हीं संग बैठाय जिवाये। हमहीं नृप आसन बैठाए॥

छत्र चँवर अरु मुकट सिंहासन। भोग करत हमहीं न धरत मन॥
अब तौ राज चिन्ह हैं जिते। छीनि लेहु यदुकुल तें तिते॥
हमही सों प्रतिकूल भए यों। पय प्यावन हारे सों अहि ज्यों॥
हमरे ई प्रसाद तें बढ़े। अब सुनि लज हमहीं पै चढ़े॥
कौरव भीष्म द्रोण अरु अर्जुन। इनके बिना दियें इन्द्रौं पुनि॥
राज भोग करि सकै न ऐसें। भेड़ सिंह के द्रव्यहिं जैसें॥

श्री शुक उवाच—

जन्म बन्धु धनमद मतवारे। कह दुर्वचन गए पुर सारे॥
सुनें राम दुर्वचन सु भारी। पुनि तिनकी दुर्बुद्धि निहारी॥
तब तों बल जू अधिक रिसाए। बहुरों हरि जे वचन सुनाए॥
जे असाधु बहु मद भरि रहे। ते हम सांति होत नहिं लहे॥
दण्ड ही तिनें सुधारत ऐसें। मत्त पशुनि कों लाठी जैसें॥
कृष्ण सहित जादव रिस भरे। अहो हम तिनें सांत लै करै॥
इनको सान्त करन ह्यां आए। ये दुर्बुद्ध कलह रंग छाए॥
अति गर्वित हम मन नहिं आनें। बार बार दुर्वचन बखानें॥
उग्रसेन नृप परम अनूप। भोज वृष्णि अंधक कुल भूप॥
इन्द्रादिक जाके बस माँहीं। आज्ञान देन समर्थ सु नाँहीं॥
सुर तरु सभा सुधर्मा जाकें। नृप आसन न बूझियै ताकें॥
अखिल ईसरी रमा आहि जो। जिनके जुगल चरन सेबै सो॥
देखौ सो रमेश सब जोग्य। नृप चिन्हनि को आहि अजोग्य॥
जाकी पद रज तीर्थ सु आहि। लोकपाल सिर धारत ताहि॥
हम सब विधि हू धारत सारे। तास अंस के अंस उचारे॥
लक्ष्मी हूँ नित धारति जाहि। कहौ कहाँ नृप आसन ताहि॥
दई कौरवनि नें धर जोई। निश्चें जादव भोगत सोई॥
निश्चें हम भए पनहीं ठौर। कौरव आप भए सिरमौर॥
जे जन धन मद करि मतवारे। मद सौ पियें गुमानीं भारे॥

तिनकी अनुचित रूखी बानी। को समर्थ सहि है बिज्ञानी॥
कौरव सून्य आजु करिहों धर। यह कहि राम गए रिस में भर॥
पुनि हल लै ठाढ़े भए तबही। त्रिभुवन जनों जरें हैं अबहीं॥
हल सों पुर उकासि करि ऐंच्यौ। गंगा मधि डारन कों खेंच्यौ॥
तब पुर नौका सौ डुगलायौ। देखि कौरवनि संभ्रम पायौ॥
सहित कुटम्ब जियौ चाहैं सब। श्रीबल जू की सरन गए तब॥
सांव बधू जुत आगें करें। हाथ जोरि अस्तुति अनुसरें॥
राम राम हे सर्वाधार। हम नहिं जान्यों तेज तुम्हार॥
मूढ़ कुमति हम छमा सु करौ। तुम थित जनम प्रलय विस्तरौ॥
सुतै सिद्ध तुम खेलनि हारे। लोक खिलोंना आहि तिहारे॥
अहो सहस सिर जग यह जितौ। तुम लीला करि धारत तितौ॥
प्रलय माँहिं सब जगहिं मिलाय। तुमहीं एक रहत सुख पाय॥
खल सिच्छा-हित रिस तुमरी हरि। नहिंन बैर करि मत्सरता करि॥
जग के पालन हेत अहो अपु। शुद्ध सत्वमय प्रगट करौ वपु॥
हे सर्वातम अव्यय हे हरि। अहो विश्व कृत सर्व शक्ति धर॥
तुमकों हैं दण्डौत हमारे। हम ये सब हैं सरन तिहारे॥

श्री शुक उवाच—

यों डर काँपि सरन अनुसरे। श्री रामहिं प्रसन्न लै करे॥
राम हरषि ते निर्भय कीने। दुर्योधन सुदाय जे दीने॥
साठ बरस के बारह सै गय। बहुरों बारह अयुत दए हय॥
बहुरि कनक के सूर्य समान। छह हजार रथ दए महान॥
पुनि बेटी सों अति ही प्यार। दासी दईं हजार सिंगार॥
सो सब लै बर बधू समेत। बिदा होय बल चले निकेत॥
पुनि निज पुर आए सुख झिले। अनुरागी सब बन्धुनि मिले॥
बहुरि राम यदु सभा मँझारी। अपनी कथा सुनाई सारी॥
अब हू लों सु हस्तनापुर जो। बल जू के बल को सूचत सो॥

दछन धां तें ऊँचौ लहियै। गंगा के दिसि नीचौ चहियै॥
इति श्रीभागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
अष्टषष्टितमोऽध्याय: ॥ ६८ ॥

उनहत्तरवाँ अध्याय

दोहा—घर घर में नारद मुनि, उनहत्तर के ध्याय।
लखि गृहस्थ ता कृष्ण की, रहे सु अचिरज पाय ॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

नारद नरकासुरहिं हत्यौ सुनि। इकले हरि बहु तिय ब्याही पुनि॥
यह सुनि देखनि कों मन कीनों। कही कि यह आश्चर्य नवीनों॥
घरनि में इक बपु करि हरि एक। ब्याही तिय इक बार अनेक॥
यातें मुनि उत्कण्ठा छाए। देखनि कों द्वारावति आए॥
तहाँ फूले बन बाग निहारे। गुञ्जारत खग भृङ्ग सु भारे॥
सरनि माँहिं सरसिज छबि पावत। सारस हंस बंस कुलकावत॥
रूपे के नौ लाख महल वर। मर्कत फटिक जटित सुन्दर तर॥
चौक बचार रु गली गलयारे। गेह देहरे सुन्दर भारे॥
पुरी सुगंध जलनि छिरकाई। धुजा पताकनि छाया छाई॥
ता मधि हरि कौ महल सु आहि। लोकपाल पूजत हैं जाहि॥
अति सुन्दर निपटै छबि छाई। बिसकर्मा की सब चतुराई॥
सोरह सहस एक सौ आठ। महलनि के जहाँ कौतुक ठाठ॥
तिनमें एक महल छबि छयौ। तामें श्री नारद मुनि गयौ॥
मूँगनि के जहाँ खम्भ सु राजें। पुनि विडूर्य मनि हीं के छाजे॥
नील मनिन की भींति रु भूमि। रहे बितान मोतियनि भूमि॥
गज दाँतनि के चौकी पलका। जिनमें लगे मनिन के हलका॥
दासी जहाँ परम सुकुमारीं। सुन्दर पट भूषननि सिंगारीं॥
किये सिंगार दास मन मांहीं। भगा पाग मनि कुण्डल सोहैं॥
मनि के दियनि कियौ तम दूरि। छाजनि पर जहाँ नचत मयूर॥

अगर धूप धूमहिं घनमानि। कुहकत सुन्दर मोर महान॥
कनक दण्ड कौ चँवर जु आहि। तहाँ तिय पिय पर ढारति ताहि॥
सुन्दर अनगन दासी साथ। ऐसें मुनि देखे यदुनाथ॥
हरि लखि पलका तें उठि धाए। धर्मिष्ठयनि में मुखिया गाए॥
सीस नवाय जोरि कें कर पुनि। निज पलका पै बैठाए मुनि॥
जग के गुरु साधुनि के ईस। मुनि पग धोय धर्यौ जल सीस॥
सब तीरथ चरनोदक जिनकौ। पै ब्रह्मण्य नाम है तिनकौ॥
विधि सों हरि पूजे नारद मुनि। मधुर बचन करि सनमानें पुनि॥
बहुरि कही हे प्रभु महाराज। तुमरौ कहा करें हम काज॥

श्री नारद उवाच

दुष्टनि दण्ड आन सों प्रीति। यह तुममें नहिं अद्भुत रीति॥
जग के उत्पति थिति मंगल हित। प्रगटे हौ तुम धरि अपनें चित॥
तुव पग जन के ताप मिटावत। अगम बोध ब्रह्मादिक ध्यावत॥
जगत कूप में जो जन आहि। ये ई अवलम्बन हैं ताहि॥
तिनें देखि मैं गयौ अघाय। एक कृपा कीजै यदुराय॥
अब तें यों बिचरों धर माँहीं। तुमरे ध्यानहिं बिसरों नाँहीं॥
और तीय के महल गए पुनि। हरि की माया लख्यौ चहत मुनि॥
तहूँ पिय तिय उद्धव संग। चौपर कों खेलत भरि रंग॥
परम भक्ति सों मुनि सन्मानें। उठि निज आसन पर बैठानें॥
ह्वै अजान से यह पूछी पुनि। कब के ह्यां आए हौ हे मुनि॥
तुम सब करि परिपूरन महा। हम अपूर्न जन करें सु कहा॥
तौ हू कछूक आज्ञा दीजै। हमरौ जन्म सफल मुनि कीजै॥
विस्मै पाय भए चुपके मुनि। उठि कें और महल गमनें पुनि॥
तहाँ हरि सुतनि खिलावत देखे। इक गृह माँहि अन्हात सु पेखे॥
कहूँ होमें कहूँ यज्ञनि करें। कहूँ द्विजनि भोजन विस्तरें॥
कहूँ अभिषेख खात हरि देखे। कहूँ फुलत्ता खेलत पेखे॥

कहूँ मौंन धरि सन्ध्या करें। गायत्री कौ जप बिस्तरें॥
कहूँ हय गय पुनि रथ दौरावत। कहूँ सोवत बन्दीजन गावत॥
कहूँ उद्धव संग मंत्र बिचारें। कहूँ जल केलि तियनि संग धारें॥
कहूँ देत गायनि कौ दान। कहूँ सुनत इतिहास पुरान॥
कहूँ तिय संग परिहास सु करें। कहूँ धर्मार्थ काम विस्तरें॥
कहूँ प्रकृति परें निज रूप। ताकौ ध्यान करत सुख रूप॥
कहूँ गुरुनि की सेवा करें। मनमाने भोगनि बिस्तरें॥
कहूँ उदम करत लराई। कहूँ काहू संग करत मिताई॥
कहूँ बल संग बिचारत ऐसें। साधुनि कौ होय मंगल कैसें॥
कहूँ पुत्र पुत्री कौ ब्याह। करवावत हैं भरि उत्साह॥
कहूँ सुतनि की करत सगाई। कहूँ गौंनों करि सुता पठाई॥
कहूँ गौंने कौ उत्सव भारी। बिस्मै होत देख नर नारी॥
कहूँ सुरज जन यज्ञ करि करें। कहूँ बागादि धर्म विस्तरें॥
कहूँ अश्व चढ़ि करत सिकार। कहूँ देखे जादवनि मँझार॥
कहूँ आपनों वेस छिपाय। महल माँहिं डोलत यदुराय॥
अभिप्राय मंत्रिन कौ जानन। लेत फिरत कनसूवा कानन॥
नर ही की सी क्रीड़ा जिनकी। देखि योगमाया मुनि तिनकी॥
हँसि हरि सों कही हे योगेश। तुमरी माया निपट सुदेश॥
योगिन हू नाँहिन पहिंचानी। तुव पद सेवन से हम जानीं॥
अब आज्ञा दीजे मैं जाऊँ। जग पावन तुमरौ यस गाऊँ॥

श्री भगवानुवाच—

हम ही हैं धर्मनि के हे मुनि। वक्ता कर्त्ता अनुमोदा पुनि॥
नरनि सिखावन हेत करों सब। तुम मोहित जिनि होहु अहो अब॥

श्री शुक उवाच—

यों गृहस्थ के पुण्य धर्म जे। घरनि में करत निहारे हरि तें॥
देखि अनन्त योगमाया मुनि। कौतुक पाय भयौ विस्मै पुनि॥

अर्थ धर्म कामादिक जिते। श्रद्धा सों हरि साधत तिते॥
नीके, सन्माने नारद मुनि। सुमिरत हरिहिं प्रसन्न गए पुनि॥
जग मंगल हित प्रगटे हरी। केवल नर पदवी अनुसरी॥
सलज प्रेम चितवन मुसिक्यान। मोहे तियनि रमें भगवान॥
उत्पति पालन प्रलय सुहेत। करत चरित जे रमा निकेत॥
गावैं सुनें सराहैं जोई। मुक्ति मार्ग हरि में रति होई॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि·कृते
एकोंन सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

सत्तरवाँ अध्याय

दोहा—दिवस क्रिया हरि की कही, सत्तरि के अध्याय।
दूत रु नारद काज कौ, मतौ कियौ यदुराय॥ १॥

श्री शुक उवाच—

प्रात भए तिय पिय पटरानी। सुनी दुखद मुरगनि की बानी॥
तिनकौं दैंन लगीं ते गारी। पिय कौ विरह सु दुःसह भारी॥
पाय कल्पद्रुम बन की ब्यार। गुञ्जन लागे भ्रमर अपार॥
तिन सों जगे खग यों कुहकावत। जनु बन्दीजन हरिहिं जगावत॥
रुक्मिन तिय पिय उर लपटानी। सोऊ समें नहिं नीकी मानीं॥
ब्रह्म मुंहूरत उठि सु मुरारी। कियौ आचवन हरषित भारी॥
स्वप्रकास जो अपनों रूप। अव्यय एक अनन्य अनूप॥
बहुरि जु आहि अविद्या नामें। अनुभौंते भई दूरि सु तामें॥
उत्पति नास हेत कों गुण जे। तास मोद सत्ता दिखवत ते॥
परें प्रकृति तें ब्रह्म सु नाम। ताकौ ध्यान कियौ घनस्याम॥
पुनि निर्मल जल न्हाए हरी। बसनि पहरि सन्ध्यादिक करी॥
अगिनहोम करि मौनहिं धरयौ। गायत्री कौ जप लै करयौ॥
उए सूर्य की अस्तुति करि पुनि। अंस आपनें देव पितर मुनि॥
तिनकौ नीकें तर्पन करयौ। वृद्ध द्विजनि पूजन विस्तरयौ॥

पहल ठांत जे धेनु दुधारी। सील रूप गुण सनी सिंगारी॥
रजत रुकम खुर सींग मढ़ानी। बछरनि सहित पटनि लपटानीं॥
तिल मृगछालनि सहित अपार। दिन प्रति देत हैं द्विजनि सिंगार॥
गो द्विज देव वृद्ध गुरु प्रानी। सबकों सीस नाय सुखदानी॥
निज बिभूति जे मंगलकारी। तिनकों परसत भए मुरारी॥
पट भूषन स्रज गन्धादिक करि। जनु भूषनन तन सिंगारयौ हरि॥
घृत दर्पन द्विज देव रु गाय। इनकों दरसन करि यदुराय॥
पुरवासी महली जन आए। तिनके सब अभिलाष पुराए॥
मुत्सद्दिन कौं करि सन्मान। दए द्विजनि को माला पान॥
मंत्री मीत तियनि कों दए। ता पाछें हरि आपुन लए॥
तब लों सुन्दर रथ जु महान। ताकों लै आयौ रथवान॥
सुग्रीवादि जुरे हय ल्याय। आगें ठाढ़ौ सीस नवाय॥
बहुरि सारथी कौ गहि हाथ। सात्यकि उद्धव कों लै साथ॥
श्री जदुनाथ चढ़े रथ ऐसें। उदयाचल पै सूरज जैसें॥
महलनि में तें तियनि निहारे। सजल प्रेम चितवनि करि प्यारे॥
हरि हँसि तिनके मनहिं चुराए। नीठि नीठि के बाहिर आए॥
बहुरि जादवनि संग मुरारी। गए सुधर्मा सभा मँझारी॥
जे जन बैठत हैं जा माँहीं। तिनकों होत सदुर्मि सु नाँहीं॥
गज - सिंहासन बैठे हरी। तन छबि दिसा उजासी करी॥
जदु जोधनि करि सोहत ऐसें। नभ में तारनि करि ससि जैसें॥
भांड़ हासरस करत सु भारी। नट नर्त्तकी सु नाचत न्यारी॥
संख बाँसुरी बीन मृदङ्ग। बजवत गावत नाचत रंग॥
मागध सूत बन्दीजन जिते। हरि की अस्तुति करत सु तिते॥
कोई विप्र जहाँ वेदहिं गावें। कोई आछें नृप चरित सुनावें॥
तहाँ इक पुरुष अपूर्व आयौ। दरवानिन जा हरिहिं सुनायौ॥
जाय कृष्ण कों सीस नवायौ। रुके नृपनि कौ दुःख सुनायौ॥

जे जे नृप दिग्विजय जु माँही। जरासन्ध कों नए सु नाँहीं॥
बीस सहस नृप जीति सु लए। गिरि ब्रजनाम कोट में दए॥

राजन ऊचु: ॥

अहो परम मित कृष्ण पियारे। भक्तन के भय भञ्जन हारे॥
भेद बुद्धि हम जग ते डरें। प्रभो सरन तुमरी अनुसरें॥
निन्द कर्म में जन रति ठानें। मङ्गल तुव पूजन नहिं जानें॥
काल रूप तुम ताहि संघारौ। नमस्कार प्रभु तोहि हमारौ॥
दुष्ट हतनि साधुनि सुख दैंन। प्रगटे हौ तुम पङ्कज नैंन॥
निज दुख भोगत हम नहिं जाने। अथवा जन तुव कह्यौ न मानें॥
नृप सुख सुपन रु परवस है जो। मृतक सभय तन करि ढोवें सो॥
बिन श्रम पैयत तुव सुख त्यागे। तुव माया बस क्लेशनि पागे॥
तातें तुव पद जन दुख हारी। हमकों लेहु छुटाय मुरारी॥
जरासन्ध ही कर्म बन्ध सम। दस हजार गज बल धारत हम॥
ते इकले इन रोके ऐसें। नाहर रोकत भेड़नि जैसें॥
अहो चक्रधर बहुल प्रताप। सत्रह बेर हत्यौ यह आप॥
करि नर चरित भजे इकबार। तातें यह गरब्यौ सु अपार॥
हमें सतावन तुमरे जानि। करियै उचित अहो भगवान॥
जरासन्ध रोके हम सारे। तुमरौ दरसन चाहत प्यारे॥
तुमरे चरन सरन हम हैं सब। दीननि कौ मंगल कीजै अब॥
दूत नृपनि कौ कहत सु ऐसें। आय गए नारद रवि जैसें॥
पीरी जटा देखि जदुराय। सबनि सहित उठि सीस नवाय॥
आसन दै विधि सों सन्मानें। मोद देत शुभ वचन बखानें॥
अहो निर्भय त्रैलोक मँझारी। विचरत तुम हमकों सुख भारी॥
ईसुर कृत लोकनि कें माँहीं। तुमकों कछू दुरयौ मुनि नाँहीं॥
तातें अहो पाण्डवनि कौ सब। हम सों प्रभो विचार कहौ अब॥

श्री नारद उवाच—

घनी लखी तुव माया दुस्तर। मोहि न अचरज होय अहो हरि॥
तुम निज शक्तिनि करि सब में यों। विचरत काठनि माँहिं अग्नि ज्यों॥
निज माया करि रचौ संसारौ। झूठौ जग साँचौ करि डारौ॥
को जानें प्रभु चरित तिहारे। तुम अचिन्त्य कों नमो हमारे॥
तन अनर्थ करि भ्रमत जु रहै। छुटिवे कौ जिय जतन न लहै॥
तुम सु प्रकट जस-दिया बरायौ। तुमरी चरन सरन मैं आयौ॥
ऐ परि भक्तराज पाण्डव जे। तुमरी फूफी के बेटा ते॥
तिनकौ कहों विचार सु यातें। तुम नर खेल उरझि रहे जातें॥
धर्म-पुत्र नृप राजसूय करि। तुमरौ जजन कियौ चाहत हरि॥
इक तुमरे ई मिलन निमित्त। सो तुम हूँ धारौ निज चित्त॥
ता जज्ञ माँहिं सुरादिक जिते। तुमकों देखनि ऐहें तिते॥
बड़े जसस्वी नृप ऐहें पुनि। कोंन कहै तुव दूसन कौ गुन॥
करि तुव श्रवन कीर्त्तन ध्यान। शुद्ध होत चाण्डाल महान॥
हे मंगलनिधि तुव जस निर्मल। फैल स्वर्ग पुनि धरनि रसातल॥
करन पवित्र विस्व कों जैसें। तुव चरनोदक हू पुनि तैसें॥
भोगवती पाताल में ह्वै कर। मंदाकिनी स्वर्ग गंगाधर॥

श्री शुक उवाच—

यह सुनि कें जादवनि उचारी। पहल जरासन्ध हतौ मुरारी॥
तव उद्धव जू सों जदुराय। सुन्दर वचन कहे मुसिक्याय॥
अहो उद्धव तुम नेंन हमारे। तत्व मसलती मीत सु प्यारे॥
कहौ इहाँ करिवें जो आहि। श्रद्धा करि हम करिहें ताहि॥
भर्त्ता कृष्णचन्द्र सर्वज्ञ। तिन ऐसें पूछी जनु अज्ञ॥
तिनकी आज्ञा धरि माथें तव। उद्धव जू ने बात कही सब॥

इति श्री भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
सप्ततितमोऽध्यायः॥ ७०॥

इकहत्तरवाँ अध्याय

दोहा:—इकहत्तर के ध्याय में, उद्धव को मत पाय ॥
गए पाण्डवनि देन सुख, इन्द्रप्रस्थ जदुराय ॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

बुद्धिमान उद्धव सुख दानी । बोले सुनि नारद की बानी ॥
कृष्णचन्द्र जू कौ मत जान्यों । मतौ सभा हू कौ पहिचान्यों ॥

उद्धव उवाच—

मुनि जो कही अहो सर्वज्ञ । फूफी कौ सुत करत सु यज्ञ ॥
तुमको तिनके करि कें काजा । पुनि छुटावने हूं ते राजा ॥
हे प्रभु सब दिसि जीत निहारौ । राजसूय है जज्ञ सु भारौ ॥
तातें जरासन्ध हू कौ हत । यामें दोऊ होत हमरे मत ॥
हम को तौ पुनि इतने ईं करि । बड़ौ लाभ ह्वै है एहो हरि ॥
हे गोविन्द छुटा बहु भूप । तुव जस ह्वै है परम अनूप ॥
जरासन्ध है दुःसह भारी । दस हजार हाथी बलधारी ॥
इक सम बली भीम बिन आन । काऊ बली नहिं तास समान ॥
जीत्यौ जैहे द्वन्द्व जुद्ध करि । सौ छोहनी फौज सों नहिं हरि ॥
जरासन्ध ब्रह्मराय सु आहि । जाचैं द्विज तौ नटै न ताहि ॥
द्विज ह्वै भीम जाचना करैं । बहुरों द्वन्द्व जुद्ध करि लरैं ॥
तौ तुव देखत भीम जु आहि । हे हरि निश्चें मारै ताहि ॥
हे निर्गुन प्रभु काल सरूप । जग की उत्पति प्रलै अनूप ॥
तिनमें विधि सिव हेत मात्र ज्यों । भीम जरा सुत हतनि माँहिं त्यों ॥
यह तुव जस नृपतिय नित गावें । जरासन्ध हति पतिन छुटावें ॥
संजें व्रज तिय गावति रमें । दुखनि निवारि बचैहें हमें ॥
मात पिता गज सीता की पुनि । रछा ज्यों गावत हम अरु मुनि ॥
नृप पुण्यनि सों निज पापनि करि । जरासन्ध कौ बध जो हे हरि ॥
बहुत अर्थ कों सिद्ध सु कैहै । तुव मन मान्यों जज्ञ सु ह्वै है ॥

सुनि कही उद्धव भलौ बखान्यों । हरि नारद रु जादवनि मान्यों ॥
पुनि हरि चलिबे को मन कीनो । सब भृत्यनि कों आज्ञा दीनी ॥
मात तात की आज्ञा लई । बड़े भ्रात हूँ आज्ञा दई ॥
उग्रसेन की आज्ञा पाय । रथ ऊपर बैठे जदुराय ॥
डोला सब आगें करि लए । सुतनि सहित अति सोभा छए ॥
संग बड़ी सेना अति बनी । हय गज रथ प्यादनि करि सनी ॥
भेरी संख मृदङ्ग नगारे । इक ही बार बजे ते भारे ॥
कंचन के रथ डोला राजत । सुतनि सहित तिय तिनमें छाजति ॥
ओर पास बहु जोधा जिनकें । खड़ग ढाल कर सोहत तिनकें ॥
ऊँट बैल भैंसा खच्चर खर । हथिनी हय छकरा बहुरों नर ॥
करि सिंगार इन पै चढ़ि चलीं । लसकर की तिय बेस्या भलीं ॥
डेरा बांस कनातें जितीं । भली भाँति कसि लीनी तितीं ॥
ध्वजा छत्र पट चँवर अपार । मुकुट कवच भूषन हथियार ॥
रबि किरननि करि चमकत सोहत । होत कुलाहल मन कों मोहत ॥
जनों जलधि मधि ग्राह सु भारी । उठत हैं लहरें कुलाहल कारी ॥
हरि कौ निश्चै लखि नारद मुनि । हरि जू तें सन्मान पाय पुनि ॥
मगन होय हरि हिय धरि लए । पुनि मुनि गगन मार्ग ह्वै गए ॥
पुनि दूतहिं सुख देत मुरारी बोले सब ही के सुखकारी ॥
जिन डरपौ मैं मंगल करि हों । जरासन्ध के सिर कों हरि हों ॥
सुनि कें दूत नृपनि ढिंग गयौ । हरि कौ सब सन्देस कहि दयौ ॥
तिन नृप छुटिबे की मन धरी । देखें मग कब ऐहें हरी ॥
मरुआ नर्त सु वीर. देस कुरु । नन्दी खानि गिरि खरिक ग्राम पुर ॥
दृख दवती सरसुती सुपार । देस मत्स्य पाञ्चाल अपार ।
सब तजि इन्द्रप्रस्थ कों आए । धर्मपुत्र सुनि अति हरषाए ॥
सुहृद पुरोहित संग सु लए । दुर्लभ हरि के सन्मुख गए ॥
गावत गीत बजत बाजे पुनि । संग में द्विजवर करत बेद धुनि ॥

सन्मुख जाय लए हरि ऐसें। प्राणनि कों सब इन्द्री जैसें॥
प्रीतम लखे बहुत दिन पाछें। प्रेम सों नृप हिय पिघल्यौ आछें॥
रमा निकेत अमल जदुराय। तिन सों नृप पुनि पुनि लपटाय॥
तन सुधि भूली अति सुख छायौ। पुलक भए दृग जल भरि आयौ॥
मामा के सुत श्री यदुराय। तिनसों भीम मिले मुसिक्याय॥
प्रेम माँहिं ते डूबे आछें। अर्जुन रोय मिले पुनि पाछें॥
पुनि माद्रीसुत आनन्द पाय। सुहृद कृष्ण सों लपटे धाय॥
अर्जुन तौ हरि सों लपटायौ। माद्री पुत्रनि सीस नवायौ॥
नमस्कार विप्रनि कों करी। वृद्धौ सन्माने सब हरी॥
कुरु सृंजय कैकय के नृप जे। मान पात्र हरि सन्मानें ते॥
सूत वन्दी मागध गन्धर्व। इत्यादिक सन्मानें सर्व॥
बीन बेन दर ढोल मृदंग। बजवत गावत नाचत संग॥
पुण्य श्लोक मुकट मनिहरी। द्विज वर तिनकी अस्तुति करी॥
पुनि सुहृदनि के संग पुर आए। गज मद करि मारग छिरकाए॥
रुचिर धुजा पूरन घट राजत। वंदन माल जरी की छाजत॥
अति सुन्दर सब ही नर नारी। किये सिंगार मनोहर भारी॥
धूप झरोखनि में है आवत। घर घर दीपदान छबि पावत॥
रूपे की सब छाति सुराजति। तिन पर हेम कलस छवि छाजति॥
नेंननि के देखनि लायक पिय। पुर में आए सुनति भई तिय॥
पतिन समेत टहल छिटकाईं। नृप मारग में धाईं आईं॥
देखनि की उत्कण्ठा भारी। सुधि नहिं सिथल केश पट सारी॥
असवारी की ओर सु भईं। तव तिय महलनि पर चढ़ि गईं॥
तियनि समेत कृष्ण जब आए। मन सों लपटि फूल बरसाए॥
तिरछें चितै मधुर मुसिक्यात। ताही करि पूछी कुसरात॥
तिय पिय के संग राजति ऐसें। ससि के संग तरैयां जैसें॥
तिनें देखि तिय बोलीं अहौ। इननि कहा कीनों किन कहौ।

जिनकों हँसि चितौंन लीला करि। नित आनन्द देत प्यारे हरि ॥
पुरजन मंगल वस्तुनि ल्यावें। ल्याय ल्याय हरि भेंट चढ़ावें ॥
तियनि सहित हरि महलनि गए। आनन्द सों दृग प्रफुलित भए ॥
त्रिभुवन ईस भतीजौ हरी। ताहि देख कुन्ती सुख भरी ॥
वधू सहित पलका सों उठि करि। छाती सों लगाय लीने हरि ॥
देव देव गोविन्द मुरारी। तिने ल्याय नृप महल मंझारी ॥
आनन्द माँहिं मगन अति भए। पूजा विधि हू भूलि सु गए ॥
हरि फूफी के पायनि परे। पूज्य तियनि प्रति यों अनुसरे ।
हरि कों नई द्रौपदी जैसें। बहिन सुभद्रा हू पुनि तैसें ॥
रुक्मिन सत्या भद्रा भाम। जांबवती कालिन्दी नाम ॥
शैव्या नाग्नजिती पिय प्यारी। बहुरि मित्रविन्दा सुखकारी ॥
औरौं जदुनन्दन तिय जितीं। कुन्ती की आज्ञा तें तितीं ॥
द्रुपद सुता ने सब सत्कारीं। पट भूषण दै भलें सिंगारीं ॥
सेना अनुग रु मंत्रिन संग। तियनि सहित हरि कों भरि रंग ॥
धर्म पुत्र ने भलें बसाए। दिन दिन नए सु लाड़ लड़ाए ॥
अर्जुन सहित कृष्ण जदुराई। खांडव बन दै अगिन धपाई ॥
वामें तें पुनि मयहिं छुटाय। नृप कों सभा दई बनवाय ॥
को इक मास तहाँ हरि रहे। धर्म पुत्र के प्रेम सु गहे ॥
रथ चढ़ि अर्जुन बहुरि मुरारि। सेना संग लै किये बिहार ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानिकृते
एकसप्ततितमोऽध्याय ॥७१॥

बहत्तरवाँ अध्याय

दोहा:—कह्यौ काज निज धर्मसुत, इह बहत्तरें ध्याय ॥
जरासंध दुर्जय हत्यौ, भीम द्वार जदुराय ॥१॥

श्री शुक उवाच-

द्विजवर क्षत्री वैश्य भ्रात मुनि। बन्धु पुरोहित जाति वृद्ध पुनि ॥

तब सुनि नृप हँसि रिस करि कही । मूढ़ तुमें जुध देहों सही ॥
तो तें मैं लरिहों न मुरारी । तू रन में है कायर भारी ॥
तें मथुरा निज पुर तजि दीनों । डरि समुद कौ सरनों लीनों ॥
बल रु वहिक्रम में लघु अर्जुन । यहौ युद्ध को उचित नाहिं पुनि ॥
इक मेरी सम भीम सु आहि । यह कहि बड़ी गदा दै ताहि ॥
दूजो गदा सु लीनों आपुन । पुर तें बाहिर निकसि गए पुनि ॥
तहाँ रन दुर्मद लरत सु भावें । वज्र समान गदानि चलावें ॥
फिरत दुहूँ घाँ सोहत ऐसें । रङ्ग भूमि में नट द्वै जैसें ॥
चट चट सब्द गदनि कौ ऐसौ । बज्रपात कौ होत है जैसौ ॥
जनों परस्पर गज मतवारे । लरत हैं दाँत सु बाजत भारे ॥
कटि कर पग उर कण्ठ मँझारी । लगि लगि गदा चूर भई भारी ॥
जैसें द्वै गज मद भरिपूर । लरत आक द्रुम होत सु चूर ॥
टूटें गदा निपट रिस भरें । वज्र समान मूकियनि लरें ॥
सम विद्यावल धीरज जातें । भयौ बरोबर युद्ध सु यातें ॥
सत्ताइस दिन बीते ऐसें । सोय रहे निसि मीत सु जैसें ॥
इक दिन हरि सों भीम उचारीं । मैं याहि जीति सकों न मुरारी ॥
जनम मरन हरि रिपु कौ जानि । जरा जिबायौ हू पहिचानि ॥
भीम माँहि निज तेज सुधारयौ । मारन ताहि उपाय विचारयौ ॥
पुनि भीमहिं दै सेन दिखाय । तिनुका लै चीरयौ जदुराय ॥
सो लखि भीम वली अति आहि । पांय पकरि धर पटक्यौ ताहि ॥
इक पग सों पग दाबि सु लयौ । एक पाय गहि खेंचत भयौ ॥
चीरि बीच में तें डारयौ ऐसें । शाखा द्रुम की गजबर जैसें ॥
दोऊ टूक बराबरि आहि । हाहाकार परयौ लखि ताहि ॥
हरि अर्जुन भीमहिं लपटाने । बहुरों भली भाँति सनमाने ॥
जन पालक प्रभु श्री भगवान । जिनकौ नहिंन होत अनुमान ॥
तासु पुत्र सहदेव जु आहि । मगध देस नृप कीनों ताहि ॥

जरासन्ध नृप रोके जिते । हरिनें बहुरि छुटाए तिते ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते द्वाशप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

तिहत्तरवाँ अध्याय

दोहा—उचितबस्तु दै नृप सबै, बिदा करे जदुराय ॥
तहाँ ते फिरि आवत भए, यह तिहत्तरें ध्याय ॥

श्री शुक उवाच

आठसै बीस सहस भूपाल । रन में तिंह जीते करि ख्याल ॥
गिरि व्रज गढ़ तें निकसे भारे । लनपट मैलै ह्वै रहे भारे ॥
भूखनि करि कृस सूकि रहे मुख । सेऐं बन्दीखाने के दुख ॥
लखे चतुर्भुज श्री घनस्याम । पीत बसन श्री बछ अभिराम ॥
कमलनैंन मुख हरष महान । मकराकृति कुण्डल पुनि कान ॥
गदा चक्र दर अम्बुज राजत । कौस्तुभमणि बनमाला छाजत ॥
मुकट हार अंगद रंग भीनें । छुद्रघण्टिका कडे नवीनें ॥
नैननि करि नृप जनों अचैहें । रसना करि जनु चाटि सु लेहें ॥
नाक सों सूँघि जाँयगे मानों । हाथनि सों मिलि जैहें जानों ॥
हरि के चरननि कों सब नए । पाप ताप दरसत भजि गए ॥
हाथनि जोरि भूप हे जिते । हरिहिं सराहन लागे तिते ॥
देव देव अव्यय दुखहारी । हम जग तें डरपे प्रभु भारी ॥
सीस नवावत सरन तिहारे । तुम हीं हमरे पालनहारे ॥
जरासन्ध कौ बुरौ न मानें । राजहंस तुव कृपा सु जानें ॥
राज बड़ाई मद मतवारे । ते नृप होत न कबूं सुखारे ॥
तुव माया करि मोहित चित्त । धन अनित्त कों मानत नित्त ॥
जैसें मृग तृष्णा कों आहि । बालक जल करि मानें ताहि ॥
हे प्रभु ऐसें हम अज्ञानी । माया ही सु वस्तु करि मानी ॥
प्रथम अज्ञ हम धन मद भरे । मृत्यु रूप तुम आगें खरे ॥

तिने न निर्दे मन में ल्याए। धन सुहेत जन घने सताए॥
काल चलाक बली अति भारी। सो तुमरौ तनु आय मुरारी॥
तिन हम धन तें भ्रष्ट सु कीने। अब हम भए गर्व करि हीनें॥
यह प्रभु कृपा तुमनि ही करी। अब तुव चरन सुमिर हैं हरी॥
रोग भरयौ यह देह हमरयौ है। तिन जा राज्यहिं भोग करयौ है॥
ता असत्य कों हम न चहत अब। सुनिबे ही के सुर्गादिक सब॥
तातें हम जु भ्रमत जदुराय। कछू उपाय सु देहु बताय॥
जातें चरन कमल तुम्हरे ये। कबहूं कहूँ न हम बिसरें ते॥
वासुदेव गोविन्द पियारे। जन दुखनासन नमो हमारे॥

श्री शुक उवाच—

वन्धन तें छूटे राजा जे। यों हरि अस्तुति करत भए ते॥
हरि सरनागत पाल दयाल। तिनसों बोले बचन रसाल॥
अहो भूप तुम भाषी जैसें। अब तें निश्चै ह्वै हैं तैसें॥
अखिल ईस मो माँहि तिहारी। होहु भक्ति अब दृढ़ करि भारी॥
भली भई तुम मोहि संभारयौ। पुनि तुम साँचौ बचन उचारयौ॥
राज बड़ाई मदहिं पाय करि। देखे हम उन्मत्त होत नर॥
रावन नर्कासुर पुनि बेंन। नहुष सहस्रबाहु दुख देंन॥
दैत्य देवता नरवर जिते। श्रीमद पाय भ्रष्ट भए तिते॥
देहादिकनि नष्ट कर मानों। बहुरों सब मो में रति ठानों॥
यज्ञनि करि पूजन विस्तरौ। प्रजहिं धर्म करि रच्छा करौ॥
प्राप्त होय पुनि दुख सुख जो जो। हरि इच्छा करि भोगहु सो सो॥
बहुरों सन्तानहिं उपजावौ। निसि दिन मो में मनहिं लगावौ॥
देहादिक सों प्रीति न करियै। आत्माराम होय व्रत धरियैं॥
आछें मो में मनहिं लगै हौ। अन्त समें तुम मोकों पैहौ॥

श्री शुक उवाच—

यह भूपनि सों कहि यदुराज। तिने बहुरि अन्हवावन काज॥

नर नारी हरि घने लगाए। जरासन्ध सुत पै पुजवाए॥
पटभूषन रु अरगजा माला। नृप उचित दीनें तिह काला॥
पुनि जिवाय सिंगारे आछें। ताम्बूलादि दए सब पाछें॥
हरि सन्माने नृप सोहत यों। वर्षा पाछें नभ नछत्र ज्यों॥
सुन्दर रथनि चढ़ाय सु हरी। निज देसनि कों बिदा सु करी॥
महामना श्रीकृष्ण छुटाए। ध्यावत हरिहिं घरहिं ते आए॥
सबसों कहे चरित हरि भले। हरि ही की आज्ञा में चले॥

श्री शुक उवाच—

जरासन्ध हति भीम द्वार हरि। तास पुत्र की पूजा लै करि॥
भीमसेन अर्जुन हरि आए। इन्द्रप्रस्थ ढिंग संख बजाए॥
दुष्ट जननि कों सब्द दुखारी। पुरजन तौ सुनि हरषे भारी॥
पूरनकाम जुधिष्ठर लही। जरासन्ध मारयौ हरि सही॥
भूपहिं नए भीम हरि अर्जुन। अपनों चरित सुनायौ सब पुनि॥
सुनि नृप कृपा कछू न बखानी। प्रेम सों दृग भरि आयौ पानी॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानिकृते
त्रिशप्ततितमोऽध्याय॥ ७३॥

चौहत्तरवाँ अध्याय

दोहा—जज्ञ माँहिं सबके पहल, पूजे हैं यदुराय।
सिसुपालहिं मारयौ बहुरि, चौहत्तर के ध्याय॥ १॥

श्री शुक उवाच—

जरासन्ध बध सुनि नृप सही। हरि प्रभाव लखि हरिसों कही॥
जे त्रिभुवन गुरु ईसुर भारी। ते तुव आज्ञा करत मुरारी॥
ते तुम व्यापक पङ्कज नैंन। हमरी आज्ञा करत सुखेंन॥
सो तुमकों अनुचित है भारी। हम अभिमानी तुच्छ मुरारी॥
तुम परमातम एक ब्रह्म हरि। तुमरो उत्तम न्यून कर्म करि॥
बढ़ै घटै नहिं तेज सु ऐसें। हे प्रभु हरि दिनकर कौ जैसें॥

अहो अजित हे माधव जदुपति। मेरी तेरी में तू ये मति॥
हे प्रभु हो तपसुनि के माँहीं। तुमरे भक्तनि कें होय नाँहीं॥

श्री शुक उवाच—

यह कहि नृप हरि कौ मत पायौ। जज्ञहिं उचित बंस तौ आयौ॥
तब वेदज्ञ विप्र सुख भरे। यज्ञ निमित्त धर्म सुत वरे॥
वीरसेंन मधु छंद अकृत व्रत। बीतहोत्र कृत भार्गव जैमिन॥
कस्यप धौम्य अथर्वा आसुर। विश्वामित्र वशिष्ट परासर॥
च्यिमन कन्व मैत्रेय कवषात्रित। सुमति सुमन्तु भरद्वाजासित॥
बामदेव वैसंपायन पुनि। व्यास गर्ग गौत्तम रु राम मुनि॥
भीष्म द्रोन कृपादिक जिते। जज्ञ निमित्त बुलाए तिते॥
पुत्र सहित धृतराष्ट्र पधारे। आए विदुर महामति प्यारे॥
ब्राह्मण छत्री वैस्य शूद्र पुनि। सब जज्ञहिं देखनि आए सुनि॥
औरौ बहु राजा तहाँ आए। मंत्रनि संग परम छवि छाए॥
बहुरों द्विजनि-यज्ञ की धरनी। स्वर्ण हलनि जोती सुभ करनी॥
तहाँ जथा विधि नृप जो आहि। दीक्षा दई द्विजनि ने ताहि॥
सोंनें के सब ठाठ भए यों। पहल बरुन के यज्ञ माँहिं ज्यों॥
लोकपाल इन्द्रादि जितेक। ब्रह्मा सिव संग अनुग अनेक॥
विद्याधर गन्धर्व सिद्ध मुनि। यच्छ रच्छ किन्नर चारन पुनि॥
खग अरु उर्ग-तियनि जुत राजा। बुलए सब आए सुखकाजा॥
कृष्ण भक्त कौ जज्ञ जु आहि। सबनें पूरन मान्यौं ताहि॥
सुर समान जाज्ञकजन जिते। महाराज कों विधि सों तिते॥
जजन करावत भए सु ऐसें। वरुनहिं अहो देवता जैसें॥
सोमबल्ली कूट निदि नरपति। महाभाग सब सन्मानें अति॥
पहल सभा में पूजा लायक। लगे बिचारन सब ही नायक॥
निश्चै काहू पै होत न जब। श्री सहदेव सु बोलि उठे तब॥
जदुपति अच्युत श्री भगवान। पहलें ये ऊ पूज्य महान॥

देस देव धन कालादिक जे। निश्चैं सब इनके स्वरूप ते॥
आहुति अगिन मंत्र जग जज्ञ। शांख्ययोग ये ई सर्वज्ञ॥
येई जग रचि पालें हरें। अद्वय एक अजन्मा परें॥
अहो सभापति जास दया करि। नाना विधि के कर्म साधि नर॥
धर्मादिक मङ्गल जे चार। पाय बहुरि सुख करत अपार॥
तातें बड़े कृष्ण नाहिन जौ। यातें पहल इन्हीं कों पूजौ॥
सहित अपुनपौ जन हें जिते। इनके पूजें पूजें तिते॥
पूरन सांत सबनि हितकारी। भेद दृष्टि करि रहित मुरारी॥
चाहै अनन्त दान फल जौ पै। पहल इन्हीं कों पूजै तौ पै॥
हरि प्रभाव सहदेव सु जानि। मौंन गहि गयौ इती बखानि॥
सुनि सब साधु सु हरषे भारे। भली कही यों बहुरि पुकारे॥
धर्म पुत्र द्विज की बानी सुनि। सभा सदनि कौ मतौ जानि पुनि॥
हरषि प्रेम विह्वल ह्वै गयौ। प्यारे कृष्णहिं पूजत भयौ॥
जग पावन हरि पद जल आहि। सहित कुटंब धरयौ सिर ताहि॥
सुन्दर पट भूषन पहिराए। देखि न सके नेंन भरि आए॥
जन लखि हरषि फूल बरसावत। जै जै कहि हरि पग लपटावत॥
हरि गुण सुनि सिसुपाल रिसायौ। बहुरि तास पूजन नहिं भायौ॥
उठ करि निर्भै भुजा उचाय। बौल्यौ कर्कस हरिहिं सुनाय॥
काल दुरत्यय ईस बखान्यों। यह श्रुति बचन साँच अब जान्यों॥
जातें वृद्धनि हूँ की मति जो। बाल वचन वस होंन लगी सो॥
तुम सब पूज्यपात्र कों ज़ानों। बालक कौ भाष्यौ जिन मानौ॥
तुम से समासदनि के माँहीं। पहलें कृष्ण पूज्य है नाँहीं॥
तुम लोकेसनि पूज्य परम मुनि। तप विद्या व्रत अतिधारी पुनि॥
ज्ञान सों आप पाप सब जारे। ये गुवालकुल दूषन भारे॥
पहलें पूजन योग्य न ऐसें। यज्ञ भाग कौ कउआ जैसें॥
वर्नाश्रम कुल करि जो हीन। सब धर्मनि करि बाहिर कीन॥

गुणनि हीन पुनि स्वेच्छाचारी। सो क्यों पूजन जोग अनारी॥
इनके कुलहिं जजाति श्राप दिय। तातें ये साधुनि सुनिन्द किय॥
सदा करत मदिरा कौ पान। सो कैसें कें पूज्य महान॥
ब्रह्म रिषिन करि सेबित देस। त्यागि दए ये चोर नरेस॥
जाय समुद में कियौ निकेत। साधु प्रजनि कों पीड़ा देत॥

श्री शुक उवाच—

ऐसे भाषे बचन अमङ्गल। नष्ट भयौ जाकौ सब मङ्गल॥
सुनि हरि कछू न बोले ऐसें। सिंह स्यार बानी सुनि जैसें॥
दुःसह हरि की निन्दा आहि। सबै सभासद सुनिकें ताहि॥
कान मूँदि तहाँ ते उठि गए। श्राप बहुत सिसुपालहिं दए॥
उठे न जो हरिजन निन्दा सुनि। सुकृत खोय सो जाय नरक पुनि॥
तब पाण्डब औरौ बहु राजा। सिसुपालहिं मारन के काजा॥
शस्त्रनि लै उठि ठाढ़े भए। हरि निन्दा सुनि रिस में छए॥
ढाल खड्ग सिसुपाल उठायौ। हरि पछिन मन में नहिं ल्यायौ॥
तब उठि अपने भक्त निबारि। क्रोध माँहिं भरि गए मुरारि॥
सन्मुख रिपु आयौ जो धायौ। तास चक्र करि सीस गिरायौ॥
सिसुपालहिं मारयौ भगवान। भयौ कुलाहल शब्द महान॥
पुनि ताके संगी नृप जिते। जियौ चहत भजि गए सु तिते॥
तास देह तें प्रगटी जोति। सबके देखत जगमग होति॥
हरि के माँहिं समानी ऐसें। नभ तें गिरि तारौ धर जैसें॥
तीनि जन्म लों बैर बुद्धि करि। नृप सिसुपाल ध्यान हरि कौ धरि
तन्मै होय गयौ सो यातें। कारन सबहिं भाव ही जातें॥
होतादिक रु सभासद जिते। बिधि सों नृप सन्माने तिते॥
बिप्रनि बिपुल द्रव्य नृप दीनों। पुनि जज्ञांत स्नान लै कीनों॥
योगेसुर ईसुर भगवान। सिद्ध कियौ नृप जज्ञ महान॥
सुहृदनि बहुत प्रार्थना करी। कछुक मास रहे तहाँ हरी॥

धर्मपुत्र के मन नहिं जद्दिप। हरि तिन सों आज्ञा लै तद्दिप॥
निज सेना लै तियनि समेत। निजपुर गमने रमानिकेत॥
श्री बैकुण्ठ पारषद दोई। सनकादिकनि श्राप सों सोई॥
हे नृप पुनि पुनि जन्म सु पायौ। तिनकों हम यह चरित सुनायों॥
राजसूय कौ अन्त स्नान। करिकें धर्मपुत्र दै दान॥
द्विज रु नृपनि मधि सोह्यौ ऐसें। इन्द्र देवतनि के मधि जैसें॥
सुर नर बहुरों खेचर जिते। धर्मपुत्र सन्मानें तिते॥
हरि कों यज्ञ समेत सराहत। निज घर गमने निपट उमाहत॥
पापी कुलहिं काढ कलिरूप। ऐसौ जो दुर्योधन भूप॥
तापै देखि सही नहिं गई। धर्मपुत्र सम्पति छवि छई॥
यह सिसुपाल सीस कौ हरिबौ। नृपनि छुटाय जज्ञ कौ करिबौ॥
कृष्ण चरित यह जो जन गावै। सो सब पापनि तें छुटि जावै॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानिकृते
चतुःशप्ततितमोऽध्यायः॥ ७४॥

पचहत्तरवाँ अध्याय

दोहा:—पचहत्तर के ध्याय में, बहुरि यज्ञ अस्नान॥
जल थल में भ्रम तें कहत, दुर्योधन अपमान॥ १॥

श्री राजोवाच—

अजातशत्रु के जज्ञ माँहि मुनि। तुष्ट भए नर देव ऋषी पुनि॥
दुर्योधन ही दुखित भयौ क्यों। यह हमसों कहियै प्रभु है ज्यों॥

श्री शुक उवाच—

अहो पितामह महामना तुव। तिन कीनों जो जज्ञ राजसुव॥
प्रेम सों बँधे बन्धु हे जिते। तेई तहाँ टहलुवा तिते॥
भीम रसोई के अधिकारी। दुर्योधन धन के भण्डारी॥
समाधान सहदेव सु करें। नकुल ल्याय सब वस्तुनि धरें॥
सबकी सेवा करें सु अर्जुन। पाय धुवइया कृष्णचन्द्र पुनि॥
पारस करै द्रौपदी नारि। दान देंन में करन उदार॥

सात्यक 'कृतवर्मा विदुरादि । पुनि वाल्हीक पुत्र भूयादि ॥
पुनि सन्तर्दनादि हे जिते । नृपहिं रिझावन लगि गए तिते ॥
जाजक ज्ञानी द्विज रु सभापति । दई दछना सन्माने अति ॥
जब सिसुपाल कृष्ण पद पाए । तब करि यज्ञ गंग सब न्हाए ॥
ढोल नगारे संख मृदङ्ग । स्नानोत्सव में बजे अभंग ॥
नाचें नटी गवैंया गावें । बेनु बीन धुनि घन मंडरावें ॥
हय गय रथ प्यादे सिंगारे । फहरत धुज पताक अति भारे ॥
पुर तें निकसे सबही भूप । सोहत कञ्चन माल अनूप ॥
यदु कैकय कुरु कौसल देस । सृंजय पुनि कंबोज नरेस ॥
निज फौजनि करि धरहिं कँपावत । आगें धर्मपुत्र छवि पावत ॥
संग सभापति जाचक हू पुनि । द्विज वर बहुतै करत बेद धुनि ॥
बहुरि पितर गन्धर्व देव मुनि । बरसत फूल करत अस्तुति पुनि ॥
पट भूषन सुगन्ध माला करि । सबै अलंकृत हैं नारी नर ॥
त्रिविधि रंग सींचत लपटावत । करत विहार परम छवि पावत ॥
दधि जल हरद तेल पुनि केसरि । वारमुखी इनकों मिलाप करि ॥
निज प्रीतम के मुख लपटावें । पियहिं लगाए अपु सुख पावें ॥
रानी रथ डोलनि चढ़ि चलीं । चहुँ घाँ फौज भटनि की भलीं ॥
मानों स्वर्ग माँहि सुरतीय । चढ़ी विमाननि पर कमनीय ॥
मामा के सुत सखा जितेक । तिनकों सींचत भए तितेक ॥
ते तिय लाज सहित मुसिक्यांई । विकसत वदन परम छवि छाईं ॥
बहुरो देवर मीतरु जिते । तिय पिचकारिन भिज गए तिते ॥
भीजि बसन तन सों लगि गए । कटि कुच ऊरू झलकत भए ॥
आनन्द पाय खुलि गए केस । तिनतें बरषत फूल सुदेस ॥
देखि तियनि कौ रुचिर विहार । कामीजन भए छुभित अपार ॥
रथ पर चढ़े युधिष्ठर वीर । जुरे सुन्दर हय कनक जंजीर ॥
तियनि सहित नृप सोहत ऐसें । राजसूय कर्मनि करि जैसें ॥

पुनि पत्नी संजाज जज्ञवर। तास स्नान विधि द्विज करायकरि॥
बहुरि द्रोपदी जुत छवि छाए। गंगामर्धि नृपराज न्हवाए॥
बजे स्वर्ग में दुन्दुभि भारे। पृथ्वी तल में बजे नगारे॥
हे नृप देव पितर मानव मुनि। फूलनि की वर्षा कीनी पुनि॥
बर्नाश्रम के जनता पाछें। गंगा मद्धि अन्हाए आछें॥
जातें बेगि पातकी हू जन। छुटि पापनि तें शुद्ध होय मन॥
धर्मपुत्र पुनि वस्त्र नवीन। पहरि अलंकृत होय प्रवीन॥
जाजक विप्र सभासद जिते। पट भूषन दै पूजे तिते॥
ज्ञाति बन्धु नृप मित्र बखानें। सब हरि भक्त भूप सनमानें॥
झगा पाग मनि कुण्डल हारें। पहरें नर सब सोहत भारें॥
कनक मेखला पहरें नारी। कानति सोहत कुण्डल भारी॥
जाजक भूप ब्रह्मवादी मुनि। ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र पुनि॥
देव पितर रिषि जननि समेत। लोकपाल अनुचरनि सहेत॥
पूजा लै पुनि आज्ञा पाय। निज निज धाम गए हरषाय॥
हरि कौ दास राजरिषि भूप। राजसूय तिंह यज्ञ अनूप॥
ताहि सराहि अघात न ऐसें। हे नृप अमृत पियें नर जैसें॥
बहुरों सुहृद बन्धु जन जिते। धर्मपुत्र नें राखे तिते॥
करि सनेह राखे जदुराय। नेंकु न हरि कौ विरह सुहाय॥
हरि हू नृप कौ भलौ मनावन। रहे तहाँ प्रभु सुख उपजावन॥
सांबादिक यादव संग जिते। पठै दए द्वारापुर तिते॥
दुस्तर सिंधु मनोरथ आहि। या विधि धर्मपुत्र नृप ताहि॥
छिन में ही हरि करि तरि गए। चिन्ता गई परम सुख छए॥
हरि ही में मन जा राजा कौ। इक दिन महलनि माँहिं सु ताकौ॥
लखि ऐस्वर्य तप्यौ दुर्योधन। राजसूय करि जरत हुतौ मन॥
नर सुर असुरन की विभूति जे। मय तिन महलनि माँहिं रचीं ते॥
सेवत पतिन द्रोपदी नारि। तप्यौ सुजोधन ताहि निहारि॥

कबहूँ गिरि पै कबहूँ जल में। कबहूँ नभ में कबहूँ थल में॥
थिर नहिं रहै भ्रमें सो ऐसें। फिरत है जरतट माँही जैसें॥
सेना सहित साल्व जो आहि। जहाँ जहाँ जादव देखें ताहि॥
तहाँ तहाँ अग्नि समान सु बान। तानत आहि से दुसह महान॥
तिन करि पुर भयौ निपट दुखारौ। मोहित भयौ साल्व हू भारौ॥
साल्व फौज जे सस्त्र चलाए। तिन करि जादव पीड़ा पाए॥
ऐ पै रन छोड़यो नहिं याते। दोऊ लोक जीत्यो चहें जातें॥
आहि साल्व दीवा नघुमान। पहलें पीड़ित भयौ महान॥
पुनि प्रद्युम्न पास सो आयौ। लोह - गदा चलाय किलकायौ॥
सु तौ गदा छाती में मारी। तब प्रद्युम्न दुखित भए भारी॥
पुनि दारुक सुत धर्महिं जानें। रन तें हाँकि लियौ रथ तानें॥
इक मुहूर्त्त पाछें सुधि आई। तब रथवानहिं बात सुनाई॥
अहो तें निन्दक कर्म बड़ ठान्यों। रन तें बाहिर मोकों आन्यों॥
जदुकुल में मो बिन अस नाँहीं। जो भाज्यौ सुनियें रन माँहीं॥
मन करि तू सु नपुंसक यातें। रन तें मोहि निकास्यौ जातें॥
धर्म जुद्ध तें निकस्यो मैं जो। राम स्याम के निकट जाय सो॥
हे सुत कहा किधौ कहियै अब। तातहिं बात कहा कहिहों तब॥
हँसि भौजाई कहि हैं अहौ। रन में कहा भई किन कहौ॥

सूत उवाच—

हे चिरजीव धर्म में जान्यों। तब तुमकों रन में ते आन्यों॥
जौ पै क्लेश रथी कों परै। तास सारथी रच्छा करै॥
क्लेश सारथी कों होय जो पै। रच्छा करै रथी ही तौ पै॥
तातें रिपु ने गदा चलाई। ताकरि तुमें मूरछा आई॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानिकृते
षटशप्ततितमोऽध्याय ॥ ७६ ॥

सतहत्तरवाँ अध्याय

दोहा—मायावी बड़ साल्व जो, हत्यौ ताहि हरि आय।
पुनि पुर कौ चूरन कियौ, सतहत्तर के ध्याय ॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

पुनि प्रद्युम्न आचवन कियौ। बकतर पहरि धनुष कर लियौ ॥
कही सूत सों लै चलि तहाँ। वीर महान द्युमान है जहाँ ॥
पुनि प्रद्युम्न फौज निज देखी। रिपु द्युमान करि पीड़ित पेखी ॥
तब मुसिक्याय द्युमान जु आहि। आठ सरनि करि मारयौ ताहि ॥
चारि बान करि वाहन छेदे। इक सर करि सु सारथी भेदे ॥
दोय सरन करि धनुषहिं भेद्यौ। इक सर करि द्युमान सिर छेद्यौ ॥
गद सात्यकि सांबादिक जिते। साल्व फौज मारत भए तिते ॥
सबही के माथे कटि गए। समुद माँहि ते गिरत सु भए ॥
यों जादव रु साल्व की सेंना। लरत परस्पर कछू गनें ना ॥
बीस सात दिन राति मँझारी। भयौ भयानक युद्ध सु भारी ॥

श्री शुक उवाच—

इन्द्रप्रस्थ कों गए मुरारि। जज्ञ माँहिं सिसुपालहिं मारि ॥
कुन्ती पुत्रनि सों बिनती करि। असगुन देखत पुर आए हरि ॥
मग में कृष्ण कही यह बात। हम ह्याँ आए दोऊ भ्रात ॥
निश्चें हमरी पुरी जु आहि। चैद्य पछि के दुखवत ताहि ॥
पुनि निज जन हरि व्याकुल देखि। सहित बिमान साल्व कों पेखि ॥
भैयहिं पुर रछ्या में राखे। बचन सारथी सों ये भाषे ॥
हे दारुक मम रथ जो आहि। वेगि साल्व ढिंग लै चलि ताहि ॥
मन में जिन कछु संभ्रम धारौ। साल्व आहि मायावी भारौ ॥
हाँकि दयौ रथ यह बानी सुनि। रन पैठत हरि सबनि लखे पुनि ॥
देखि साल्व की देह कँपानी। ये बरछी दारुक कों तानी ॥
दसौ दिसा में करी उजारी। नभ तें टूटी आई भारी ॥

ताकों हरि सर तानि अचूक। करी बीच ही में सौ टूक॥
सोरह सर करि साल्वहि मारी। पुर जों भ्रमत अकास मँझारी॥
ताहि सरनि करि छायौ ऐसें। रवि किरननि करि गगनहिं जैसें॥
साल्व हूँ अति अचरज उपजायौ। शर करि हरि कौ धनुष गिरायौ॥
हाहाकार भयौ बहु भारी। साल्व गरजि करि हरिहिं उचारी॥
हम देखत तें सखा भ्रात की। तिया हरी है अहो पातकी॥
तू प्रमत्त पुनि सभा मँझारी। हमरौ मारयौ मीत अनारी॥
तू रिपु जीति भरयौ अभिमान। आजु तोहि तीक्षण सर तानि॥
पठऊँ तहाँ न बगदै फेरि। छिन ठाढ़ौ रहि करों न फेर॥

श्री भगवानुवाच—

अहो मूढ़ तू व्यर्थ बखानें। ढिग आई नहिं मीचहिं जानें॥
सूर सु अपनें बलहिं दिखावें। झूँठी बात न कभूं बनावें॥
यह कहि गदा भयानक भारी। तास ही कटे तर हरि मारी॥
रुधिर बोंन करि कँप्यौ महान। बहुरों ह्वै गयौ अन्तर्धान॥
इक जन आय मुहूरत पाछें। हरि के पाय लपटि गयौ आछें॥
बहुरि राय के बचन सुनायौ। मोहि देवकी मात पठायौ॥
महाबाहु हे कृष्ण मुरारी। हे पित वत्सल हे सुखकारी॥
बाँधि साल्व तुव पित कों ऐसें। लै गयौ बधिक पसू कों जैसें॥
अप्रिय सुनि के हरि बिलखाने। केवल नर लीला लपटाने॥
बहुरि स्नेह सों भीजि दया करि। प्राकृत नर ज्यों बोले श्री हरि॥
सुर असुरनि करि राम अजीत। सावधान ताहि क्यों करि जीत॥
साल्व तुच्छ बाँध्यौ पित मेरौ। विधि तौ है बलवान घनेरौ॥
हरि यों कहत साल्व पुनि आयौ। इक वसुदेव बनाय सु ल्यायौ॥
हरिहिं कही यह पिता तिहारौ। जा हित तुम प्राणनि कों धारौ॥
देखि मूढ़ तुव देखत मारत। जौ समर्थ तौ क्यों न उधारत॥
यों कहि तास काटि सिर लयौ। मायावी चढ़ि पुर नभ गयौ॥

महानुभाव ज्ञान घन हरी। सुजन सनेह माँहिं मति परी॥
बहुरि आसुरी माया जानी। साल्व पसारी मय करि ठानी॥
पुनि हरि कछू न देख्यौ ऐसें। जागि परें तें सुपनों जैसें॥
पुनि रिपु पुर नभ फिरत निहारयौ। ताहि मारिबे कों मन धारयौ॥
हे नृप यों कोईक कहत मुनि। बचन विरुद्ध ते न जानत पुनि॥
अज्ञानि माँही उदै होत जे। सोक मोह भय स्नेह कहाँ ते॥
कहाँ विज्ञान ज्ञान-घन रूप। सदा अखण्डित ईस अनूप॥
जा पद सेवन तें लहि विद्या। दूरि करत मुनि परम अविद्या॥
पुनि पवें अनन्त निज ईसहिं। कैसें मोह होय जगदीसहिं॥
साल्व अनेक सु शस्त्र चलाए। सर करि हरि अमोघ बल छाए॥
कवच धनुष सिर मनि हरि लई। एक गदा पुर कें पुनि दई॥
पुर सौ टूक होय जल गिरयौ। साल्व गदा लै हरि दिसि फिरयौ॥
गदा सहित भुज ताकी हरी। छेदि सेल सों न्यारी करी॥
मारन ताहि, चक्र हरि लयौ। जनु उदयाचल रवि छवि छयौ॥
ता करि मायावी को सिर जो। कुण्डल मुकट सहित काटयौ सो॥
इन्द्रवृत्र-सिर ज्यों सु बज्र करि। हाय हाय सब करत भए नर॥
पुर समेत धर साल्व परयौ जब। स्वर्ग माँहिं दुन्दुभि बाजी तब॥
लेन मीत को बैर रिसायौ। दन्तवक्र पुनि धायौ आयौ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
एकशप्ततितमोऽध्याय ॥७७॥

अठहत्तरवाँ अध्याय

दोहा—दन्तवक्र रु बिदूरथहिं, मारयौ है जदुराय॥
संकर्षन सूतहिं हत्यौ, अठहत्तर केध्याय॥ १॥

श्री शुक उवाच—

साल्व पौण्ड्र सिसुपाल मरयौ जब। दुर्मति तिनकी क्रिया करन तब॥
इकलौ बली गदा लै धायौ। पायनि धरहि कँपावत आयौ॥

बेगि ही आवत ताहि निहारि। रथ तें कूदे कृष्ण मुरारि॥
लै करि गदा सु रोक्यौ ऐसें। रोकत मेंड समुद को जैसें॥
दुर्मद गदा उठाय सुनाई। भली भई तें दई दिखाई॥
रे हरि हत्यौ चहत तू मोही। मामा सुत मय मित्रनि द्रोही॥
आज बज्र सम गदा जु मेरी। ताकरि मीच होयगी तेरी॥
बन्धु रूप तू बैरी ऐसौ। तन के माँहि रोग होय जैसौ॥
अरे मूढ़ तोकों मारों जब। मित्रनि सोंऊ रन ह्वै हों तब॥
यों कहि हरि कों पीड्यौ ऐसें। अंकुस सों हाथी कों जैसें॥
बहुरि सिंह सौ गरज्यौ भारी। ईस सीस में गदा सु मारी॥
गदा लगेंउ हटे न मुरारी। पुनि निज गदा तास उर मारी॥
गदा लगें छाती फटि गई। मुख तें वृष्टि रुधिर की भई॥
बिखरे हाथ पाय पुनि केश। मरयौ धरनि पर परयौ नरेस॥
ताके तन की सूछम जोति। सबके देखत जगमग होति॥
हरि ही माँहि समानी ऐसें। अहो सिसुपाल भूप की जैसें॥
ताकौ भ्रात विदूरथ गायौ। भैया मरें निपट दुख पायौ॥
आयौ हरि के मारन हेत। ढाल खड़ग कर स्वासनि लेत॥
ताकों आवत देखि मुरारी। तान्यों पेंनों चक्र सु भारी॥
ता करि कृष्ण तास कौ सिर जो। कुण्डल मुकट सहित काटयौ सो॥
ऐसें साल्वहिं नगर समेत। दन्तवक्र कों भ्रात सहेत॥
औरनि कों दुर्जे जे भारे। ते हरि जू नें छिन में मारे॥
सुर नर पितर सिद्ध चारन मुनि। विद्याधर गन्धर्व उरग पुनि॥
जच्छ अप्सरा किन्नर गावत। बहुरि फूलि फूलनि बरसावत॥
जदुवर संग कृष्ण छवि छाए। सिंगारें निज पुर में आए॥
यों योगीस ईस हरि प्यारे। पसुनि दिखात सु जीते हारे॥
कौरव पाण्डव लरिबे कौ पुनि। श्री संकर्षन जू उद्यम सुनि॥
बीच करावन की मन में धरि। गए तीर्थ जात्रा कौ मिस करि॥

जा प्रभास में गोता लीनों। देव पितर रिषि तर्पन कीनों ॥
बहुरि बहुत द्विजवर संग भले। सरस्वती के समुहें चले ॥
तहाँ पृथूदक तीर्थ अनूप। ब्रह्म तीर्थ बहुरों त्रितकूप ॥
चक्र विशाल सुदर्शन विन्दु सर। पश्चिम बहती सरस्वती वर ॥
गंगा जमुना के पुनि जिते। बल जू तीरथ कीने तिते ॥
बहुरि गए नैमिषवन जहाँ। रिषि सब जज्ञ करत हैं तहाँ ॥
दीरघ जाजक रिषिवर जिते। रामहिं देखि उठत भए तिते ॥
जथा जोग पुनि पूजन कीनों। नमस्कार करि आसन दीनों ॥
संग राम जू के हे जिते। भली भाँति सन्माने तिते।
व्यास सु सिष्य रोमहर्षण जो। बैठ्यौ देख्यौ संकर्षण सो ॥
विनैं करी न उठ्यौ जोरे कर। सूत जाति बैठ्यौ ऊँचे पर ॥
बल रिसाय भाषी पुनि ऐसें। सूत मुनिन तें ऊँचे कैसें ॥
धर्मपाल हम नीचें जातें। यह दुर्मति वध लायक तातें ॥
भगवद्रूप महा मुनि व्यास। तिनकौ यह सु होय करि दास ॥
धर्मशास्त्र इतिहास पुरान। पढ़ि लीने सब शास्त्र महान ॥
जो अजितेन्द्री नें नहिं जाने। वृथा आपकों पंडित माने ॥
ताकों ये नहिं सोहत ऐसें। अजित मना नट कों गुण जैसें ॥
पाखण्डी पापिन कों मारन। हम अवतार कियौ धर धारन ॥
जदिप दुष्ट वध तें श्रीराम। भए निवृत्त परम अभिराम ॥
तदिप होनहार नहिं टर्यौ। कर ही के कुस करि सिर हर्यौ ॥
हाहाकार करन लागे मुनि। सब ही के मन दुखित भए पुनि ॥
संकर्षन सों सबनि उचारी। हे प्रभु पाप कियौ तुम भारी ॥
कथा सुननि हम हे जदुनन्दन। इन्हें दयौ व्यासासन बन्दन ॥
आयु निरोग दई पुनि तौलों। हमरौ जज्ञ पूरन होय जौलों ॥
तुमनि ब्रह्म वध कियौ अजानें। वेद हू ईसहिं दंड न ठाने ॥
अहो लोकपावन भगवान। यह सु ब्रह्म वध पाप महान ॥

प्रायश्चित्त आप करिहौ जौ। आगे और लोक करिहों तौ॥

श्री राम उवाच—

लोक हेत हम करिहें अहौ। पहले करिवे है सो कहौ॥
बल इन्द्री आयुदहि पुनि। याकी जैसी चहियै हे मुनि॥
तैसी हमें कहौ नहिं टरिहों। सिद्ध जोगमाया करि करिहों॥

ऋषय ऊचु—

तुमरौ बल पुनि शस्त्र प्रहार। बहुरों हे प्रभु वचन हमार॥
सब ही सिद्ध होंय ये जैसे। हे जदुनन्दन करियै तैसे॥

श्री भगवानुवाच—

आपही पिता होत सुत रूप। यह सुवेद कौ वचन अनूप॥
तातें कथक होय याकौ सुत। बल इन्द्री अयुदा करि जुत॥
और कहा कारज है हे मुनि। कहियै हमें सोऊ करिहें पुनि॥
बिन जाने भयौ पाप सु भारौ। ताकौ प्रायश्चित विचारौ॥

ऋषय ऊचु—

इल्वल कौ सुत बल्वल नाम। दानव घोर अहो श्रीराम॥
पर्व पर्व में हमें सतावै। विष्टा मूत्र मांस बरसावै॥
रुधिर राध मदिरा बरसाय। दूषित करै जज्ञ यदुराय॥
ता पापी कों हतियै सही। हमरी सुश्रूषा है प्रभु यही॥
पुनि इक वर्ष मनहिं बस कीजै। भरतखण्ड परिकर्मा दीजै॥
सबै तीरथनि माँहि अन्हैहौ। तब तुम निपट शुद्ध ह्वै जैहौ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते

अष्टशप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

उन्नासीवाँ अध्याय

दोहा—बल जू ने बल्वल हत्यौ, उन्नासी के ध्याय।
तीर्थ स्नान करि सूत की, हत्या दई गमाय॥ १॥

श्री शुक उवाच—

हे नृप बहुरि पर्व आयौ जब। बड़ी भयानक ब्यार चली तब॥
धूरि उड़ी दुर्गन्ध सु छई। मांसादिक की बर्षा भई॥
जज्ञस्थान में सोऊ देख्यौ। धरें त्रिशूल बड़ौ तन पेख्यौ॥
काजर सौ कारौ भयकारी। तप्त ताम्र से बार सु भारी॥
तब रिपु नासन हल मूसल जे। बल मन किये तुरत आए ते॥
हल करि खेंचि लियौ नभचारी। पुनि बल मूसल की सिर मारी॥
द्विज द्रोही कौ सिर फटि गयौ। बोंन रुधिर कौ करत सु भयौ॥
व्याकुल ह्वै कि गिरयौ धर ऐसें। दियें बज्र के पर्वत जैसें॥
अस्तुति बल की करत भए मुनि। सत्य आसीरवाद दीनें पुनि॥
पुनि अवषेक कियौ लौ ऐसें। करयौ वृत्रहा कौ सुर जैसें॥
बहुरि वैजयंती जो दाम। जामें अमल कमल अभिराम॥
निपट अनूप बसन सुन्दर पुनि। श्री रामहिं सब देत भए मुनि॥
पुनि आज्ञा लै विप्रनि साथ। न्हाए नदी कौसिका नाथ॥
गए सरोवर कों पुनि राम। जहाँ प्रगटयौ सरजू अभिराम॥
सरजू के प्रवाह संग जाय। श्री प्रयाग में राम अन्हाय॥
देवादिक कौ तर्पन करयौ। पुनि पुलहाश्रम कों मन करयौ॥
नदी गोमती गण्डकी सु वर। न्हाय विपासा गए सोन सर॥
पूजे पितर गया में जाय। गंगासागर संगम न्हाय॥
पुनि महेन्द्रगिरि माँहि निहारि। परसराम पूजे करि प्यार॥
गए सप्त गोदावरी सु बल। वेना पंपा भीम रथी बल॥
स्वामि कार्त्तिकहिं लखि हरषाए। बहुरि सिवालय श्रीगिरि धाए॥
पुनि द्रावड़ देस बेंजा देख्यौ। पुण्य श्रेष्ठहि वङ्कट गिरि पेख्यौ॥
पुरी कामकोष्टी कांती भल। कावेरी सरिता देखी बल॥
महापुण्य श्री रंग सु धाम जहाँ श्री रंगनाथ अभिराम॥
लख्यौ रिषभ गिरि हरी छेत्र भल। लखी दक्षना मथुरा हू बल॥

सेतबन्ध पुनि गमने राम। महा पाप नासक जो धाम॥
तहाँ राम विप्रनि कों दीनी। दस हजार गैया सु नवींनी॥
कृत माला रु ताम्रपंनी भल। होय मलय गिरि गए कुलाचल॥
तहाँ बैठे देखे अगस्त मुनि। तिने नाय सिर करि अस्तुति पुनि॥
आज्ञा लै पुनि आसिष पाय। दछन समुद्र गए हरषाय॥
तहाँ जाय देखी श्रीराम। दुर्गादेवी कन्या नाम॥
बहुरि फाल्गुन पुर कों देख्यौ। पचाप्सरा सरोवर पेख्यौ॥
जहाँ नित राजत त्रिभुवनराय। दई सहसदस गाय अन्हाय॥
केरल औत्रि गर्त्तक देस। तिनकों लांघि सुराम सु देस॥
लख्यौ गोकर्न नाम सिव धाम। जहाँ राजत सिव जू अभिराम॥
लखि देवी द्वैपायनी सु भल। सूर्जारक छेत्रहिं गमने बल॥
नदी पयोष्मी तापी नाम। निर्विन्ध्या में न्हाय सु राम॥
दण्डक ह्वै रेवातट आए। माहिष्मती पुरी लखि धाए॥
मनु तीरथ में जाय अन्हाय। पुनि प्रभास आए सुख पाय॥
कौरव अरु पुनि पाण्डव लरे। तामें सबही राजा मरे॥
तहाँ रामहिं यह द्विजनि बखानी। सुनि धर भार गयौ यह मानी॥
भीम और दुर्जोधन नाम। करत हैं गदा युद्ध अभिराम॥
तिनकों अहो निवारन हेत। संकर्षन गमने कुरुखेत॥
तिनकों देखि कृष्ण अरु अर्जुन। माद्री पुत्र युधिष्टर हू पुनि॥
करि सत्कार चुप्प ह्वै गए। कहा कहन आए भय छए॥
रिस करि गदा जुद्ध दोऊ करें। जीतनि की मन इच्छा धरें॥
फिरत विचित्र मण्डलाकार। तिनसों बोले राम निहारि॥
हे दुर्योधन भीम महान। हमरे मत तुम वीर समान॥
एक माँहिं बल की अधिकाई। एक माँहि विद्या सरसाई॥
तातें हार जीत ह्यां नांही। छोड़ौ कहा व्यर्थ रन माँहीं॥
सुनी भली पै तजी न लराई। सुमिरत हैं दुर्वचन बुराई॥

मानि कर्मगति बल पुर आये। उग्रसेन आदिक लपटाए ॥
राम नैमिषारन पुनि आए। जज्ञ रूप सबही सुख छाए ॥
तहाँ के रिषिनि परम सुख पायौ। जज्ञनि करि हरि जजन करायौ ॥
तिन विप्रनि कों बल भगवान। देत भए विशुद्ध विज्ञान ॥
जा करि आप माँहिं जग देख्यौ। जगत माँहिं पुनि आपुहिं पेख्यौ ॥
कियौ तिया जुत यज्ञ स्नान। ज्ञाति बन्धु संग सुहृद महान ॥
होय अलंकृत सोहे ऐसें। चन्द चाँदिनी करिकें जैसें ॥
अमित अनन्त बली नर रूप। तिनके अस बहु चरित अनूप ॥
सन्ध्या प्रात प्रीति करि गावै। सो नर हरि के प्रेमहिं पावै ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानिकृते
ऐ कोंनआसीतितमोऽध्याय ॥ ७६ ॥

अस्सीवाँ अध्याय

दोहा:—घर आए श्रीदाम कों, पूज्यौ है जदुराय।
कथा कही गुरवास की, आसी के अध्याय ॥

श्री राजोवाच—

श्री अनन्त हरि महामना मुनि। तिनके पुण्य चरित कहियें पुनि ॥
हरि की कथा सुनत विरमें को। काम दुखी रस कौ स्वादी जो ॥
बानी सों जो कहै कृष्णगुन। कर तें जे हरि कर्म करें पुनि ॥
मन सों जो सब ठां हरि देखै। नेंन सोई जो हरि कों पेखै ॥
सीस सोई जो हरिहिं नवै पुनि। कान सोई जो सुनें कृष्ण गुण ॥
हरि हरिजन चरनोदक धारै। सोई तन मन विथा निवारै ॥

सूत उवाच—

श्री भगवान वादरायन मुनि। ऐसें तिनसों नृप पूछी पुनि ॥
तब शुक हरि में डूबि सु गए। उछरि बहुरि मुनि बोलत भए ॥

श्री शुक उवाच—

इक वेदज्ञ विप्र हरि मीत। सांत अचाही इन्द्री जीत ॥

जथा लाभ करि तुष्ट सु रहै। मैले वसन छुधा तन दहै॥
तैसियै पतिब्रता तिय ताकी। मलिन वदन जनु मूर्ति विथा की॥
काँपति जाति दरिद्र सताई। आय पिया ढिग बात चलाई॥
हे पिय श्रीपति मीत तिहारौ। सो सरन्य ब्रह्मण्य है भारौ॥
हे महाभाग परम सुखकारी। सुतौ साधु के अति हितकारी॥
तुम सु कुटुम्बी बहुरि दुखारी। जैहौ तौ धन देहें भारी॥
अब द्वारापुर में जगदीस। राजत हैं यदुकुल के ईस॥
चरन कमल के सेवक हैं जे। देत अपनपौ हू तिनकों ते॥
अर्थ काम ये तुच्छ सु महा। तिनकी तहाँ सु गनती कहा॥
ऐसें बिनती कीनी तिया। तब कोमल हिय कौ जो पिया॥
द्वारापुर चलिवें मन ठान्यों। मीत दरस कौ लाभ सु सान्यों॥
पुनि कही हे तिय मङ्गल खानि। मीतहिं भेट देहु कछु आनि॥
चारि मुठी तिय चिरवा ल्याय। दए फटे पट में लपटाय॥
गयौ द्वारका चितत ऐसें। मीत दरस हौं पैहौं कैसें॥
तहाँ सो विप्रनि में मिलि गयौ। डयौढ़ी तीनि जु लांघत भयौ॥
पुनि दुर्मद जादव गृह देखे। सोरह सहस महल पुनि पेखे॥
तहाँ इक महल माँहि द्विज धर्यौ। ब्रह्मानन्द पाय जनु लर्यौ॥
देखि दूरि तें हरि हरषाए। प्रिया सेज पर तें उठि धाए॥
नैंन कमल से जल भरि आए। मीतहिं भुज पसारि लपटाए॥
पलका पै मीतहिं बैठाय। पूजा आप करी जदुराय॥
पाय धोय जल धार्यौ सीस। जदिप लोकपावन जगदीस॥
कुंकुम चन्दन अतर लगाय। धूप दीप दै हरि हरषाय॥
पान दए गैया आगें करि। आए भलें कुसर पूछी हरि॥
मलिन दूवरौ चमकें नसें। मैले फटे वसन तन लसें॥
ता पर रुक्मिन तिय बड़ भागी। चँवर बीजना दुरवन लागी॥
निर्मल यस राजत प्यारे हरि। सन्मान्यों अवधूत प्रीति करि॥

महली जन लखि अचिरज पागे। बहुरों बात कहन यह लागे ॥
अहो यह निर्धन निन्द भिखारी। पुनि अवधूत अधम है भारी ॥
याते बड़ौ पुण्य कहा ठान्यों। जाते श्रीनिवास सन्मान्यों ॥
तियहिं त्यागि उठि लपटे ऐसें। बड़े भ्रात सों लपटत जैसें ॥
पुनि कर गहि लीनों जदुराई। गुरु गृह की सुभ-कथा चलाई ॥

श्री भगवानुवाच—

हे धर्मज्ञ मीत सुखकारी। पढ़ि दै गुरुहिं दछना भारी ॥
तुम अपनी समान घर माँहीं। तिय कोऊ ब्याही कै नाँहीं ॥
देह गेह धन में तुव चित्त। लगत नहीं हम जानत मित्त ॥
कोई कछु न कामना धरें। प्राकृत विषै त्याग पुनि करें ॥
तौ हू कर्म करत ते ऐसें। नरनि सिखावनि कों हम जैसें ॥
गुरुकुल कों वसिबौ हे मित्त। कबहूँ तुमरे खरकत चित्त ॥
जिन गुरु तें विज्ञानहिं पाय। जग के पार द्विजन्मा जाय ॥
पहल पिता नर कौ गुरु जानों। बहुरि पढ़ावनहारहिं मानों ॥
ज्ञानदेंनहारौ गुरु तीजौ। सो तौ में ही नाहिन बीजौ ॥
मो सरूप गुरु तास बचन सुनि। तरै भवाब्धि चतुर सोई पुनि ॥
सर्व भूत आत्मा जो में हरि। जज्ञ त्याग तप ब्रह्मचर्य्य करि ॥
तैसें तुष्ट होत हों नाँही। जैसे गुरु सेवा के माँहीं ॥
हम तुम गुरु कुल माँहि चरित जे। किये मीत तुमकों सुधि हैं ते ॥
ईंधन कों गुरु तिय पठये जब। हम तुम बन में जात भए तब ॥
बिन रितु वर्षा भई सु भारी। तीव्र पवन गरजत भयकारी ॥
सूर्य आँथयौ तम के माँहीं। ऊँचौ नीचौ दीखै नाँहीं ॥
जल बयार करि ब्याकुल भए। दिसि नहिं सूझत तम अति छए ॥
अहो मीत तब कर गहि लीने। जल में फिरत महा दुख भीने ॥
हमरौ गुरु साँदीपनि आहि। सूरज उए भई सुधि ताहि ॥
ढूँढत ढूँढत बन में आए। तहाँ हम दुखित सिष्य लखि पाए ॥

तब गुरु कही हे पुत्र पियारे। मोहित तुमनि सहे दुःख मारे॥
तन धारिन कों प्यारौ देह। सोऊ गन्यों नहिं सत्य सनेह॥
उत्तम सिष्यहिं गुरु उपकार। इतनों ई करिबे निरधार॥
सब बिधि सुद्ध भाव कों धरै। गुरहिं अपनपौ अर्पन करै॥
अहो हम तुष्ट भए अब भारे। सत्य मनोरथ होहु तिहारे॥
भली भाँति पुनि बेद हैं जिते। तुमकों सदा सुभासौ तितै॥
गुरु गृह माँहिं सु ऐसी रीति। भईं बहुत कछु सुधि है मीत॥
नर गुरु ही की कृपा सु पाय। पूरन होय सान्त ह्वै जाय॥

श्री दामोवाच—

देव देव हे जग गुरु अहौ। हमने कहा न पायौ कहौ॥
जातें तुम जो पूरन काम। तिन संग बसे गुरु के धाम॥
जा तुमरौ तन बेद सरूप। सब मङ्गल कौ खेत अनूप॥
ता तुमकों गुरुकुल कौ बास। निपट बिडंबन रमा निवास॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानिकृते
आशीतितमोऽध्यायः॥ ८०॥

इक्यासीवाँ अध्याय

दोहाः—चिरवा चाबि सु मीत के, इक्यासी के ध्याय।
इन्द्रहि दुर्लभ संपदा, दई ताहि यदुराय॥

श्री शुक उवाच—

सुनि अन्तर्जामी यदुराय। प्रेम सों चितै दियौ मुसिक्याय॥
पुनि सद्गति ब्रह्मण्य मुरारी। हसवत मीतहिं बात उचारी॥
हमें कहा ल्याए हौ मीत। थोरौ ई मोहि घनों करि प्रीत॥
बहुत हू बिना प्रीति को मोहिं। रुचै न सत्य कहत हौं तोहि॥
पत्र फूल फल पानी हूँ जौ। देय प्रीति करि मैं पाऊँ तौ॥
सुनि द्विज नारि नवाय लजाए। श्रीपति कों चिरवान दिखाए॥
अन्तर्जामी करी सु चित्त। धनहिं लेंन नहिं आयौ मित्त॥

आयो पतिव्रता तिय हेत। दैहों याहि अनूप निकेत॥
यह विचारि हरि गांठि सु महा। आप ही खेंचि कही यह कहा॥
देखि मीत सों कही मुरारी। अहो हमकों ये अति रुचिकारी॥
मो समेत यँह त्रिश्व है जितौ। इनसों मीत अघैहै तितौ॥
एक मुठी लै खाई हरी। खान हेत पुनि दूजी भरी॥
तौ लों रुक्मिन तिय सुखकारी। पकरि लई मूठी हरि प्यारी॥
दोऊ लोक में नर कों हे हरि। सब संपति होंय इतनें ई करि॥
ता निसि कों श्रीदामा प्यारे। रहे कृष्ण के महल सुखारे॥
खाय पीय बहुतै सुख सान्यों। आपहिं स्वर्ग माँहि तिन मान्यों॥
स्व सुख मगन हरि जग मन भावन। चले प्रात मीतहिं पहुँचावन॥
बहुत बिनै करि विदा सु कीनें। चले सुदामा सुख में भीनें॥
मीतहिं हरि ने कछू न दियौ। इनहूँ कछू माँगि नहिं लियौ॥
लज्जित ह्वै निज घर कों आयौ। मीत दरस कै परम अघायौ॥
कही ब्रह्मण्य देव हरि कहे। सुतौ आजु हम नीकें लहे॥
जिह उर माँहिं रमा सी नारी। तहाँ मोहि लयौ लगाय मुरारी॥
कहाँ मैं निर्धन पापी भारी। कहाँ रमापति कृष्ण मुरारी॥
ऐपै मोहि ब्राह्मन जानि। कैसें उठि लपटाए आनि॥
पलका पै बैठायौ कैसें। बड़ौ भ्रात बैठयै जैसें॥
मग श्रम करि मम देह थकानी। बिजन कियौ रुक्मिन पटरानी॥
बहुरि बड़ी शुश्रूषा करी। कैसें पाय पलोटे हरी॥
देव देव द्विज देव सु ऐसें। पूज्यौ मोहि देवता जैसें॥
स्वर्ग रसातल मुक्ति सिद्धि धन। सबकौ मूल तास पद-पूजन॥
निर्धन जन जब धन कों पावै। मत्त होय मोहि मनहिं न ल्यावै॥
यातें हरि हिय करुना भीनों। चलत मोहि कछु धन नहिं दीनों॥
पुनि निज घर ढिग आवत भए। रवि ससि से विमान जहाँ छए॥
खग बागनि में करत कुलाहल। सरनि में अमल कमल गुञ्जत अलि

जहाँ के पुरुष सिंगारें भारी। बहुरों मृगनैंनी सब नारी॥
कही यह कहा कौंन कौ धाम। कैसें यह सु भयौ अभिराम॥
नर नारी सुर से छवि छाए। गावत बजवत लेंन सु आए॥
आए सुनें सुदामा निज पिय। हरष पाय करि हरवराय तिय॥
बेगि महल तें निकसी ऐसें। रमा कमलबन में ते जैसें॥
पतिव्रता तिय पिय देखे जब। उमड़ि प्रेम दृग भरि आए तब॥
नेंन सु मुदे बुद्धि करि नई। मन हीं सों पुनि लपटत भई॥
पिय नें निज तिय देखी ऐसी। चढ़ी विमान देव तिय जैसी॥
किये सिंगार संग दासीजन। विस्मै भयौ देखि पिय कौ मन॥
पुनि प्रसन्न ह्वै निज तिय संग। गए महल में पिय भरि रंग॥
मनिन खम्भ करि सोहत ऐसौ। अहो इन्द्र कौ मन्दिर जैसौ॥
सेज दांत की जटित सु सोंना। दूध फेंन से बिछे बिछौना॥
कनक के बिजना चँवर सु बनें। मोतिन सनें चँदोवा तनें॥
सोनें की चौकी सुखकारी। कोमल बिछे बिछोंना भारी॥
फटिक नीलमनि भाँति बिराजें। पुतरीं रतन दियनि सों छाजें॥
अस विभूति तिह विप्र निहारी। ह्वै अविग्र हरि कृपा विचारी॥
मैं सु दरिद्री दुर्भग आहि। ऐसी यह विभूति क्यों ताहि॥
महा विभूति दरस बिन आन। याहि न दूजौ हेत महान॥
जदुपति जगत ईस मम मीत। ताकी है ऐसी यै रीति॥
बिना कहें बहु देत हैं ऐसें। निसि में इन्द्र बरस जाय जैसें॥
आप बहुत दै थोरौ मानें। मीत की थोरी ही बहु जानें॥
हम इक मुठी गए चिरवा लै। कैसें हरषि लिये निज कर कै॥
महानुभाव गुणनि की रासि। जन्म जन्म मैं ताकौ दास॥
सिष्य सुहृदता सदा हमारी। इनहों सों हूजौ पुनि यारी॥
ताही सों मिलिबे मन मेरौ। हूजौ हरि जन संग घनेरौ॥
धन मद करि नर नास निहारि। भक्तहिं देत न चतुर मुरारि॥

मोहि बिभूति दई हरि जाते। निश्चे मैं हूँ भक्त न याते॥
यह निश्चे तिन मन में जानी। बहुरि मीत हरि में रति ठानी॥
विषै भोग तिय सों मिलि करै। त्याग हेत मन प्रीति न धरै॥
देव देव प्रभु जज्ञ निधान। तिनके द्विज ही पूज्य महान॥
साधुनि जीते अजित मुरारि। हरि प्यारौ द्विज ताहि निहारि॥
तास ध्यान करि संसै गयौ। पुनि निह धामहिं पावत भयौ॥
यह द्विज प्रभु कौ चरित सुनें जो। भक्ति पाय बन्धन काटै सो॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानिकृते
एकाशीतितमोऽध्यायः॥ ८१॥

सतहत्तरवाँ अध्याय

दोहा—सूर्ज ग्रहन कों भूप सब, कुरुक्षेत्र में आय।
कथा करी मिलि कृष्ण की, ब्यासी के अध्याय॥ १॥

श्री शुक उवाच—

राम स्याम के छिन इक बार। सूरज गृहन सु भयौ अपार॥
ताहि जानि नर मंगल हेत। पहलें ई गमने कुरुखेत॥
परसराम बड़ सस्त्र सु धारी। करी निछत्र धरनि तिन सारी॥
तहाँ भूपनि के रुधिर बहाय। बड़डे सरवर दए बनाय॥
बहुरि ईस भगवान सु राम। कर्मनि करि अलिप्त सुख धाम॥
जज्ञ सिखाबन हेत करे यों। पाप निबारन प्राकृत नर ज्यों॥
तहाँ बड़ तीर्थ जात्रा भई। प्रजा सु भरतखण्ड की गई॥
वृष्णि उग्रसेनादिक जिते। पाप निवारन गमने तिते॥
कृतवर्मा अनिरुद्ध सु नामें। औरों रहे पुरी रच्छा में॥
ते सब पहरें कञ्चन माल। दिव्य बसनस्त्रक कवच रसाल॥
चढ़े बिमान समान रथनि पर। कोऊ मेघ समान गजनि पर॥
कोऊ चढ़े हय महा तरल तर। संग सोहत विद्याधर से नर॥
मग में ते सब सोहे ऐसें। तियनि सहित खेचर जन जैसें॥

महाभाग तहाँ सबै अन्हाय। दईं सिंगारि द्विजनि कों गाय॥
फूल माल पट हूँ पुनि दिये। सावधान ह्वै कें व्रत किये॥
बहुरों विधि सों जादव जिते। न्हाय राम ह्रद माँही तिते॥
दए द्विजनि कों सुन्दर नाज। हरि में प्रेम होंन के काज॥
पुनि हरि की आज्ञा लै यदुवर। बैठे भोजन पाय तरुनि तर॥
तिन सब आए तहाँ निहारे। भूप सुहृद संबंधी प्यारे॥
मत्स्य उसीनर कौसल देस। कुरु सृंजय कांबोज नरेस॥
कैकय भद्र विदर्भ अनूप। कंत्य नर्त्त केरल के भूप॥
औरौ नृप सैकरानि देखे। गोप सुहृद नन्दादिक पेखे॥
पुनि सुन्दर गोपीं निरखीं ते। बहुत दिननि कीं उत्कंठित जे॥
आपस में लखि हरषि सु ह्वए। हिय मुख कमल प्रफुल्लित भए॥
गाढ़ें मिलि नेंननि जल अए। पुलकित होय कण्ठ रुकि गए॥
आपस में लखि तिय हरषाईं। हँसि करि चितै भुजनि लपटाईं॥
कुंकुम पंकनि सों कुच पागे। स्नेह सों नेंन बहन जल लागे॥
ते सब वृद्धनि कों सनमान। दै छोटनि आसीस महान॥
आए भलें पूछि कुसरात। करन लगे मिलि हरि की बात॥
कुन्ती देखि बहन पित मात। भौजाईं रु भानजे भ्रात॥
बहुरों श्री जदुराय निहारे। कथा सुनाय सोक निरवारे॥

श्री कुन्त्यु उवाच—

हे बसुदेव भ्रात जे सत्तम। आपहिं पुण्य हीन मानति हम॥
जातें हमरी विपतनि माँहीं। तुम कबहूँ सुधि लीनी नाँहीं॥
दैव अहो प्रतिकूल है जाकौं। सुत पित भ्रात न सुमिरत ताकौं॥

बसुदेव उवाच—

अहो बहनि हम दैव खिलौना। तिनमें तुम कछु दोष धरौ ना॥
ईस के बस जन करै करावै। तामें कहौ यह कोंन कहावै॥
हम सु कंस के भय करि ह्वए। दिसा दिसा कों भाजि सु गए॥

अहो बहिन दैव करि सबही। एक ठौर बैंठे हम अब हीं॥

श्री शुक उवाच—

उग्रसेन बसुदेवादिक करि। नीकें सन्माने ते नृप वर॥
सबै कृष्ण कौ दरसन पाय। परमानन्द माँहि गए छाय॥
भीष्म द्रोंन धृतराष्ट्र सु पिया। सुतनि सहित गान्धारी तिया॥
कुन्ती तियनि समेत पाण्डु सुत। सञ्जय बिदुर कृपाचारज जुत॥
कुंति भोज भीष्म करु नग्निजित। शैव्य विराट द्रुपद पुनि पुरुजित॥
धृष्टकेत पुनि कासी भूप। विशालाक्ष दमघोष अनूप॥
कैकय मद्र सुसर्मा नाम। जुधा मन्यु मैथिल अभिराम॥
ससुत वाल्हिकादिक छवि सने। धर्म पुत्र अनुवर्त्ती घने॥
श्री निकेत हरि तन देख्यौ जब। तियनि समेत भए विस्मै सब॥
राम स्याम नें सन्मानें सब। लगे सराहन यदुकुल कों तब॥
अहौ अहौ तुम जादव हौ जिते। नरनि में सफल जन्म हौ तिते॥
जो हरि जोगिन्न दुर्लभ आहि। निसि दिन तुम देखत हौ ताहि॥
जाके जसहिं वेद सब गावत। ते त्रिभुवन के पाप मिटावत॥
त्यौंहीं गंगा तिह पद धोवन। सो सब पापनि कौ है खोवन॥
हीन भाग धर हरि पद पाय। हमें काम करि देत अघाय॥
तुम प्रवृत्ति भक्तनि कें धाम। आप ही प्रगटे हरि अभिराम॥
स्वर्ग मोक्ष तें मन करि हांते। कैई भाँति के बाँधे नाते॥
दरस परस संग चलि बतरान। संग बैठन सोवन संग खान॥

श्री शुक उवाच—

कृष्ण सहित जादव सब आए। सुनत ही नन्द गोप हरषाए॥
लदे लदाए सकटनि लए। देखनि कृष्णचन्द्र कों गए॥
नन्दहिं लखि जादव उठि धाए। मनों प्रान तन माँहीं आए॥
बहुत दिननि के विरह सताने। इकही बार रोय लपटाने॥
लखि बसुदेव हरषि लपटाए। पिछले दुख के दिन सुधि आए॥

हमें कंस ने दुख जब दीनें। इनहीं हमें राखि तब लीने॥
देखि कें नन्द जसोमति मात। मिले नाय सिर दोऊ भ्रात॥
प्रेम सों रोय गरे रुकि गए। लपटि रहे नहिं बोलत भए॥
महाभाग श्रीनन्द जसोमति। सुत उर लाय गए गाढ़ें अति॥
पुनि निज आसन पै बैठाय। पुचकारे सुत लईं बलाय॥
पुनि रोहिनी देवकी धाय। ब्रजरानी सों लपटीं आय॥
सुधि आई पहलीहि तबाई। गद्गद ह्वै यह बात सुनाई॥
हे ब्रजनारी प्रीति तिहारी। भूलै ऐसौ कौन अनारी॥
इन्द्र हू सी विभूति के माँहीं। तुम सों ऊरन हू जै नाँही॥
ये दोऊ सुत हमें न जानें। मात पिता तुमहीं कों मानें॥
साधुनि कें नहिं अपुन विरानी। तुमहीं ये पाले ब्रजरानी॥
लाड़ चाव करि राखे ऐसें। अहो पलक आँखिन कों जैसें॥

श्री शुक उवाच—

गोपीं बहुत दिननि कें पाछें। पाए कृष्ण प्रानपति आछें॥
पलक करनहारे कों ये तिय। कोसतिं ही जब देखहिं हीं पिय॥
जोगिन कों दुर्लभ हें जे हरि। तदाकार भईं ताहि हियें धरि॥
अनुरागीं सब ब्रज की नारि। तिनें इकौसें जाय मुरारि॥
मिलि रस भिलि पूछी कुसरात। पुनि मुसिक्याय कही यह बात॥
एहो ब्रजनारी सुखकारी। कबहूँ सुधि तुम करति हमारी॥
ढील भई मोहि बैरि न मारत। इन बन्धुनि के काज सुधारत॥
मैं निश्चें अकृतज्ञ सु अहौ। तुम तौ दोष न आनति कहौ॥
ईसुर ही सब नरनि मिलावै। पुनि निश्चें सोई बिछुरावै॥
जैसें पवन मेघ तृन धूरि। देय मिलाय करै पुनि दूरि॥
मो में अहौ भक्ति कीनीं जो। सबै जननि कों मुक्ति देत सो॥
भली भई तुम प्रेम सु पायौ। ताही करि इक में सु बधायौ॥
हम सब बाहर भीतर ऐसें। नभ धर जोति वायु जल जैसें॥

ऐसें पंच - भूत भूतनि में। आत्मा भोक्ता न्यारौ तन में॥
ते दोऊ मो माँहि निहारौ। पर परिपूरन मोहि बिचारौ॥

श्री शुक उवाच—

यों हरि निज सरूप उपदेस। दीनों सब गोपीन सु देस॥
ते सब ताके सुमिरन झिलीं। विरह ताप तजि ताकों मिलीं॥
पुनि बोलीं हे कमलनैंन पिय। तुव पद जोगेसुर ध्यावत हिय॥
संसारी कों अवलम्बन जे। नित हमरे मन माँहि रहौ ते॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
द्वाशीतितमोऽध्याय ॥८२॥

त्रासीवाँ अध्याय

दोहा—अपने अपने ब्याह की, कृष्ण तियनि हरषाय।
कही द्रोपदी सों कथा, त्रासी के अध्याय॥ १॥

श्री शुक उवाच—

गोपिन के गुरु गति सु मुरारी। सब पै करयौ अनुग्रह भारी॥
सुहृद धर्म पुत्रादिक नीके। हरि मंगल पूछे सबही के॥
पुनि जगदीस सबै सन्मानें। तब सब बोले अति हरषानें॥
अहो तुव भक्त कथामृत गावत। जिन करि सब अज्ञान मिटावत॥
तिनकों जे काननि करि पीवें। तिनें अमङ्गल कैसें छीवें॥
तुम परिपूरन आनन्द रूप। सदा अखण्डित बोध अनूप॥
तुम सद्गति अपनें प्रकास करि। तीनि अवस्था दूरि करीं हरि॥
प्रगटे वेदनि की रच्छा हित। तुमकों नमस्कार चितवौ इत॥

श्री शुक उवाच—

उत्तम श्लोक सिखामनि हरी। तिनकी यों अस्तुति अनुसरी॥
पुनि जदु कुरु कुल की तिय जितीं। मिलि हरि गुण गावति भईं तितीं॥

द्रोपद्यु वाच।

हे भद्रा सत्या हे रुक्मिन। हे कालिन्दी शैव्या रोहिणि॥

अहो तुम कृष्ण तिया हौ जितीं। हम सों यह अब बरनौं तितीं॥
कैसें तुमें विवाही हैं हरि। नर अनुकरण योग माया करि॥

रुक्मिन्युवाच—

व्याहन मोहि सिसुपाल सु आयौ। बड़े धनुषधारी संग ल्यायौ॥
तहाँ मोकों ये श्री यदुराय। हरि ल्याए सब सिर धरि पाय॥
जैसें सिंह बकरियनि माँहीं। निज बट लेय सु छोड़ै नाँहीं॥
रमानिकेत पाय जे पिय के। सेऊँ ताप मिटाऊँ हिय के॥

सत्यभामोवाच—

मेरौ पिता भ्रात वधत यौ। मनि कौ हरिहिं कलङ्क सु दयौ॥
लगें कलङ्क कृष्ण बन धाए। जीति जांववानहिं मनि ल्याए॥
पुनि मनि ल्याय दई मम तातहिं। तात डरयौ मम लखि या वातहिं॥
तब मोहि हीं कों दई सही। पहले औरनि हूँ सों कही॥

जाम्बुवत्युवाच-

सीता पति निज नाथ पियारे। बिन जाने ताहि पिता हमारे॥
सत्ताइस दिन अति ही लरे। बहुरि जानि हरि पायनि परे।
मनि समेत पुनि मोकों दई। तब में इनकी दासी भई।

भद्रोवाच

श्री निकेत हरि आय स्वयम्बर। जीते मम भैया अरु नृप वर॥
हरि निज पुर मोहि ल्याए ऐसें। सिंह कूकरनि में तें जैसें॥
अब मैं सबही जनम मँझारी। इनकी हां पग धोवन हारी॥

कालिन्द्युवाच—

हरि हित मैं सु तपस्या करी। अर्जुन पठयौ जानि सु हरी॥
तब मोहि लई विवाहि मुरारी। मैं इनके घर देंहु बुहारी॥

सत्योवाच—

भूपनि कौ बल जाननि हेत। सात बैल मम पिता निकेत॥

पैने सींग महाबल धरें। वीरनि के ते मद कों हरें॥
नाथे हरि करि ख्याल सौ ऐसें। छेरिन के छौंननि कों जैसें॥
जीति नृपनि मग में मोहि आनी। मैं दासी ह्वै वौ मन ठानीं॥

मित्रविन्दोवाच—

मो पित मो चित की गति पाय। मामा के सुत कृष्ण बुलाय॥
सखियनि सहित सु मोकों दई। एक छोहिनी सेना नई॥
इनके चरन कमल सुखकारी। मिलें मोहि सब जनम मँझारी॥
कर्मनि के बस भ्रमन हमारौ। तिन करि होय सु मङ्गल भारौ॥

लक्ष्मणोवाच—

नारद मुनि तें सुनि इनके गुन। मम मन हूँ इन माँहिं परयौ पुनि॥
लछमी हूँ हो अति बड़ भाग। येई बरे सबनि कों त्याग॥
वृहत्सेन जो पिता हमार। मो सों करत बहुत सो प्यार॥
मेरे मन कौ मतौ सु जान्यों। तब ताने उपाय इक ठान्यों॥
ज्यों तुमरौ जब भयौ स्वयम्बर। अर्जुन हेत मछ राख्यौ बर॥
पै सो खम्भ लगें दरसात। यह केवल जल में झलकात॥
सो सुनि आए भूप अपार। लीयें संग पठावनहार॥
अस्त्र शस्त्र में निपट सयानें। जथा जोग मो पित सनमानें॥
लए चाप सर बेधन मीन। मो में चित सब ही के लीन॥
किन हूँ पै तौ धनुक सु भारी। चढ़यौ न पटक्यौ धरनि मँझारी॥
कोऊ खेंचि सकै सो नाँहीं। घायल होय गिरे धर माँहीं॥
मागध अंबष्ठक सिसुपाल। कर्न सुजोधन भीम रसाल॥
धनुष तौ लयौ चढ़ाय महान। पै नहिं लख्यौ मछ अस्थान॥
अर्जुन जल में लखि सो मीन। लखी तास थिति महा प्रवीन॥
सावधान ह्वै बान चलायौ। छेदि न सक्यौ ताहि छ्वै आयौ॥
यों अभिमानी राजा जिते। मान भंग पावत भए तिते॥

तब ता धनुषहिं लै जदुराय। ख्याल ही सौ करि लयौ चढ़ाय।
अभिजित नाम मुहूर्त्त आयौ। तब हरि धनुष माँहि सर लायौ।
जल में एक ही बार निहारि। छेदि मीन धर दीनों डारि॥
दिवि दुंदुभि बाजीं सुर हरषे। जै जै कहि सब फूलनि बरसे।
तब में रतन जटित लै माला। पहरि पाटऊ वसन रसाला॥
सलज हास फूलनि गुहि बेंनी। बजत पाय नूपुर सुख देंनी॥
सोहत कुन्तल कुण्डल भारी। चितवनि हास परम सुखकारी॥
मुख उठाय सब नृपनि निहारि। हरि के गर माला दई डारि॥
तब इक बार ही बजीं घनेरी। ढोल मृदङ्ग संख पुनि भेरीं॥
नाचें नटुवा नटी सभागे। बहुरि गवैया गावन लागे॥
ऐसें मैं श्री कृष्ण बरे जब। काम छुभित नृप सहि न सके तब॥
मोकों तौ लै रथ में धरी। लीनों धनुष चतुर्भुज हरी॥
कनक जटित वह रथ जो आहि। दारुक ने हाँक्यौ ताहि॥
देखत नृपति चले हरि ऐसें। मृगनि माँहि ते नाहर जैसें॥
राजा होय खिसानें तबै। लै लै धनुष करनि में सबै॥
मग में घेरन दौरे ऐसें। नाहर के संग कूकर जैसें॥
सर सारंग धनुष तें चलें। कटि गए हाथ पाय पुनि गले॥
ऐसे होय गिरे धर माँहीं। कोऊ रण ही में टिके सु नांहीं॥
पुनि हरि निज द्वारापुर आए। जा पुर के जस त्रिभुवन गाए॥
बन्दन मालनि पुरी सिंगारी। भई धुजनि की छाया भारी॥
पुनि निज मन्दिर बैठे ऐसें। अपने धाम माँहिं रवि जैसें॥
सुहृद बन्धु सम्बन्धी जिते। मेरे पित सनमानें तिते॥
भूषण वसन सेज छवि छईं। औरौ बहु सामिग्री दईं॥
हय गय रथ प्यादे हथियार। संपति दासी दास अपार॥
आत्माराम पूर्न जो आहि। मो पित दए भक्ति करि ताहि॥
संग त्यागि तप कीनें हम जब। इनके घर की दासी भईं तब॥

महिष्य ऊचुः—

भूमासुर दिग्विजै मँझारी । रोकी जीति नृप-सुता सारी ॥
हम इनकौ सुमिरन मन ठान्यों । जग नासन हरि ने सो जान्यों ॥
अनुगनि सहित ताहि मारयौ तब । पूर्नकाम हरि हम ब्याहीं सब ॥
स्वर्ग मुक्ति हरि पद बिधि धाम । अष्ट सिद्धि लों हमें न काम ॥
इनके पग की रेनु जु आहि । हम सिर धारयौ चाहत ताहि ॥
जा रज में सुगन्ध है भारी । रमा कुचनि कुंकुम की प्यारी ॥
गाय चरावत श्री हरि जी कौ । पाय परसिबौ अति ही नीकौ ॥
गोपी गोप भीलनी बन तिन । चाहत रहत हिये में निसि दिन ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशम स्कन्धे भाषा रसजानि कृते
अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

चौरासीवाँ अध्याय

दोहाः—जज्ञ कियौ बसुदेव ने, चौरासी के ध्याय ।।
बहुरों निज बान्धव सबै, बिदा किये सुख पाय ।।

श्री शुक उवाच—

कुन्ती द्रुपद सुता गान्धारी । पुनि गोपी श्री हरि की प्यारी ॥
बहुरि सुभद्रा औरौ तिया । सुनत प्रेम भिज्यौ भए हिया ॥
नर सों नर नारी सों नारी । यों हरि गुण गावत सुखकारी ॥
राम स्याम के देखन कों पुनि । तिह ठां आवत भए सबै मुनि ॥
भारद्वाज शतानन्द नाम । गालव भृगु शिष्यनि जुत राम ॥
व्यास चिमन देवल नारद मुनि । विश्वामित्र असित गौतम पुनि ॥
कस्यप अत्रि वशिष्ट पुलस्त्य । जाज्ञवल्क्य अंगिरा अगस्त्य ॥
ब्रह्मपुत्र मार्कण्डेय त्रित । बामदेव सुर गुरु ऐकत द्वित ॥
जगत पूज्य मुनि आवत भए । राम स्याम संग उठि सब नए ॥
आसन पाद्य अर्घ जल माला । धूप दीप अरगजा रसाला ॥
इन करि पूजै सबनि सबै मुनि । आए भलें कही ऐसें पुनि ॥

सुख सों बैठे धर्म रूप हरि। बोले सबही कों सुनाय करि॥

श्री भगवानुवाच—

सफल जन्म हम आजु कहाए। दुर्लभ तुमरे दरसन पाए॥
जे नर अल्प पुण्य हें हे मुनि। प्रतिमा हीं में देव बुद्धि पुनि॥
दरस परस पूजन बतरान। तुमरी तिनकों दुलभ महान॥
तीरथ कहा जलनि में नाहीं। देव नहीं का प्रतिमनि माँहीं॥
ते पवित्र बहु दिन में करें। साधु दरस ही तें सब हरें॥
रवि ससि जलथल अगिन अकास। पवन वचन मन आन उपास॥
भेद बुद्धि कौ पाप न जात। साधु दरस तें सु तौ विलात॥
वाय पित्त कफ करि तन वान्यों। ताहि आत्मा करि जिन मान्यों॥
निज मति ठानें पुत्र तिया में। जल में तीर्थ, देव प्रतिमा में॥
एकौ मति न साधु में ठानें। तिनें त्रिवेकी गोरवर जानें॥

श्री शुक उवाच—

अनुचित हरि की बानी कों सुनि। समुझि न सके भए चुपके मुनि॥
हरि की नर लीला जो आहि। बड़ी बेर मुनि सुमिर सु ताहि॥
जानी हरि सिखवत सबकों पुनि। हँसि जगगुरु सों बोले सब मुनि॥
हम ततवेता विश्व सृगीस। तऊ तुव माया मोहित ईस॥
जातें तुम ईसुर सुखकारी। नर लीला करि ढँपे मुरारी॥
हमकों भासत नर सामान। तुमरे चरित अतर्क महान॥
इक अनीह तुम बहुत होत यों। नाम रूप करि कें माटी ज्यों॥
बँधौ न रचि पालौ संहारौ। चरित अनुकरन मात्र तिहारौ॥
तऊ निर्गुण वपु करत हौ धारन। जन रच्छन दुष्टनि कों मारन॥
पुरुष पुराण वेद मग पालक। वर्णाश्रम कारन यदु बालक॥
बेद ही सुद्ध हृदय तुमरौ हरि। जहाँ तप संजम स्वाध्याय करि॥
कारज कारन सब दरसात। दुहुँ तें परें ब्रह्म झलकात॥
ताहि विप्र धारत हें जातें। तुम ब्रह्मण्य सु मानत यातें॥

तप विद्या दृग जन्म हमारौ। सफल भयौ तुमसों मिलि सारौ॥
तुम मंगल निधि परमातम हरि। निज महिमा ढाँपी माया करि॥
सदा एक रस बुद्धि तिहारी। तुमकों हैं दण्डौत हमारी॥
तुमहीं काल ईस आतमा हरि। ढंके अहो माया की चिक करि॥
नृप पुनि सहचर जादव जिते। तुमकों जानि सकत नहिं तिते॥
जैसें स्वप्न माँहि झूठे तन। साँचे करि मानत हैं यह जन॥
पुनि निज रूप सत्य जो आहि। यह नर तब जानें नहिं ताहि॥
विषै माँहि इन्द्री जो पगीं। यही तिहारी माया लगी॥
गयौ ज्ञान चित भरमत भारी। तुमकों जानि सकें न अनारी॥
तुव पद - तीरथ पाप नसावत। सिद्ध जोग करि जोगी ध्यावत॥
तें हम लखे कृपा अब कीजै। भक्ति आपनी हमकों दीजै॥
भक्ति सों लिंग सरीर जरे जब। नरनि तुम्हारी गति पाई तब॥

श्री शुक उवाच—

यों अस्तुति करि आज्ञा लै मुनि। धर्मपुत्र धृतराष्ट्रहिं कहि पुनि॥
चलिबे कों मन करत भए जब। महाजसा बसुदेव देखि तब॥
करि दण्डौत पाय गहि लए। सावधान ह्वै बोलत भए॥
सर्व देव मय तुम्हीं अहो मुनि। तुमें नए हम बात सुनौ पुनि॥
कर्म कौ नास कर्म करि जैसें। हमकों बरनि सुनैयै तैसें॥

नारद उवाच—

अहो विप्र बसुदेव वचन तें। अचिरज दूरि करौ तुम मन तें॥
कृष्णहिं निज सुत मानत जातें। अपनो मंगल पूछत तातें॥
अहो नरनि के ढिग रहिवौ जो। आहि अनादर कौ कारन सो॥
ज्यों गंगावासी गंगहिं तजि। जात और ठां शुद्ध होंन भजि॥
इन हरि जू कौ ज्ञान जु आहि। कोऊ नासि सकै नहिं ताहि॥
उत्पति थिति लय काल तीन गुन। अपु तें पर तें हूँ न जाय पुनि॥
क्लेश कर्म फल गुण प्रवाह करि। ये सु अखण्ड तेज अद्वै हरि॥
प्रानादिक ये ईसु प्रकासें। तिन करि अज्ञनि ढांपे भासें॥

जैसे राहु मेघ कुहरनि करि। ढँप्यौ सूर्ज कों मानत हैं नर॥
तब बसुदेवहिं बोले ते मुनि। राम स्याम संग सुनत सबै पुनि॥
यही कर्म कौ नास कर्म करि। जजै प्रीति कर यज्ञनि सों हरि॥
चित्त सांत कों यही उपाय। शास्त्रज्ञनि नें दियौ बताय॥
सुगम उपाय मुक्ति कों यही। सुखद धर्म हूँ यह हो सही॥
द्विज गृहस्थ कों मंगल रूप। यही एक है गैल अनूप॥
शुद्ध द्रव्य बहु श्रद्धा करि। विधि सों भलें पूजियै जो हरि॥
यज्ञ दान करि तजै धनिच्छा। भोगनि करि तिय सुत की इच्छा॥
बहुरि विवेक विवेकी भजै। नस्वर जानि स्वर्ग हूँ तजै॥
घर ही में सब चाह मिटों जब। तप हित धीर गए बन में तब॥
देव पितर रिषि रिन विख्यात। जज्ञ पुत्र पढ़िवें तें जात॥
रिन बिन दूरि करें त्यागै जौ। जाय द्विजन्मा नरक मांहि तौ॥
ऋषि पितरनि के रिण जे कहे। तिन तें तुम ऊरन ह्वै रहे॥
जज्ञनि करि सुर रिन निरवारौ। घर में पुनि मनहिं निकारौ॥
तम तौ जगत ईस जे हरी। तिनमें परम भक्ति विस्तरी॥
तेई तुम पूजे पुनि भारे। जातें भए सु पुत्र तिहारे॥

श्री शुक उवाच—

महामना वसुदेव बचन सुनि। सीस नवाय प्रसन्न किये मुनि॥
पुनि वसुदेव धर्म करि भरे। जज्ञ हेत तेई मुनि वरे॥
तिहीं छेत्र में तब ताकों मुनि। जजन करायौ जज्ञनि करि पुनि॥
ता दीछा में जदु नृप जिते। न्हाय अलंकृत भए सु तिते॥
पुनि बसुदेव तिया सुख छई। करि सिंगार दिछा गृह गई॥
मंगल भेट करनि में राजें। भेरि मृदङ्ग ढोल दरवाजें॥
नटुवा नटी नृत्य बहु करें। मागध सूत जसहिं विस्तरै॥
पुनि सुन्दर गंधर्व तियनि संग। गान करत अति छाय रह्यौ रंग॥
पुनि विप्रनि वसुदेव जु आहि। अष्टादस पत्निन संग ताहि॥

विधि सों लै अन्हवाए ऐसें । तारनि संग चन्द्रमहि जैसें ॥
पट भूषन करि किये सिंगार । नूपुर कुण्डल चूरीं हार ॥
तिन तिय संग बसुदेव रसाल । सोहे अति आढ़ें मृग छाल ॥
वहाँ के जन जाजक पुनि जिते । पहरि पाटऊ बसन सु तिते ॥
हे महाराज सु सोहे ऐसें । इन्द्र के जज्ञ माँहिं सब जैसें ॥
राम स्याम तिय सुत बन्धुनि संग । जगत ईस अति छाय रहे रंग ॥
विधि सों जजे सबँ जज्ञनि करि । क्रिया द्रव्य ज्ञानेस सु श्री हरि ॥
पुनि जाजकनि सिंगार अघाय । दीनी धर धन कन्या गाय ॥
पुनि पत्नी संयाज जज्ञवर । तास स्नान विधि द्विज कराय करि ॥
पुनि द्विज आगें करि जजमान । किये राम ह्रद में अस्नान ॥
बंदीजन अन्हाय पहिराए । तियनि हूँ दान दए मन भाए ॥
करि सिंगार बसुदेव प्रसन्न । स्वान प्रजन्त सबहिं दै अन्न ॥
कासी कैकय कौसल देस । कुरु सृञ्जय वैदर्भ नरेस ॥
सुर नर भूत पितर चारन मुनि । तिय सुत बन्धु भलें पूजे पुनि ॥
ते सब हरि की आज्ञा पाय । करत बड़ाई गए अघाय ॥
श्री पाण्डव धृतराष्ट्र विदुर पुनि । भीष्म द्रोण कुन्ती नारद मुनि ॥
व्यास सुहृद संबंधि बन्धु जे । प्रीति सों लपटि जादवनि सों ते ॥
औरौ जन निज देस पधारे । विरह क्लेश करि तपत सु भारे ॥
उग्रसेन लों जदुवर जिते । गोपनि सहित नन्द कों तिते ॥
भली भाति कै पूजत भए । लखि सनेह नन्दौ रहि गए ॥
आस समुद बसुदेव तरानें । हरषि नन्द कर गहि बतरानें ॥

बसुदेव उवाच—

हे भैया यह प्रीति-पास जो । हरि की करी निपट दुस्तज सो ॥
बड़े सूरवीर योगी जे । याकों कबहुँ न काटि सकें ते ॥
अहो भ्रात अकृतज्ञ महा हम । तुम निष्काम मीत अति उत्तम ॥
निरूपम प्रीति करो हम माहीं । सो यह कभूं छूटि है नाँहीं ॥

पहल सु हमही हे असमर्थ। हे भइया कछु कियौ न अर्थ॥
अब हम अन्ध द्रव्य मद माँही। आगें तुम पै सूझत नाँही॥
निज मंगल की इच्छा जाहि। संपति राज मिलौ जिनि ताहि॥
जा करि सुजनन सूझत ऐसें। ढिंग ठाढ़ौ आधे कों जैसें॥
यों सनेह करि हिय पिघलानों। मैत्री सुमिरि रोय लपटानों॥
नन्द मीत कौ भलौ मनावनि। राम स्याम की लखि ललचावनि॥
आजु कालिह कहि रहे त्रिमास। दए जादवनि नें सुख रासि॥
बहुरों उग्रसेन जदु देव। राम स्याम उद्धव वसुदेव॥
सुन्दर पटभूषन बहु सामा। दई नन्द कों अति अभिरामा॥
पहुँचावनि जदुवर संग दए। सबै काम करि पूरन भए॥
गोपी गोप बहुरि ब्रजराय। हरि तें मन नहिं सकें छुटाय॥
श्री ब्रजराज कुटंब समेत। नीठ नीठि कें गए निकेत॥
पुनि जादवपुर कों गमनें सब। चौमासौ आयौ जान्यों जब॥
जज्ञ करन पुनि बन्धु मिलन जो। जाय घरनि में सबनि कही सो॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानिकृते
चतुःइशीतितमोऽध्यायः॥ ८४॥

पिच्चासीवाँ अध्याय

दोहा:—राम स्याम दोऊ प्रारथे, पिच्चासी के ध्याय॥
ज्ञान दियौ हरि तात कों, मातहिं सुत दए ल्याय॥

श्री शुक उवाच—

इक दिन राम स्याम ढिंग आय। पित बसुदेव सुनि के पाय॥
गहि करि बहुत श्लाघा करी। मुनि बचननि पुनि जानें हरी॥
लखि बीरज विश्वास सु पायौ। हरषि दुहुनि कों बचन सुनायौ॥
कृष्ण कृष्ण हे महायोग धर। अहो सनातन संकर्षन वर॥
अहो हम तुम जग कारन जानें। प्रकृति पुरुष पुनि परे बखानें॥
जामें जातें जाकौ जा करि। जिह हित जब जैसें जौ जो हरि॥

सो सो सब तुम हीं साक्षात। प्रकृति पुरुष ईश्वर विख्यात ॥
अहो अधोक्षज अज आत्मा हरि। तुम हीं नाना विधि जग रचि करि॥
तिनमें क्रिया रु ज्ञान शक्ति धुरि। पैठि तुम्हीं धारत हौ हे हरि ॥
जग कारन प्राणादिक जिते। ये तौ पराधीन हैं तिते ॥
इनमें चेष्टा शक्ति तिहारी। तुम हीं कारन परम मुरारी॥
गिरि में थिरता धारन धर में। ससि में कान्ति प्रभा दिनकर में॥
पुनि बिजुरी में कौंधनि भारी। सो सब तुमरी शक्ति मुरारी॥
तृप्ति ज्यायवौ रस जल के गुन। ते सब तुमरी शक्ति आहि पुनि ॥
सहबल ओज चेष्टा गति ये। आहि च्यार गुण तुम हीं हौ ते॥
तुमही दिसि तुमहीं अवकास। तुमहीं शब्द तुम्हीं आकास ॥
ॐकार वैषरी रु नाद। तुम्हीं सब कछु आहि अनादि ॥
तुमहीं इन्द्री इन्द्रिन के गुण। तुम हीं देव शक्ति तिनकी पुनि ॥
बुद्धि में निश्चें तुम्हीं मुरारी। जीव में सुमिरन शक्ति तिहारी॥
तुमहीं त्रिविधि हंकार अहो हरि। पंचभूत इन्द्री सुरजित करि॥
तुमहीं जीवहिं जग में डारौ। तुमहीं सत्य असत्य पसारौ॥
जैसें इक माटी ही सत्य। मटका मटकी सबै असत्य ॥
सत रज तम महदादि जिते हरि। ते तुम ब्रह्म माँहि माया करि॥
सु तौ अहो ये तुम में नाँही। निर्विकार तुम सब के माँहीं॥
हे सर्वातम तुव सूक्ष्म गति। जानि सकें नहिं महामन्द मति॥
करि अभिमान कर्म कों करें। तिनतें उपजि उपजि ते मरें॥
सुन्दर नर तन दुर्लभ भारी। कोई भाग करि पाय मुरारी॥
तुमकों जानि सक्यौ नर नाँही। आयु बिताई भोगनि माँही॥
तन के माँहि अहन्ता मानें। वस्तुनि में पुनि ममत्ता ठानें॥
यह सब जग तुम अहो मुरारी। प्रीति पास करि बाँध्यौ भारी॥
तुम दोऊ प्रकृति पुरुष के ईस। मेरे सुत नाहिन जगदीस॥
प्रगटे दूरि करन धर भार। आप हूँ यह भाषत निरधार॥

दीनबन्धु हम सरन तिहारे। तुमरे पग भव नासन हारे॥
विषै भोग हू कीनें भारी। अब हम पूरन भए मुरारी॥
जिन करि तनहिं आत्मा जान्यों। तुम ईसुर कों सुत करि मान्यों॥
सोवर घर में भाषी आपन। जुग जुग प्रगटों धर्महिं थानन॥
तुम व्यापक बहुधा जस धारी। पुनि नभ से निर्लेप मुरारी॥
अन्तर्धान करौ बहु तन धरि। तुव विभूति को जानि सकै हरि॥

श्री शुक उवाच—

जदुवर हरि यह पिता बचन सुनि। प्रेम छए हँसि नए कही पुनि॥
अहो तात तुम भलें बखान्यों। अति उत्तम हमरे मन मान्यों॥
जातें तुम हम पुत्रनि हेत। भलें बखान्यों तत्व निकेत॥
हम तुम पुरजन जड़ जंगम जे। तुमकों सब यों ही लखिवें ते॥
आत्मा एक नित्य अरु निर्गुन। स्वप्रकास सब तें न्यारौ पुनि॥
आपही गुण रचि सबनि बनावै। तिनमें बहु विधि ह्वै दरसावै॥
जैसें पञ्चभूत सब माँहीं। नाना भाँतिन ह्वै दरसांहीं॥

श्री शुक उवाच—

सुनि बसुदेव महा सुख छए। नाना मति तजि चुप ह्वै गए॥
भई देवकी हू विस्मै पुनि। पुत्रनि करि गुरु सुत आन्यों सुनि॥
कंस हते सुत सुमिरे सही। व्याकुल रोय सुतनि सों कही॥
हे अनन्त ईसुर हे राम। हे योगेस ईस हे श्याम॥
आदि पुरुष हे सबके ईस। अब मैं तुम जाने जगदीस॥
काल सों जिनकौ नस्यौ सतोगुण। तजे वेद मग भूमि भार पुनि॥
तिन भूपनि के मारन कारन। मो में प्रगट भए जन तारन॥
तुमरे अंस के अंस करि। जग लय थिति उत्पत्ति होत हरि॥
ता तुमरी मैं सरन भई अब। गुरु ने मारयौ पुत्र माँग्यौ जब॥
तब तुम गुरुहिं देन सो दान। जम के घर तें दीनौं आन॥
त्योंही मम सुत कंस हते जे। मैं जोगीस लख्यौ चाहति तें॥

श्री शुक उवाच—

राम स्याम निज मात वचन सुनि। निज माया करि गए सुतल पुनि॥
अपने पूज्य जगत हितकारी। लखि बलि आनन्द पायौ भारी॥
वेगि दौरि निज जननि समेत। दुहुँ के पग गहि लए सहेत॥
बड़े सिंहासन पैं बैठाय। धोए पाय महासुख पाय॥
सहित कुटंब सीस धारयौ सो। ब्रह्म प्रजंत पवित्र करैं जो॥
सुभ सुगन्ध पटभूषण पान। आने भोजन अमृत समान॥
बहुत विभूतिनि सों पूजे हरि। दीने तन धन जन अर्पन करि॥
बलि हरि चरन कमल मन धारयौ। प्रेम भीजि मति तनहिं विसारयौ॥
कही हे व्यापक कृष्ण अनन्त। जगकर्ता तुम हम सु नवन्त॥
तुम परमातम ब्रह्म सु पियारे। सांख्य जोग विस्तारन हारे॥
जननि कों दुर्लभ दरस तिहारौ। रज तम कौ सु सुभाव हमारौ॥
तिनकों दरस सुलभ भयौ भारी। सो तौ यह प्रभु कृपा तिहारी॥
दानव दैत्य सिद्ध गन्धर्व। विद्याधर चारन लौं सर्व॥
प्रथम पिसाच जच्छ वर भूत। हम औरौ पुनि बहुत अऊत॥
तुम सों करें बैर कौ धारन। तुम अति सुद्ध सास्त्र के कारन॥
बैर काम करि तुमें मिलें ज्यों। सत्तोगुणी सुर हू न मिलें त्यों॥
हे योगेस ईस सुखकारी। तुव सु योगमाया है भारी॥
योगी हू ताहि जानत नाँहीं। हे प्रभु हम किह गनती माँहीं॥
मोहि कृपा अस करि यदुराय। ज्यों गृह अन्धकूप छिटकाय॥
तुव पद माँहिं करौं निज धाम। जिनकों ढूँढ़त पूरन काम॥
डोलों बन फल खात अकेल। अथवा तुव भक्तनि के मेल॥
सीख देहु श्रद्धा करि करिहें। जा करि विधि निषेध हम हरिहें॥

श्री भगवानुवाच—

पहल मरी चितिय ऊर्णा नामें। छह सुत भए देवता तामें॥
ते ब्रह्महिं लखि बेटी आछें। करत भए उपहास सु पाछें॥

ता करि असुर भए ते तबही। हिरण्यकसिपु के सुत भए सबही॥
बहुरि जोगमाया तें आने। मात देवकी उर प्रगटाने॥
कंस हते ते तुव ढिंग हैं सब। इन्हें देवकी सोचति है अब॥
स्मर, उद्गीथ, घृनी, परिष्वङ्ग। बहुरि छुद्रभुक छठों पतंग॥
हे बलि हम इनकों लै जैहें। सोक मात कौ दूरि सु कैहें॥
मो प्रसाद करि छूटि साप तें। स्वर्गलोक जैहें सु आप तें॥
पुनि ये मुक्ति होयगे सबै। सुनि बलि हरि हल पूजे तबै॥
छहोंन लै द्वारावति आय। मातहिं तात दए यदुराय॥
देखि मात कौ हिय उमड़ानों। बहुरि कुचनि तें दूध बहानों॥
गोद चढ़ाय लए सब तात। बार बार सिर सूँघति मात॥
हरषि सुतनि कों दूत पिवायौ। जो तिनके परसें उमड़ायौ॥
मोहित है हरि की माया सों। सबही सृष्टि होति है जासों॥
हरि कौ आहि प्रसादी पय जो। हे नृप तिन लरकनि पीयो सो॥
पुनि हरि जू कौ परसन पायौ। निज सरूप सुमिरत ह्वै आयौ॥
मात तात पुनि भ्रात हें जिते। तिनकों नवत भए ते तिते॥
सबके देखत स्वर्गहिं गए। नभ मारग ह्वै अति छवि छए॥
आए देखि मरे निज तात। बिस्मै भई देवकी मात॥
श्रीहरि परमातम सुख रूप। तिनके अस बहु चरित अनूप॥

सूत उवाच—

अमृत कीर्त्ति श्री कृष्ण मुरारी। तास चरित ये जग अघहारी॥
भक्तनि सुखद कहे श्रीसुक मुनि। इनकों सुनें सुनावै जो पुनि॥
ताकौ चित्त हरि में लगि जावै। ताही के सुख धामहिं पावै॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानिकृते
पञ्चाशीतिमोऽध्याय ॥ ८५॥

छयसीवाँ अध्याय

दोहा—अर्जुन हरी सुभद्रिका, छयासी के अध्याय।
सुख दीनों नृप विप्र कों, हरि मिथिलापुर जाय॥ १॥

श्रीराजोवाच—

राम स्याम की बहनि अहो मुनि। नाम सुभद्रा दादी मम पुनि ॥
अर्जुन ताहि बिवाही कैसें। हमें कहौ मुनि है यह जैसें ॥

श्री शुक उवाच—

भ्रमत तीर्थ जात्रा में अर्जुन। यह प्रभास में जाय सुनी पुनि ॥
सुता सुभद्रा मामा की जो। मोकों सबै दयौ चाहत सो ॥
दुर्योधन कों राम बिचारयौ। सुनि अर्जुन हरिवें मन धारयौ ॥
तब अर्जुन सन्यासी भए। धरि त्रिदण्ड द्वारापुर गए ॥
चौमासें तहाँ बास सु कीनों। ताके हरन माँहिं मन दीनों ॥
राम समेत सबनि सनमाने। पै काहू ने नाहिंन जाने ॥
इक दिन राम न्योंति लै गए। श्रद्धा सों सु जिवावत भए ॥
तहाँ सन्दर कन्या सु निहारी। बीरनि के मन-मोहन हारी ॥
दृग हरषाए मन अकुलायौ। ताही में लै चित्त लगायौ ॥
अर्जुन तिय लजोंहें भारी। देख मोहि गईं सुकुमारी ॥
सलज हास चितईं सुख दें न। इन हीं में धारे मन नैंन ॥
अर्जुन तास ध्यान नित धारै। हरिवे के अबसरहिं बिचारै ॥
बली काम करि चित्त भ्रमात। यातें और न कछू सुहात ॥
इक दिन देव जात्रा भई। रथ पै चढ़ि ते बाहिर गई ॥
मात पिता हरि कौ मत पाय। तहाँ महारथ हरी सु जाय ॥
तिंह रथ चढयौ धनुष कर लयौ। रोकत भटनि भजावत भयौ ॥
अपने भागहिं लै गयौ ऐसें। सिंह छकरनि में ते जैसें ॥
सुनि करि राम छुभित भए भारी। बड़ौ समुद्र ज्यों पर्व मँझारी ॥
तब हरि जादव पायनि परे। नीठि नीठि बल सान्त सु करे ॥
पुनि बल भेजे दायज भारी। हय गय पट भूषन नर नारी ॥
पुनि इक द्विज श्रुतिदेव सु नाम। हरि प्रिय शान्त ज्ञान कौ धाम ॥
कृष्ण भक्ति करि पूरन अर्थ। तजि दीनें सब बिषै अनर्थ ॥

देस-विदेह पुरी मिथिला जो। तामें रहै कुटुम्बी द्विज सो॥
बिन हीं उद्यम जो कछु आवै। ताही में सब काम चलावै॥
दैव हू ताकों दिन दिन माँही। देत विवाह मात्र बहु नाँहीं॥
सोऊ सदा तुष्टिता धरै। उचित क्रिया सब करिबौ करै॥
त्यों हीं तहाँ कौ नृप बहुलास। निर अभिमान कृष्ण कौ दास॥
प्रगटयौ जनक भूप के बंस। दोऊ हरिप्रिय परम प्रसंस॥
तिन पै हरि प्रसन्न अति भए। दारुक आन्यों रथ चढ़ि लए॥
गए तहाँ संग असित अत्रि मुनि। नारद अरुन व्यास हम हूँ पुनि॥
वामदेव रु वृहस्पति राम। काण्व च्यवन मैत्रेय अभिराम॥
मुनिन सहित हरि जात हे जहाँ जहाँ। ग्राम देस के नर नृप तहाँ तहाँ॥
भेटनि ल्याय हरिहिं पूजत यों। उए नछत्रनि जुत रवि कों ज्यों॥
कैकय कुंति कंक कुरु जंगल। मत्स्य अनर्त्त अर्नमधु निर्जल॥
औरौ देसनि के नारी नर। हरि मुख कमलहिं पियत दृगनि करि॥
स्निग्ध उदार चितै मुसिक्यान। लखि सब कौ नासौ अज्ञान॥
उज्जल व्यापक निज जस आहि। सुर नर गायौ सुनत सु ताहि॥
अभय ज्ञान सब हीं कों दै करि। हरें हरें मिथिला आए हरि॥
पुरजन अच्युत कों आए सुनि। हरषि भेट लै लै धाए पुनि॥
लखे उत्तम श्लोक मुरारी। उमग्यौ मन मुख आनन्द भारी॥
हाथ जोरि हरि पग लपटानें। तिहीं भांति मुनि हूं सनमानें॥
श्रुतदेव रु बहुलास विचारी। जग के गुरु श्रीकृष्ण मुरारी॥
हम पै करन अनुग्रह आए। दौरि कृष्ण के पग लपटाए॥
दुहुँनि जोरि कर एकै बार। न्यौंते मुनिन समेत मुरारी॥
दुहुवनि देंन चेंन घनस्याम। गए अलखि दुहुँवनि के धाम॥
दुष्टनि के काननि हूं तें जे। निपट दूरि मुनि घर आए ते॥
नृप बहु आसन दए बिछाय। तिन पै ते बैठे सुख पाय॥
प्रेम सों नृप कौ गरौ रुकानों। रोय मुनिन के पग लपटानों॥

चरन धोय जगपावन जल जो। सहित कुटंब सीस धारयौ सो ॥
गन्ध फूल पट भूषन पान। धूप दीप दै अर्घ महान ॥
पूजि मधुर वचननि करि आछें। सबनि जिवाय अघाए पाछें ॥
नृप हरि पाय गोद धरि लए। तिन्हें पलोटत बोलत भए ॥
हे प्रभु स्वप्रकास तुम नीके। आतम पुनि साछी सब ही के ॥
सुमिरत हम पद कमल तिहारे। तिनकों दरस भयौ हे प्यारे ॥
साँच करन तुम अपनी बानी। हे प्रभु दरस दयौ हम जानी ॥
मोहि इकान्ती प्रिय जन जैसें। सेस रमा विधि हू नहिं तैसें ॥
चरन कमल तुव त्यागै कोंन। हे प्रभु ऐसें जानें जौं न ॥
जो मुनि सान्त अकिञ्चन आहि। देत अपन पौ हू तुम ताहि ॥
तुम प्रगटे जदुवंस मँझारी। त्रिभुवन सुखद कीर्ति विस्तारी ॥
संसारी जन कों संसार। ताहि मिटावन हेत मुरारि ॥
हे सुशान्त तप रिषि नारायण। कृष्ण अकुण्ठित मति पारायण ॥
हे व्यापक हम दास तिहारे। कछुक द्यौस घर रहौ हमारे ॥
मुनिन सहित यह निमि कौ कुल जो। चरन रेंनु करि शुद्ध करौ सो ॥
सुनि तहाँ रहे कमल-दल नेंन। पुर के नर नारिन सुख देंन ॥
श्रुतिदेवौ लखि हरि घर आए। नृप ही ज्यों सुख माँहिं डुबाए ॥
सबकों सीस नाय रस पाग्यौ। फेरि पिछौरी नाचनि लाग्यौ ॥
बहुरि चटाई दई बिछाय। तिन पर सब बैठे सुख पाय ॥
आए भलें पूछि सुख भोए। तिय संग लैं सबके पग धोए ॥
ता जल करि सब घर छिरकायौ। सहित कुटम्ब आप हूँ न्हायौ ॥
आनन्द पाय पूर्ण ह्वै गयौ। जथा जोग पुनि पूजत भयौ ॥
अमृत समान आनि जल दियौ। खस रु फलनि करि वासित कियौ ॥
माटी सुरभि कमल कुस तुलसी। आगें आनि धरे मति हुलसी ॥
सतोगुणी अन्न अनायास जो। आयौ आगें आनि धरयौ सो ॥
मन में कही ये मुनि हैं जिते। इन हरि हीं की मूरति तिते ॥

इनकी चरन रेणु जग पावन। अरु ये कृष्ण महा मन भावन॥
हम गृह अन्धकूप में परे। तिन पै ये कैसें करि ढरे॥
भोजन करि सुख सों बैठे मुनि। ता पाछें श्रुतिदेव महा गुण॥
सहित कुटम्ब कृष्ण ढिग आयौ। पाय पलोटत वचन सुनायौ॥
या जगकों रचि निज शक्तिनि करि। तुम प्रविष्ट भए परम पुरुष हरि॥
हमनें तौ तुम पाए तब ही। ऐ परि भयौ दरस यह अब ही॥
जैसें स्वप्न माँहि सूतौ नर। मन सों अपुन अविद्या ही करि॥
नाना विधि के तन उपजाय। तिनमें आपुन बैठे जाय॥
जो कोई तुमकों पूजै गावै। तुव गुण सुनि तोहि सीस नवावै॥
ता जन के निर्मल हिय माँहीं। नित तुम दरसौ दुरौ सु नाहीं॥
जिनके चित कर्मनि करि पूरि। तिनकों तुम हिय हू में दूरि॥
निज शक्तिनि करि गहे न जावौ। भक्तनि के ढिंग सुख पावौ॥
निर अभिमानी जनहिं छुटावौ। तन अभिमानी कों भटकावौ॥
अपनी माया करि अपु न्यारे। राखे पुनि लपेटि जन सारे॥
माया मह तत्व के ईश। तुमकों हम प्रभु नावत सीस॥
दासहिं कहौ कहा यह करै। सुख नहिं तुव दरसन ते परै॥

श्री शुक उवाच—

जन दुख नासन हरि हरषाए। द्विज कर गहि पुनि वचन सुनाए॥
करन अनुग्रह आये ये मुनि। हे द्विज यह तुम हूं जानों पुनि॥
हम इनकों हिय में निज जातें। त्रिभुवन पावन पद रज यातें॥
तीरथ छेत्र देवता जिते। दरस परस पूजन तें तिते॥
बहुत काल में शुद्ध सु करें। साधु दरस ही तें सब हरें॥
जन्म ही करि द्विज मंगलकारी। बहुरि उपासन करै हमारी॥
तब विद्या संतोषहिं धारै। ताकी महिमा कौन उचारे॥
सो मोकों प्यारौ है जैसौ। रूप चतुर्भुज हू नहिं तैसौ॥
सर्व वेद विप्रहिं जानों। सर्व वेद मय मोकों मानों॥
द्विज गुरु आत्मा रूप हमारौ। अज्ञ ताहि नहिं जानत भारौ॥

तासों तौ लै दोसहिं ठाने। प्रतिमा ही कों पूज्य सु माने ॥
जड़ जंगम महदादिक जिते। मेरो ईस रूप ये तिते ॥
द्विज सब ही कों हिय में धरै। मेरौ सब ठां दर्शन करै ॥
तातें हे द्विज ये मुनि जिते। श्रद्धा सहित पूजियें तिते ॥
मेरी हू पूजा या माँहीं। बहुत विभूतिनि करि पुनि नाँहीं ॥

श्री शुक उवाच—

सुनि द्विज परम भाव में भरयौ। हरि संग सबकौ पूजन करयौ ॥
दासनि के सु दास जदुराई। रहि दुहुंबनि कों भक्ति सिखाई ॥
ते दोऊ सद्‌गेति पावत भए। हरि हूँ निज द्वारापुर गए ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानिकृते
षड्शीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सत्तासीवाँ अध्याय

दोहाः—वेद स्तुति निगुन सगुण, सत्यासी के ध्याय ॥
नारायण कही नारदहिं, सुनियें सो चित लाय ॥

श्री राजोवाच—

निगुण ब्रह्म कह्यौ नहिं जात। परें कार्य कारन तें ख्यात ॥
सगुन बेद साछात ताहिं पुनि। कैसें सेवत हमें कहौ मुनि ॥

श्री शुक उवाच—

हे नरदेव सुनों दै कान। जननि के बुधि इन्द्रिय मन प्राण ॥
प्रभु ही आप रचे हे अरिजित। अर्थ धर्म पुनि काम मोछ हित ॥
सु यह ब्रह्म पर बेद उचारयौ। बड़ु रिषिनि पहल यह धारयौ ॥
श्रद्धा करि अब हूँ धारै जो। ह्वै बिरक्त मंगल पावें सो ॥
यां इक सुनियें कथा अनादि। नारद नारायण सम्बाद ॥
इक दिन हरि प्रिय नारद जू सुनि। देखनि गमनें नारायण मुनि ॥
जो प्रभु भारत-खण्ड मँझारी। करनि नरनि कौ मंगल भारी ॥
धर्म ज्ञान जुत तप जो आहि। कल्प प्रजन्त करत हैं ताहि ॥

तहाँ कलाप नगर वासी मुनि । नारायणहिं घेरि बैठे पुनि ॥
नारद गए नए सुख काजा । यहीं बात पूछी पुनि राजा ॥
तब हरि सबके सुनत बखान्यों । श्रुति सम्बाद परम सुख सान्यों ॥
पहलें हे नृप जो सम्बाद । आपस माँहिं कियौ सनकादि ॥

श्री भगवानुवाच—

स्वेत दीप के ईस जु आहि । जब तुम देखनि गमने ताहि ॥
तब ऊर धरे ता सनकादि । जे भए विधि के मन तें आदि ॥
ते जन लोक मँझारि अहो मुनि । मिलि श्रुति सबादहिं कीनों पुनि ॥
श्रुति हरि अस्तुति करत हें जामें । जो तुम मोहि पूछ्यौ सुख कामें ॥
जिनके बैरी मीतन आन । बहुरि सील तप ज्ञान समान ॥
तिनमें इक वक्ता होय कहें । श्रोता तीन होंय सुख लहें ॥

सनन्दन उवाच—

अपनों सृज्यौ जगत संघारि । सोवत शक्तिनि सहित मुरारि ॥
ता पाछें हरि महिमा सानी । जगवत कहिं श्रुति सुन्दर बानी ॥
जैसें अहो चक्कवें राजा । सोवत ताहि परम सुख काजा ॥
प्रात ही बन्दीजन जसु गावें । ताही के रूप पराक्रम गावें ॥

श्रुतय ऊचुः ॥

जै जै अजित अजा जन की हर । बुरौ करन कों गुण गहि जा करि ॥
हे प्रभु ये ऐश्वर्य हें जिते । आपही करि तुम पाए तिते ॥
तुमहीं सबहिं शक्ति सब साजौ । सदा ज्ञान घन रूप विराजौ ॥
तुम माया करि क्रीड़त हौ जब । हम श्रुति तुमकों वरनत हें तब ॥
जग कों कारन ब्रह्म ही आहि । कभूं विकार लगै नहिं ताहि ॥
जग तातें होय तामें झिलै । ज्यों घट धर तें ह्वै धर मिलै ॥
या तें मन बानी की क्रिया । रिषि तुमही में धरत सु हिया ॥
जहाँ नर पाय धरै धर सुत ही । यों जो बेद कहै सो तुम हीं ॥
मृगी तृगुण मय माया आहि । हे प्रभु तुम सु नचावत ताहि ॥

तुव गुण अमृत हरत सब पाप। होत विवेकी सुनि निस्ताप॥
जिन हिय फुरयौ सरूप तिहारौ। तन मन कौ गयौ धर्म सु सारौ॥
ते सेवे स्वरूप सुख महा। अहो परम यह कहिवौ कहा॥
जीवत ते जे तुमें उपासत। विमुख धोंकिनी से सु उपासत॥
महदादिक तुव कृपा सु पाय। या ब्रह्माण्डहिं रच्यौ बनाय॥
अन्न मयादिक कोठे पाँच। तिनमें आप रहत हूँ सांच॥
पै तुम सबतें परें अनूप। कारज कारन सत्य सरूप॥
ब्रह्महिं उर में मनि पूरक पर। ध्यावत स्थूल दृष्टि कोई रिषि वर॥
सूक्ष्म दृष्टि हिय ध्यावत भलें। जहाँ तें सबही नाड़ी चलें॥
नाड़ी आहि सुषमना नाम। श्रेष्ट तेज मय तुमरौ धाम॥
जाहि पाय नर आवत नाँहीं। मृत्यु रूप या जग के माँहीं॥
ऊँच नीच बहु देह बनाय। तिनमें आपुन पैठत जाय॥
पुनि नाना विधि भासौ ऐसें। काठनि माँहिं अगिन प्रभु जैसें॥
जिनकी मति अति निर्मल आछें। सब व्यवहारत जे ता पाछें॥
ते भूँठे तन में तोहि देखें। सत्य समान एक रस लेखें॥
जीव कार्य कारन तें न्यारौ। रहत आप रचि देह पसारौ॥
ताहि कहत हैं तुमरौ अंस। सब शक्तिनि जुत आप प्रसंस॥
यही जानि करि कवि विस्वास। करत धरन तुव चरन उपास॥
तुव पग कर्म फलनि के खेत। संसारहिं सु नास करि देत॥
अहो तुम दुर्गम तत्व जनावन। प्रगट करत तन अति मन भावन॥
तिनके अमृत चरित सुखकारी। जिनमें गिरत गए श्रम भारी॥
हे प्रभु तुव पद पङ्कज धाम। तिनके हंस साधु अभिराम॥
तिनसों मिलि घर बार हू भूले। मुक्ति हू नहिं चाहें रंग भूले॥
आत्म सुहृद मीत सौ तन जो। तुमरी सेवा उचित आहि सो॥
तुम आत्मा प्यारे हितकारी। हाय तुमें नहिं भजत अनारी॥
लालन पालन तन कौ करें। राति द्यौस तामें चित धरें॥

तेई आत्म घाती पाछें। बुरे बुरे तन पावत आछें॥
रोकि प्रान इन्द्री मन कों मुनि। भली भाँति दृढ़ जोग-धारि पुनि॥
हिय के माँहिं उपासत जाहि। सुमिरि रिपुनि हूँ पायौ ताहि॥
तियनि हूँ तुव पद पङ्कज पाए। सर्प सी भुजनि माँहि मन छाए॥
हमन हूँ ताही भावहिं कैहें। तैसी ह्वै पद पङ्कज पैहें॥
तुम पहलें तिनकों जानें को। पाछें उपजि प्रथम नासै जो॥
तुम तें पहलें ब्रह्मा भयौ। ताही नें सब जग निर्मयौ॥
जग संहार सोवत हौ तुम जब। हे प्रभु बाकी कछु न रहै तब॥
काल वेग पञ्च तत्व महान। शास्त्र शरीरन इन्द्री प्राण॥
जे जग सुतै होत हय माने। भेद आत्मा में पुनि ठानें॥
इक इस दुख कौ नास बतावें। व्यवहारहि कहि साँच सिखावें॥
ते तौ केवल भ्रम हीं बहें। पुरुष त्रिगुण मय अज्ञ सु कहें॥
तुम सु अज्ञ तातें अति परें। सदा ज्ञानघन मूरति धरें॥
मन कल्पित जग त्रिगुण असत्य। तुमही तें भासत यह सत्य॥
आत्म बेत्ता जन तुमहीं करि। यह सब जग सतमानत हे हरि॥
जैसें सोंनें के गहनें जे। जन सोंनों ही करि मानत ते॥
आपही जग रचि जीव प्रविष्ट। सो तुव रूप ही निश्चय इष्ट॥
जो सबही में तुमकों जानें। पुनि तुमरी परिचर्या ठानें॥
सोई मृत्यु के मूँड़ पाय धरि। बेगि ही मुक्ति होत एहो हरि॥
विमुख विदुष कों तुमनें हे हरि। पशु ज्यों बाँध्यौ है शास्त्रनि करि॥
तुव जन सबहिं पवित्र सु करें। विमुख जाय नरकनि में परें॥
तुम सर्वेन्द्रिय सक्तिनि गहौ। स्वप्रकास इन्द्रिय करि रहौ॥
ब्रह्मादिक सुरगन हैं जिते। सब पै तें लै भेट सु तिते॥
तुमकों हे प्रभु पूजत ऐसें। छोटे भूप चक्रवहि जैसें॥
तुम अधिकार दियौ जो जाहि। तुम तें डरपि करत सो ताहि॥
तुम तौ नित ही मुक्त अहो हरि। कियौ चहौ जब खेल अजा करि॥

तुव चितवनि करि कर्म जगे तब। ताकरि उपजत जड़ जंगम सब ॥
तुम निर्लेप सून्य से है हरि। नभ से व्यापक माया तें पर ॥
आप अगोचर मन बानी करि। निज पर तुमरें नहिं दयाल हरि ॥
जिय ही नित अनन्त सब रूप। तौ तुम सिच्छक नहिंन अनूप ॥
जो जिय ऐसें नाहिन जौलों। तुम सिच्छक स्वामी हौ तौलों ॥
जन्मय यह जिय जन्म्यौ आहि। नेता होय बिन त्यागें ताहि ॥
तत्वहिं हम जानें जे कहें। सो दूषन जे तनक न लहें ॥
जन्म रहित ही प्रकृति पुरुष दो। तिनकों जन्म संभवै नहिं हो ॥
दुहूँ मिलनि तें जन होंय ऐसें। जल बयारि मिलि बुदबुद जैसें ॥
तामें बहु विधि नाम गुणनि करि। तुममें सबही लीन होत हरि ॥
ज्यों अनेक रस मधु में आवें। समुद माँहिं सब सरित समावें ॥
बार बार जन जन्म जु आहि। तुव माया करि भ्रम सो चाहि ॥
सुबुधि प्रीति तुमहीं में ठानें। तुमही कों भवनासक जानें ॥
तुम में प्रीति करत जे ऐसें। तिनकों भव भय होय सु कैसें ॥
जातें भृकुटी काल तिहारी। विमुखनि हीं कों है भयकारी ॥
जीतें जदिप प्राण इन्द्री गन। चपल अश्व मन जीत्यौ जा तन ॥
जो ताहि जीतन करत उपाय। पुनि गुरु के सरनें नहिं जाय ॥
सो उपाय में खेद ही पावै। सैकरनि दुख करि पुनि छावै ॥
जग ही माँहिं परयौ रहै ऐसें। जन बिन नाव समुद में जैसें ॥
तुम प्रभु हौ आतमा सब ही के। परमानन्द रूप पुनि नीके ॥
तन धन सुत तिय असुधर धाम। इन करि कहा पुरुष कौ काम ॥
तुमकों जे जन जानें नाँहीं। ते नस्वर असार जग माँहीं ॥
तिय सों मिलि मायिक सुख करें। ताहि कौंन आनन्द विस्तरें ॥
तुव पद कमल हिये मधि जिनके। अघ नासन चरनोदक तिनके ॥
ते रिषि विमद साधु संग हेत। डोलत पुण्य तीरथ निकेत ॥
पुनि ते घर में रहत सु नाँहीं। भली बात नासें जा माँहीं ॥

तुम सुख रूप माँहि इक बार। मन लगाय गृह तजत असार॥
ब्रह्म तें भयौ ब्रह्म जग नाँही। ठहरत नहिं विचार के माँहीं॥
है विभचारी झूँठौ भारौ। भ्रम हीं यह व्यवहार पसारौ॥
सो अन्ध परम्परा चलि आई। कर्मनि की मति येद भ्रमाई॥
यह जग पहल न पाछें नाँही। बिच भासत इक रस तुम नाँहीं॥
यातें सोंनें के गहनें करि। तुमरी उपमा करत अहो हरि॥
मन विलास यह असत बखान्यों। अबुध सोई जिन साँचौ जान्यों॥
जातें हे प्रभु यह जिय है जो। लपटयौ जाय अविद्या सों सो॥
तदाकार ह्वै विषै सु करै। ह्वै दुर्भाग्य जगत में परै॥
तुम ता मायहिं त्यागी ऐसें। साँप अपनी कँचुरी जैसें॥
अमित ईसता आहि तिहारी। पुनि अनिमादिक आठों धारी॥
जो हिय काम वासना आहि। मुनि जौ दूरि करै नहिं ताहि॥
तौ तुम हिय गत नहिं पैयत यों। भूलें कण्ठ माँहि की मनि ज्यों॥
केवल इन्द्री पोषक योगी। दुहूँ लोक में दुख के भोगी॥
मृत्यु न छुटी न तुव पद पायौ। हे प्रभु याही तें दुख छायौ॥
तुम ते भए सुभासुभ जिते। तुमरे भक्त न जानत तिते॥
तन तजि जन तुममें मन ठानें। दुख सुख विधि निषेध नहिं जानें॥
हे भगवान जग में तुव गुन। सम्प्रदाय करि गाए जे पुनि॥
तिनकों सदा श्रवन जे करें। उनकों तुम तें गति नहिं परें॥
ब्रह्मादिक न लहत तुव अन्त। तुम हूँ नहिं जानत सु अनन्त॥
तुम में बहु ब्रह्माण्ड भ्रमत यों। काल चक्र करि नभ में रज ज्यों॥
हे प्रभु ये हम श्रुति जु कहावैं। तुम तें ह्वै तुम में लय पावैं॥
नित ही असतनि वेधन करें। पर्यवसान तुम्हीं में धरें॥

श्री भगवानुवाच—

ऐसे विधि के पुत्र महान। भए सिद्ध मुनि आतम ज्ञान॥
आत्मा कौ सरूप पुनि जान्यों। बहुरि सनन्दन कों सनमान्यों॥

ब्रह्मचारी श्री सनकादिक मुनि। महानुभाव प्रथम जनमें पुनि॥
वेद पुराण रहस्य अपार। तिनकौ सार कियौ उद्धार॥
एहो ब्रह्म पुत्र नारद मुनि। काम जरन यह आतम ज्ञान पुनि॥
श्रद्धा करि हिय में धरि लीजै। मन आवै तहाँ फिरिवौ कीजै॥

श्री शुक उवाच—

ज्ञानवान श्रुति धर नारद मुनि। ब्रह्मचर्य कों धारत हैं पुनि॥
सुनि श्रद्धा करि निपट अघाए। पुनि हरि जू सों वचन सुनाए॥

नारद उवाच—

अमल कीर्त्ति भगवान जु आहि। हमरे नमस्कार हैं ताहि॥
जो सबही जन के हितकारी। प्रगट करत वपु सुन्दर भारी॥

श्री शुक उवाच—

महानुभाव आदि रिषि कों पुनि। मस्तक नाय नए नारद मुनि॥
तिनके शिष्यनि हूँ कों नए। पुनि मम पित के आश्रम गए॥
तिन आसन दै सन्माने मुनि। सुनि आए सो सबै कह्यौ पुनि॥
हे राजन तुम पूछी जोई। हम यह तुमकों वरनी सोई॥
निगुन ब्रह्म अगोचर आहि। तामें जैसें मन लगि जाहि॥
आदि अन्त मधि द्रष्टा है जो। प्रकृति पुरुष कौ ईस बहुरि सो॥
जग रचि पैठत जीव समेत। पुनि पालत सबकों सब देत॥
तजै अविद्या ताहि पाय जन। ज्यों सोयौ नर भूलि जात तन॥
सोई निर्भै श्रीहरि आहि। ध्यावत नित्य विवेकी ताहि॥
निज सरूप की अनुभवता करि। माया दूरि विडारी जिंह हरि॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
सप्ताशीतितमोऽध्याय ॥८७॥

अठयासीवाँ अध्याय

दोहा—देव भक्त पावत विभौ, हरि जन तौ हरि राय।
तहाँ हर वृक की कथा है, अठयासी के ध्याय॥ १॥

श्री राजोवाच—

महादेव अवधूत सु आहि। सुर नर असुर भजें जो ताहि॥
सो जन बहु विभूति पावत मुनि। लछमीपति के भक्त दुखित पुनि॥
हे मुनि हरि हर की विरुद्ध मति। तिनके भक्तनि की विरुद्ध गति॥
हमरें तौ संदेह सु महा। कहियै यह कैसें प्रभु कहा॥

श्री शुक उवाच—

श्री सिव सदा धरत माया गुण। तीन प्रकार अहंकारौ पुनि॥
तिनतें सोरह भए विकार। उनहीं तें ये देव अपार॥
तिनके पूजन जो मन लावै। सोई सब विभूति कों पावै॥
हरि साछात पुरुष सो निगुन। साछी ह्वै सबकों देखत पुनि॥
बहुरि प्रकृति तें परें सु आहि। निगुण होत भजै जो ताहि॥
भयौ समापति अश्वमेध जब। तुमरौ दादौ धर्मपुत्र तब॥
हरि जू सों बहु भाँति धर्म सुनि। हे नृप यही बात पूछी पुनि॥
तब बोले प्रसन्न भगवान। यदुकुल प्रगटे करन कल्यान॥

श्री भगवानुवाच—

जा पै हम सु अनुग्रह करें। ताकौं हरें हरें धन हरें॥
तब सो निपट दुखी ह्वै जाय। बन्धु हू ताहि देंहि छिटकाय॥
उद्यम हू में टोटौ आवै। तब धन चाह सबै छिटकावै॥
मम भक्तनि सों प्रीति करै जब। निज सरूप में ताहि देत तब॥
सच्चिद्घन अनन्त सुख धाम। परब्रह्म सूछम अभिराम॥
यातें मेदु राध ताहि तजें। और देवतन कों जन भजें॥
वेगि तुष्ट ह्वै तसु देत धन। तिनें पाय उन्मत्त होय जन॥
तब तिन देवनि मन नहिं धरै। उलटौ बहुरि अवज्ञा करै॥

श्री शुक उवाच—

ब्रह्मादिक सिवादिक जिते। तूठनि रूठनि के प्रभु तिते॥
सिव विधि बेगि तूठें रूठें ज्यों। हरि जू नहिं तूठें रूठें त्यों॥

इहाँ एक इतिहास पुरातन । हे राजन सो सुनियै दै मन ॥
सकर दयौ वृकासुर कौं वर । पुनि तातें डर हू आयौ हर ॥
कुथाते वृकासुर सकुनि पुत्र जो । नारद सों मग में बोल्यौ सो ॥
तीनि देवतनि में मुनि अहौ । वेगि प्रसन्न होय सो कहौ ॥
मुनि कही तुम सिव जू कों धावौ । तिनतें वेगि ही सिद्धि सु पावौ ॥
जो सिव अल्प ही गुण सों तूठें । वेगि ही अल्प दोष तें रूठें ॥
रावन वानासुर जे गाए । अस्तुति करि तिन हरिहिं रिझाए ॥
तिनें अतुल ऐश्वर्य्य सु दयौ । पुनि तिनहीं तें संकट भयौ ॥
सुनि दानव किदार में गयौ । निज तन माँसहि होमत भयौ ॥
अगिन ही जिन सिव कौ मुख आहि । तुष्ट कियौ चाहत सो ताहि ॥
सिव जू कौ दरसन नहिं पायौ । सातएं दिन निर्वेद सु आयौ ॥
तब सिर कों काटनि लाग्यौ सो । तीरथ के जल भीजि रह्यौ सो ॥
तब दयाल सिव अगिन मँझारी । प्रगटे दिपति अगिन सी भारी ॥
हाथ पकरि ताहि राखि सु लयौ । दरस ही तें ज्यों कौ त्यों भयौ ॥
पुनि कही अब पूरन ह्वै जै । मन मान्यों वर माँगि सु दूजै ॥
जल ही करि है तुष्टि हमारी । तें तन वृथा दुखायौ भारी ॥
तिन पापी माँग्यौ वर तासों । सब भूतनि कों ह्वै भय जा सों ॥
जा जा के सिर कर हम धरें । हे सिव जू सोई सो मरें ॥
श्री भगवान रुद्र जो आहि । भए विमन से सुनत सु ताहि ॥
सो वर ताहि दयौ हँसि ऐसें । साँपहिं अमृत पिवैयै जैसें ॥
सुनि तिन उमा हरन मन धारी । पुनि वर परखन हेत अनारी ॥
सिव के सिर कर धरन उठायौ । यों निज करनी तें भय आयौ ॥
दानव भाग्यौ तिनके पाछें । हर डर काँपि भगे पुनि आछें ॥
भगे स्वर्ग दिसि धरनि मँझारी । तहीं तहीं देख्यौ असुर पिछारी ॥
बहूड़े देव चुप्प ह्वै गए । कछू उपाय न जानत भए ॥
तब माया तें परें प्रकास । श्री वैकुण्ठ गए सिव दास ॥

राजत नारायण जा माँहीं। जहाँ गयौ जन बगदत नाँहीं॥
शान्त रु न्यस्त दण्ड सन्यासी। तिनकों जो हरि गति सुख रासी॥
ता दुख कों लखि दुख नासन हरि। भए ब्राह्मचारी माया करि॥
कर कुस अजिन मेखला दण्ड। ज्वलित अगिन सम तेज प्रचण्ड॥
ता दानव के सन्मुख आए। ह्वै सुसील कछु बचन सुनाए॥
निश्चें तुम हारे हौ अहौ। क्यों भागत किन हम सों कहौ॥
छिन बैठौ जिन तनहिं सताबौ। जा तन तें सब अर्थनि पावौ॥
हमें योग जानों तौ कहियै। पाय सहाय अर्थ कों लहियै॥

श्री शुक उवाच—

अमृत वचन करि हरि पूछी जब। श्रम तजि तानें सबै कही तब॥
हरि कही अहो हर वचन जु आहि। हम तौ सत्य न मानत ताहि॥
दछ साप तें भ्रष्टाचारी। प्रेत पिसाचनि कौ नृप भारी॥
जग गुरु में तुमरें विसास जौ। निज सिर ही कर धरि देखौ तौ॥
हे दानव वर हर की कही। कैसें हू झूठ होय जौ सही॥
तौ सिव भलें मारियै यातें। पुनि अस झूठ न बोंलै जातें॥
सुन्दर चित्र विचित्र जु बानी। तिन करि ताकी बुद्धि भ्रमानी॥
बड़ौ कुमति अति अचिरज भरयौ। अपने सिर अपनों कर धरयौ॥
सिर फटि गिरयौ धरनि में ऐसें। बड़े वज्र कौ मारयौ वैसें॥
नम नम साधु साधु पुनि जय जय। स्वर्ग में भए शब्द ये अतिशय॥
सुर रषि पितर फूल बरसाए। संकट तें संकरहिं छुटाए॥
पुनि हरि हर सों वचन उचारयौ। यह पापी निज पापनि मारयौ॥
महत जननि कौ करि उपराध। कैसे मंगल लहै असाधु॥
जग गुरु जगत ईस तुम आप। क्यों न लहै तुव दोषी ताप॥
हरि परमातम कारन रूप। सब शक्तिनि के समुद अनूप॥
तास चरित जो सुनें सुनावैं। ताकौ जग पुनि रिपुन बहावै॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानिकृते
ऽष्टाशीतितोमोऽध्याय ॥ ८८ ॥

नवासीवाँ अध्याय

दोहा—कौन बड़ौ तब जाय भृगु, कही परीछा ल्याय ॥
हरि आनें द्विज सुत मरे, नव्बासी के ध्याय ॥

श्री शुक उवाच—

सरस्वती तट मुनि हे जिते। जज्ञारम्भ करत भए तिते ॥
तिनके इक सन्देह भयौ हो। तीनि देवतनि में मुखिया को ॥
तब तिनके जाननि के काजा। विधि के सुत भृगु पठए राजा ॥
तब भृगु जाननि की मन धारी। पहल गए विधि सभा मँझारी ॥
जाय न नए न अस्तुति करी। धीरज परखन की मन धरी ॥
विधि कें देखि क्रोध अति जाग्यौ। अपुन तेज करि जरन सु लाग्यौ ॥
अपुन माँहि तें क्रोध उठयौ जो। पुत्र हेत करि सांत भयौ सो ॥
जैसें उपजि अगिन करि पानी। पुनि ताही करि अगिन सिरानी ॥
पुनि तहाँ तें कैलाश सु गए। सिव जू भैयहिं देखत भए ॥
लपटनि दौरे सुख भरपूर। भृगु कहीं तुम सु भ्रष्ट रहौ दूर ॥
सुनि सिव की आँखें फिर गईं। मारन हेत त्रिशूलहिं लईं ॥
गहि पग उमा शान्त ता करी। पुनि बैकुण्ठ गए जहाँ हरी ॥
तिया संग पौढ़े भगवान। जाय दई उर लात महान ॥
साधुनि की गति हरि कों गायौ। तिय संग उठि मुनि कों सिर नायौ ॥
आए भलें कही हरि पाछें। छिन आसन पर बैठौ आछें ॥
छमा करौ तुम हम नहिं जाने। तुव अति कोमल पाय पिराने ॥
निज कर पग पलोटि भगवान। कही तुव पद जल तीर्थ महान ॥
लोक लोकपालनि जुत हे मुनि। आजु पवित्र हमें करियै पुनि ॥
आजु तें हम हे मुनि अभिराम। भए रमा रहिबे कौ धाम ॥
मो उर नित्य रमा रहि है अब। तुव पग तें मम पाप गए सब ॥

श्री शुक उवाच—

गहि हरि की गम्भीर जु बानी। मुनि के भृगु की मति सरसानी ॥

भक्ति माँहिं उत्कण्ठा पागी। चुप ह्वै गयौ झरी दृग लागी॥
बहुरि वेद वादिन कौ जज्ञ। तहाँ आए श्री भृगु सर्वज्ञ॥
जो कछु आपुन अनुभौं कियौ। सो सब सब ही सों कहि दियौ॥
सो सुनि मुनि सब विस्मै छए। बहुरों हिय संसै कटि गए॥
कृष्ण ही एक बड़े माने तब। जातें सांत अभै पावत सब॥
जिनहीं तें ये होत महान। धर्म बहुरि वैराग्य रु ज्ञान॥
नर निर्मल जस पावत तिनतें। अनिमादिक आठौ पुनि जिनतें॥
न्यस्त दण्ड सम चित्त शान्त मुनि। निष्किञ्चन साधुनि की गति पुनि॥
सतोगुणी प्रिय मूरति जिनकें। द्विज ही इष्ट देवता तिनकें॥
निपुन सांत निष्काम भजें जिह। माया गुण करि तीनि रूप तिह॥
सुर राक्षस अरु असुर मँझारी। सतोगुणी ही है हितकारी॥

श्री शुक उवाच—

यों विप्रनि निश्चौ करि लियौ। संसै दूरि नरनि कौ कियौ॥
पुनि हरि पद सेवन मति लाई। ताकरि ताही की गति पाई॥

सूत उवाच—

यह भव नासन चरित बखान्यों। सुक मुख कमल गंध करि सान्यों॥
कर्णपि तूषी भरि पीवै जो। जग भटकनि तुम दूरि करै सो॥

श्री शुक उवाच—

इक दिन द्वारापुर छबि छयौ। तहाँ इक द्विज सुत ह्वै मरि गयौ॥
द्विज ताहि नृप के द्वारें डारि। दीन दुखित यह कही पुकारि॥
लोभी विषई द्विज द्रोही अति। बहुरों राजा महा मन्द मति॥
याही के पापनि करि अहौ। मेरौ पुत्र मरयौ किन कहौ॥
जो अन्याई विषई राजा। राति द्यौस हिंसा सौं काजा॥
ताकी प्रजा दरिद्री रहै। नित ही बहुरि दुखनि करि दहै॥
यों जो जो होय सोई जात मरि। यही कहै द्विज नृप द्वारें धरि॥
नईं बार हरि के ढिग अर्जुन। सुनि कें ता द्विज सों बोले पुनि॥

हे द्विज तुम कछु सोचहु नाँहीं। तुमरे यासु देस के माँहीं॥
नृप कोऊ नहिं धनुष धरैया। ये सब ब्राह्मण जज्ञ करैया॥
धन तिय सुतहिं तजिह पुर माँही। सोक करत द्विज ते नृप नाँहीं॥
ते नट प्राणहिं पोषन करें। राजनि के पुनि चिन्हहिं धरें॥
अहो विप्र तुम दीन हौ भारी। हम करिहें तुव सुत रखवारी॥
सत्य न करों प्रतिज्ञा जौ पै। अगिन माँहिं मैं पैठों तौ पै॥

ब्राह्मण उवाच—

श्री संकर्षन बहुरि मुरारी। पुनि प्रद्युम्न बड़े धनुधारी॥
श्री अनिरुद्ध बड़े जोधा जे। ताकी रच्छा करि न सके ते॥
जगत ईस कों दुष्कर आहि। तुम कैसें करि करिहौ ताहि॥
मूर्खता करि गालनि मारौ। हम नहिं मानत वचन तिहारौ॥

अर्जुन उवाच—

मैं कछु राम स्याम हों नाँहीं। प्रद्युम्नादिक कहें किह माँहीं॥
हे द्विज मोकों अर्जुन जानि। जास धनुष गाण्डीव महान॥
हमरौ बल तुम मन नहिं ल्याए। सिव हू में रण माँहि रिझाए॥
मृत्यु हू सों मैं युद्ध सु कैहों। ताहि जीति तुव सुत लै ऐहों॥

श्री शुक उवाच—

यों अर्जुन विसास उपजायौ। सुनि द्विज हरषि ग्रेह निज आयौ॥
तिय के पुत्र होंन लाग्यौ जब। द्विज आतुर अर्जुनहिं कही तब॥
मृत्यु तें राखि राखि सुत अर्जुन। सुनि सुचि जल आचवन कियौ पुनि॥
श्री महेस कों सीस नवायौ। दिव्य अस्त्र लै धनुष चढ़ायौ॥
नाना अस्त्रनि सहित तानि सर। चारों दिसि घेरयौ सोवर घर॥
ऊँचें नीचें चारों घां पुनि। सर पञ्जर करि दीनों अर्जुन॥
तब ताकें रोवत सुत भयौ। पुनि तन सहित अलख उड़ि गयौ॥
तब द्विज हरि ढिंग जाय बखान्यों। वचन निपुंसक कौ मैं मान्यों॥
मेरी लखौ मूढ़ता महा। हे यदुनन्दन कहियै कहा॥

राम स्याम प्रद्युम्न महान। पुनि अनिरुद्ध बड़े बलवान॥
येई राखि सके नहिं जाहि। और कौन प्रभु राखै ताहि॥
आत्म सलाघी झूठौ अर्जुन। धनुष सहित धिक्कार ताहि पुनि॥
दव सों नष्ट वस्तु जो आहि। दुर्मति आन्यों चाहै ताहि॥
यों द्विज श्राप देत सुनि अर्जुन। विद्या करि जम-धाम गयौ पुनि॥
तहाँ विप्र कौ सुत नहिं पायौ। बहुरि इन्द्र के पुर कों धायौ॥
लोकपालकनि के पुर गए। स्वर्ग रसातल ढूंढत भए॥
सस्त्र लिये गमने सब ठां हीं। पै द्विज कौ सुत पायौ नाँही॥
भई न पूर्ण प्रत्तिज्ञा जातें। पैठन लगे अगिन में तातें॥
हरि समझाय निवारयौ अर्जुन। अपनी घटती करौ न आपुन॥
हम तोहि द्विज कौ पुत्र दिखैहें। निन्दक ही तुव जस कों गैहैं॥
यह कहि हरि अर्जुन संग लए। चढ़ि रथ दिव्य पछिम दिसि गए॥
सात दीप समुद्रनि लंघि गए। लोकालोकहिं लांघत भए॥
आगें अन्धकार बहु जके। रथ के चारों हय तहाँ थके॥
तब सौ रवि सम चक्र महान। आगें करि लीनों भगवान॥
बड़ौ घोर वह तम जो आहि। निज प्रकास करि भेदत ताहि॥
बेगौ चल्यौ सुदर्शन ऐसें। रघुवर सर सेना में जैसें॥
चक्र के पाछें तम तजि भारी। पुनि व्यापक अति जोति निहारी॥
तहाँ अर्जुन के दृग मुदि गए। आगें जा जल पैठत भए॥
तीव्र पवन करि लहरी जामें। सुन्दर मन्दिर देख्यौ तामें॥
मनि के खम्भ हजारनि जाके। निपट प्रकास परम सोभा के॥
तहाँ अद्भुत श्री सेस निहारे। दृग द्वै सहस तेज मय भारे॥
सहस फणनि की मनि दुति सोहें। स्याम कण्ठ जिह्वा मन मोहें॥
फटिक सैल से स्वेत सु भारे। तिन पर पुरुषोत्तम सु हारे॥
मेघ से स्याम पीत पट धारी। हरषित बदन नेंन रुचिकारी॥
कुण्डल मुकट मनी के राजें। तिनकी ललक अलक छवि छाजें॥

कौस्तुभ रमा रेख बन माला। लांबी आठ सु भुजा रसाला॥
नन्द सु नन्दादिक ढिग राजें। आयुध मूर्त्ति धरें छवि छाजें॥
पुष्टि कीर्त्ति अजया श्री शक्ति। सब सम्पति ब्रह्मादिक भक्त॥
ता निज मूरति कों हरि नए। अर्जुन नए रु विस्मैं भए॥
हरि अर्जुन दोऊ जोरे हाथ। तब हँसि बोल्यौ भूमानाथ॥
अहो तुम धर्म हेत प्रगटे धर। देखनि में द्विज सुत ल्यायौ हरि॥
कृपा करी धर भार उतारि। बेगि ही दीजौ दरस मुरारि॥
तुम नर नारायण रिषि नाम। सबतें उत्तम पूरन काम॥
धर्म करत हौ लोक सिखावनि। पुनि जन पालन सुख उपजावन॥
सुनि कहि भलें बहुरि सिर नाए। द्विज सुत लै हरषित पुर आए॥
पहलें द्विज के सुत हे जैसे। प्रभु ने ल्याय दए ताहि तैसे॥
देख्यौ हरि प्रभाव यह अर्जुन। अति अचिरज में डूबि गए पुनि॥
कही पुरुष कौ पौरुष जितौ। कृष्ण हीं की सु कृपा करि तितौ॥
ऐसी बहु महिमा जदुराई। द्वारापुर में सबनि दिखाई॥
आछें विषै भोग कीनें हरि। जजन कियौ बड़े जज्ञनि करि॥
सकल मनोरथ प्रजहिं दए यों। काल काल में इन्द्र देत ज्यों॥
कछु अधरमीं नृप अपु मारे। कछु अर्जुन द्वारा संहारे॥
बहुरि धर्म पुत्रादिक द्वार। प्रचुर कियौ प्रभु धर्म अपार॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषा रसजानिकृते
नवाशीतितमोऽध्यायः॥ ८९॥

नब्बेहवाँ अध्याय

दोहा:—हरि लीला संछेप करि, कहत नबै के ध्याय॥
जदुकुल की बढ़वार पुनि, सुनियैं मनहिं लगाय॥ १॥

॥ श्री शुक उवाच॥

द्वारावति सब संपति छई। जहाँ विजुरी सी तिय अति नई॥
महलनि माँहिं कलोलनि करें। गेंद आदि खेलनि विस्तरें॥

मद चुचात तहाँ हाथी डोलें। सिंगारे भट करत कलोलें॥
हय रथ कनक साज कमनीय। फूले बागनि करि रमनीय॥
भृङ्ग विहङ्ग गुञ्जरत जहाँ। जदुकुल सहित रमत हरि तहाँ।
सोरह सहस तियनि के प्यारे। इकलेई तितने वपु धारे॥
सरनि में अमल कमल कल छए। झरि पराग जल वासति भए॥
ठां ठां कूजत खग सुखकारी। तहाँ जल कीड़ा करत मुरारी॥
लपटि तियनि सों सहित सनेह। कुच कुङ्कम करि रञ्जित देह॥
मागध सूत वन्दीजन गावें। वीना ढोल मृदङ्ग बजावें॥
ताने तिय पिय कों पिचकारी। हँसति जाति लागे अति प्यारी॥
त्यों ही हरि सींचत भए ऐसें। नृप कुवेर अपनी तिय जैसें॥
भीजि वसन लगि तन दरसाने। बेनी सिथिल फूल बरसाने॥
तब मिस कै छीननि पिचकारी। लपटि गई पिय सों तिय प्यारी॥
उपज्यौ मदन वदन छवि भली। पिय स्रग कुच कुंकुम दलमली॥
खुले केस पुनि खेलति ऐसे। मद गजराज तियनि में जैसें॥
क्रीड़ा के पट भूषन जिते। कृष्ण रु कृष्ण तियनि ने तिते॥
नट अरु नटी गवईयनि दीने। ऐसे विहरत हरि रंग भीने॥
हरे तियनि के मन जदुराय। करि परिहास चितैं मुसिक्याय॥
तब तिय पिय सुमिरन पगि गई। बौरी सी ह्वै बोलति भई॥

महिष्य ऊचुः—

हे कुररीया राति मँझारी। सोवत हैं जगदीस मुरारी॥
तू नहिं सोवति करति विलाप। चुप रहि री जगि परिहैं आप॥
हे सखि काहे कहति हमें न। तेरौ मन कहुँ पञ्चु जने न॥
चितै मुसकि छेद्यौ है ऐसें। हमरौ मन छेद्यौ है जैसें॥
हे चकवी तू या निसि माँही। अपने पिय को देखति नाँही॥
नेकुहू तू मूदति नहिं नैंना। रोवति भरी दीनता बैंना॥
कै हम ये दासी जे वाला। हरि की पाय प्रसादी माला॥

निज सिर तै धारति हैं जैसें । तुहू धारयौ चाहति है तैसें ॥
अहो समुद तुम सोवत नाँहीं । क्यों कूकत हौ या निसि माँही ॥
कै हमरी गति तुम हूँ पाई । तन के चिन्ह हरे जदुराई ॥
हे ससि छई रोग बलवान । ता करि तुम भए छीन महान ॥
या ही तें तुम निज किरणनि करि । अंधकार कों सकत नहीं हरि ॥
हमरी ज्यों सुधि करि हरि बानी । तुम भए वचन हीन हम जानी ॥
हे मलयानिल हियौ हमारौ । कृष्ण कटाक्षनि छिद्यौ सु भारौ ॥
तहाँ तू काम जगावत महा । तेरौ हमनि बिगारयौ कहा ॥
अहो मेघ तुम सुन्दर भारे । जदुनन्दन के मीत सु प्यारे ॥
प्रेम सों बाँधि ताहि ध्यावत ऐसें । हम सबरी ये ध्यावति जैसें ॥
भाव सों सुमिरि चाह उर धारौ । हमरी सों ज्यों अँसुवा डारौ ॥
अहो मेघ नहिं जात उचारी । तास प्रसंग दुखद है भारी ॥
हे कोकिल तू पिय ज्यों कूजै । मृतकनि देत जिवाय सु दूजै ॥
तुमरौ कण्ठ महा सुखकारी । कहा करें हम टहल तिहारी ॥
अहो चतुर गिरि चलौ न बोलौ । बड़ौ अर्थ कोऊ हिये कलोलौ ॥
निश्चें तुम हमरी सी नाँहीं । हरि पद धरयौ चहत उर माँही ॥
अहो जलधि - तिय ग्रीष्म मँझारी । कमल हीन तुम सूकी भारी ॥
ज्यों हम सूकि गईं दुख भौन । लखो न प्रीतम प्रेम चितौन ॥
आए भलें हंस तुम अहौ । बैठि दूध पिय हरि गुण कहौ ॥
जानी तुम सु दूत पठए करि । हमें कहीं ते सुमिरत हैं हरि ॥
अहो दूत हरि छिन के मीत । कैसें ताहि भजें करि प्रीति ॥
रमहिं छोड़ि ह्यां ल्यावौ ताहि । हम हूँ तें कहा सरस सु आहि ॥

श्री शुक उवाच—

हरि में करि अस भाव सु सही । सबही तियनि परम गति लही ॥
गावति सुनति सुमिर हरि हिया । देखति हरै न को अस तिया ॥
जौ तिय जगगुरु कों पिय मानें । प्रेम सों पाय पलोटनि ठानें ॥

भली भाँति परिचर्य्या करें। तिनके तप का पै कहि परें॥
साधुनि की गति हरिहि उचारें। यों बेदोक्त धर्म ते धारें॥
सबहिं दिखायौ यह सु निकेत। धर्म अर्थ कामनि कों देत॥
चलनि गृही ज्यों हरि सुखदानी। सोरह सहस एक सौ रानी॥
रुक्मिन्यादि आठ मुखिया जे। सुतनि समेत पहल बरनी ते॥
दश दश सुत सब में छवि छाए। हरि अमोघ बीरज उपजाए॥
तिनमें अष्टादस सुख छए। महारथी उदार जस भए॥
प्रद्युम्नानिरुद्ध — मधुभानु। वृहद्भानु — वृकदीप्ति—मानु॥
भानुविंद दशां वारुण पुष्कर। कवि रु सु नंदन हूँ हे नृप वर॥
बेद वाहु श्रुति देव विरूप। चित्रभानुन्य ग्रोध अनूप॥
इनमें रुक्मिन सुत प्रद्युम्न जो। हरि की सम सबमें जेठौ सो॥
तिहीं महारथ गुणनि लपेटी। ब्याही लै रुक्मी की बेटी॥
ताके सुत अनिरुद्ध सु भयौ। दश हजार हाथी बल छयौ॥
तिंह रुक्मी की पोती आहि। अहो परीछित ब्याही ताहि॥
ताके पुत्र बज्र जू भए। मुसल युद्ध में ते बचि गए॥
तिनके पुत्र भयौ प्रतिबाहु। उनके पुत्र सु भयौ सुबाहु॥
तिनकौ सांतसेन सुत नाम। पुनि श्रुतिसेन तास अभिराम॥
ऐसौ भयौ न. या कुल माँहीं। जो विप्रनि कों सेवै नाँहीं॥
जिनके धन बल सम्पति महा। बड़ी आयु पुनि कहियै कहा॥
जे यदुकुल उपजे विख्यात। बरस सहस दस लौंन गनात॥
लरकनि कौ तौ ओर न छोर। अठयासी सै तीन करोर॥
हे नृप भए बढ़ावनि हारे। इती परी है कान हमारे॥
उग्रसेन नृप राजत जहाँ। सब जादवनि गने को तहाँ॥
सुर असुरनि के युद्ध मँझारी। मरे दैत्य जे दारुण भारी॥
तिननि नरनि में जन्म सु लीने। गर्वित होय प्रजहिं दुख दीने॥
तब तिनके मारन हित हरी। सब देवनि कों आज्ञा करी॥

तिन निज जन्म जदुकुल में लए । इकसत इक तिनके कुल भए ॥
तिनकों इक प्रभु ही सु प्रमान । जिह अनुगत ह्वै बढ़े महान ॥
बोलत बैठत चलत अन्हात । सोवत खेलत पीवत खात ॥
आपहिं लख्यौ जादवनि नाँही । डूबि रहे चित हरि के माँहीं ॥
हरि की कीर्त्ति तीर्थ है भारी । गंगा हू तिह घटि करि डारी ॥
जा हरि के रिपु मीत हैं जिते । तिनहीं कों पावत भए तिते ॥
ब्रह्मादिक ढूँढ़त हैं जाहि । सो लक्ष्मी हू सेवति ताहि ॥
जाकौ नाम सुनें कै कहै । तौ नर कौ सब पाप सु दहै ॥
सब ठां धर्म चलायौ जाकौ । काल चक्र ही आयुध ताकौ ॥
धर कौ भार दूरि करिवै जो । ताकों कहौ कौन अचिरज सो ॥
जै जै जन निवास सुखकारी । जन्म बाद देवकी मँझारी ॥
जदुवर जाके सेवक प्यारे । निज भुजानि करि पाप निवारे ॥
पुनि जड़ जङ्गम के दुखहारी । ब्रज पुर बनितनि के सुखकारी ॥
प्रेम रूप हिय काम बढ़ावत । जब सुन्दर मुख करि मुसिक्यावत॥
सब तें परें सु रमा निकेत । निज धर्मनि की रछा हेत ॥
प्रगट करी श्री मूरति जानें । नासन कर्म कर्म किये तानें ॥
जदुनन्द पद सेवा चाहें । सो नर इनहीं कों अवगाहें ॥
हरि कौ श्रवन कीर्त्तन ध्यान । हे नृप है श्रीमान महान ॥
ताही करि हरि धामहिं पावै । दुस्तर काल न तहाँ सतावै ॥
जा धामहिं पावनि के हेत । बन गमनें नृप त्यागि निकेत ॥
याहीं तें हरि चरित हैं जिते । नहिं अचिरज पवित्र हैं तिते ॥
पहलें सब ही पापहिं हरें । पुनि या जनहिं मुक्ति लौ करें ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पारसहंससंहितायां वैयासिक्यां-
भाषा रसजानिकृत्यां श्रीकृष्णलीलाचरित्रवर्ननं नाम
नवतितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

इति श्रीदशमस्कन्धभाषासम्पूर्ण ॥ श्लोक ५८००

श्रीभागवतस्वरूपवर्णनं

पादौ यदीयौ प्रथमद्वितीयौ तृतीयतुर्यौ कथितौ यदूरू ।
नाभिस्तथा पञ्चम एव षष्ठौ भुजान्तरं दोर्युगलं तथान्यौ ॥
कण्ठस्तु राजन्नवमो यदीयो मुखारविन्दं दशमः प्रफुल्लं ।
एकादशो यस्य ललाटपट्टं शिरोऽपि यद् द्वादश एव भाति ॥
तमादिदेवं करुणानिधानं तमालवर्णं सुहितावतारं ।
अपारसंसारसमुद्रसेतुं भजामहे भागवतस्वरूपम् ॥

नारायणनरौ यस्याधिष्ठातृदेवते स्मृते ।
श्रीकृष्णदेवता शक्तिर्गीर्देवी वादरायणिः ।
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री बीजं प्रणव एव च ॥
अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥
दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणं ।
वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा ॥

यह अपार भव सागर का सेतुरूप, करुणानिधान, तमालतुल्य श्यामवर्ण, उत्तम कल्याणार्थ अवतीर्ण, आदि देव श्रीभागवत स्वरूप का हम सब भजन करते हैं। प्रथम द्वितीय स्कन्ध जिसके युगल चरण, तृतीय-चतुर्थ दोनों जंघा, पञ्चम-षष्ठ दोनों वक्ष, सप्तम-अष्टम दोनों भुजा हैं। हे राजन ! नवम जिसके कण्ठ, तथा दशम प्रफुल्ल मुखकमल है। एकादश ललाट और द्वादश मस्तक है।

जिस के नरनारायण अधिष्ठातृदेवता, श्रीकृष्ण देवता, सरस्वती शक्ति, बादरायणि ऋषि, गायत्री छन्द, प्रणव बीज है।

इस में अन्य नौ स्कन्धों में सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति व आश्रय का वर्णन है।

दशम स्कन्ध में समस्त आश्रय के आश्रय रूप दशम पदार्थ लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की लीलायें वर्णित हैं। अन्य नौ पदार्थ केवल दशम वस्तु की पुष्टि के लिये समझो ॥

श्री श्री गौरांगविधुर्जयति ।

★ एकादश स्कन्धः ★

प्रथम अध्याय

दोहा—रसिक भूप हरिरूप पुनि श्रीचैतन्य सरूप ।
हृदय कूप अनुरूप रस उलभयौ वहै अनूप ॥ १ ॥
कही इकादस में यही कथा पहल के ध्याय ।
स्वकुल हरन मुनि द्वार हरि लयौ मुसल उपजाय ॥ २ ॥

श्री शुक उवाच—

भ्रातरु बन्धुनि जुति जदुराय । धर भर हरयौ कलह उपजाय ॥
दुष्ट सुजोधनादि जे गाए । तिननि पांडवनि कौ सु सताए ॥
कपट सों जीत द्रोपती गही । ते तब कुपित भए अति सही ॥
तेइ हेत करि हरि नृप मारे । यों पृथ्वी के भार उतारे ॥
अप्रमेय हरि जदुकुल द्वार । हर धर भारहिं कीयौ विचार ॥
अब ही भार गयो है नाँही । जदुकुल दुसह आहि धर माँही ॥
इन्हें और को जीतन हारे । मेर आश्रै बढ़े सु भारे ॥
इनमें रिश उपजैय ऐसें । वांसनि माँहि आगन को जैसें ॥
ये सब अन्तर्ध्यान होय जब । हम हूँ अपने धाम जाय तब ॥
इस सत्य—सङ्कल्प जु हरी । ऐसें अपने मन में करी ॥
पुनि करि मिश विप्रनि कौ साप । निज कुल संहारयौ प्रभु आप ॥
सुंदर मूरति भरी लुनाई । सबके नैन हरे जदुराई ॥
जे कोउ वचन माँहिं पांग रहे । तिनके मन बचननि करि गहे ॥
जिनकी चरननि में मति परी । तिनकी गति चरणनि करि हरी ॥
पुनि सुन्दर कीरति विस्तारी । या करि तरि जैहैं संसारी ॥
यह बिचार श्री सुन्दर स्याम । गमन करत भए अपने धाम ॥

श्री राजोवाच ।

जादव तौ ब्रंह्मन उदार । पुनि सवके चित कृष्ण मँझार ॥
नित वृद्धनि के सेवक ते पुनि । विप्र श्राप क्यों भयौ तिनै मुनि ॥

जानि मित्त पुनि जैसौ श्राप। सो सब हमैं सुनावौ आप॥
इक मन के पुनि लरे सु कैसें। यह सब कहौ अहो मुनि जैसें॥

श्री शुक उवाच—

महा जसा हरि पूरण काम। पुनि सब सुन्दरता के धाम॥
मंगल कर्म धरनि विस्तारे। निज सरूप में रमत सु भारे॥
निज कुल संहारन मन धार्यौ। बाकी रह्यौ सु काज बिचार्यौ॥
मंगल पुण्य कीये कर्म मुरारी। जो गवति जग कलि मल हारी॥
काल रूप हरि के प्रेरे पुनि। पिंडारक तीरथ आए मुनि॥
अशित कन्व भृगु विस्वामित्र। वामदेव दुर्वासा अत्र॥
कसिप पुनि अंगिरा वसिष्ट। नारदादि सब हीये इष्ट॥
जांबवती सुत सांब जु आहि। जदु लरकनि कीनी तीय ताहि॥
खेलति आय मुनिनि के पग द्वै। पूछन लगे नम्रता सी कै॥
हे अमोघ दरसन यह नारी। आहि गर्भिनी लाजति भारी॥
यह सुन्दरि सुत चहति महा। कहीयै या कें ह्वौ है कहा॥
ऐसें लरिकनि हाँसि करी जब। ते मुनि कुपित होय बोले तब॥
याकें मूढ़ मूशल इक ह्वौ है। तुमरे कुलहिं नाश सो कै है॥
सुनि ते डरि तिंह डर खोल्यौ जब। एक लोह को मुशल लख्यौ तब॥
कही हम मन्द भागन हैं महा। कहा कियौ जन कहि हैं कहा॥
यौं लरिका विह्वलता छ्वए। मूशल लै घर आवत भए॥
सभा माँहिं सब जादव जहाँ। ते सब मलिन—वदन गए तहाँ॥
उग्रसेन कौ सबै सुनायौ। सुनि अमोघ श्रापहिं दुख पायौ॥
मुशल देखि कै पुरजन जिते। अचिरज पाय डरे अति तिते॥
पुनि नृप ताँ मूसलहिं रिताय। बच्यौ टूक दयौ समुद बहाय॥
लग्यौ चर्न—तट पाय झकोरै। तास पटेर भए चहूँ वोरे॥
लोह टूक इक तिमि ने खायौ। सो तिमि वधिक जाल में आयौ॥
वधिक तास उर लोहौ लयो। सर की भालि करावत भयौ॥

हरि सरवज्ञ काल रूपी जो। आपन हरथौ मन में सो ॥२४॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषारस-
जानि कृते प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

दोहा—नारद वसुदेवहिं कहे, भगवत-धर्म सुनाय।
निमि प्रति नौ जोगेसुरनि, बरनें दूजैं ध्याय ॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

हरि भुज रक्षित पुरी माँहि पुनि। वसे कृष्ण सेवी नारद मुनि ॥
हे नृप हरि पद-कमल सुखारे। ब्रह्मादिक सु उपासत भारे ॥
तिन्हें भजें नहिं कौनु अनारी। सब ठां मरत रहत तन धारी ॥
इक दिन घर आए नारद मुनि। लखि वसुदेव भलें अरचे पुनि ॥

श्री वसुदेव उवाच—

भगवद्रूप तिहारी आवन। सबही कौं मंगल उपजावन ॥
सुतहि मात पित की आवनि ज्यों। कृपननि कौं हरि भक्तनि की त्यों ॥
अमरनि हू के चरित हैं जिते। नर कों दुख सुख देत हे तिते ॥
हरि में मन तुमसे जन के पुनि। सुख ही हेत चरित हैं हे मुनि ॥
भजें देवतनि कों नर जैसें। देव हू ताहि देत फल तैसें ॥
छाया ज्यों कर्मनि अनुसार। साधु ही दीन वछल निर्धारि ॥
भगवत धर्म तऊ पूछों मुनि। सब भय तें जन छुटै जिने सुनि ॥
हमनि मुक्ति दाता हरि आहि। पहल पुत्र हित पूजे ताहि ॥
उरके ताकी माया माही। मुक्ति हेत हम पूजे नाँहीं ॥
दुख की खानि जगत तें जैसें। छूटें देहु सीख मुनि तैसें ॥

श्री शुक उवाच—

सुनि हरि गुण सुमिरण ह्वै आयौ। ह्वै प्रसन्न मुनि वचन सुनायौ ॥
अहो तुम पूछी भली विचारी। भगवत धर्म सकल मल हारी ॥
सुनें पढ़ै अनुमोदन करै। आदर करि पुनि ध्यानहिं धरै ॥

तउ शत-धर्म सुद्ध करि डारै। सब जग के अपराधहिं टारै॥
तुम मुहिं सुद्धि दई भगवान। पुन्य श्रवन कीर्तन कल्यान॥
निमि नौ जोगेस्वर संवाद। मैं तुम सों कहिहौ जो आदि॥
स्वायम्भूसुत प्रीयव्रत नामा। ताकौं आगनी धूत्र अभिरामा॥
तास नाभ तिंह रिषभ प्रशंसा। जिन्हैं कहत हरि जू कौ अंसा॥
मोछ धर्म कहिवै अवतरै। तास पुत्र सौ श्रुति धर खरे॥
बड़े भरत जिन हरि मन लायौ। जिन करि भारत खण्ड कहायौ॥
• पुनि तिन धरहिं भोग करि त्यागी। गए विपिन हरि में मति पागी॥
तप करि हरि उपासना करी। तीन जनम धरि पाए हरी॥
नौ भए भरत खण्ड के भरता। इक्यासी द्विज कर्म प्रवर्ता॥
नौ महा भाग आत्म ज्ञानी मुनि। परमारथ वक्तारु नग्न पुनि॥
कवि हरि आविर्होत्र प्रबुद्ध। अंतरिछ करि भाजन शुद्ध॥
चमश द्रमिल पिप्पलायन नाम। फिरत नवो धर में अभिराम॥
कारज कारण मय जग सारौ। हरि तें ताहि न देखत न्यारौ॥
सुर गन्धर्व सिद्ध किन्नर नर। जच्छ साध्य चारण विद्याधर॥
भूतनाथ द्विज गाय नाग मुनि। ओरनि हू के लोक जिते पुनि॥
कोऊ न हटकै सब टाँ जात। यै मन कहू नाहिन अटकात॥
महामना निमि नृप जो आहि। रिषि अजनाभ खण्ड में ताहि॥
जज्ञ करावत है सुख पाय। तहाँ ते अकसमात गए आय॥
महा भागवत सूर्य समान। लखि द्विज अगिन उठे जजमान॥
हरि पारायन निमि ते जाने। आसन दै नीकै सनमाने॥
तें निज कान्ति ही करि सु प्रकासें। नवौं सु सनकादिक से भासें॥
राजा निमि सु परम हरषायौ। सीस नाय पुनि वचन सुनायौ॥

विदेह उवाच—

जाने हम तुम हरि के अनुचर। लोकनि पावन करत फिरत धर॥
यहै नर तन छन—भंगुर महा। यै है दुर्लभ सु कहीयै यहा॥

ताहू में हरि प्यारनि कौ पुनि। दरश दुलभ हम मानति हे मुनि ॥
तातें अहो अनघ सुख कारी। पूछत हें हम मंगल भारी ॥
जग में जनहि तनक सतसंगति। सब संपति के सुख कौं भगति ॥
हमैं सुननि लायक जो जानौ। तौ सब भगवत धर्म बखानौ ॥
जिन करि हरि हरषाँय सहेत। सरनागतहिं आपन पौ देत ॥

नारद उवाच—

अहो यों निमि राजा पूछी जब। करि सतकार हरषि बोले तब ॥

कविरुवाच।

हरि पद कमल उपासन जोई। हमरे मत अति मंगल सोई ॥
तनहिं साँच लखि बुद्धि भ्रमावै। ता करि ताकौ सब भै जावै ॥
हरि उपाय निज प्राप्त हेत जे। कहैं भागवत धर्म लखौ ते ॥
तिन धर्मनि कौ करत हे जोय। विघ्न पाय कभूं भ्रष्ट न होय ॥
बिन जानें हूँ करै जु कोऊ। बुरौ न होय लहै फल सोऊ ॥
मन तन चित सुभाव बुद्धिवानी। वहुरयौं ये इन्द्री जु बखानी ॥
इन करि पुरुष करै यह जो जो। हरि नारायन अर्पित सो सो ॥
हरि तें बिमुख होइ जो फूलें। सो हरि माया करि हरि भूलै ॥
अहं बुद्धि पुनि तन में करै। ता करि राति द्यौस सो डरै ॥
बुद्धि अनन्य ह्वै भजै मुरारी। गुरु में इष्ट प्रेष्ठ बुधि धारी ॥
झूँठो जग मन करि साँचौ यौं। हे नृप स्वप्न मनोरथ है ज्यौं ॥
मन संकल्प विकल्प प्रकाशैं। ताके रोकें भय सब नाशैं ॥
हरि के जन्म कर्म गुन नाम। गावति लोक परम अभिराम ॥
निलज होय तै सुनै रु गावै। निस्पृ ह्वै विचरै सुख पावै ॥
यौं निज प्यारे के गुण गाय। उपजै प्रेम चित्त पिघलाय ॥
बौरौ सौ होय विवस सु होवै। गावै नाचै हँसै रु रोवै ॥
पृथ्वी प तेज वाय आकास। दिशि द्रुम सरित्समुद्र प्रकाश ॥
प्रानी मात्र जो कछू आहि। हरि तन जानि नवै जन ताहि ॥

प्रेम रु हरि अनुभव वैराग । एक ही वेर लहत बड़ भाग ॥
प्रेम रु हरि अनुभव वैराग । ऐसे पाय भक्त बड़ भाग ॥
हे नृप पुनि हरि कौ पद आहि । सौ भागवत प्राप्त होंय ताहि ॥

श्री निमिरुवाच—

कहियै अहो भागवत कौंन । तास सुभाव धर्म पुनि जौन ॥
जैसें रहै कहै पुनि कहा । किन चिन्हनि करि हरि प्रिय महा॥

हरिरुवाच—

अपनौ हरि में भाव जु आहि । सब ही माँहिं जु देखै ताहि ॥
सबको हरि में देखै सोई । अहो भागवत उत्तम सोई ॥
हरि हरिजन सों प्रेम मिताई । मूढ़नि पै पुनि कृपा सदाई ॥
रिपु कौं मन में धरै न जोई । अहो भागवत मधिम सोई ॥
प्रतिमा ही में श्रद्धा ठानैं । हरि भक्तनि कौं नहिं सनमानें ॥
औरन हू मानें नहिं जौ पै । भक्त नवीन जानीयै तौ पै ॥
विषै इन्द्रियनि हू करि गहै । पै ते बुरी भली नहिं कहै ॥
हरि की माया जगत लखै जो । हे नृप महा भागवत है सो ॥
जन्म मरन है धर्म सुतन के । श्रम भय धर्म सु इन्द्री मन के ॥
भूख प्रान कौ धर्म सु सही । बुद्धि कौ धर्म सु तृष्णा कही ॥
इन करि जौ हरिजन नहिं मोहै । हे नृप महा भागवत सो है ॥
काम कर्म वासना कही जे । जिहि उर माँहि नाहि उलहे ते ॥
वासुदेव ही आश्रै जाहि । कहीयै महाभागवत ताहि ॥
उत्तम जन्म कर्म पुनि जात । इन करि जौ नाहिन हुलसात ॥
तन में करै अहंता नाही । सो है श्रेष्ठ वैष्णवनि माँहीं ॥
पुनि जा जन के तन धन माँही । अपन पराई है कछु नाँही ॥
सब में सम पुनि सांत सु आहि । महाभागवत कहियै ताहि ॥
हे नृप हरि के चरण कमल जे । भक्त देवता हू ढूँढ़ति ते ॥
त्रभुवन की सम्पति परि हरै । पै तिनतें तन कौ नहिं टरै ॥

नित ही हरि कौ सुमिरनु जाहि। सोई महाभागवत आहि ॥
हरि पद नख मन की उजियारी। ता करि ताप गए हिय भारी ॥
पुनि हिय तपनि होत नहिं ऐसें। रवि की तपनि उयैं ससि जेंसें ॥
नाम ही करि जो पापनि दहै। प्रेम सों बँधि नित हिय में रहै ॥
सो हरि जिह उर छाँड़े नाहीं। उत्तम वही वैष्णवनि माँहीं। ४६॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादश स्कन्धे भाषारसजानिकृते
द्वितीयो ऽध्याय: ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

दोहा—माया माया कौ तरण, ब्रह्म कर्म ये चार।
निमि पूछें उत्तर दिये, तृतीय ध्याय निर्धार ॥ १ ॥

निमिरुवाच—

हरिमाया माया बिनु मोह। लख्यौ चहत में कहौ सु कोहै ॥
सुनति अघात न तुमते हरि गुण। जगत जरे कौ जे औषदि पुनि ॥

अन्तरिछ उवाच—

सबके आदि आत्मा श्रीहरि। सोई पञ्च महाभूतनि करि ॥
छोटी बड़ी रची जिय जोनि। भोग करावन मुक्ति सों होंन ॥
तिनमें धँसि अन्तर्जामी हरि। एकादस इन्द्री प्रकास करि ॥
जीवहिं विषै भोग करवावत। जीय तब तन में प्रीति बढ़ावत ॥
साधें कर्म वासना धरै। दुख सुख भोगति भटक्यौ रे ॥
ऐसें दुखद कर्मगति भरै। महा प्रलै लौ उपजै मरै ॥
आवै नास पञ्चतत्व कौ जब। आदि अन्त करि रहति काल तब॥
सूक्ष्म थूल जगत जो आहि। माया में लै जाय सु ताहि ॥
तब शौ बरषनि बरषा बरषै। रवि तेजस्वी त्रिभुवन करषै ॥
सेश बदन तें अगिन उठै तब। फैल ब्यार सों जार देत सब ॥
बहुर प्रलै के मेघ अपारा। जिनकी गज सुण्डा सम धारा ॥
सो बरसनि लों ते बरखात। तब जल माँहि विराट बुड़ात ॥

तब बिराट के जीव हैं जिते। ता विराट कौ तजि कें तिते॥
सूक्ष्म कारण में लै होत। ज्यों ईंधन के जरें सु जोति॥
धर की गन्ध पवन हरि लई। तब धर जल में लीन सो भई॥
तिही पवन जल रसहिं हरयौ जब। तेज माँहि जल लीन भयौ तब॥
तुमनै तेज रूप हरि लयौ। तेज पवन में लय तब भयौ॥
स्पर्शहिं पुनि अवकाश हरयौ जब। पवन गगन में लीन भयौ तब॥
काल रूप नै शब्द हरयौ जब। नभ तामस हंकार मिल्यौ तब॥
पुनि राजस हंकार के माँही। इन्द्री बुद्धि लीन ह्वै जाहीं॥
तब सात्विक हंकार माहि मन। होत है लीन समेति देवतन॥
तब निज कार्ज सहित हंकार। लीन होत यह तत्व मँझार॥
यह हरि की माया है तिगुण। थिति उत्पति संहार कीन पुणि॥
सो हम बरनि सुनाई अहो। और कहा सुनिवे सो कहो॥

निमिरुवाच—

अजितेन्द्री करि दुस्तर महा। यह हरि माया कहियै कहा॥
तन आभमानी याहि तरै ज्यों। अहो महामुनि हमें कहौ त्यों॥

श्री प्रवुद्ध उवाच—

दुखहि निवारण सुख बिस्तारण। करत ग्रहस्थ कर्म कौ धारण॥
फल विपरीत सु तिनके होवें। तिनें विबेकी नीके जोवें॥
अपनी मीच दुल्लभ दुखदाई। ऐसी ये सम्पति वसुताई॥
घर निय सुत तन नस्वर महा। ते नर कौ प्रीय करि है कहा॥
कर्म संचित स्वर्गादिक जिते। यौंही नस्वर जानें तिते॥
चारु ईर्षा भय नित तिहँ ठाँ। ज्यों लघु बड़े नृपति में इँह ठाँ॥
तातें निज मंगल चाहे जो। हे नृप गुरु के सरन जाय सो॥
जो गुरु सदा सांतुता ठानें। शब्द ब्रह्म पर ब्रह्महिं जानें॥
इस आत्मा गुरु जो आहि। ह्वै निष्कपट सु सेवै ताहि॥
धर्म भागवत सीखें निन तें। तन दाता हरि तूठति तिनतें॥

पहलैं सब तैं मनहिं छुटैवौ। हरि के साधुनि माँहि लगैवौ॥
जथा जोग पुनि सबनि सुहाई। सीखै दया बिनै हित वाई॥
छमा सौच तप मौन सुधाई। पाठ अहिंसा द्वन्द समाई॥
सब ठाँ निज हरि दरसन करिवौ। ब्रह्मचर्ज चोरनि कौ धरिवौ॥
पुनि सन्तोष बास वन कैवौ। घरनि माँहि आसक्त ह्वै वौ॥
श्रद्धा भगवत—सास्त्र सु माँही। और सास्त्र की निन्दा नाँही॥
वाक कर्म मन कों दण्ड दैवौ। सत्य बोलिवो सम दमकैवौ॥
अद्भुत कर्मा हरि कौ ध्यान। जन्म कर्म गुण श्रवणरु गान॥
जौ निज प्रिय जप तप कृतु दान। सुत तिय घर बहुरों ये प्रान॥
सीखै हरिहिं अर्पिवौ इनकौ। हरि हित करिवौ सब चरितन कौ॥
जिनकें आत्मानाथ मुरारी। तिनमें करण सुहृदता भारी॥
जड़ जंगम नर साधु महंत। तिनकौ पूजन करण अनन्त॥
कथन परस्पर हरि जस पावन। सीखैं मिलि आनन्द बढ़ावन॥
दुखनि वरन मिल रमन सुखारौ। सीख लेय गुरु तें यह सारौ॥
अघ समूह नासक हरि आहि। मिलि सुमिरत सुमिरावति ताहि॥
भक्ति तें बहुरों प्रेम होय जब। सब ही तन रोमांच होत तब॥
कबहूँ हरि चिन्ता करि रोवै। कबहूँ हँसि आनन्दित होवै॥
कबूँ गाय नाचै पुनि बोलै। कबहूँ हरि अनुकरन कलोलै॥
कभूँ ध्यान में हरि कौ पाय। तुष्ट होय चुपक्यौ ह्वै जाय॥
ऐसें भगवत धर्म सीख नर। तिनतें बहुरयौ भक्ति पाय कर॥
नारायण पारायण होई। दुस्तर माया तरत है सोई॥

निमिरुवाच—

नारायन परमात्म ब्रह्म पुनि। ताके रूपहिं कहौ अहो मुनि॥

पिपलायन उवाच—

थिति उत्पत्ति लय हेत अहेत। तीनि दसा में रहै सचेत॥
ज्याए जिन तन इन्द्री प्रान। सोई एक तत्व नृप जान॥

मन नेत्रादिन ताहि प्रकासै। ज्यौं अगिनहिं चिनगी न उजासै॥
बेद हू ताहि प्रगट नहीं भाषै। औरनि कौ निषेध करि आषै॥
कारज कारण परें ब्रह्म जो। बहु शक्तिन करि राजति है सो॥
माया गुण महतत्व हंकारा। सुर इन्द्री अरु बिषै अपारा॥
दुख सुखादि पुन फल जे आहि। सब ही एक बखानति ताहि॥
सो सब दसान देख्यौ करै। घटै बढ़ै नहिं उपजै मरै॥
सब ठाँ सदा एक रस ऐसें। सबै जोंन में प्रान है जैसें॥
अहंकार इन्द्री पुनि जितीं। होत सुषुप्त माँहि लय तितीं॥
ताहू सों लिंग तन बिन अविकार। जाकौ सुमिरन रहत हमार॥
हरि चरननि की चाहनि सों जब। बड़ी भक्ति बढ़ि जाइ अहो तब॥
ता करि चित्त मलिनता जाय। गुण कर्मनि की रही सु छाय॥
आतम तत्व तब झलकै ऐसें। भए अमल द्रग सूर्ज जैसें॥

निमिरुवाच—

कर्म जोग अब कहियै जा करि। कर्म कुटिल है परम तत्व नर॥
सनकादिकनि यहीं पूछी पुनि। कही तिननि मोहि क्यौं न कही मुनि॥

आविर्होत्त उवाच—

कर्म विकर्म अकर्म जितक। बेद उक्त नहिं लौकिक एक॥
सु तौ बेद हरि रूप है जातें। विदुष हू तामें मोहित यातें॥
अर्थ दाँपि भाषति श्रुति ऐसें। अज्ञानिन कौं सिच्छा होय जैसें॥
कर्म छुटावन कर्म कहै यौं। रोग निवारण औषदि कौ ज्यौं॥
जो नर अजितन्द्री अज्ञानी। करै न अहो बेद की बानी॥
तौ ताहो अधर्म करि सोई। ह्वै ह्वै मरै रु मरि मरि होई॥
जो बेदाक्त कर्म कौ करै। हरि अर्पित न कामना धरै॥
सो निष्कर्म सिद्धि कौं पावै। फल की सुननि रुचिहिं उपजावै॥
हियै गाँठि कट्यों चाहै जो। हरिहिं तंत्रविधि करि पूजै सो॥
लहि गुरु कृपा सीख कैसे वहि। मन मान्यौ पूजै हरि देवहिं॥

शुचि ह्वै बैठे सनमुख स्याम। तन साधै करि प्रानायाम॥
न्यासहिं करि निज रछ्छा करै। पुनि हरि कौ पूजन विस्तरै॥
जथा जोग सेवा सामा जे। पहलैं भली भाँति सोधें ते॥
धर सुधारि बैठे आसन परि। करि इकग्रता पात्र सबै धर॥
चन्दनादि सों चर्चि सु रूप। करि हरि अंगनि न्यास अनूप॥
हिय में अथवा प्रतिमा में हरि। पूजन करीयै मूल मन्त्र कारि॥
अंग उपंग अनुचरनि तंग। मंत्रनि करि पूजै भरि रंग॥
पाद्य अर्घ आचवण स्नान। गंध फूल पट भूषन आन॥
धूप दीप अछित उपहार। इन करि विधि सौं पूजि मुरारि॥
तन्मय ह्वै अस्तुति पुनि करै। हरि प्रसाद माथे पर धरै॥
पुनि हरि कौ अस्थान है जहाँ। आदर करि पधरावै तहाँ॥
जल रवि अनिथ अगिनि हिय माँहीं। यौं हरि जजै बँधै सो नाहीं॥५०॥

इति श्रीभागवत महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषारसजानिकृते
तृतीयो ऽध्यायः॥ ३॥

चौथा अध्याय

दोहाः—अवतारनि के चरित कौ, प्रश्न चतुर्थे ध्याय।
उत्तर दीनों द्रुमिल नें, सुनियै सो चित लाय॥ १॥

निमिरुवाच—

हरि सुछन्द जन्मनि करि जे जे। करत कर्म मुनि कहियै ते ते॥

द्रुमिल उवाच—

सब शक्तिन के धाम अनन्त। तासु गुणनि कौ नाहिन अन्त॥
गनें न जात गणें सो अज्ञ। रज हू गणि सु लेय सर्वज्ञ॥
आदि देव नारायण हैं जो। पञ्च तत्व करि रचि विराट सो॥
निज सु अंस करि पैठे तामें। सोई आदि पुरुष या नामें॥
जाके तन में त्रिभुवन हैं अब। इन्द्रिन करि सब की इन्द्री सब॥
सब में बलईहा रु औज जौ। सुतें ज्ञाण के प्रानिनि सों सो॥

सुचि ह्वै बैठे सनमुख स्याम। तन साधै करि प्रानायाम॥
न्यासहिं करि निज रछा करै। पुनि हरि कौ पूजन विस्तरै॥
जथा जोग सेवा सामा जे। पहलैं भली भाँति सोधें ते॥
धर सुधारि बैठे आसन परि। करि इकग्रता पात्र सबै धर॥
चन्दनादि सों चर्चि सु रूप। करि हरि अंगनि न्यास अनूप॥
हिय में अथवा प्रतिमा में हरि। पूजन करीयै मूल मन्त्र कार॥
अंग उपग अनुचरनि तंग। मंत्रनि करि पूजै भरि रंग॥
पाद्य अर्घ आचवण स्नान। गंध फूल पट भूषन आन॥
धूप दीप अछित उपहार। इन करि विधि सौं पूजि मुरारि॥
तन्मय ह्वै अस्तुति पुनि करै। हरि प्रसाद माथे पर धरै॥
पुनि हरि कौ अस्थान है जहाँ। आदर करि पधरावै तहाँ॥
जल रवि अतिथ अगिनि हिय माँही। यौं हरि जजै बँधै सो नाहीं॥५०॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषारसजानिकृते
तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

दोहाः—अवतारनि के चरित कौ, प्रश्न चतुर्थे ध्याय।
उत्तर दीनों द्रुमिल नैं, सुनियै सो चित लाय॥ १॥

निमिरुवाच—

हरि सुछन्द जन्मनि करि जे जे। करत कर्म मुनि कहियै ते ते॥

द्रुमिल उवाच—

सब शक्तिन के धाम अनन्त। तासु गुणनि कौ नाहिंन अन्त॥
गनें न जात गणें सो अज्ञ। रज हू गणि सु लेय सर्वज्ञ॥
आदि देव नारायण हैं जो। पञ्च तत्व करि रचि विराट सो॥
निज सु अंस करि पैठे तामें। सोई आदि पुरुष या नामें॥
जाके तन में त्रिभुवन हैं अब। इन्द्रिन करि सब की इन्द्री सब॥
सब में बलईहा रु औज जौ। सुतें ज्ञाणा के प्रानिन सों सो॥

सत रज तम इन तीनि गुननि करि। पालन उत्पति प्रलय करत हरि॥
पालन विष्णु भए शतगुण करि। क्रतु फल दाता धर्म सेत हरि॥
रज तम करि उपजाबन मारन। विधि सिव द्वै सरूप किय धारण॥
दछ की सुता मूर्ति यह नाम। धर्मराज की त्रीया अभिराम॥
तामें नर नारायण भए। रिषिन में श्रेष्ठ सांतता छए॥
आत्म तत्व के ज्ञान सु भीनौ। ऐसौ कर्म कह्यौ पुनि कीनौ॥
चरण कमल सेवत बड़े मुनि। अब हूँ लौं ते राजति हैं पुनि॥
जिनकौ तप लखि इन्द्र सु डरयौ। अब इन मेरे धामहि हरयौ॥
तब तहाँ तिन पठयौ रति कन्त। संग अप्सरा ब्यार बसन्त॥
हरि महिमा जानें नहिं काम। तानें त्रिय द्रग सर अभिराम॥
हरि अपराध इन्द्र कौ जान्यौं। हँसि बोले कछु गर्व न आन्यौं॥
मारुत मदन अप्सरा अहौ। डरौ न भेंट लेहु दुख दहौ॥
ते सुनि लजे सुखद की बानी। पुनि उपजावति दया बखानी॥
हे अविकार आत्माराम। सबतें परें गुणनि के धाम॥
लोटति धीर सु तुव पग माहीं। जौ तुममें सो अचिरज नाँहीं॥
जज्ञ में विघन करत सुर नाँहीं। विघन करत तुव सेवा माँहीं॥
विघनि शिर पग धरि तुव दास। स्वर्गहिं लांघि जात तुव पास॥
भूख प्यास दुख इन्द्री भोग। इन बड़ समुदनि तरि कोउ लोग॥
विपुल क्रोध गोखुर में वहै। दुश्चर तपहिं त्यागि दुख दहै॥
तव नर नारायण सुख रासी। दिखई तिन्हैं रमा सी दासी॥
ते तिन आगें तन कण सोहें। अंग सुगन्ध पाय ही मोहें॥
तव नम्रनि सों हँसि हरि कही। इनमें तें इकली जै सही॥
निज समान स्वर्गहिं भूषन जो। अज्ञा लै सिर नाय सबै सो॥
त्रिय उर्वशी परम अभिराम। आगें लै गमनें निज धाम॥
सबके सुनति इन्द्र सों कह्यौ। सुनि हरि बलहि अचम्भै रह्यौ॥
हँसदत्त सनकादिक नाम। हमरे पिता रिषभ अभिराम॥

जग के मंगल हित अवतरे। आत्म जोग कहि सुख विस्तरे॥
हयग्रीव ह्वै हरि अवतार। बेदनि ल्याए मधु कौ मारि॥
मछ प्रलै जल माँही राखे। धरउँषध जुत मनुजे भाषे॥
पुनि बाराह ह्वै धरा उधारी। हिरन्याछ तहाँ हत्यौ मुरारी॥
कछप ह्वै गिरि पीठ सु धारयौ। हरि ह्वै दुखित गजहि उबारयौ॥
अस्तुति करत बाल खिल्लप जे। गोखुर में डूबे काढ़े ते॥
वृत्तासुर बध तें हत्या जो। लगी इन्द्र कौं दूर करी सो॥
असुरन में सुर त्रिया अनाथ। रोकी तऊ छुटाईं नाथ॥
पुनि नृसिंह ह्वै हिरणकशिप जो। साधुनि कौ दुख दैन हत्यौ सो॥
भए राम भृगुकुल बड़ भाग। हैहय कुलहिं जरावन आग॥
इकईश बार धरनि जो आहि। छत्री हीन करी तिन ताहि॥
जग पावन कीरति रघुनाथ। सेत बाँधि मारयौ दशमाथ॥
पुनि मन्वंतर में अवतरे। असुर मारि सुर रछा करे॥
पुनि बांवनि ह्वै वलि कैं गए। हरि धर सुरनि देत सों भए॥
भार हरण अज जदुकुल ह्वै है। अमरनि दुस्कर चरित सु कैहै॥
जातिक असुर मोहि हैं बुद्ध। कल्की हति हैं भूप असुद्ध॥
बड़े जशस्वी जगपति के जे। जन्म कर्म नृप हमनि कहे ते॥२६॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषारसजानि
कृते चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

पाँचमा अध्याय

दोहा:—जुग जुग पूजाविधि कहा बिमुख कौन गति जात॥
उत्तर दोऊ प्रश्न कौ ध्याय पाँचयें ख्यात॥ १॥

निमिरुवाच—

अहो आत्मज्ञाता सुखकारी। हरि कौं जे नहिं भजैं अनारी॥
ते अजितेन्द्री-पूरन नाहीं। को गति पावति या जग माँही॥

चमस उवाच—

हरि के मुख भुजा उर पाद। इनतें वर्णाश्रम भए आदि॥
ताहि न भजै अवज्ञा करै। सो ह्वै भ्रष्ट नरक मैं परै॥
हरि कौ श्रवण कीर्त्तन भूरि। अस्त्री शूद्रादिक कौं दूरि॥
तिन पर जे तुमसे सुखकारी। हे नृप करत हैं करुना भारी॥
द्विज छत्री रु वैस उत्तम जे। कृष्ण भजन के अधिकारी ते॥
पै ते मोहै वेद वाद करि। कर्म फलनि में मन राखें धरि॥
मूढ़ कर्म करिबौ नहिं जानैं। नवनित आपहि पंडित मानैं॥
वेद-वचन गहि हरषित रहै। स्वर्ग के फल मल्हाय कें कहै॥
कामी पापी दम्भी मानी। अहि से क्रोध भरे अज्ञानी॥
रज करि घोर मनोरथ धरें। हरि भक्तनि की निन्दा करें॥
विषै कोठरी घर तहाँ रहै। तियहिं उपासें मन की कहै॥
अज्ञ उदर हित पसु हति जजै। अन्न दछिना विधि नहीं भजै॥
जन्म कर्म धन विद्या दान। बल रु रूप ऐश्वर्य महान॥
इन गर्वनि करि अन्ध भई मति। हरि प्यारनि कौ निन्दति खल अति॥
इष्ट आत्मा ईस मुरारी। नभ ज्यौं राजति सबनि मँझारी॥
गावति श्रुति सब मूढ़ सु नैन। कहति मनोरथ ही के बैन॥
विषै मास मद सहज ही प्यारौ। सो कहा कहि है वेद विचारौ॥
मन करि तिनैं छुटायौ चहै। जज्ञ ब्याह तब करिबौ कहै॥
धन तें धर्म धर्म तें ज्ञान। तातें सांति सहित विज्ञान॥
सो धन तन हित घर में खोवै। बड़ी बली मीचहिं नहिं जोवै॥
मदिरा की सूघनि ही भाषी। देव हेत पसुहिं सा राखी॥
पुत्र हेत हो विषै बखानें। कामी यह सुधर्म नहिं जानें॥
जे अनम्र ऐसें नहिं जानें। ह्वै असाधु पुनि साधु सु मानें॥
संका छाड़ि पसुनि कौं मारै। ते पसुता के तनय बिदारै॥
मृतक तनादिक सों करि प्यार। और सों ठानति दोष अपार॥

नहुँ स्वात्मा हरि है जाते। ते नर परत नरक में याते॥
जे अटके त्रिवर्ग के माँही। आत्म तत्व कौ पायौ नाहीं॥
मूढ़ तनादिक साँचे मानैं। आय अपनपौ मारयौ जानैं॥
मानति ज्ञान कर्म के माँहीं। करिबैं हों सो कीनों नाँही॥
काल नें नष्ट मनोरथ कीने। रहत सदा ते दुख में भीने॥
ग्रह, सुत सुखद सम्पदा जितीं। बड्डे श्रम करि जोरी तितीं॥
बिन ही इच्छा ते छिटकाय। हरि तें विमुख नरक में जाय॥

निमिरुवाच—

कौन काल में कैसे हैं हरि। कौन वरण पुनि कौन नाम करि॥
का विधि सों नर पूजति है पुनि। यह हम सों सबहीं कहियै मुनि॥

श्री भाजन उवाच—

कृत त्रेता द्वापर कलि काल। इनमें हरि बहु रूप रसाल॥
नाना वरण रु नाना नाम। नाना विधि रु पूजियतु स्याम॥
स्वेत चतुर्भुज सतजुग मैं हरि। जटा वकुल मृग छाल रहै धरि॥
नौ गुण कमल गटनि की माला। दण्ड कमण्डल धरें रसाला॥
ता जुग के जन सुखद महान। सुहृद सांत निर्वैर समान॥
ध्यान धरिना देवहिं जजैं। मन इन्द्री बस करि हरि भजै॥
हंस सुपर्ण धर्म जोगेस्वर। अमल पुरुष वैकुण्ठ रु ईस्वर॥
परम आत्मा पुनि अव्यक्त। इन नामनि करि गावति जक्त॥
रक्त चतुर्भुज त्रेता में हरि। तीनि मेखला पीत कलेस धरि॥
जज्ञ मूर्ति अति ही अभिराम। स्त्रुक रु श्रुवादि धरें सुख धाम॥
ता जुग के पुनि जन हैं जिते। धर्मनिष्ट बेदज्ञ सु तिते॥
सर्व देव मय हरि जो आहि। बेद त्रई करि जजत है ताहि॥
सर्व देव उरु क्रम उरु गाय। विष्णु जयन्त जज्ञ हे राय॥
पृश्नि गर्व रु वृषा कपि नाम। इन करि ते गैयत अभिराम॥
द्वापर माहि स्याम भगवान। धरें पीत पट चक्र महान॥

श्री वत्सादि चिन्ह छवि छाजै। कौस्तुभादि लगन जुति राजै॥
महाराज चिन्हनि जुति आहि। जन परमेस्वर जाननि ताहि॥
नीकैं जजै बेद तंत्रनि कैं। वासुदेव संकर्षण कौंनें॥
प्रद्युमनानिरुद्ध भगवान। नारायण रिषि पुरुष महान॥
जगत ईश विश्वेश महात्मा। विश्व रूप सब ही के आत्मा॥
द्वापर में यों अस्तुति करें। तंत्र ही विधि कलि में विस्तरें॥
कलि में गौर कृष्ण कौं गावति। अस्त्र उपांग दास छवि पावति॥
नाम—कीर्त्तन जज्ञ जु आहि। ता करि सुबुद्धि जजति है ताहि॥
महा पुरुष है जन प्रतिपाल। तुव पद ध्यान योग सब काल॥
देहिं मनोरथ परि भव हरैं। जग पावन शिवि विधि हिय धरैं॥
जग तारन जग के दुख हारी। सुख रूपहिं दण्डौत हमारी॥
अति दुस्त्यज सुर चाहत जाहि। ऐसी राज्य लछिमी आहि॥
सो धर मिष्ट धरी तन मन में। तात वचन सुनि तजि गए वन में॥
पुनि माया-मय मृग लखि आछें। सीता हित दौरे ता पाछें॥
हे प्रभु चरण कमल जु तिहारे। तिनकौं हैं दण्डौत हमारे॥
यौं हरि सुद्ध नाम रूपनि करि। जुग जुग में तिनकों पूजत नर॥
जे सार ग्राही गुण जानें। ते उत्तम कलिजुग कौ मांनें॥
जामें एक कीर्त्तन ही कर। सब पुरुषारथ पाय लेत नर॥
जो जन भटकतु है जग माँही। या तें परें लाभ ताहि नाँही॥
नाम कीर्त्तन कौ जो करै। सांत होय जग तें छुटि परै॥
और जुगनि के प्रानी जिते। कलि में जनम्यौं चाहत तिते॥
कलियुग में ह्वै है रश सने। नारायण पारायण घने॥
कहूँ कहूँ द्रविड़ देश में भूप। ह्वै हें बहु हरि भक्त अनूप॥
नद्री ताम्र बर्नी कृतमाल। काबेरी पयश्विनी रसाल॥
बहुर महा पुण्या अभिराम। महानदी रु प्रतीची नाम॥
हे नृप जे इनकौ जल पीहै। तिनकौं पाप कभूं नहिं छीहै॥

तिनके अति उज्जल हिय ह्वै है। वासुदेव में भक्ति सु कैहै ॥
हे नृप जो कर्मनि छुटकाय। सुखद कृष्ण के सरणों जाय ॥
भूत पितर नर देव वंधु मुनि। तिनकौं सो न रिनी किंकर पुनि ॥
जो हरि पद भजनी हरि प्यारौ। और भाव जिन छाँड्यौ सारौ ॥
तातें निन्दक कर्म जौ होय। हरि ही हिय धँसि नासै सोय ॥

श्री नारद उवाच—

निसि मुनि पर्म धर्म हरपानें। सहित पुरोहत ते सनमानें ॥
पुनि देखति अन्तर्हित भए। निमितन करि उत्तम गति गए ॥
तुम हू ए श्रद्धा करि कैहौ। तौ अशंक ह्वै परंपद पैहौ ॥
तुम त्रिय पति के जस जग छए। जिनके हरि ईश्वर सुत भए ॥
देखन बोलन पुनि लपटान। सोवन वैठन खांन रु पांन ॥
इन करि तुम पवित्र अति भए। हरि में सुत-सनेह करि छए ॥
पौंड्र साल्व सिसुपाल हैं जिते। सोवत वैठक में पुनि तिते ॥
वैर भाव करि हरि कों ध्याए। तदाकार ह्वै तेई पाए ॥
पुनि जिनकौ अनुराग है महा। तो पैहें यह कारिबौ कहा ॥
ये अव्याय सर्वातम श्री हरि। प्राकृत नर की सी लीला करि ॥
निज ऐश्वर्ज छिपायौ जानौ। तिनमें पुत्र बुद्धि जिन आनौ ॥
संतनि रछ्छण असुरनि मारण। प्रगटे मोछ्छ हेत जस धारण ॥

श्रीशुक उवाच

श्री वसुदेव देवकी यह सुनि। अचिरज करि निज मोह तज्यौ पुनि ॥
यह पवित्र इतिहास सुनें जो। ह्वै निर्मल हरि तत्व लहै सो ॥४६॥

इति श्री भागवतेमहापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि
कृते पञ्चमोऽध्यायः ॥

छटवाँ अध्याय

दोहा:—ब्रह्मादिक अस्तुति करी छठें ध्याय अभिराम ॥
उद्धव कही मोहू अहो लै चलियै निज धाम ॥ १ ॥

श्री शुक उवाच—

इक दिन विधि आयौ द्वारावति। संग देवता पुत्र प्रजापति॥
भूतनाथ सिव हू पुनि आए। भूत गणनि कौं संग सु ल्याए॥
इन्द्र मरुत वसु अस्वनी कुमार। रिभु अंगिरा अदित्य अपार॥
बिस्वेशाध्य रुद्र गन्धर्व। सिद्ध अप्सरा चारण सर्व॥
गुह्यक नाग पितर किन्नर मुनि। हरि दरशन हित आए सब पुनि॥
जा तन करि मन हरे मुरारी। विस्तारयौ जस कलि मल हारी॥
अद्भुत हरि सुन्दर पुर माँही। निरखे नेंन अघाए नाँही॥
स्वर्ग के फूलनि की बर्षा बर्षावत। करि हरि अस्तुति करत भए सब॥

देव उवाच—

मन बुद्धि इन्द्री प्राण वचन करि। तुव पद कमलहिं नवति अहो हरि॥
कर्म पाँसि ते छुटयौ चाहे जे। भाव जुक्त हिय में ध्यावै ते॥
दुर्विभाव्य यह विस्व जु आहि। तुम त्रिगुण माया करि ताहि॥
आपुहिं में रचि पालौ दहौ। गुननि में होय नियन्ता रहौ॥
बहुरि गुणनि के कर्मनि माँही। हे प्रभु तुम सुलिप्त होहु नाँही॥
रमत हौ निज सरूप सुख माँही। रागादिक प्रभु तुमरै नाँहीं॥
अहो ऋषभ अस्तुति लायक हरि। विद्या स्तुति तप दान क्रिया करि॥
सुद्ध होत नहिं विषई ऐसें। तुव जश सुनै साधु जन जैसें॥
मुक्ति हेत तुव पद ध्यावैति मुनि। सब विभूत पावन भक्तौ पुनि॥
स्वर्ग लाँघि बैंकुण्ठहिं जानि। पूजति तीन्यौं बार सु जानि॥
ते तुमरे पद सुख विस्तारौ। हमरी विषै वासना जारौ॥
जाजक वेद त्रई की विधि करि। हौम द्रव्य हाथनि में लै करि॥
जज्ञ अग्नि में ध्यावत जाहि। परम भागवत पूजति ताहि॥
जोगी तुव माया जाननि हरि। चिंतत हैं अध्यात्म जोग करि॥
हे प्रभु जो वनमाला आहि। रमा सोक ज्यौं त्रासति ताहि॥
भक्तनि दई सु तुम न उतारौ। तुव पद विषै वासना वारौ॥

बलि के छलनि समें तुव पाय । भयौ विधि धाम धुजा सौ जाय ॥
गंग ही जास पताका अतिशय । असुर सुरनि कौ देत भयाभय ॥
असुरनि नर्क सुर्ग निज दासनि । तेई पद हमरे अघ नासनि ॥
लरत परस्पर जे ब्रह्मादि । नथै बैल से तुव बस आदि ॥
तुम सब परें काल पुरुषोत्तम । तुव पद मंगल हित चाहत हम ॥
तुम जग सृष्टा पालक हन्ता । प्रकृति पुरुष महतत्व नियन्ता ॥
काल सीघ्र गामी हन्ता जो । है पुरुषोत्तम तुम ही हौ सो ॥
बल अमोघ पुरुषा अवतार । सो तुम तें लहि सक्ति अपार ॥
महा तत्व माया में ऐसें । धारत हैं प्रभु गर्भहिं जैसें ॥
तेजो मय ब्रह्माण्ड निकेत । कीनौ तिन आवरण समेत ॥
थिर चर इन्द्री ईश अहो हरि । विषै प्रकाशी जे, माया करि ॥
ते तुम सेवत लिपत रु नाहीं । और तौ बंधत वासना माँही ॥
हँसि अवलोक भाव करि सुन्दर । तिन भृकुटिन तें तानि काम शर ॥
तुव मन सोरह—सहश त्रिया ते । काम कलनि करि मथि न सकीं ते ॥
तुव गुण अमृत सुनें ते हे हरि । पद जल गंगा में अन्हाय करि ॥
वेगि ही सुद्ध होत है त्रिभुवन । यातें दुहुनि साधु सेवत पुनि ॥

श्री शुक उवाच—

ऐसें सिव सुर सहित विधाना । करि हरि अस्तुति हरषत गाता ॥
पुनि अकाश में रहि सिर नायौ । हरि गोविन्दहिं वचन सुनायौ ॥

ब्रह्मोवाच—

भार हरण हम पहल कहो ज्यौं । हे प्रभु तुम हूँ ने कीनीं त्यौं ॥
सत्य-प्रतिज्ञ साधु सुख भरे । तिनके धर्म सुथापन करे ॥
पुनि त्रभूवन की कलि मल हारी । लोकनि में कीरति विस्तारी ॥
जदुकुल प्रगटे सुन्दर रूप । जग हित कीनै कर्म अनूप ॥
तिनैं साधु जन सुनि है गैहै । अकसमात ही जग तरि जैहैं ॥
इक शत वीस रु वर्ष मुरारी । वीते जदुकुल बंस मँझारी ॥

सर्वाधार अहो जदुराय। अब न कछू बाकी सुर काज॥
पुनि यह कुल हू विप्र स्त्राप करि। नष्ट प्राय सों तुमनि कीयौ हरि॥
अब निज परम धाम है जहाँ। मन आवै तौ चलियै तहाँ॥
लोक रु लोकपाल ये दास। तिनकौं पालहु हे सुख रासि॥

श्री भगवानुवाच—

हे विवुधेश तुमनि जो भाषी। यह हम पहल जानि ही राखी॥
धर भर हरण जु काज तिहारौ। सो तौ हमनि कीयौ है सारौ॥
जादव धन बल बीजु धर। चाहत लोकहिं निज वश कर॥
हमनि रोकि राखे ते ऐसें। मर्जादा समुद्र को जैसें॥
ये जादव अति गर्वहिं धारें। में जाउ जौ विभा शिहारें॥
तौ ये मर्जादा तजि देहें। सब लोकनि को नास सु कैहे॥
अब द्विज स्त्राप हेत को पाय। यह कुल अंतरहित ह्वै जाहि॥
अहो अनघ हम हू तिन पाछैं। अपने धामहिं जैहें आछैं॥

श्री शुक उवाच—

सुनि सुर सहित बिधाता नयौ। बहुरों अपनें धामहिं गयौ॥
पुनि द्वारापुर में उत्पात। लखि हरि कही जादवनि बात॥

श्री भगवान उवाच—

चहूँ घाँ होत बड़े उत्पात। दुस्तर हमें श्राप हू ख्यात॥
जीयौ चह तहाँ वास न भलौ। बेगि ही पुन्य प्रभासहि चलौ॥
दछ श्राप तें भई छई जब। ससि हू तिह प्रभास न्हायौ तब॥
बेगि ही छई रोग तजि गयौ। पुनि कलानि कों पावत भयौ॥
हम हूँ तहाँ जाय सब न्हैहैं। देव पितर कौ तरपण कै है॥
पुनि कमनीय द्विजनि ता पाछें। आछौ अन्न खवै है आछें॥
बड़े दान तहाँ श्रधा कै कै। पात्र दुजनि कौ नीकै दैकै॥
दु:खनि कौ तारि जैहैं ऐसें। नावनि करि समुद्र कौ जैसें॥

श्री शुक उवाच

सुनि जादवनि चलन मन कीने। आप आपने जुराय रथ लीने ॥
हरि अनुवर्ती उद्धव जू प्रानि। लाख उत्पात बात हरि की सुनि ॥
आय इकौशें जग के ईश। ताके पगनि छुवायौ सीस ॥
हाथ जोरि कही हे सुरेश हरि। अघ हारि श्रवण कीर्त्तन ही करि ॥
हे प्रभु आप हरयौ नहिं जाते। कुल हरिलोकहिं तजिहौ याते ॥
मोहू लै चलीयै निज भवन। तुव पद छिन हू त्यागि सकौं न ॥
परम अमी तुव चरित जु आहि। तजै चाह नर चाखि कै ताहि ॥
सोवन बैठन चलनि अन्हान। खेलनि पांन पांन औ आन ॥
इनमें तुम कभू भए न न्यारे। अब प्रीय मन क्यौं तजै हमारे ॥
भूषण वसन रु गन्ध रशाला। पेहैरिहैं तोर प्रसादी माला ॥
तुव उछिष्ट खाय तुव दास। जीति है तुव माया अनयास ॥
सांत सर्व त्यागी उज्जल मुनि। पवन ही वस्त्र ऊर्ध्द रेता पुनि ॥
ब्रह्म रूप जो तुम्हरौ आहि। बड़्डे श्रम करि पावति ताही ॥
हम तुव भ्रमति कर्म मग में हैं। तुव बातनि ही तरि करि जैहैं ॥
तुम्हरो चितवनि बोलनि हास। गति विलास बहुरों परिहास ॥
तिनको सुमिरन कीर्त्तन कै है। दुस्तर जग ता करि तरि जैहैं ॥

श्री शुक उवाच

हे नृप यों जब विनती करी। तब वसुदेव की सुत श्री हरी ॥
प्यारौ उद्धव दास अनन्न। तासों बोले करत प्रसन्न ॥४५॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादश स्कन्धे भाषारसजानिकृते
षष्ठोऽध्याय: ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

दोहा:—ध्याय सातयें उद्धवहिं आत्मज्ञान हित स्याम ॥
जदु दत्तात्रै कौ करयौ संवाद सु अभिराम ॥१॥

श्री भगवानुवाच–

करयौ चहत में जो तुम कही। सब विधि सब चाहत पुनि यही॥
विधि विनती सुनि हम अवतरे। देव काज हू सबरे करे॥
कुल आपस में लरि नहिं रेहै। सातए दिन पुर समुद बुडेहै॥
मेरे पाछे कलिजुग ऐहै। लोकनि कौ मंगल हरि लैहै॥
मो विन तोहि ह्यां रहिवै नाँहीं। नर अधर्म के हैं कलि माँहीं॥
तुम सम ह्वै मो में मन लाय। विचरो सब ते प्रीति छुटाय॥
जो मन बानी दृग कानिनि करि। मो बिन गहियत सो सब नस्वर॥
मन हो करि इक कलप्यौ जाते। अहो सो मायिक मानों याते॥
जा कौ मन विछिप्त जु आहि। गुण दूषन बहु भ्रम है ताहि॥
कर्म अकर्म विकर्म मँझारी। ताही कें होय भेद सुभारी॥
ताते तुम मन इन्द्री गहौ। आप सहत सब मो में लहौ॥
जौं संजुक्त ज्ञान विज्ञान। निज अनुभव करि तुष्ट महान॥
सो सबकौ आत्मा ह्वै जाय। ताहि विघ्न कोउ करै न आय॥
विधि निषेध दुहूवनि कौ तजै। पुनि गुण मानिन विधि कौ भजै॥
दोष-मानिन निषेध तें डरै। बालक की ज्यों विचरयौ करै॥
सबकौ सुखद सांतता कौ घर। पुनि विज्ञानें ज्ञान में तत्पर॥
विस्वहिं देखें मूर्त्ति हमारी। सो नहिं बहुरि होय संसारी॥

श्री शुक उवाच

यह सुनि उद्धव पुनि सिर नायौ। तत्वहिं जानन वचन सुनायौ॥

श्री उद्धव उवाच

हे जोगेस जोगनिधि भावन। अहो जोग मय जोग उपावन॥
तुमनि त्याग सन्यास नाम जो। मम कल्यान हेत भाख्यौ सो॥
काम वानि की तजि न मुरारी। अजितेंद्रिन को दुस्कर भारी॥
विमुखानि कौ तौ महा दूर अति। हे सर्वातम यह हमरी मति॥
रचे तनादिक तुव माया करि। तिनमैं हों मैं मूढ़ रह्यौ धरि॥

सुख सों तुमरी कहनि करौं ज्यौं। हे भगवान दार्शक कहियै त्यौं ॥
हे प्रभु सत्य ईस जग माँही। तुम बिनु वक्ता सूझतु नाँही ॥
ब्रह्मादिक मोहे माया नें। नस्वर विषै पदारथ मानें ॥
तुम निर्दोष अनन्त अपार। कालनि खण्डित लोक तुम्हार ॥
तुम नारायण नर के प्यारे। ईसुर पुनि सर्वज्ञ सु भारे ॥
मैं दुख तपत उदास सु भारी। हे प्रभु आयौ शरण तुम्हारी ॥

श्री भगवानुवाच

लोक—तत्त्व के जानन हारे। बहुतक जन या लोक में प्यारे ॥
आप ही आपहिं करत उधार। विषै वासना ते निर्धार ॥
पुरुषहि अपनोई गुरु आप। प्रगट नुमान करि तजै ताप ॥
सांख्य जोग में निपुन धीर जे। हे उद्धव या नर तन में ते ॥
सब शक्तिन जुत मैं जो आहि। अतिसैं करि देखति हैं ताहि ॥
पाइनि बिन पाइनि बहु देह। पै मेरौ नर तन सों नेह ॥
सावधान नर या तन माँहीं। काहू करि जो गहियत नाँहीं ॥
ता मोहि ढूँढति हैं नुमान करि। जड़हिं प्रकासै कौन बिना हरि ॥
यां इक कथा कहत तोहि आदि। जदु दत्तात्रै कौ सम्बाद ॥
इक अवधूत बिबेकी भारी। बिचरत निर्भै धरनि मँझारी ॥
बहुरों अति ही तरुन सु आहि। जदु धर्मज्ञ सु पूछी ताहि ॥

यदुरुवाच—

अहो अकर्त्ता द्विज सुखदाई। तुम आमनि पुनि बुधि कहा पाई ॥
जाहि पाय तुमसे विद्वान। बालक से विचरत सुख मानि ॥
प्रिय सौ धर्म अर्थ अरु काम। बहुरों आत्म ज्ञान अभिराम ॥
इनमें धन जन जस रु आयु हित। होत प्रवृति अहो धरीयै चित ॥
तुम कवि सुन्दर चतुर समर्थ। बोलत बचन अमृत से अर्थ ॥
पुनि कछु करौं न चाहौ ऐसें। जड़—उन्मत्त बावरो जैसें ॥
काम लोभ दावानल सो पुनि। ये सबरे जन जरति अहो मुनि ॥

तुम बचि तातें तपति न ऐसें। गंगा जल में हाथी जैसें॥
निज आनन्द हेत कहीयै मुनि। भोग हीन तुम इकलै हौ पुनि॥

श्री भगवानुवाच—

पुनि ब्रंह्मन्य सुमति जदु नयौ। महा भाग द्विज बोलति भयौ॥

द्विज उवाच—

हे नृप मेरे गुरु हे घनें। बुद्धि ही करि कीनें सुख सनें॥
तिनही तें मैं बुधि पाय पुनि। इकलौ फिरत नाम तिनके सुनि॥
रवि ससि अगिन वायु जल नभ धर। समुद पतंग मीन मृग अजगर॥
चील्ह कपोत वेस्या नारी। मकरी माखी भृंगी कुमारी॥
बालक सर्प कडेरौ गजवर। पुनि मौहार हरण हारौ नर॥
ये मम गुरु चौबीस नरेस। वृति ही करि लीनै उपदेश॥
जातें जा मैं सीख्यौ जैसें। हेनृप कहौ सुनौ सो तैसें॥
दैवाधीन जननि कौं जानें। तै जौ आपहिं पीडा ठानें॥
तौहू छमा करै सुख काजा। यह धर तें हम सीखी राजा॥
सदा पर उपकार सों काम। पर हित एक जन्म अभिराम॥
यह हम पर्वत तें सीखी सुनि। पराधीनता बृछनि तें पुनि॥
प्राण वृत्ति करि तुष्ट रहे मुनि। चहै अहारन इन्द्री प्रिय पुनि॥
जैसें ज्ञान नष्ट होय नांहीं। मन वानी रु रहै वस मांहीं॥
नाना विधि दुख सुख सेवै मुनि। पौंन ज्यौं तिन में लिपै नहिन पुनि॥
तत्व विन धर विकार तन माहीं। पौंन ज्यौं तन गुन बँधै सु नाँहीं॥
तन हूं में रहि आये को मुनि। थिर चर तें न्यारौ व्यापक पुनि॥
ब्रह्म भाव करि देखै ऐसें। सब ठां इक अकाश है जैसें॥
तेज अन्न जल मय तन जितें। काल ही करि सु रचे ये तितें॥
तिन सौं अलगौ पुरुष रहै यौं। प्रेरे पवन घनंनि करि नभ ज्यौं॥
जल सौं ह्वै सब सौं वरते मुनि। सुछ सनेही मधुर तीर्थ पुनि॥
तप करि दिपै सु तेज रची मुनि। उदर ही एक पात्र जाके पुनि॥

सबै पाय उज्जल रहै ऐसें। सर्व भोक्ता अगिन सु जैसें॥
अग्नि ज्यौं सब ठां सबकों खाय। दाता के सब पाप जराय॥
कहूँ गुप्त कहूँ प्रगट रहै सो। मंगल हेत सेइयतु है जो॥
छोटे बड़े देह हैं जिते। जीय निज माया सों रचि तिते॥
तिन तन में ह्वै तैसौ भासै। काठनि में ज्यौं अगिन प्रकासै॥
वा प्राणी के जन्म मरण ते। काल अच्छिन्न नित्य करत ते॥
पै नाहि न दीसत है ऐसें। अगिन तें भई ज्वालनि कों जैसें॥
उपजि मरन लौं तन के धर्म। दुर्गम काल करत नहि भर्म॥
ते आत्मा में बनें सु नाँहीं। कला नाम ज्यौं ससि के माँहीं॥
सुनि इन्द्रिन के भोग हू सेवै। काल पाय जाचक कौं देवै॥
लयौ दयौ पुनि गणौ न ऐसें। रवि किरननि करि जल कौं जैसें॥
भेद सून्य आत्मा कौ बिंब। तन उपाधि में हैं प्रतिबिंब।
मूढहिं भेद सु भासें ऐसें। जल उपाधि में सूरज जैसें॥
संग सनेह नरनि कें माँहीं। कबहूँ पुरुषहि करिबे नाँहीं॥
जारू करै तौ ज्यौं कपौत खगि। दीन ह्वै बहु दुख माँहि जाय पगि॥
इक कपोत तिय जुत सुख पाय। बन में रह्यौ घोंसूवा बनाय॥
दोउ परस्पर प्रीति सु गहै। तन मन द्रग मिलाय कैं रहै॥
मिलि करि सो बन खान रु पान। बैठनि उठनि चलनि बतरान॥
पुनि प्यारी तिय माँगै जो जो। बिपई दुख करि ल्यावै सो सो॥
पहल तास त्रिय गर्भ रह्यौ जब। पति के ढिग अण्डा दीनें तब॥
अहो अतर्क सक्ति हरि की ये। काल पाय अण्डा फूटे ते॥
तिनमें ते पुनि बच्चा भये। कौमल तन रोमनि करि छुए॥
तीय पति तिनकौं पोषन लागे। सुनि धुनि सुख पावति अनुरागे॥
तिनके कौमल पर अरु बोलनि। हरषि आप ढिग करत कलोलनि॥
दोऊ हरि माया सों पागे। करि सनेह सुत पोषण लागे॥
इक दिन दोऊ कुटुम्बी सटके। तिनकौं चुगौ लैन बन भटके॥

फिरत घोंसूवा ढिग खग वाल। ते लखि वधिक गहि लिये जाल॥
त्रिय पति बहुरि चुगौ लै आये। नित सुत पालन में मन छाए॥
जाल में दुखित-वाल लखि मात। समुहें गई दुखित बिललात॥
हरि माया करि नेह सु छई। होय विसुध आयौ वधिकई॥
त्रिय सुत प्यारे बँधे निहारि। रोग दुखित खग कही पुकारि॥
अहो देखौ यह नाश हमारौ। अलप पुन्य में दुर्मति भारौ॥
में कछू कियौ न तृप्तौ भयौ। अर्थ सिधि कर ता घर गयौ॥
यह मो लायक त्रिय अनुकूल। मो बिन जिन कछू लख्यौ न भूल॥
सूनै घर में मोहिं डारि कै। स्वर्ग चली अपु साधु सुतनि लै॥
हाय दीन मैं कुटुम्ब मरयौ सब। सूनौ घर में क्यौं जीहौं अब॥
जाल में देखि कुटंब सु दीन। गिल्यौ मीच चेष्टा करि हीन॥
सोऊ कारण मूढ़ता भरयौ। आप हू जाय जाल में परयौ॥
चिड़ीमार अति निर्दै भारौ। सबकौं घर लै गयौ सुखारौ॥
ऐसें कृपण कुटंबी प्राणी। पुनि जिन इन्द्री वस नहिं आणीं॥
यौ कुटुम्ब कौ पोषणहारौ। सहत कुटंब दुखी होय भारौ॥
खुल्यौ मुक्ति कौ द्वार सु नर तन। हे नृप ताहि पाय कें जो जन॥
खग ज्यौं घर में रति ठानै जो। निश्चै ऊँचै चढ़ि सु गिरयौ जो॥५८

इति श्री भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि
कृते सप्तमोऽध्यायः॥

आठवाँ अध्याय

दोहा:—अजगरादि नौ गुरुनि के चरित आठयें ध्याय।
दत्तात्रै के वचन करि भाषे हें जदुराय॥१॥

दत्त उवाच

हे नृप इन्द्री सुख हें जिते। स्वर्ग नर्क हू में हैं तिते॥
ज्यौं प्राणी कौ दुख सब ठाँही। ताते तिन्हैं भजति बुध नाहीं॥
थौरौ घनौ कटुक मिठौ जो। अकसमात आवै पावै सो॥

बहुत दिननि लौं जो नहिं आवै। तौ अजगर ज्यौं सोय गवावै॥
मन तन इन्द्री हू बलवान। तउ न कर्म करै नर जान॥
सोय रहै चेष्टा नहिं करै। स्वारथ माँहि दृष्टि लै धरै॥
दुर्गिगाह दुस्तर अविकार। पुनि प्रसन्न गम्भीर अपार॥
क्षोभ हीन निश्चल समुद्र ज्यौं। हे राजन मुनि होय रहै त्यौं॥
नारायण पारायण जो मुनि। बहु आऐ बिन आए सो पुनि॥
हे नृप घटै बढ़ै नहिं ऐसें। नादियन सों समुद्र यह जैसें॥
विषई लखि हरि की माया त्रिय। तास भाव कहि मोहित ह्वै हिय॥
नरक में जाय परै नर ऐसें। दीपक में पतंग यह जैसें॥
मायिक त्रिय पट भूषण संपति। इनमें मूर्ख मोह ठानै अति॥
भोग बुद्धि करि नष्ट होय ज्यौं। अंध ह्वै दीपक में पतंग ज्यौं॥
थोरौ थोरौ माँगि खाय मुनि। तन निर्वाह होय जितने सों पुनि॥
बहुर ग्रहस्थनि दुख नहिं देय। यह मधुकर की वृत्ति सु लेय॥
छोटे बड़े सास्त्र सारहिं पुनि। करै भौंर ज्यौं ग्रहन निपुण मुनि॥
प्रात साँझ हित भिक्षा ऐसें। संग्रह करै न माखी जैसें॥
जोर करै तौ नास होय ज्यौं। सहत शमेत माखियन कौ ज्यौं॥
काठ हू की त्रिय छुवै न पाय। छुऐं बँधै हाथी ज्यौं आय॥
त्रियहिं आपनी मीच सु जानै। तासों विदुष संग नहिं ठानै॥
जोरू करै तौ ताहि बली यौं। मारै हाथी कौ हाथी ज्यौं॥
लोभी दुख करि धन कौ जोरै। आपु न खाय देहि नहिं औरै॥
ताकौ और ही खाय सु ऐसें। सहत खाय मौहारी जैसें॥
दुख करि धन जोरयौ जो आहि। खायौ चहै कुटंबी ताहि॥
अतिथ प्रथम ताहि खाय सु ऐसें। सहत खाय मौहारी जैसें॥
पुनि बनवासी मुनि है जोई। ग्राम गीत कौ सुनै न सोई॥
सुनें सु मोहित होय बँधै यौं। गीत अहेरी कौ सुनि मृग ज्यौं॥
त्रियनि कौ नृत्य वाद्य रु गान। इनकौ सेवन करै महान॥

तियन कौ होय खिलोंना ऐसें। मृगी पुत्र श्रृंगी रिषि जैसें॥
अति दुर्जय जिह्वा हम जानी। रसनि चाखि मोहित होय प्रानी॥
ता करि बिषई मरत है ऐसे। लोभी तिमि वनसी सों जैसें॥
रसना बिन इंद्री हैं जितीं। बिन भोजन मुनि जीतति तितीं॥
यह रसना तौ है दुःखकारी। निराहार की बढ़ति सुखारी॥
रसना बिन जीतै सब जौ लौं। इन्द्री जीत न कहियै तौ लौं॥
इक रसना कौ जीत लेय जब। सब ही इन्द्री जीति लई तब॥
बिस्वा एक पिंगला नाम। रहै विदेह नगर अभिराम॥
तातें पहल हमन सीख्यौ जो। हे नृप नीकें सुनि लीजै सो॥
इक दिन सो बिस्वा सिंगार कर। ठाढ़ो संझा समें द्वार पर॥
कांतहिं घर में लै गयौ चहै। मग आवत पुरुषहिं अवगाहै॥
तिनें धनाढय मोल कें दाता। मानति भई लोभिनी कांता॥
तन कौ बेचि जीविका धारै। आवति जातें पुरुष निहारै॥
पुनि कहै और कोउ जन ऐहैं। अति धनवान बहुत धन दैहैं॥
निद्रा तजी दुरासा यही। कौरैं लगि ठाढ़ी ह्वै रही॥
बाहर भीतर आवति जात। बीति गई ताहि आधी राति॥
मुख सुख गयौ दीनता छाई। धन चिन्ता ही करि सुखदाई॥
लहि निर्वेद कह्यौ तानें जो। हे राजा हमतें सुनियै जो॥
नर की आसा पास जु आहि। काटत इक निर्वेदहिं ताहि॥
होय नहीं निर्वेद सु जौलों। तन बन्धन जन तजै न तौलों॥
ज्यौं जब लौं न होय बिज्ञान। तौलौं तजै न ममता जान॥

पिंगलोवाच—

अहो मैं अजितेन्द्री अबिबेकन। ताकौ महा मोह देखौ किन॥
जा करि महा तुछ ये प्रानी। इनमें तें सु कामना ठानी॥
धन सुख दाता पिय बड़ भाग। नित ढिंग रहै ताहि मैं त्याग॥
दुख भय सोक मोह दाता पति। भज्यौ अपूरन में सुमूढ़ अति॥
व्यर्थ ही में जु अपन पौ तायौ। निंद जीवका में मन लायौ॥

तिय लंपट रु सोक की लायक। निज अर्थी अतिशय दुख दायक॥
ताकौ तन बेचनि मन धरी। रति अरु धन की इछया करी॥
तन घर हाड़ माँस करि कीयौ। तुचा रोंम नख करि माढ़ दियौ॥
नवौ द्वार पुनि बहत है जाके। विष्टा मूत्र भरे मधि ताके॥
ऐसें कों जो मानें पिया। मो बिन सो को दूजी त्रीया॥
अहो विदेहन के पुर माँही। मो बिन दुर्मति दूजौ नाँहीं॥
जातें पति में भजे अभागे। देत अपनपौ सो हरि त्यागे॥
सर्वातम प्रीय सुहृद जु आहि। या तन सों लै मोल सु ताहि॥
तिन संग रमण करौंगी ऐसें। नित हीं रमा रमति हैं जैसें॥
विषई नर सुर काल ग्रसे जे। कहा त्रिय कौ प्रिय करि दैहै जे॥
निश्चै मम कोऊ कर्म महान। ता करि तुष्ट भए भगवान॥
जातें मो हिय दुष्ट जु भारौ। ताकें भयौ निर्वेद सुखारौ॥
ये निर्वेद हेतु कौ दुख जे। मंद भाग कौ क्यौं होते ते॥
जो निर्वेद पाय तजि घर कौ। पाय लेत नर सुन्दर हरि कौ॥
हरि उपकार सीस धरि लैहौं। त्यागि दुरासा सरण सु जैहौं॥
सन्तोषहिं धरि श्रद्धा करि हौं। जथा लाभ सों पेटहिं भरिहौं॥
वही आत्मा रमन जु प्यारौ। याही संग तन रमें हमारौ॥
जास विबेक त्रिषै नें हरयौ। पुनि या जगत कूप में परयौ॥
काल सर्प नें गील्यौ जाहि। हरि विन कौंन छुटावै ताहि॥
काल सर्प करि ग्रस्यौ जगत जो। सावधान ह्वै कै देखै सो॥
सब तें पुनि निर्वेद होय जब। आप ही आपै को राखै तब॥

दत्त उवाच

ऐसें निश्चै मति करि लीनी। कांत त्रषा दुरास तजि दीनी॥
बहुरौं सो उपसम कौ पाय। हरषि सेज पर बैठी जाय॥
आसा ही है नरहिं महा दुख। पुनि निरास ही आय पर्म सुख॥
जैसें कान्त आश छिटकाय। सुख सों सोई पिंगला जाय॥४१॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषारसजानि
कृते अष्टमोऽध्याय: ॥ ४ ॥

नवमाँ अध्याय

दोहाः—तन पुनि चील्हादिकनि के चरित नवै अध्याय ॥
सुनि कृतार्थ जदु ह्वै गयौ यही कही जदुराय ॥ १ ॥

दत्त उवाच

नर कों जो जो वस्तु हैं प्यारी। ताकें संग्रह में दु:ख भारी॥
यही जानि संग्रह न करै जौ। अति ही सुख में मगन रहै तौ॥
एक चील्ह पै मांस निहारै। बली चील्ह तब ताकौ मारै॥
सो तब चील्ह माँस कौं डारि। होत सुखी हे नृप निरधार॥
मेरे नहीं मान अपमान। घर सुत की चिन्ता न महान॥
आप ही रखौं आप ही खेलों। बालक ज्यौं विचरौं सुख मेलों॥
ह्वै निश्चिन्त सुखी हैं भारे। एक मूढ़ सिसु एक हरि प्यारे॥
हे नृप कन्या एक कुमारी। तिहिं घर आइ गए ससुरारी॥
तिन ही ते सनमानै यातें। मात पिता कोउ घर नहिं जातें॥
तिनके भोजन हेत सुजान। कूटन लगी इकौशे धान॥
कूटत में कर की चूरी जे। हे नृप निपट बजन लागीं ते॥
तब सो लिद मानि लाज गई। इक इक चूरी फोरति भई॥
द्वै द्वै हू रहिं बजन लगीं पुनि। इक इक फोरें रहें रही धुनि॥
मैं विचरत जग चरित निहारन। तातें सीख करी यह धारन॥
बहुत रहै होय कलह महान। द्वै हू रहै होत बतरान॥
तातें इकलौ विचरै ऐसें। कन्या कर की चूरी जैसें॥
आसन जीत रु जीतैं स्वास। जुत वैराग्य जोग अभ्यास॥
इन सौं लै मन कौं थिर करै। पुनि पुनि मनहिं एक ठाँ धरै॥
जहाँ मन लगै कर्म मालन्न। हरें हरें तजि होय प्रसन्न॥
रज गुण जारि सतोगुण करि मन। सांत होय ज्यौं अग्नि निरिंधन॥

तब आत्मा में मन लगाय मुनि। बाहर भीतर कछु न लखै पुनि॥
ज्यौं सर में मन लाय कडेरौ। ढिग ह्वै भूप गयौ नहिं हेरौ॥
रहै इकौसौ घर न करै मुनि। सावधान थोरौ बोलै पुनि॥
इकलौ बिचरै धरनी माँहीं। करि आचरण जनावै नाँहीं॥
छण-भंगुर तन हित घर कैबौ। महा विफल ह्वै दुख कौ पैबौ॥
यातें औरनि घर जु बनायौ। तामें सर्प रहै सुख छायौ॥
पहल रच्यौ जग नारायन मुनि। काल शक्ति करि संघारे पुनि॥
अद्वै एक रहै सुख सार। सर्वाश्रै आपहिं आधार॥
निज अनुभाव काल करि जबै। जात बिलात सक्ति गुण सबै॥
प्रकृति पुरुष के ईस पुराण। मोछ नाम ब्रह्मादि निदान॥
स्वप्रकास आनन्द सनूह। निर उपाधि हरि रहत दुरूह॥
पहलौ सृष्टि समें सो श्री हरि। केवल अपनेई अनुभव करि॥
त्रिगुण मयी निज माया आहि। सृज्यौ महत करि छुभित सु ताहि॥
तीन गुणनि कौ कार्ज जगत जो। नाना विधि करि ताहि अजति सो॥
तामें ओत प्रोत जग नृपवर। जीव हूँ भ्रमति रहति ताही कर॥
ज्यौं मकरी होय तें मुख द्वार। काढि तार पुनि करै बिहार॥
बहुर्यो ताहि गिलति है जैसें। श्री हरि जू या जग कौ तैसें॥
जहाँ जहाँ स्नेह द्वेष भय हू करि। बुद्धि सों आछैं मन धारत नर॥
सो सो रूप होत यह ऐसें। कीट भृंग कौ ध्यावति जैसें॥
यौं हम इन गुरु तें सीखे सब। तन तें सीखे सोऊ सुनौ अब॥
हे नृप यह तन उपजै मरै। दुख फल कर्मनि कौ पुनि करै॥
यातें यह मम गुरु बड़ भाग। देत बिबेक बहुर बैराग॥
या की करि सब तत्व बिचारौ। पै या में नहिं प्रीति सु धारौ॥
काक कुकर कौ खाजौ जानि। बिचरौ धरनि माहिं सुख मानि॥
जा तन कौ सुख देवै हेत। पोषत त्रिय सुत बन्धु निकेत॥
पुनि जिह हित दुख करि जोरत धन। आयु कौ अन्त भए सोऊ तन॥

बीज रूप कर्महिं सृज ऐसें। नास होत है नृप तरु जैसें॥
चपल नैन त्वक जिह्वा कान। लिंग उदर कर्मेन्द्री घ्रान॥
अप अपनी दिसि खैंचति ऐसें। बहुत त्रीया इक पति कौं जैसें॥
तरु तिमि खग पसु सर्पादिक जे। हारे निज माया रचे नगर ये॥
इन करि हृदै न तुष्ट भयौ जब। नर पुर हरि जू रचति भए तब॥
जा करि होत ब्रह्म कौ दरसन। ता करि अति आनन्द भयौ मन॥
नर तन दुर्लभ नस्वर आछें। पायौ बहुत जन्म के पाछें॥
देत अर्थ कौं तातें धीर। जौ लौं यह नहिं परै सरीर॥
तौलौं वेगि जतन सों ठानें। जातें जाइ मिलें भगवानें॥
पुनि ये विषै वखानी जितीं। निश्चै सब जानिन में तितीं॥
यौं हमरें उपज्यौ वैराग। पुनि विज्ञान दीप बड़ भाग॥
विचरति निज सरूप हिय धारि। मुक्ति संग ह्वै निरहंकार॥
इक गुर तें अश होय न ज्ञान। सुस्थिर बहुरयौ पुष्ट महान॥
यह अद्वित पर ब्रह्म जो आहिं। रिषि बहुधा बरनति हैं ताहिं॥

श्री भगवानुवाच

यौं जदु सौं कहि सुबुधि दत्त मुनि। अर्चिन वन्दित ह्वै गमनें पुनि॥
हमरौ पुरुपा यदु तत्वहिं सुनि। संत त्यागि सम चित्त भयौ पुनि॥

इति श्रीभागवत महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषारसजानिकृत

नवमोऽध्याय: ॥ ६ ॥

दसवाँ अध्याय

दोहा:– तन संबंध बिना नहीं आतमा कौ संसार॥
सब मत खण्डन करि कही दसें व्याय निर्धार॥

श्री भगवानुवाच

मैं जु सु धर्म कहे पोथिन में। मो जन सावधान ह्वै तिनमें॥
मन की सबै कामना तजै। वरनाश्रम कुल रीतहिं भजे॥
विषई बिषै सांच करि जानें। तिनके पुनि आरम्भहिं ठानें॥

आरम्भनि में उलटी आहि। सुद्ध चित्त हू देखैं ताहि॥
स्वप्न मनोरथ झूँठे जैसें। इन्द्रिनि करि नाना-मति तैसें॥
मत्पर नर प्रवृति कों तजै। बहुर निवृत्त कर्म कौं भजैं॥
हूँ प्रवृति जिज्ञासा माहीं। कर्म विधि हि आदरे सु नाहीं॥
मत्पर नर यम नित ही करै। जथा जोग नियमनि कौं धरै॥
मेरौ रूप सांत मोहि जानें। अस गुरु की उपासना ठानें॥
आपु गुरू में द्रढ़ सों हृद धरै। आलस तजि ममता परि हरै॥
अनसुईआ विग्र जिज्ञासी। मत्सर मान तजें मित भाषी॥
त्रिय धन तन सुत दासी दास। सबकौ सम लखि रहै उदास॥
द्रष्टा स्वप्रकास आत्मा जो। थूल सूक्ष्म तन तें न्यारौ सो॥
ज्यौं दाहक रु प्रकासक आग। काठनि तें न्यारी बड़ भाग॥
उत्पति लय छोटी रु बड़ी पुनि। बहु विधि ज्वाला काठनि के गुन॥
अग्नि में काठनि संग तें जैसें। तन संग तें आत्मा में तैसें॥
इश आधीन जु माया के गुण। तिन हीं करि सब देह रचे पुनि॥
याही करि संसार जु आहि। आत्म ज्ञान पुनि काटै ताहि॥
तन में सुद्ध आत्मा आहि। करि विचार नर जानै ताहि॥
बहुरों या तनादि के माहीं। वस्तु बुद्धि नर ठानें नाहीं॥
गुरु सिख उपर नीचें अरनी। बिच की अरनी सिक्षा वरनी॥
तिन कौ मथन कियैं बड़ भाग। उपजै सुखद सुविद्या आग॥
निपुन विशुद्ध बुद्धि होय जातें। गुण मय माया नासै तातें॥
पुनि तिन गुननि जारि जिन तें तन। सांति होय ज्यौं अग्नि निरिंधन॥
कर्म करैं दुख सुख भोगैं जे। तन तन में न्यारे न्यारे ते॥
लोक काल आगम आत्मादि। इन हू कौ जौ लहौ अनादि॥
माला चन्दन भोग हें जिते। सु तें सिद्ध जौ मानौ तिते॥
ज्ञान हू घट पटादि लखि होई। बहु बिधि बहुर होत है सोई॥
ऐसें हू पै सबकौ अहौ। काल सों जन्मादिक नित लहौ॥

निज बस हू में परवस याते। बुरौ कर्म करि भोगति जातें॥
विदुषहिं सुख न दुख न अज्ञहिं पुनि। व्यर्थ ही अहंकार केवल सुनि॥
दुखहि मिटाय सुखहिं उपजावै। तेऊ मीच कौं तौ न बचावै॥
मृत्यु निकट आई है जाकौं। कौन विषे सुख देत है ताकौं॥
जैसें जाकौं सूरी दीजै। ताकौ मन किह सुख में भीजै॥
स्वर्गादिक हू में नाहिन सुख। नास असूया ईर्षादि दुख॥
बिघन बहुत ज्यौं खेती माँहीं। तातें तहाँ कछू फल नाँहीं॥
जौ निर्विघ्न धर्म बनि आवै। तौ सुनि जैसें स्वर्गहिं जावै॥
ह्यां जज्ञनि करि सुरनि जजै जब। स्वर्ग जाय सुर ज्यौं भोगै तब॥
निज पुन्यनि करि रच्यौ विमान। तहाँ चढ़ि करि सिंगार महान॥
संग अप्सरनि करै विहार। गावैं गन्धर्वादि अपार॥
रमै त्रियनि जुत बागनि माँहीं। पुनि निज गिरि वौ जानै नाँही॥
नर कौ पुन्य न निबरै जौलौं। स्वर्ग में जाय करै सुख तौलौं॥
छीन पुन्य भए कालहिं जोई। बिन इच्छा धर पटकै सोई॥
जौं अजि न्द्री कामी भारौ। लोभी त्रिय लम्पट हत्यारौ॥
करि कुसंग पुनि पापहिं धारै। विधि बिन दीन पसुनि कौ मारै॥
प्रेत भूत गण जजन सो करै। नरक परै पुनि द्रुम तन धरै॥
तन करि दुख फल कर्मनि करै। तिन कर्मनि करि पुनि तन धरै॥
तातें मरनहार जो आहि। तिन कर्मणि में सुख की चाहि॥
बड़े लोक रु लोकपाल जे। हे उद्धव मो तें डरपति ते॥
ब्रह्मा द्वै परार्ध लौं आहि। पै मो तें डर हू तें ताहि॥
इन्द्री हीं सुरचित कर्मनि पुनि। इन्द्रिन प्रेरत सत्यादिक गुन॥
इन्द्रीयादि जु ते जीव है जोई। कर्म फलनि कौ भोगति सोई॥
गुननि की आहि विषमता जौ लौं। नाना भाँति आत्मा तौ लौं॥
पराधीनता हू है तब लौं। नाना भाँति आत्महिं जब लौं॥
या कौ पराधीनता जौ लौं। ईस्वर तें भय हू है तौ लौं॥

नस्वर करम भोग सेवैं जे। सोक जुक्त ह्वै मोह गहै ते॥
लोक आत्मा काल प्रभाव। बहुरयौ आगम धर्म सुभाव॥
मोही कौं बहु विधि भाषति सब। माया के गुण छुभित होंय जब॥

श्री उद्धव उवाच—

गुननि में रहित न धर्मनि माँहीं। कैसे जीव बँधे प्रभु नाँही॥
आवृत नही गुनिनि करि जौ पै। हे प्रभु कैसें बँधति है तौ पै॥
सो क्यौं वर्तति विहरति खात। किन लछिन करि जान्यौ जात॥
सोवैं बैठे चलै रु कैसें। ज्यौं त्यागै कहियें पुनि तैसें॥
हे प्रभु मोहि कहौ यह बात। तुम बड़ प्रश्नोत्तर के दात॥
इक ही बँध्यौ छुटयौ नित अहौ। यामें मेरे भ्रम प्रभु कहौ॥२३॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानिकृते
दसमोऽध्याय: ॥१०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

दोहा—पहल बद्ध अरु मुक्त के, चिह्न ग्यारहैं ध्याय।
बहुरों लच्छण भक्ति के, वरणें हें जदुराय॥ १॥

श्री भगवानुवाच—

गुन करि बध्यौ छुटयौ यह सही। नहिं वास्तव हमारो मत यही॥
गुण कौ माया मूल है जातें। बंध मुक्त दोउ नहिं यातें॥
सोक मोह दुख सुख तन धारण। बुद्धि सों रच्यौ सु पण सो सारण॥
एक जीव मम अंश जु आहि। बाँधनि बहुर छुटावन ताहि॥
विद्या बहुरि अविद्या है जो। आदि रची माया करि में सो॥
बंध्यौ अनादि अविद्या ही सों। छुटि है बहुरि विद्या ही सों॥
बद्ध मुक्त एक तन में रहैं। धर्म जुदे जुदे सो हम कहैं॥
मीत बरोबरि के पंछी ह्वै। रहें देह द्रुम माहि अह के॥
इक फल खाय रु दुर्बल रहै। इक नहिं खाय रु बल बहु गहै॥
सो आपहिं पुनि औरहिं जानें। फल भछी दुहुनि पहिचानें॥

नित हीं बंध्यौ अविद्यावान। नित्य मुक्त पुनि विद्यावान॥
विदुष देह हू मैं रहि नाहीं। जग्यौ पुरुष ज्यौं स्वप्न के माहीं॥
बिन तन कुमति रहै तन मैं यौं। अहो सुप्न देखन हारौ ज्यौं॥
इन्द्री विषै प्रहृत यह जान। करै न अहं बुद्धि विद्वान॥
देवाधीन जु देह बखानी। तामें यह रहि कै अज्ञानी॥
इन्द्री करत कर्म जे सही। कर्त्ता मानि बंधति आपु यही॥
सोवत बैठत चलत अन्हात। दरसत परसत सूंघति खात॥
इन में बँधे न यही सुजानि। विषै देत इन्द्रीन विद्वान॥
करि वैराग्य ज्ञान पैनायौ। ता करि संसय सकल नसायौ॥
सो पुनि तन में रहै न बँधे यौ। पवन अकाश बहुर सूरज ज्यौं॥
पुनि नाना भ्रम मिटति हैं ऐसें। जाग्यौ पुरुष सुप्न तैं जैसें॥
प्राण बुद्धि मन इन्द्री वृत्ति। यै जा जन की भई निवृत्ति॥
सो रहि हू के या तन माँहीं। तन के गुननि बंधनि है नाहीं॥
पूजै साधु दुष्ट पुनि मारै। तऊ बुद्धि कभू विकार न धारै॥
भलौ बुरौ काउ करै रु कहै। तौ हू बुध गुण दोष न गहै॥
निन्दा करै न अस्तुति भाषै। एक सी दृष्टि सबनि में राखै॥
बहुरौं भलौ बुरौ जो आहि। सुमिरै करै न बोलै ताहि॥
ऐसें आत्माराम होय मुनि। धरनि बावरौ सु विचरै पुनि॥
निपुन जो सब्द ब्रंह्म के माँही। पार ब्रह्म कौ जाने नांहीं॥
ताहि पाठ श्रम श्रम ही ऐसें। बाझ गाय के रछकहिं जैसें॥
ए हो दुख रूप या तन कौ। अतिथहिं बिना दिये पुनि धन कौ॥
दुष्ट त्रिया सुत बंध्या धेन। मम लीला गुण हीन जु बैन॥
इतने कौ जौ रछन करै। अहो सो महा दुख मैं परै॥
थिति उत्पति लय चरित हमारे। सब पापन के सोधन हारे॥
पुनि सुन्दर लीला अवतार। तिन करि हमरे जन्म अपार॥
इन कौ जो नहिं बचन उचारत। बांझ वचन सों धीर न धारत॥

देहादिक में जो अभ्यास। यों बिचारि नाहि करै निरास ॥
पुनि मो व्यापक में अभिराम। धरि मन अमल होय उपराम ॥
जो मो पर ब्रह्म के माँही। निश्चल मनहिं धरि सकै नाहीं ॥
तौ सब कर्म धर्म अभिराम। करै मदर्पित ह्वै निष्काम ॥
मंगल रूप लोक पावन जे। श्रद्धा करि मम कथा सुनै ते ॥
पुनि मम जन्म कर्म को गावै। करि अनुकरण सुमिर सुख पावै ॥
अहो जौ मेरौ भक्त मदर्थ। सवै धर्म काम पुनि अर्थ ॥
मैं जु सनातन तास मझारी। ताकी अचल भक्ति होय भारी ॥
साधु संग करि भक्ति सु पावै। ता करि मों में ध्यान लगावै ॥
पुनि मेरे साधुनि दिखयौ जो। अनायास मम रूप लहै सो ॥

श्री उद्धव उवाच

हे प्रभु उत्तम जस के भौन। तुमरे संमत साधु सु कौन ॥
तुमरी भक्ति आहि कैसी पुनि। जहि आदरैं नारदादि मुनि ॥
हे पुरुषोत्तम हे जगनायक। लोक नियन्ता सब सुख दायक ॥
यहि कहियै मैं तुम्हरौ भक्त। प्रनत प्रपन्न बहुर अनुरक्त ॥
तुम परब्रह्म गगन से राजौ। परै प्रकृति तैं पुरुष बिराजौ ॥
तुम सुन्दर अपनी इच्छा करि। निराकार वपु प्रगट कीयौ हरि ॥

श्री भगवानुवाच

सहन सीलनि वैर दयाल। साँचौ निदूषन सब काल ॥
मृदु सुचि सम उपकारी दांत। निष्किञ्चन अकाम चित्त सांत ॥
निर्बिकार मित भुक अनीह मुनि। सावधान थिर मम आश्रै पुनि ॥
निरभिमान मानद जित षड्गुन। मित्र कारुनिक धीर कल्प पुनि ॥
गुण दोषहिं नीकी बिधि जान। मैं जे कहे सुधर्म बखानि ॥
ते सब तजि कें मोहि भजै जौ। मेरौ उत्तम भक्त आहि सो ॥
जैसौ जितनौ जो मैं आहि। जानै बिन जानै पुनि ताहि ॥
भजै अनन्य भाव करि जोई। मेरौ उत्तम भक्त है सोई ॥

मम प्रतिमा मम भक्तनि कौ पुनि । दरस परस पूजन गैबौ गुन ॥
अस्तुति परिचर्या सिर नैबौ । कर्मनि कौ रु कीर्तन कैबौ ॥
मेरे गुण रु ध्यान के माँही । अति श्रद्धा छिन छोड़े नाहीं ॥
दास ह्वै अर्पै सवरी वस्तुनि । अर्पन करै अपरण पौ हू पुनि ॥
मेरे जन्म कर्म पुनि गावै । मम उत्सवनि करि सुख पावै ॥
मिलि मम मन्दिर में हरषाय । नाचि गाय बहु वाद्य बजाय ॥
वर्ष के सर्व पर्व आराधै । जात्रा की पूजनि विधि साधै ॥
वेद तन्त्र की दीछा धरै । मेरे ब्रत कौ धारन करै ॥
श्रद्धा मम पूजा थापन में । जौ पै सक्ति होय आपुन में ॥
तौ पुर मन्दिर बाग बनावै । न तौ और सों कहि करवावै ॥
झारनि लीपनि छिरक सुधारनि । चौक पूरि कै चित्त सवारनि ॥
ह्वै निष्कपट दास की नाही । टहल करै पै मन्दिर माँही ॥
मेरौ भक्त करै पुनि जो जो । डिंभ मान तजि कहै न सो सो ॥
मो दीपक सों काज न करै । अर्पी वस्तु मोहि न धरै ॥
जो जो वस्तु लोक में प्यारी । बहुर आप हू कौं सुखकारी ॥
सो सो मोकों अर्पन करै । तौ अनन्त फल कौ विस्तरै ॥
सूर्य अग्नि द्विज गैया ब्रनी । वैष्णव हिय बयार जल धरनी ॥
आत्मा बहुरौ प्राणी जिते । मम पूजा अस्थान है तिते ॥
सूर्य में बेदत्रयी करि पूजै । अग्नि में मोहि होम करि दूजै ॥
विप्र माहि भोजन करि आछै । घास बाँट करि गौवहिं पाछै ॥
वैष्णव माँहिं बन्धु बुधि करै । हिये माँहिं मम ध्यानहिं धरै ॥
पौन में प्राण दृष्टि करि पूजै । जल में जल तिलादि करि दूजै ॥
भूमि में मन्त्रन्यास करि आछै । भोगनि करि आत्मा में पाछै ॥
सब प्रानिनि में सम ह्वै रहै । तिनमें मेरौ पूजनि यहै ॥
इन अस्थाननि में मम रूप । सांत चतुर्भुज पर्म अनूप ॥
गदा चक्र दर कमल समेत । ध्यावति पूजन करै सचेत ॥

अरु बावरी कूवा बनाय। जो जन मोहि जजै सुख पाय॥
सो पावहिं मम भक्ति महान। साधु सेय लेय मोकों जानि॥
सत्संग करि होय भक्ति सु भारी। ता बिन हे उद्धव सुखकारी॥
जग तरिबे कै नाहिं उपाय। मैं ही साधुनि आश्रै आय॥
एहो उद्धव सब सुख रासि। तुम सम सुहृद मित्र पुनि दास॥
अब अति गुह्य गोप्य जो आहि। तातें कहत सुनों तुम ताहि॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषारसजानिकृते
एकादशोऽध्याय: ॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

दोहा—साधु संग महिमा प्रथम, कही बारहै ध्याय।
कर्मनि करिवौ त्यागिवौ, कह्यौ बहुर जदुराय॥ १॥

श्री भगवानुवाच—

सांख्य जोग व्रत धर्म वेद जप। जज्ञ अग्नि - होत्रादि तीर्थ तप॥
मन्त्र दान यम नियम रु त्याग। मोहि वश करि न सकत बड़भाग॥
ज्यौं मोहि साधु संग बस करै। जो सब संग दोष कौ हरै॥
खग मृग दैत्य नाग गन्धर्व। चारण सिद्ध अप्सरा सर्व॥
वैस्य शूद्र अन्त्यज विद्या धर। रज तम सील जिते नारी नर॥
इक सत्संग रंग मैं छुए। जुग जुग मम पद पावति भए॥
मय प्रहलाद वृत बलवान। गीध विभीषन गज हनूमान॥
वृषपर्वा सुग्रीव रीछपति। कुब्जा बनियाँ व्याध महामति॥
व्रज त्रिय बहुर मथुरनी दीन। बेद पाठ व्रत तप करि हीन॥
गुरु सेवन हू में नहिं मिली। साधु संग ही करि मोहि मिली॥
गोपी गाय मृगी बड़ भाग। औरौ मूढ़ बुद्धि नग नाग॥
शुद्ध भाव करि सिद्धि सु भए। सुख सों हमें पाय पुनि लये॥
सांख्य जोग तप व्रत कृतु दान। व्याख्या पाठ त्याग पुनि आन॥
इन करि बहुत जतन जन करें। पै मोहि लहै न दुख ही भरें॥

जब मोहि राम सहित अक्रूर। लै गयौ मथुरा ब्रज तें दूर॥
तब ब्रज त्रीयनि के चित अनुरागे। गाढ़ प्रेम करि मो में पागे॥
मो वियोग करि व्याकुल भारी। मो बिन कछू न लख्यौ सुखकारी॥
मो मिल छिण सी भई निसां जे। बिछुरें कल्प समान भई ते॥
ह्वै आसक्त बांधि मो में मन। भूलीं दुहू लोक तन धन जन॥
ज्यौं समाधि में कछु न लखै मुनि। सरित समुद्र मैं ज्यौं समाय पुनि॥
मेरि ये उत्कण्ठा उर माँहीं। मम ऐश्वर्यहिं जानति नाहीं॥
परब्रह्म मोहि जार भाव धरि। मिली हजारनि सत्संगै करि॥
प्रवृति निवृति सुनिवै रु सुन्यौ जो। विधि निषेध तुम हू तजि कै सो॥
सर्वातम मम सरनै आवै। धरि दृढ़ भावहिं भयहिं गमावै॥

श्री उद्धव उवाच—

हे जोगेस र नति तुव बातन। मम मन भ्रमति रु संसै जा तन॥
पैहलैं तौ तुम कर्म बतावौ। पुनि कहौ तजि मम सरनै आवौ॥

श्री भगवानुवाच—

ज्यावनि हारौ ईस जु कहीयै। उर के चक्रनि में सो लहियै॥
पहल सु मूलाधार चक्र पर। आय प्रान जुत परा नाम करि॥
सोई मन पूरक पर आवै। तब पस्पंती नाम कहावै॥
सोई विधि चक्र में आय। नाम मध्यमा होत है जाय॥
अच्छर स्वर मात्रनि जुति सोई। मुख तै बड़ी वैंखरी होई॥
ज्यौं नभ माहि तताई आहि। पहल तेज तुम जानौ ताहि॥
पवन सहाय पाय पुनि सोई। काठ मथें तें चिनगी होई॥
सोई जागि बढ घृत करि ज्यौं। मेरी हू बानी प्रगटति त्यौं॥
ऐसें कहिवौ करिवौ भजिवौ। रस लैवौ गल मूत्रहिं तजिवौ॥
दरस परस सुनिवौ अघ्रान। संकल्पाभिमान विज्ञान॥
महा तत्व रज सत्व तमोगुन। सब विकार मोही तें हैं पुनि॥
सो में आदि ईस गुण धारन। इक अव्यक्त कमल कौ कारन॥

काल प्रकृति करि बहु भासति यौ। अहो खेत कौ पाय बीज ज्यौं ॥
जामें ओत प्रोत जग ऐसें। तन्तुनि माँहि बसन होय जैसें ॥
जगत रु आदि प्रवृत्ति रह्यौ सनि। भोग कर्म फल फूल तास भनि ॥
पाप पुन्य ये बीज हैं दोई। बहुत बासना जड़ है सोई ॥
तीन्यौं गुण ही पेड़ हैं जाके। पाँचौ तत्व सु गोदे ताके ॥
पाँचौ विषै सु रस उनमानौ। ग्यारह इन्द्री डारैं जानौ ॥
जीव ईश खग रहत सु तामें। बांय पित्त कफ छाल है जामें ॥
सूरज लौं तरु व्यापि सु रह्यौ। ताकौ इक फल दुख जो कह्यौ ॥
सो ग्रहस्थ विषयी जन जिते। नीकी भाति खात हैं तिते ॥
बहुर बिबेकी बनवासी जे। ताके सुख फल कौं सुखात ते ॥
गुरु तें बहु विधि मायक जग जो। जानें बेदहिं पहिचानै सो ॥
गुरु सेवन करि भक्ति सु पाय। तासों ज्ञान सस्त्र यैं नाय ॥
ता करि सावधान ह्वै धीर। वेगि ही कटे लिंग सरीर ॥
बहुरों मोहि पाय सो लेय। ज्ञान सस्त्र पुनि डारि सु देय ॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि
कृते द्वादशमोऽध्याय: ॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

दोहा:—ज्ञान उदय क्रम तेरहैं, ध्याय कह्यौ भगवान।
चित्त विषै विश्लेष हित, बहुर हंस आख्यान ॥१॥

श्री भगवानुवाच

सत रज तम गुण हैं माया के। हे उद्धव नाहिंन आत्मा के ॥
जीतै सत गुण सों रज तम गुन। उपसम करि जीत सत गुन पुनि ॥
सतो गुनी वस्तुनि सेवैं जब। सत गुन बढ़ि मम भक्त होय तब ॥
सो रज तम महि नास लैं करै। पुनि तन्मूल अधर्मी हरै ॥
जलजन सास्त्र काल अस्थान। संसकार पुनि मन्त्र रु ध्यान ॥

जन्म कर्म ये दश जे कहिए। तीन्यौं गुण के कारण लहिए॥
इनमें विदुष सराहै जो जो। सतोगुनी तुम जानौ सो सो॥
निन्दै ताहि सो जानौ तामस। निन्दा अस्तुति रहत सु राजस॥
जो सतगुनहिं बढ़ायौ चाहै। सो सात्वक ही कों अवगाहै॥
जातें होय धर्म पुनि ज्ञान। हरिहिं सुमिर भूलै सब आन॥
ज्यौं बांसनि तें उठी अगिन जो। जारि बांस सब सांत होय सो॥
त्यों गुन तें तन होय जारि गुन। ग्यान ज्वाल करि सांत होय पुनि॥

श्री उद्धव उवाच

हैं ये विषै महा दुख रूप। नर हू जानति हैं सुख रूप॥
पै खर स्वान बोक की नाहीं। क्यों लपटति हैं बिषैन माँहीं॥

श्री भगवानुवाच

ज्ञान हीन नर के उर माँही। मिथ्या अहं बुद्धि उपजाहीं॥
तातें घोर रजोगुन होई। घेर लेय सात्विक मन सोई॥
तब ता रजोगुनी मन माँहीं। संकल्प रु बिकल्प उपजाँहीं॥
करै कुमति पुनि विषै सु ध्यान। तब होय काम सु दुसह महान॥
रजगुन मोहित विषई जन जो। बहुरों दुसह काम बस ह्वै सो॥
कर्मनि कों दुख रूप हू जानें। पै पुनि तिन ही में रति ठानें॥
रज तम करि व्यापति मति जद्दिप। ज्ञानी सावधान ह्वै तद्दिप॥
दोष द्रष्टि करि मन बस करै। बिषैं मांहि आसक्ति न धरै॥
सावधान ह्वै आलस त्यागै। आसन पवन जीत अनुरागै॥
हरें हरें पुनि हमरे मांही। मन हि लगावै छोड़ै नाँहीं॥
हमरे सिष्य जु सनकादिक मुनि। तिननि हू यही जोग भाख्यौ पुनि॥
जासों सबतें मनहिं खेंचि करि। साछात मो में दीजै धर॥

श्री उद्धव उवाच

सनकादिक सों जग अहो हरि। जब तुम कह्यौ रु जास रूप करि॥
यह में सुन्यों चहत प्रभु सबै। नीकै मोसों कहिये अबै॥

श्री भगवानुवाच

विधि के सुत सनकादि महामति। पूछी सूछम पितहिं जोगमति॥
हे पित चित विषै में धावत। बहुरों विषै चित्त में आवत॥
विषै त्यागि भयौ चहै मुक्ति जो। कैसें दुहुवनि जुदे करै सो॥
कमी बड़ौ देव श्रष्टा सुनि। ध्यान हू करि उत्तर लह्यौ पुनि॥
तिहि हित मोहि चिन्तवन भयौ। मैं ह्वै हंस तास ढिग गयौ॥
ते मोहि लखि पित आगे करे। को तुम कहि मम पापनि परे॥
यौं पूछी तत्व जिज्ञासी मुनि। तिनसों जो मैं कह्यौ सु तू सुनि॥
अहो आतमा - वस्तु है एक। तुम ही किन करि लखौ विवेक॥
तातें न तुमरौ प्रश्न बनें मुनि। किह आश्रै करि हमौं कहै पुनि॥
पञ्च तत्व के जन पुनि जिते। वास्तव सब ही सम हैं तिते॥
तातें तुमको प्रश्न तिहारौ। कहिबे मात्र अनर्थ है भारौ॥
मन वानी इन्द्रिन गहियें जो। मो बिन और कछू न लहियै सो॥
अहो सुत चित्त विषै में धावत। बहुरों विषै चित्त में आवत॥
मेरौ अंस जीव जो आहि। दुहुन की मिलन उपाधि है ताहि॥
चित्त में विषै विषौ में चित्त। पैठत संस्कार करि नित्त॥
मो में तदाकार ह्वै जाय। तब जन दुहुनि देत छिटकाय॥
जाग्रत स्वप्न सुपुप्त सु तीन। बुद्धि वृत्ति ये गुन करि कीन॥
तिनमैं जीवहिं न्यारौ मानौ। साछी रूप रहत यह जानौ॥
गुन वृतिन कौ दाता है जो। आतमहि बंधन बुद्धि कीयौ सो॥
चौथे मोमें रहित जे ताहि। यही विषै चित त्याग सु आहि॥
आतमहिं अहंकार कृत बन्धन। आनंदादि ढांपि देहि द्वन्द्वनि॥
यही जानि निर्वेदहिं भजै। मो में थित ह्वै चिन्ता तजै॥
जुक्तिन करि नाना मति जौलों। होंय निवृति न नरकी तौलौं॥
जगति ही अज्ञ सुपन देखति यौं। नर सौ बन में जागनि कों ज्यौं॥
देहादिक असत्य तें अहौ। जाति कर्म फल झूठे लहौ॥

आत्मा कौ सब मिथ्या ऐसें। सूते नर कौं सुपनें जैसें॥
जो जागत में भागै वा हरि। छिन धर्मी विषै न इन्द्री करि॥
तैसी यै विषै हियै मैं है मुनि। सुपन माहिं जो भोग करै पुनि॥
सो सुषुप्त में सबहिं नास करि। रहै एक द्रष्टा तूरी केस हरि॥
मन की तीन अवस्था हैं जे। रची अविद्या नें हम में ते॥
यही विचार सु निश्चै करौ। बहुरों ज्ञान खड्ग कर धरौ॥
संत वचन बहुरों अनुमान। इन करि तीछन करौ महान॥
ता करि अहंकार काटौ पुनि। बहुर हिये में मोहि भजौ मुनि॥
यह जग लहियतु भ्रम हीं जानौं। मन बिलास सुपनौ सौ मानौं॥
अति नस्वर पुनि चञ्चल अहौ। फिर अलात चक्र सौं लहौ॥
इक विज्ञानहिं सत्य आहि मुनि। बहु विधि त्रिगुण जगत झूठौ पुनि॥
यह लखि जग तें दृष्टिहिं गहै। तृष्णा तजि चुपकौ ह्वै रहै॥
निज सुख कौ है अनुभव जाकें। पुनि कछू चेष्टा रहै न ताकें॥
जिन जग झूठौ जानि तज्यौ मुनि। तामें जे जग-क्रिया आहि पुनि॥
सो न मोह उपजावें यातें। तन संग तें सुधि सी है जातें॥
देव आधीन जु नस्वर तन जो। डोलत बैठन उठत फिरत सो॥
पै ताकों जानति सो नाहीं। जो भयौ गरक रूप के माहीं॥
ज्यौं मदिरा-मद अंध जु आहि। पट की कछू न रहै सुधि ताहि॥
देवाधीन जु चलति सरीर। निश्चै तुम यह जानौ धीर॥
इन्द्रिय सहित रहै यह तौलौं। तन आरम्भक कर्म है जौलौं॥
वस्तू जानि एकाग्र भयौ जो। स्वप्न से देहादिकन भजौ सो॥
सांख्य जोग मधि गुह्य जु आहि। हे मुनि हमने बरन्यौ ताहि॥
तुमें धर्म सिखवनि हम हे मुनि। आए हमें विष्णु जानौ पुनि॥
तेज कीर्ति श्री धर्म सत्य दम। सांख्य जोग सबकौ आश्रे हम॥
हे मुनि हम निरपेछ रु निरगुन। सुहृद आत्मा अति प्यारे पुनि॥
साम्य असंगादिक गुन जिते। अप्राकृत मोहि भजत है निते॥

यौं सनकादिक परम - रिषी जे । सुनि कें निःसन्देह भए ते ॥
बहुरों पर्म भक्ति हिय भरी । पूजा करि मम अस्तुति करी ॥
पुनि हम विधि के देखति प्यारे । सुन्दर अपने धाम सिधारे ॥४२॥
इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

दोहा:—भक्ति बिना नहिं मुख्य कछु, यह सु चौदहें ध्याय ।
बहुर ध्यान साधन सहित, बरन्यौ है जदुराय ॥

श्री उद्धव उवाच

अहो बेद बादी जु कहावैं । मंगल की बहु गैल बतावैं ॥
तातें ते सब त्यौं ही अहो । अथवा एक मुख्य यह कहौ ॥
भक्ति जोग निरपेछ जु आहि । हे प्रभु पहल कह्यौ तुम ताहि ॥
जातें मन सब सों संग त्यागि । तुम ही मांहि जाय अति पाग ॥

श्री भगवानुवाच

अहो बेदबानी जो गाई । मेरे ई भक्ति जोग करि छाई ॥
प्रलै में नष्ट काल करि भई । सो में पहल बिधिहिं कहि दई ॥
तिन कही बड़े पुत्र मनु सों पुनि । तिन में सात भ्रगादि महामुनि ॥
तिनतें तिनकै पुत्र देव नर । किन्नर नाग रक्ष विद्याधर ॥
दैत्य सिद्ध गुह्यक गन्धर्व । चारन किंपुरुषादिक सर्व ॥
रज तम सत्त्व गुननि तें भए । बहुत बासना करि ते छए ॥
जिन बानी करि सुर नरादि जे । मति समेत भेदहिं पावति ते ॥
जिनकौ पुनि सुभाव है जैसौ । ले ताहि अर्थ श्रवति है तैसौ ॥
यौं सुभाव ही की अधिकाई । तिहिं नरनि की बुद्धि भ्रमाई ॥
कोऊ परंपार सुनि अटकै । कोऊ विरुद्ध अर्थ में भटकै ॥
हे उद्धव ये पुरुष हैं जिते । मम माया मोहित मति तिते ॥
निज रुचि निज कर्मनि अनुसार । कहत हैं मंगल गैल अपार ॥

कोई कर्म कोई जस कोई काम। कोई सत्य सम दम अभिराम॥
कोई स्वार्थ ऐश्वर्य बखानै। कोई त्याग खैबोई मानै॥
तप ब्रत यज्ञ नियम यम दान। कोई कहै येई श्रेय महान॥
इन करि सिद्ध किये जे लोक। नस्वर सोक मोह दुख ओक॥
जो सब तैं निःकाम होय करि। मो में आछें चित्त देय धरि॥
सो मो करि सुख पावत है जो। होय कहाँ ते विषयिनि कों सो॥
जो निः किञ्चन समचित दाँत। हम हीं करि सन्तुष्ट रु सांत॥
ताकौ अहो दिसा ये जितीं। केवल सुख सरूप होय तितीं॥
ब्रह्म लोक भूराज रसातल। स्वर्ग लोक पुनि जोग सिद्धभल॥
मो जन मो बिन और जु आहि। मुक्ति हू लों नहिं चाहै ताहि॥
सिव बिधि रमा राम मम देह। तुमसे मोहि न प्यारे येह॥
समदर्सी निर्वैर सांत मुनि। जिनकैं कछु न अपेक्षा है पुनि॥
तिन पाछें मैं डोलति या तें। पद रज करि पवित्र होहु जातें॥
जो निःकिंचन नर अभिमानी। सदा सांत सबकौ सुख दानी॥
मोही में पगि रहे सु चित्त। काम न कबहूँ छीवत मित्त॥
तिनके सुख कौ सोई जानें। और न ता सुख कों पहिचानें॥
अजितेन्द्री जो भक्त हमारौ। विषैन करि बाँध्यौ हू भारौ॥
पै मम-भक्त समर्थ जु आहि। बिषै सों बँधनि देय नहिं ताहि॥
मेरी भक्ति पाप सब जारै। बढ़ी अगिनि ज्यौं काठ पजारै॥
बेद पाठ तप धर्म रु त्याग। साँख्य जोग हू है बड़ भाग॥
मोकों बस करि सकत न ऐसें। मेरी भक्ति करत मोहि जैसें॥
साधुनि कौं मैं प्रीय कहाऊँ। भक्तिहिं करि एक पकरयौ जाऊँ॥
मेरी भक्ति सुपचलौ मित्र। जाति दोष ध्वै करै पवित्र॥
दया सत्य तप विद्या धर्म। भक्ति बिना सोधति नहिं मर्म॥
अश्रु पुलक गद्गद जुत जौ न। बिना भक्ति हिय साधै कौन॥
लज्जा तजि हँसि नाचै गावै। कभू रोय गद्गद ह्वै जावै॥

ऐसो जो है भक्त हमारौ। करै पवित्र जगत सो सारौ ॥
भक्तिहि करि विशुद्ध होय आप। ज्यौं सहि कनक अगिन की ताप ॥
हमरौ पुन्य जु कथा कीरंतन। ताकरि ज्यौं ज्यौं सुद्ध होय मन ॥
त्यौं त्यौं सूछम तत्त्वहिं देखै। जैसें आँखौ तें दृग पेखै ॥
मोहि सुमिर चित मो में पगै। विषै में ज्यौं विषई कौ खगै ॥
तब तौ तुच्छ विषै सुमिरन जो। स्वप्न मनोर्थ सौ तजि कै सो ॥
मेरे भाव सों मनहिं सुद्ध करि। हे उद्धव हममें दीजै धरि ॥
तिय तिय संगिन कौ संग तजै। बैठि इकौसौ मो कौं भजै ॥
तिय तिय संगिन कौ संग जोई। जैसें दुख बंधन कौ होई ॥
तैसें और संग है जिते। दुख बन्धन कौं होत न तिते ॥

उद्धव उवाच—

एहो कमलनैंन प्यारे हरि। जैसे तुमकौं जा सरूप करि ॥
ध्यान मुमुछ करै प्रभु अहो। सोई ध्यान तुम हमसों कहो ॥

श्री भगवानुवाच—

सुख सों सम आसन बैठे नर। सूधौ होय गोद राखै करि ॥
पूरक कुम्भ करे चक सों पुनि। प्रान मार्ग कों सोधै सो मुनि ॥
इन्द्री जीत स्व-नाक निहारै। हरें हरें अभ्यासहिं धारै ॥
व्यापक ओंकार है जोई। नाल तन्तु सों सूछम होई ॥
पवन सों लै हिय मैं थिर करै। घंटा सौ सुर तामें धरै ॥
दिन में तीस बार यौं ठानैं। मास ही में सु पवन बस आनैं॥
हिय मधि औंधौ कमल जु आहि। सूधौ फूल्यौ ध्यावै ताहि ॥
आठ पत्र कर्निका माँहि-पुनि। रवि ससि ध्याय अगिन ध्यावै मुनि॥
ता मधि ध्यावै रूप हमारौ। मंगल निधि सम सान्त सु भारौ॥
सुन्दर बदन चार कर नीके। ग्रीव कपोल है जीवन जी के ॥
हँसति लसति पुनि कान समान। मकराकृत कुण्डल झमकान ॥
कनक बसन सुन्दर घनस्याम। श्री रेखा पुनि श्री के धाम ॥

कमल चक्र दर गदा बिराजै। कौस्तुभ मनि बनमाला छाजै॥
नूपुर छुद्रघंटिका सुन्दर। बाजूबन्द मुकट खडूवा कर॥
सब अंग सुन्दर परम लगौ है। कृपा भरी चितवन मन मोहैं॥
ता सुकुमारहिं नीकै ध्यावै। सब अंगनि में मनहिं लगावै॥
विषै तें मन करि इन्द्रीनि खैंचि। सो मन बहुरि बुधि करि ऐंचि॥
सबै अंगनि जुत में जो आहि। तामें धीर लगावै ताहि॥
पुनि सुन्दर मुसिक्यान के माहीं। धरि मन औरहिं ध्यावै नाहीं॥
तह तें लै नभ माहि लगावै। ह्वै मद्रूप कछु न पुनि ध्यावै॥
ऐसें सावधान अति गहै। आप में मो आत्मा कों लहै॥
सर्वातम मो में आपहिं यौं। लखै ज्योति में ज्योति जुरी ज्यौं॥
ऐसें तीव्र ध्यान करै जो जन। मोही माहि लगाय देय मन॥
ताकौं बाहर कौ भ्रम जितौ। तुरत ही नष्ट होत है तितौ॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानिकृते
चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

दोहा—सिद्धि धारना तें मिलति, कहत पन्द्रहें ध्याय।
हरि के पद की प्राप्ति में, अंतराय ते आय॥ १॥

श्रीभगवानुवाच--

इन्द्री स्वास जीत मो में जब। मन कौ धरै सिद्धि आवै तब॥

श्री उद्धव उवाच—

कौंन सी अहो धारना कों करि। कैसें कौंन सिद्धि आवै हरि॥
तुम ही सिद्धि देत हौ अहौ। किती सिद्धि सों हम सों कहौ॥

श्रीभगवानुवाच—

सिद्धिन अष्टादस सिद्धि कही। आठ मुख्य दस गौंन हैं सही॥
आनिमा महिमा लघिमा सिद्धि। तन संबंधी निपट प्रसिद्ध॥
प्राप्ति इन्द्रीयनि में बपु धारन। ईसता पर की सक्ति निवारन॥

देख्यौ सुन्यौ प्रकासै जोई। है प्राकास्य नाम सिधि सोई ॥
होय न अटक विषै में जासों। वसिता नाम सिद्धि कहै तासों ॥
मन वाञ्छित कों पूरन करै जो। है प्राकाम्य सिद्धि अठइ सो ॥
सुतै सिद्धि ये सिद्धि हमारी। इनते और न कोऊ भारी ॥
इक तन की छह ऊर्मि नसावै। इक मन मान्यौ रूप बनावै ॥
इक सों चलै सु मन की नाही। इक सो धँसै और तन माही ॥
एक दूर की वस्तु दिखावै। एक दूर तै बात सुनावै ॥
इक सों प्रान तजै जब चाहै। इक सों सुर-क्रीड़ा अवगाहैं ॥
इक संकल्प मात्र कों करै। इक ते कहू न आज्ञा टरै ॥
इक त्रिकाल की बातहिं जानें। इक पर के चित की पहिचाने ॥
इक निर्द्वन्द रु एक अजीत। इक विष जल अगिनहिं लेय जीत ॥
अब ये सिद्धि सुनौ तुम तैसें। जिह धारन सों जो होय जैसें ॥
सब्दादिक में मोहि जो सेवै। तदाकार करि मन धरि देवै ॥
ता करि तदाकार वह जन जो। मेरी अनिमा सिद्धि लहै सो ॥
महा तत्व पुनि पञ्चभूत जे। हमरे ई सरूप हैंगे ये ॥
इक में तदाकार मन धरै। महिमा सिद्धि मिलै ता नरै ॥
मो परमानु रूप में जो जन। तदाकार करि राखि देय मन ॥
सो परमान रूप ह्वै जाय। यों लघिमा कों लेय सु पाय ॥
मो सात्विक हंकार माहि पुनि। सबरै मन कों राखै जो मुनि ॥
प्राप्ति नाम सो सिद्धिहिं पाय। सब इन्द्रीन में पैठत जाय ॥
कीया सक्ति महतत्व जु आहि। मेरौ ई रूप सु जानें ताहि ॥
ता मो में जो मनहिं लगावै। सो प्राकास्य परम सिद्धि पावै ॥
त्रिगुण ईस में काल सरूप। तामें जिन मन धरयौ अनूप ॥
सिद्धि ईसता पावै ता करि। सबकी सक्ति निबारै जा करि ॥
चौथे नारायण भगवान। तामो में जिन पर्म सुजान ॥
भली भाँति मन धारयौ आछें। वसिता सिद्धि प्राप्त होय पाछें ॥

ओं निर्गुण सु ब्रह्म में जिहि जन । राख्यौ नीकें अति उज्जल मन ॥
तिहि पायौ परमानन्द ता करि । काम समाप्ति होय सब जा करि ॥
सुद्ध धर्म में स्वेत दीप पति । ता मो में जिह मन राख्यौ अति ॥
सो तन की छह ऊर्मि नसावै । बहुरों शुद्ध रूपता पावें ॥
पुनि आकाश मय प्रान जु आहि । मेरौ रूप सु जानौ ताहि ॥
मन करि तामें सब्द जु ध्यावै । दूर श्रवन सिद्धिहि सो पावै ॥
नेत्रहिं लै रवि मांहि मिलावै । रवि कौ पुनि नेत्रनि में ल्यावै ॥
मन करि तहाँ मांहि ध्यावै जो । सूक्ष्म दृष्टि ह्वै सबहिं लखै सो ॥
प्रान वायु जुत तन मन दोई । मो में भले लगावै जोई ॥
सो ताकरि प्रभाव कों पाय । मन के संग तन कों लै जाय ॥
बहुरों या मन कों लै जो मुनि । जो जो रूप भयौ चाहै पुनि ॥
सो सो रूप होय यह जाय । मम सु जोग बल आश्रै पाय ॥
सिद्ध औतारन धर्यौ चाहै जब । तामें ध्यावै अपनपौ सु तब ॥
तन तजि प्रान ह्वै जाय धसै यों । इक तजि द्वितिय फूल में अलि यों ॥
गुदा मूँदि एडी सों प्रानें । हिय उर कण्ठ सीस में आनें ॥
ब्रह्मरंध्र करि ब्रह्म बिषैं पुनि । धरि तन कौं छिटकाय देय मुनि ॥
सुरनि मांहि बिहर्यौ चाहै जौ । मम मूरति सत्वहिं ध्यावै तौ ॥
चढ़ि विमान तब फिरै उमंग । सतोगुनी सुरंगनि संग ॥
सत्य संकल्प अहो मैं आय । ता मो मांही मनहिं लगाय ॥
मत्पर जैसें चाहै जो जो । त्यौं संकल्प-सिद्धि होय सो सो ॥
ईस सुतंतर मैं जो गायौ । ता मेरौ सुभाव जिहि पायौ ॥
तास वचन कहू टरै न ऐसें । हे उद्धव प्रीय हमरो जैसें ॥
भलें धारना जानें जो मुनि । भक्ति सों सुद्ध भयौ हियरा पुनि ॥
सो त्रिकाल की बातहिं जानै । पुनि सबके चित की पहिचानै ॥
मम सु जोग करि सांत चित्त जिह । भयौ जोग ही मम सरीर तिहि ॥
ताहि न पीड़ै अगिनादिक यों । पानी के जीवनि पानी ज्यौं ॥

मम अवतार सर्वं सिरमौर। श्री वत्साब्ज छत्र भुज चौर ॥
इन समेत जो तिन कौं ध्यावै। सो नहिं कहुँ पराजय पावै ॥
जो मोहि जोग धारि यों ध्यावै। ता ढिग ये सब सिद्धि सु आवै ॥
स्वास बुद्धि जीती हैं जिहि मुनि। बाहर भीतर की इन्द्री पुनि ॥
बहुरि धारना धरै हमारी। ताहि सिद्धि को दुर्लभ भारी ॥
पै जो उत्तम जोगहिं धरै। मो में लहाकार मन करै ॥
ताकों अन्तराय ये भारी। व्यर्थ काल की खोवनिहारी ॥
जन्म औषधी तप मंत्रनि करि। जितनी सिद्धिनि कौं पावै नर ॥
जोग धारना करि ते लहै। और भाँति तें नेकु न चहै ॥
धर्म वेद बित मुक्ति रु ज्ञान। बहुरों जितनी सिद्धि महान ॥
तिनके कारन हमकों जानों। पति रु नियन्ता हू पुनि मानों ॥
मैं सबके बाहर भीतर यौं। सब भूतनि मैं पंचभूत ज्यौं ॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

सोलहवाँ अध्याय

दोहः—हरि बिभूति बरनन करी, यह सु सोरहैं ध्याय।
बल प्रभाव ज्ञानादिकी, अधिकाई झलकाय ॥१॥

श्री उद्धव उवाच

निरावरन तुम पारब्रह्म हरि। रहति हो नित ही आदि अन्त करि ॥
तुम उपजाय जिवावो पारौ। बहुरों सब ही कौ संघारौ ॥
तुम हौ ऊँच नीच के माही। पै अजितेन्द्री जानति नाहीं ॥
हे प्रभु ज्ञानवान हैं जन जे। तुमें जथारथ सेवति हैं ते ॥
जह जह भक्ति सों तुमें सेय मुनि। लहत सिद्ध तें हमें कहौ पुनि ॥
तुम सब देखौ सब में गूढ़। तुमें न देखति मोहित मूढ़ ॥
एहो महा विभूति मुरारी। स्वर्ग रसातल धरनि मँझारी ॥
जे वि.ति हमसों कहौ। तुम पद-कमल नवति हम अहौ ॥

श्री भगवानुवाच

अहो यही कुरखेत माहिं पुनि । जुद्ध समें पूछी ही अर्जुन ॥
राज्य हेत बंधुनि कौ बध जो । निपट ही निन्द अधर्म लख्यौ सो ॥
में हन्ता ए हन्य आहि जन । यही बिचार रन तें खेंच्यौ मन ॥
ताहि जुक्ति दै में बोध्यौ तब । पूछी सो जो तुम पूछी अब ॥
में सस सबकौ सुहृद ईस हरि । सबकी थिति उत्पत्ति नास करि ॥
में हो चाल-चलनि हारनि में । काल हों बसीकरन हारनि में ॥
गुननि माहि में हों समता गुन । स्वाभाविक-गुन गुनी माँहि पुनि ॥
गुनी में सूत्र है सक्ति हमारी । महा तत्त्व है बड़नि मँझारी ॥
जीव सूछमनि में हें अहो । मोहि दुर्जयनि में मन लहौ ॥
बेदज्ञनि में बिधि मोहि जानौ । मंत्रनि में ओंकार सु मानौ ॥
सब उछरनि में हें अकार हम । छंदनि में गायत्री बिभूति मम ॥
देवनि माहि इन्द्र मोहि जानौ । बसुनि में हव्यवाह मोहि मानौ ॥
सूर्यनि में वामन बिभूति मम । रुद्रनि माहि नील लोहित हम ॥
भृगु हों में ही ब्रह्म रिषिन में । स्वायम्भू मनु राज रिषिनि में ॥
देवरिषिनि में हों नारद मुनि । गायनि में हों कामधेनु पुनि ॥
सिद्धि ईश्वरनि माहि कपिल हम । गरुड़ पंछियनि में बिभूति मम ॥
प्रजापतिन में दछ सु जानौ । पितरनि माहि अर्जमा मानौ ॥
दैत्यनि में प्रहलाद सुहेर । जछ राछसनि माहि कुबेर ॥
पुनि नक्षत्र औषधिन कौ पति । ससि बिभूति मम लखौ महामति ॥
गजनि में ऐरावत बिभूति मम । जल जन्तुनि में बरुन आहि हम ॥
तेजस्विन में सूरज जानौ । नरनि माहि पुनि राजा मानौ ॥
उच्चै श्रवा तुरंगनि में हम । धातुनि में कञ्चन बिभूति मम ॥
दण्ड धरनि में जम मोहि जानौ । सर्पनि माहि बासुकी मानौ ॥
नागेन्द्रनि में हें अनन्त हम । पसुनि माहि नाहर बिभूति मम ॥
सन्यासी आश्रमनि मँझारी । बरन में बिप्र बिभूति हमारी ॥
तीर्थनि में गंगा मोहि जानौ । सरोवरनि मधि जलनिधि मानौ ॥

धनुष आयुधनि में बिभूति मम। धनुष धरैयनि में सिव ही हम॥
मं सुमेर अस्थाननि में भल। बहुर दुर्गनि माहिं हिमाचल॥
बनस्पतिन में पीपर जानौं। औषधीन में जो मोहि मानौं॥
मं पुरोहितनि में बसिष्ट अति। पुनि वेदज्ञनि माहि बृहस्प्रति॥
सेनापतिन माहि गुरु हैं हम। मुखीयनि में ब्रह्मा बिभूति मम॥
ब्रह्म जज्ञ जज्ञनि में जानौ। ब्रतनि में निर्हिसक ब्रत मानौ॥
वायु अग्नि रवि जल बानीजे। सोधन हारनि में हम ही ये॥
जोगनि मैं समाधि हम आहि। जै चाहनि हारनि में न्याय॥
कुसुलनि में हम तत्वबिचार। वादिन में विकल्प निर्धार॥
त्रियनि में सतरूपा बिभूति मम। स्वायम्भू मनु पुरुषनि में हम॥
मुनिन में हम नारायन निरुपधि। सनत्कुमार ब्रह्मचारिन मधि॥
धर्मनि में सन्यास सक्ति मम। छेमनि में अन्तर्निष्टा हम॥
गूढ़नि में मोहि मौन सु जानौ। द्वपतिनि मधि ब्रह्मा मानौं॥
वप सावधाननि में हैं हम। रितुनि में हैं रितु नृप बिभूति मम॥
मासनि में मोहि मगसिर मानौ। नछत्रनि में अभिजित जानौ॥
जुगनि में सतजुग हैं बिभू मम। देवल असित सु धीरनि में हम॥
कविन माहि मोहि सुक्र सु जानौ। आचार्यनि में व्यास सु मानौ॥
भगवाननि में बासुदेव हम। भक्तनि में तुम हो बिभूति मम॥
किं पुरुषनि में हनूमान गनि। विद्याधरनि में आहि सुदर्शन॥
पद्मराग रत्ननि में जानौं। कमल फूल फूलनि में मानौं॥
घासनि में पुनि कुस हैं अहो। सबै घृतनि में गोघृत लहो॥
संपतिन में लछमी जानौं। छलनि माहि जूवा पहिचानौ॥
छमावान में छमा आहि हम। सत्यवान में सत्य बिभूति मम॥
बलवाननि में बल मोहि जानौं। साधुनि माहि भक्ति मोहि मानौ॥
हरि कीनौ मूरति सुखकारी। बासुदेव तह मूरति हमारी॥
बिस्वास सुगन्धर्बनि में सुनि। पूर्व-चिति अप्सरनि माँहि पुनि॥

थिरिता हौं मैं गिरिनि मँझारी। धर में गन्ध विभूति हमारी॥
जल में मीठौ रस मोहि जानौ। नभ में परा सब्द मोहि मानौ॥
रवि ससि तारनि माहिं प्रभा हम। अग्नि तेजसिन में विभूति मम॥
ब्रह्मन्यनि में बलि मोहि जानौ। बीरनि में अर्जुन पुनि मानौ॥
सबकी थिति उत्पति संहार। येऊ मम विभूति निरधार॥
ज्ञान कर्म इन्द्रिनि की जितीं। सक्ति सु मम विभूति हैं तितीं॥
पृथ्वी जल नभ अग्नि बयार। महातत्व हंकार विकार॥
माया जीव ब्रह्म सत रज तम। ज्ञान तत्व निश्चै विभूति मम॥
जीव ईस गुन-गुनी सरूप। बहुर छेत्र छेत्रज्ञ अनूप॥
यह सब मो बिन नाहिन जातें। सर्व रूप मैं ही हों यातें॥
मैं कोटिन ब्रह्माण्ड बनाउ। काल पाय रजकन गनि जाउ॥
पैं मेरी विभूति हैं जितीं। हे उद्धव गनि सकौं न तितीं॥
श्री हरि कीर्त्ति तेज भग त्याग। बल विज्ञान सहन सौं भाग॥
जहाँ जहाँ जे देखौ अहौ। तुम मेरो विभूति तें लहौ॥
ये संक्षेप विभूति बखानी। कहन मात्र परमार्थ न सानी॥
मन बुधि इन्द्री वानी प्रान। रोकों बुद्धि करि सत्य प्रधान॥
संसारहिं पैहौं नाहिन सुनि। इनकौं भलें न रोकैं जौ पुनि॥
व्रत तप ज्ञान श्रवं ताकौ यौं। काँचे घट में कों पानी ज्यौं॥
तातें मेरौ भक्त होय जो। मेरी भक्ति जुक्ति बुधि सों सो॥
मन वानी प्रानंनि रोकैं जब। कृत्यकृत्य ह्वै जाय पाय तब॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
षोड़सोऽध्याय: ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

दोहा—भक्ति रूप निज धर्म के, प्रश्न सत्रहैं ध्याय।
ब्रह्मचारी रु ग्रहस्थ के, धर्म कहे जदुराय ॥ १ ॥

श्री उद्धव उवाच

पहल सबनि के धर्म आहि जे। भक्ति के साधन तुमनि कहे ते ॥
त्यौं सुधर्म करि नरकी अहौ। तुम में भक्ति होय त्यौं कहौ ॥
हे प्रभु पहिलै पर्म धर्म जो। हंस ह्वै तुमनें विधिहिं कह्यौ सो ॥
बहुत काल ताहि बीत्यौ जातें। सो अब ह्या ह्वै है नहिं यातें ॥
वेद कौ बिस्तरक बक्ता कर्त्ता। तुम बिन नहिं दूजौ दुख हर्त्ता ॥
विधि हू की सु सभा में नाहीं। वेद हैं मूर्त्तिमान जा माँहीं ॥
बक्ता कर्त्ता रच्छक तुम हरि। तुम बिन धर्म कहिहै को नर ॥
भक्ति कौ साधन धर्म आहि जो। जैसें जो जाहि करैं कहौ सो ॥

श्री शुक उवाच

नरनि के सुख हित त्यौं पूछी जब। धर्म सनातन दसहिं कहे तब ॥

श्री भगवानुवाच

अहो तुव प्रश्न धर्म जुत आहि। बर्नाश्रमहिं सुखद सुनि ताहि ॥
पहलें सत जुग में अभिराम। एक ही वर्न हंस यह नाम ॥
जन्म ही करि कृत कृत्त जन आमें। ताही तें सो कृत जुग नामें ॥
ऊँकार ही वेद हो तहाँ। मैं वृष रूप धर्म हो जहाँ ॥
मोही सुद्ध उपासें ते जन। पाप रहित करि कै एकाग्र मन ॥
त्रेता जुग में वेद त्रयी। मेरे प्रान हृदै तें भई ॥
तातें हम भए जज्ञ सु वर्ज। होता उद्गाता अध्वर्ज ॥
ब्राह्मण छत्री बैस्य सूद्र जे। हरि मुख भुज उरू पग तें ते ॥
प्रगटे हैं संसै कछु नाहीं। निज धर्मनि करि जानें जाहीं ॥
भयौ गृही मम जंघनि तें सुनि। लहौ ब्रह्मचारी हीय तें पुनि ॥
मम बच्छस्थल ते बनवासी। मस्तक में प्रगट्यौ सन्यासी ॥
इन बरनाश्रम के सुभाव जे। जन्म भूमि अनुसार लहौ ते ॥
ऊँचे भए सु ऊँचे तिनके। नीचे भए सु नीचे इनके ॥
सत्य दया सन्तोष छमा सम। सौच सुधाई तप बहुरो दम ॥

है उद्धव पुनि भक्ति हमारी। ए सुभाव हैं विप्र मँझारी॥
उद्यम सहनसीलता धैर्य। सूर उदार तेज बल स्थैर्य॥
पुनि ब्रह्मन्यता रु ठकुराई। ए छत्री की प्रकृति सु गाई॥
दान निष्ट आस्तिकता आछें। द्विज सेवन अरु दम्भ न पाछें॥
धन में पुनि अघान होय नाहीं। येई सुभाव वैस्य के माँहीं॥
ह्वै निष्कपट देव दुज गाय। इनकों रुवै मनहिं लगाय॥
जथा लाभ करि तुष्ट जु रहै। भलो सुभाव सूद्र को यहै॥
काम क्रोध तृष्णा में लीन। चोरी झूठ कलह रग भीन॥
नास्तिक्य पुनि सौच न जानैं। नीच के ये सुभाव बखानें॥
नहिं हिंसा चोरी न झुठाई। सब ही सों जाकी हितवाई॥
काम क्रोध पुनि लोभ न सही। सब बर्नीन को धर्म है यही॥
क्रम तें बहुर द्विजन्मा है जो। दूजौ जन्म जनेऊ लै सो॥
इन्द्रीजित ह्वै गुरुकुल रहै। वेद पढ़ै पुनि गुरु जब कहै॥
धरे मेखला कुस मृग छाला। दंड कमंडल अच्छनि माला॥
दाँत बसन धोवै न जटा धरि। बैठे नहीं आसनहिं रंग करि॥
जप भोजन अन्हानहिं होमादि। इनमें बोल करै नहिं बादि॥
नख रोमनि पुनि काटै नाहीं। जैहै कांख गुदा हू माहीं॥
तजै न बीर्ज ब्रह्मव्रत धारी। जौ होय पात तो अंबु मँझारी॥
न्हाय करै भल प्रानायाम। गायत्रिहिं जपै अभिराम॥
गुरु सुर रवि दिज बूढ़ौ गाय। आचारज अग्निहिं सिर नाय॥
सावधान ह्वै मौनहिं धरै। दुहु सन्ध्या में जप कौं करै॥
गुरु कों पुनि मोही कौं जानें। तामें कभू न अवज्ञा ठानें॥
सर्व देव मम गुरु है जातें। और नरनि सम लखै न यातें॥
साँझ सवेरे भिक्षा माँगै। औरौ हाथ जो कछू लागै॥
सो सब गुरु की भेट चढ़ावै। तिनकी आज्ञा सों अप खावै॥
सोवत पौढ़त बैठति चलें। गुरुहिं जोरि कर सेवै भलै॥

यौं विद्या पूरन होय जौलौं। गुरु ग्रह बसै भोग तजि तौलौं॥
तैन पठावन जज्ञ करावन। कर्म त्रिप्र ही के सु सुहावन॥
तैयौ जप तप तेजहिं हरैं। यहै मानि द्विज सों परिहरैं॥
उहूँ दुहूँ में दोषहिं जानि। भलौ केरे सो विप्र महान॥
अहो विप्र कौ तन है जोइ। क्षुद्र काम कौं उचित न सोई॥
याई ताकौ तप श्रम कौ दुख। पुनि परलोक गए केवल सुख॥
जौ सिलौंछ कार तोषहिं धरैं। उज्जल बड़े धर्म कौं करैं॥
घर मे राह मो मे मन लावैं। अनासक्त सों सांतहिं पावैं॥
मा पारायन दुखी जु आहि। दुख तें जो उद्धारैं ताहि॥
ताकौं मे उद्धारो ऐसें। समुद माहि तें नौकहि जैसें॥
दुख तें सबरी प्रजहिं भूप ज्यौं। उद्धारै निज मात—पिता ज्यौं॥
आपहिं आपही कार उद्धारै। ज्यौं गजराजा गजनि निकारै॥
ऐसौ राजा पाय हैं जिते। ह्याँ ई दूर करत हैं तिते॥
पुनि सुख करैं इन्द्र के संग। चाढ़ रवि स विमान भरि रंग॥
विप्रहि कबहूं दुःख परैं जौ। बनिग वृत्ति करि ताहि तरै तौ॥
कै छत्री की वृत्तिहिं धरैं। पै न नीच की सेवन करैं॥
छत्री को जौ दुख होय भारी। कै होय बनिक कै होय सिकारी॥
अथवा विप्र वृत्ति को धरैं। पै न नीच कौ सेवन करैं॥
बस्य सूद्र की वृत्तहिं धारैं। सूद्र चटाइ करि विन टारैं॥
पुनि दुख के दिन बीति जाइ जब। निंदक कर्म सो त्यागि देय तब॥
वेद पढ़ावन सुधा स्वाहा कार। जथा जोग अन्नादिक सों नर॥
रिषि ... पितर सुर भून हैं जिते। मेरो रूप जजैं नित तिते॥
अनायास में जो धन आयौ। अथवा न्याय सहित उपजायौ॥
ता सुभ धन सों जज्ञन करैं। भृत्यनि को कछु दुख नहिं धरैं॥
बहुर ग्रहस्थ कबीले माँहीं। सावधान है लिये सु नाहीं॥
करि विचार सब नस्वर जानैं। देख्यौ सुन्यौ एक सो मानैं।

त्रीया सुत बंधुनि कौ संग ऐसौ। यौ पै गैं लौहिन कों जैसौ॥
तन तन में ते बिछुरैं ऐसें। निद्रा के गए सुपनौं जैसें॥
जो विद्वान विचारै यहै। बहुर अतिथि सौ घर में रहै॥
करै अहंता ममता नाहीं। सो नहिं बँधै घरनि के माँहीं॥
सक्तिमान ग्रह के कर्मनि करि। पूजै मोकों मो में मन धरि॥
घर में रहि कि करै बनवास। कै सुत हुऐं लेय स यास॥
जो आसक्ति ग्रेह में करै। सुत वित की अति इच्छा धरै॥
मूढ़ त्रीया बस दीन अनारी। हौमैं सो बंधि जाय सु भारी॥
अहो मात पित वृद्ध हमारे। पुनि यह त्रिय बालक सुन सारे॥
दीन अनाथ दुखी अति अहौ। मो बिन कैसें जीहैं कहौ॥
यौं ग्रह माहि वासना जाकी। महा मूढ़ मति बौरी ताकी॥
तृप्त न होय ध्यान तिनकौ करि। अति तामसी जौनि पावै मरि॥

इतिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
सप्तदशोऽध्याय: ॥ १७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

दोहा—वानप्रस्थ पति के अहो, कहे धर्म यदुराय।
अधिकाई अधिकार करि, यह अठारहैं ध्याय ॥ १ ॥

श्री भगवानुवाच—

बन गयौ चहै तौ त्रीय जो आहि। सौंपै सुतहिं कि संग लेय ताहि॥
पचहत्तरि वर्षनि लौं बन में। बसै सान्तता धारैं मन में॥
बन के सुद्ध कन्द फल मूल। तिनसों करै जीवका फूल॥
पट तृन वकुल पात मृगछाला। इनही कों पहरें सब काला॥
केस रोम नख मैलहिं धरै। दाँतन कों सोधन नहिं करै॥
करै त्रिकाल मुसल अस्नान। सोवैं धरनि माँहि सुख मानि॥
बर्षा में जल धारा सहै। सीत माहि जल में धसि रहै॥
ग्रीषम में पञ्चागिनि साधै। वानप्रस्थ अस तप आराधै॥

अग्नि काल करि परिपक्क जोई । बनवासी जन पावै सोई ॥
वस्तुहिं कूट छेद कें खाय । कें दाँतनि ही सों जु चवाय ॥
देस काल के बल कों जानें । आप ही आपु न जीवका आनें ॥
आनी और समें के माहीं । और समे सो खावै नाहीं ॥
बन की वस्तुनि करि सो जजै । श्रुति विधि पसु हिंसा नहिं भजै ॥
अग्निहोत्र दर्इ पूर्णमासा । करै पहल ज्यों चातुर मासा ॥
यौं तप करि तन कौं सुकाय मुनि । तप सरूप मोकौं आराध पुनि ॥
पहल महर्लोकादिक जाय । बहुरौं मोहि लेत सो पाय ॥
यह तप अति मंगल निधि आहि । बड़े क्लेश करि साधि सु ताहि ॥
बहुरों क्षुद्र कामना चहै । सबके परें मूढ़ है वहै ॥
होय वृद्ध जौ कपनि लगै तन । बहुर न साधि सकै निज नियमनि ॥
तौ आपे में अगिन धारि करि । धसै अग्नि में मोहि हिये धरि ॥
जौ धर्मनि करि रचित जु लोक । नर्क तुल्य अति दुख के ओक ॥
तिनमें आछें होय उदास । तौ तजि अग्नि लेय सन्यास ॥
विधि सों मम पूजन करि लेय । सर्वसु बहुरि द्विजनि कों देय ॥
निज प्राननि में अग्निहिं धरै । ह्वै निरपेछ सन्यासहिं करै ॥
लीयौ चहै सन्यास विप्र जब । स्त्री आदि रूप करि सुर तब ॥
विघ्न करैं मन में ऐसें काह । हमें लांघि पर पद जैहै यह ॥
मुनि वस्त्रहिं राख्यौ चाहै जौ । इक कुपीन ढ़कवे लायक तौ ॥
दण्ड कमण्डल बिना और पुनि । आपद बिना नहिंन राखै मुनि ॥
देखि देखि के पावहिं धरै । पानी आनि पात लै करै ॥
सदा सत्य बोलै निरधार । मन सों उत्तम करै विचार ॥
प्रानायाम अनीह मौन जे । मन तन वचननि कों सु दण्ड ये ॥
जाकें ये नहि होंय अखण्ड । जती न धरें वांस के दण्ड ॥
विप्र चतुर्विधि वृति भेद करि । तिनमें निदंहि छोड़ि सात घर ॥
भीख करै उद्देस बिना हीं । तुष्ट रहै पुनि तितनेंई माँहीं ॥

गाँव के बाहर जल के नीर। करि आचवन मौन गहि धीर॥
सबै भीख अपु भोजन करै। जाचक हू के कर पुनि धरै॥
इन्द्रीजित ह्वै संग त्याग पुनि। इकलौ विचरै धरनि धीर मुनि॥
आप में तुष्ट रहै सम देखै। आपही में सब कौतुक पेखै॥
मो रति करि हिय विमल सु लसै। निर्भै निर्जन ठौर सु बसै॥
मो में तदाकार ह्वै कै मुनि। एक आतमा कौं ध्यावौ पुनि॥
अपनो बंध मोछ जो आहि। ज्ञानहिं साधि विचारै ताहि॥
बंधन इंद्रिन के बस ह्वै वौ। मोछ आहि तिनकौं बस कैवौ॥
तातें हिये में अति सुख पाय। छुद्रकामना कौं छुटकाय॥
मेरे भावहिं धरि विचरै मुनि। इन्द्री छहौ जीत तासौ पुनि॥
खरिक गाव पुर जात्रा जहाँ। भिछा हेत जाय मुनि तहाँ॥
गिरि वन आश्रम सरिता देस। जाय जहाँ जहँ पुन्य प्रदेस॥
वानप्रस्थ के घरनि माहि मुनि। करै निरन्तर भिच्छा कों पुनि॥
सुद्ध होय सिल अन्नहिं खाय। तजि कें मोह तुरत छुटि जाय॥
जगहिं वस्तु करि लखै न यातें। दृस्यमान कौं नास है जातें॥
दोउ लोक सें चित्त न धरै। तिनके उदिम हू परिहरै॥
वानी प्रान मनोमय जग जो। झूठौ स्वप्न सो आत्मा कौ सो॥
सुस्थिर ह्वै ताकौ परिहरै। बहुर न ताकौ सुमिरन करै॥
ज्ञान निष्ट जो आहि विरक्त। कै निरपेछक मेरौ भक्त॥
चिन्ह सहत आश्रम सो तजै। विचरै पुनि विधि रीति न भजै॥
बुद्ध हू ह्वै बालक सौ रहै। निपुन हू ह्वै जड़ता सी गहै॥
विदुष हू ह्वै बोलै ज्यौं अज्ञ। पसु सौ विचरै ह्वै वेदज्ञ॥
वेद कौ कर्मवाद नहिं करै। ह्वै सकाम पाखण्ड न धरै॥
बहुरौं व्यर्थ विवादनि माहीं। काहू की पछ करै सो नाँहीं॥
आप न काहू तें भय पावै। और न काहू भय उपजावै॥
आपु बुरे बचनहिं हूँ सहै। औरहिं बहुर बुरौ नहिं कहै॥

देह बिकार हैं जन्मादिक जे। बीच ही में नहिं आदि अंत ते॥
बहुरों या तन के हित ऐसें। काहू सों न लरै पसु जैसें॥
इक आतमा तन हू सब में यौं। बहु जल पात्रनि में इक ससि ज्यौं॥
भोजन समें माहि नहिं आवै। तऊ धीर कछु दुख नहिं पावै॥
आए सुख नहिं पावै यातें। दोऊ देवाधीन है जातें॥
भोजन हेत जतन ठानें मुनि। प्रान धारिबौ उचित ताहि पुनि॥
प्रान धारि कैं तत्व विचार। ता करि दूरि करै संसारै॥
भलौ बुरौ जो असन बसन पुनि। अकसमात आए भोगै सुनि।
सौच आचमन पुनि ऽस्नान। बहुरौं जे कछू नियम है आन॥
जानी विधि सों करै न ऐसें। में ईसुर लीलनि कौ जैसें॥
मेरे ज्ञान तें भेद बुद्धि जो। नष्ट भई कबहूँ न होय सो॥
कबहू कि तन सँग तें दरसाय। पुनि सो मुनि मोहू लेत है पाय॥
दुख रूप कामनि के माहों। मन की लगन होय जौ नाहीं॥
तौ जाननि मम प्राप्ति उपाय। मननसील गुरु के ढिग जाय॥
श्रद्धावान भक्त बड़ भाग। आदर साधि असूया त्याग॥
मेरे रूपहिं गुरु कों तौलौं। सेवै ब्रह्महिं जानें जौलौं॥
जिन छह इन्द्री जीती नाहीं। बुद्धि हू अटकी बिषैन माँहीं॥
बहुर ज्ञान वैराग न धरै। सो त्रिदण्ड धरि पेटहिं भरै॥
मोहि अपनयौ देय सबै पुनि। निश्चै ठगै अधर्मी तिह मुनि॥
तास होय नहिं तास पाप जो। भ्रष्ट होय दोउ लोकनि तें सो॥
सन्यासी के धर्म हैं दोई। समता बहुर अहिंसा जोई॥
तप इज्या बनवासी के मन। करै ब्रह्मचारी गुरु पूजन॥
भूतनि की रछा पुनि जज्ञ। धर्म गृही के हे सर्वज्ञ॥
तप संतोष शौच हितवाई। ब्रह्मचर्य तिह धर्म है भाई॥
जो गृहस्थ रितु में संग साधै। सबकौ धर्म मोहि आराधै॥
ऐसें जो सुधर्म में चलै। ह्वै अनन्य मोहिं भजै सु भलै॥

सबमें मेरौ भाव धरै जो। तुरत ही मेरी भक्ति लहै सो॥
मैं सबलोक ईस सब हर्ता। परब्रह्म कारन जग कर्ता॥
ता दृढ़ भक्ति सों नर हरषाय। तुरत ही मोकषों लेत है पाय॥
यौं सु धर्म करि सिद्ध भयौ हिय। ह्वै विरक्त मम तत्व जान लिय॥
बहुर ज्ञान विज्ञान समेत। सो मोहि भलें पाय ही लेत॥
ए बर्नाश्रम धर्म जु गहे। जो आचार चिन्ह करि चहे॥
ते मम भक्ति जुक्त होय जौ पै। अति कल्यान करत है तौ पै॥
अहो साधु पूछी जो मोहि। सो मैं वर्नि सुनाई तोहि॥
ज्यौं सुधर्म जुति भक्त हमारौ। मोही कों पावति अति प्यारौ॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
अष्टादशोऽध्यायः ॥१५॥

उन्नीसवाँ अध्याय

दोहा:—मुक्तहिं करिवै नाहि कछु, यह उनईसै ध्याय।
गुन दोषन के ज्ञान हित, कहे जमादि जदुराय॥

श्री भगवानुवाच

जो अनुभव लौं श्रुति करि छायौ। प्रगट ही आतम तत्व पुनि पायौ॥
भूठौ जानि जगत कौ सो मुनि। ज्ञानरूप साधन मोहि अरपै पुनि॥
ज्ञानी कौ साधन फल स्वर्ग। मैं मो बिन नहिं प्रिय अपवर्ग॥
ज्ञान बहुर विज्ञान लह्यौ जिन। हमरौ उत्तम पद जान्यौ तिन॥
ज्ञानी मोहि अति प्यारौ यातें। ज्ञान सों मोहि धारत हैं जातें॥
जप तप तीर्थ दान व्रत जिते। ज्ञान की कला न पावत तिते॥
तातें धारि ज्ञान विज्ञान। ज्ञान सहेत आपकों जानि॥
भक्ति भाव करि भजियै मोहि। यह हे मीत कही मैं तोहि॥
मैं अज्ञेस आतमा आहि। ज्ञान विज्ञान जज्ञ करि ताहि॥
आतम विषै जजन करिकै पुनि। मोही कौ पावत भए बहु मुनि॥

तातें झूठौ जानौ ऐसें। जेवरी माँहिं सर्प भ्रम जैसें ॥

उद्धव उवाच—

विपुल विसुद्ध ज्ञान जो अहौ। जुत विराग विज्ञान सु कहौ ॥
हे बिस्वेस भक्ति अपनी पुनि। कहिये जो ढूँढ़त बड्डे मुनि ॥
घोर जगत मारग जे हे हरि। जे जन जरत हैं तीनि ताप करि ॥
तुव पद छत्र अमृत कों वरषै। तिन बिन तिनकौं को दुख करषै ॥
यह जन छुद्र सुखनि में झिल्यौ। जग बिलमाहि काल अहि गिल्यौ ॥
ताहि कृपा करि काढो हे हरि। सींच देहु पुनि अमृत वचन करि ॥

श्री भगवानुवाच—

पहल धर्म सुत भीष्महिं यही। हमरे सुनत सु पूछी सही ॥
धर्मपुत्र भारत के पाछें। सुहृद नाश तें उत्यौं आछें ॥
बहुत धर्म भीष्म जू तें सुनि। मोछ धर्म पाछें पूछें पुनि ॥
तुम सों हम जब कहि है तंई। भक्ति ज्ञान श्रद्धा जुति जेई ॥
तत्व तीनि नौ ग्यारह पाँच। सब में जाकरि लखियत साँच ॥
तत्वन में इक आतमा भान। सो निश्चै है हमरौ ज्ञान ॥
इक आत्मा हीं लहियत जासौं। कहियत हैं विज्ञान सु तासों ॥
तीनों गुण मय भावनि कों पुनि। थिति उत्पति नास देखै मुनि ॥
आदि अन्त पुनि बीच हू माहीं। व्यापि रह्यौ है जो सब ठाँहीं ॥
सबकों नास भएं रहै जोई। एहो मीत साँच है सोई ॥
जग साधुनि के मत नहिं सत्व। सुनि लखिबे माँहि असत्य ॥
अनुमानौ में झूठौ जातें। होय विरक्त ताहि तजि तातें ॥
कर्म तें ब्रह्म लोक लों जे सुख। तिनै विवेकी जानि लेय दुख ॥
बहुरों नस्वर जानें ऐसें। ह्यां के भोग देखियत जैसें ॥
अहो अनघ है भक्ति जोग जो। पहलें ही हम तुमें कह्यौ सो ॥
बहुर कहौं तुव प्रीति सु हेत। जो केवल मम भक्तिहिं देत ॥
श्रद्धा सों मम सुनै चरित्र। नित मेरे गुन गावै मित्र ॥

मम पूजन में निष्टा धरै। अस्तोत्रनि करि अस्तुति करै॥
परिचर्या में श्रद्धा ठवै। सब अंगनि करि मोकों नवै॥
मो तैं अधिक भक्त कौं पूजै। सब में मो मनि धारै दूजै॥
बानी करि गावै मेरे गुन। मेरे हित सब क्रिया करै पुनि॥
मन कों अर्पन मो में करै। बहुरों सब कामनि परिहरै॥
मम हित त्यागैं सुख सु महान। मेरे हित जप तप व्रत दान॥
प्रेम लछना भक्ति जु कही। आतम निवेदी जन कें सही॥
इन धर्मनि करि होत है जबै। कौन सों अर्थ रह्यौ ताहि तबै॥
सांत सत्व जुत चित जो आहि। मो में जब सु लगावै ताहि॥
तब पावै नर धर्म रु ज्ञान। पुनि विराग ऐश्वर्य महान॥
देहादिक में अर्पै जौ पै। करै विरुद्ध मलिन होय तौ पै॥
भक्ति देय सोई धर्म महान। इक आत्मा दरसन है ज्ञान॥
विषै त्याग वैराग सु जानैं। अनमादिक ऐश्वर्य सु मानैं॥

उद्धव उवाच—

कै प्रकार जम नियम मुरारी। को सम दम कों धैर्य है भारी॥
कौन तितिच्छा कौन दान तप। कौन सूरता यह कहियै अप॥
कौन सत्य को बानी त्याग। कौन सों वांछित-धन बड़ भाग॥
कौन सो जज्ञ दछिना कहा। कौन सो बल रु भाग पुनि महा॥
कहा लाभ को विद्या लाज। को मण्डन सुख दुख महाराज॥
को पंडित को मूर्ख अहौ। को मारग को ऊवट कहौ॥
स्वर्ग नर्क बांधव गृह कौन। कह्यौ धनाढय दरिद्री जौ न॥
कौन कृपन को ईश्वर अहौ। पुनि ये सब विपरीत हू कहौ॥

श्री भगवानुवाच—

सत्य अहिंसा लाज असंचय। छमा असंग अचोरी निर्भय॥
स्थैर्ज मौन आस्तिक ब्रह्मचर्य। ये यम बारह कहियत वर्य॥
बाहर भीतर सौच होम जप। श्रद्धा तुष्टि तीर्थ जात्रा तप॥

मेरी गुरु कों अतिथि कौ सेवन। पर उपकार नियम बारह गन ॥
इन जम नियमनि साधै जोई। निज मनोर्थ कों पावै सोई ॥
बुद्धि की मो में निष्ठा सो मम। इन्द्रिन कों संयम कहियै दम ॥
धैर्य्य है जीभ सिष्णु बस कैवौ। आहि तितिछा दुःख सह लैवौ ॥
दण्ड त्यागवौ उत्तम दान। काम त्यागवौ तप सु महान ॥
सूरता है स्वभाव बस कैवौ। सत्य है सबकों सम लखि लैवौ ॥
बानी सों जो मम गुन गावै। कर्म में प्रीति न सौच कहावै ॥
त्याग सों ईस सन्यास ही कहियै। वांछित धर्म सुधन ही लहियै ॥
जज्ञ एक में ही सर्वेस। आहि दक्षिना ज्ञान उपदेस ॥
मन की जीत निवल बड़ भाग। मो में ईस्वर भाव सु भाग ॥
लाभ हमारी भक्ति ही गाई। विद्या त्याग न अपुन पराई ॥
मुण्डन निरपेछादिक ही गुन। बुरे कर्म सों ग्लांन लाज पुनि ॥
दुख सुख भूलनि कों जानौ सुख। विषै सुखनि की इच्छा है दुख ॥
बंध मोछ वित पंडित कहियै। होमें करै स मूर्ख लहियै ॥
आछौ मार्ग आहि निवृति। बुरौ मार्ग कहियै सु प्रवृति ॥
स्वर्ग है सतगुण की बढ़वार। तम गुन बढ़नि नरक निधारि ॥
गुरु में जो सोई बन्धु है नीकौ। नर तन ही घर जीवनि जी कौ ॥
सों धनाढय जो परिपूरन गुन। आहि दरिद्री असंतुष्ट पुनि ॥
अजितेन्द्री ही कृपन अनीस। विषै में अनासक्त सो ईस ॥
ये हम बरनें भले प्रश्न सब। सुनि गुन दोषनि के लछन अब ॥
दोष है गुन दोषनि की देखनि। गुन है दुहूवन की अनपेखनि ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
उनईसोऽध्यायः ॥ १९ ॥

बीसवाँ अध्याय

दोहाः—भक्ति ज्ञान अरु कर्म हरि, कहे बीसयैं ध्याय।
अधिकारी गुन दोष हित, पुनि बरनै जदुराय ॥ १ ॥

उद्धव उवाच—

विधि निषेध तुव वेद सु गावै। कर्मनि कौ गुन दोष बतावै॥
वर्णाश्रम हू कों रु दोष गुन। प्रति लोमज अनुलोमज कौ पुनि॥
स्वर्ग नर्क गुन दोष कहौ ज्यों। द्रव्य देस वय काल हू कों त्यों॥
विधि लछिन जुत तुमरी वानी। हे प्रभु गुण दोषनि करि सानी॥
तामें भेद द्रष्टि नहीं करै। तौ क्यों मंगल होय सु नरै॥
सुर नर पितरनि कों सुख दैंन। हे प्रभु तुमरौ वेद सुनैंन॥
साधन साध्य स्वर्ग मोछादि। तिनकों सो दिखवत है आदि॥
गुण दोषनि में भेद द्रष्टि जो। तुव बचननि तें नहीं सुतह सो॥
निज बचननि कनि टारत ताहि। यह प्रभु कहौ मोर भ्रम आहि॥

श्री भगवानुवाच—

भक्ति रु ज्ञान कर्म हम कहै। नरनि कों येई सुखद मंगल हैं॥
ह्वै निर्वेद कर्म छिट आवै। तिनही तें सो सिद्धिहिं पावै॥
फल चाहै दुख नहिं जानै जो। कर्महिं करिके सिद्धि लहै सो॥
कोउ भाग करि कथा हमारी। तामें जाकी रति होय भारी॥
नहीं विरक्त आसक्त नहीं अति। ताकैं एक भक्ति ही है गति॥
मेरी कथा श्रवण के माही। श्रद्धा जौ लौं उपजै नांही॥
पुनि निर्वेद होय नहिं जौलौं। कर्मनि कों नर करै सु तौलों॥
जो स्वधर्म में रहि मोहि जजै। जज्ञनि करि रु कामना तजै॥
पुनि निषिद्ध कों करै नहीं जो। जा तन स्वर्ग नर्क माँही सो॥
यौ सुधर्म में रहै जु मित्र। पापनि तजि सो होय पवित्र॥
बहुर विशुद्ध ज्ञान हिय आवै। कोऊ भाग करि भक्ति हू पावै॥
सुर हू नर तन चाहत ऐसें। नर्क वसन हारे जन जैसें॥
ज्ञान भक्ति होय या तन माहीं। स्वर्ग नर्क तन में होय नाँहीं॥
स्वर्गहिं निपुन न चाहै ऐसें। नर्कहिं जन नहिं चाहत जैसें॥
नर तन हू पुनि चहै न यातें। करि आवेस मोहि भूलति जातें॥

नर तन अर्थ सिद्धि कौ करै। यह बुद्ध जानि न आलस धरै॥
मरथौ देह यह परै न जौलौं। मुक्ति के जतनहिं करि लेहि तौलौं॥
जा द्रुम में खग रहै बना घर। ताकों जब काटै निरदै नर॥
तब ताकों तुरतै छिटकावै। अनासक्ति तासौं सुख पावै॥
यौं निज आपुहिं रात द्यौस करि। कटती लखि भय सों काँपै नर॥
मोहि जानि सब संग छिटकावै। ह्वै निरीह उप सम को पावै॥
नर तन आछी नाव सु दुर्लभ। गुरु सलाह पुनि भई सु सुर्लभ॥
मो अनुकूल पवन के चलै तरै न जग सु आत्म हा भलै॥
कर्म रु फल में होय उदास। तौ इन्द्रियनि जीति मो दास॥
आत्मा में अभ्यासहिं धारै। तातें मनहिं अचल करि डारै॥
जौ मन अचल कियै हू भ्रमैं। तुरत ही एक ठौर नहिं रमें॥
तौ ताहू कौ भलौ मनावै। आलस तजि अपनै बस ल्यावै॥
इन्द्री प्राननि करि बस माँहीं। मन की गति छोड़े मुनि नाहीं॥
सतगुन सनी बुद्धि जो आहि। ता करि निज बस आनत ताहि॥
मनकौ निज बस करिबौ जोई। एहो पर्म जोग है सोई॥
कीयौ चहै अल्हर हय निज बस। तौ कछु तिह अनुसार चलै जस॥
सब भावनि की उत्पति नास। आदि अन्त क्रम करि मम वास॥
तत्व विवेक करि तौलौं ध्यावै। जौ लौं मन निश्चलता पावै॥
अहो निर्वेद विरक्त जु प्रानी। सोचै नित गुरु ही की बानी॥
पुनि पुनि तास चिन्तवनि भजै। ताकों चित्त दुष्टता तजै॥
आत्म अनात्म विचार महान। कै जमादि अथवा मम ध्यान॥
इन करि मोही कौं मन ध्यावै। और सबै काजं छुटकावै॥
जौं असावधानी कों पाय। कछुक निन्द कर्म ह्वै जाय॥
ज्ञान ही करि ताहि ज्ञानी हरै। और कर्म तहँ कछू न करै॥
निज निज धर्म माँहि निष्टा जो। अहो मीत गुन कहियत है सो॥
स्वाभाविक हो कर्म असुद्ध। तिनकों संग छुटावनि उद्ध॥

हमनें गुन औरु दोष बताए। दोष बताय कछुक छुटकाए॥
मो गुन श्रवन माँहिं रति जाकें। पुनि निर्वेद कर्म में ताकें॥
जानें दुख विषैन हू माहीं। ऐ पर त्याग सकै ते नाहीं॥
सो निश्चै करि श्रद्धा धरैं। प्रीति सों हमरौ पूजन करैं॥
पुनि दुख रूप विषैं हें जितीं। निन्दा करत सु भोगै तितीं॥
पुनि तिह हिय हम थिति होय जबै। नासैं तास कामना सबै॥
हिय की सबरी गाँठि सु भिदैं। बहुरों सबरे संसै छिदैं॥
कर्म हू छीन होय पुनि सबै। हम सर्वातम दीखै जबै॥
तातें भक्ति जुक्त जो प्रानी। जानें मति मोही में सानी॥
ताकौ पुनि वैराग्य रु ज्ञान। कहौ कोंन से है कल्यान॥
जप तप दान ज्ञान वैराग। और हू करि जु मिलति बड़ भाग॥
सो सब मेरी भक्ति सु देत। अनायास भक्तनि के हेत॥
स्वर्ग मोछ पुनि धाम हमारौ। जौ कबहू चाहै मम प्यारौ॥
धीर अनन्य जु भक्त महा है। मुक्ति हू मेरी दई न चाहै॥
केवल नरपेछ जो आहि। बड़ौ श्रेय कवि वरनत ताहि॥
तातें निरपेछक निष्काम। सो मम भक्ति लहै अभिराम॥
जे मम जन अनन्यता छुए। समचित बहुर प्राप्ति मोहि भए॥
गुन दोषनि तें जे गुन जन में। ते न होत हैं तिनके तन में॥
यौं हम ये जे मार्ग बखानें। तिनमें जे जन थिरता ठानें॥
ते मो परब्रह्म कों गहैं। पुनि मम छेम धाम में रहैं॥३६॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
विंसमोऽध्याय: ॥ २० ॥

अठारहवाँ अध्याय

दोहा—कर्म ज्ञान पुनि भक्ति जे, अधिकारी नाँहि।
तिन्हें कहत गुन दोष जे, ध्याय इकईसे माँहिं॥ १॥

श्री भगवानुवाच—

ज्ञान कर्म पुनि भक्ति उपाय। जे हम कहे तिनें छुटकाय॥
छुद्र विषै जो सेवन करै। सोई घोर नर्क में परै॥
निज निज धर्म माहिं निष्टा जो। अहो मित्र गुण कहियत है सो॥
बहुर विपर्यय दोष सु जानौं। दुहूनि कौं यही सु निश्चै मानौं॥
समूह माँहि वस्तु पहिचाननि। कीने हैं सुद्ध असुद्ध विधाननि॥
पुनि गुन दोष शुभाशुभ आह। हेत धर्म व्यवहार निवाह॥
धर्म बोझ को जे लै चलें। तिनकों यह हम कह्यौ सु भलें॥
प्रथ्वीप तेज वायु आकास। विधि त्रन लों सब ही इक रास॥
सम धातुनि में नाम रूप जे। विषम कहत श्रुति स्वार्थ हेत तें॥
देसादिक वस्तुनि के हम पुनि। कर्म नियम हित कहे दोष गुन॥
कारौ मृग रु द्विजनि कौ पूजन। जहाँ नहीं सोउ देस असुचिगन॥
कारौ मृग पै साधु न जहाँ। सबै असुचिता जानौ तहाँ॥
कर्महिं उचित काल गुनवान। कर्महिं अनुचित नून महान॥
वस्तू बचन बुधि काल समर्थ। संस्कार महदल्प रु अर्थ॥
वस्तु की शुद्धि असुद्धि जु आहि। येई निश्चै हेत हैं ताहि॥
देस अवस्था के अनुसार। आपहिं पाय लगत निर्धार॥
अस्थि तंतु रस चर्म रु धातु। धान्य दार औगैं विख्यात॥
माटी अगिन वायु जल काल। सोधति येई तिनें ततकाल॥
जा वस्तूहिं दुर्गन्ध लिपाय। जा करि गन्ध लेय सो जाय॥
बहुरों निज सरूप कौ पावै। सोई तास की सुद्धि कहावै॥
सक्ति अवस्था कर्म स्नान। संस्कार सुमिरन तप दान॥
इन कर आपहिं सुद्ध सु करै। कर्म द्विजन्मा पुनि आदरै॥
मंत्र की सुद्धि पूर्ण जो ज्ञान। कर्म मदर्पित सुद्ध महान॥
इन छह के सांधे होय धर्म। किये विपर्य्यय होत अधर्म॥
कहूक गुन हू दोष होत पुनि। दोष हू विधि करि होत कहूँ गुन॥

यौ गुन दोष नियामक बेद। गुन दोषनि में मिटवत भेद॥
नीचनि कौं पुनि नीच कर्म जो। हे उद्धव नाहिन पातक सो॥
स्वाभाविक संग गुन पुनि ऐसें। सोयौ प्रानी गिरै न जैसें॥
होत है जन निवृति जा जातें। हे उद्धव छूटत ता तातें॥
नरनि कों यही धर्म सुखकारी। सोक मोह भय नासक भारी॥
जब विषैन कौ उत्तम मानै। तब तिनमें आसक्तिहि ठानैं॥
बहुर कामना बढ़त सु मीत। ताते होय कलह विपरीति॥
तातें दुसह क्रोध होय आछैं। मोहित होय तजै सुधि पाछैं॥
सून्य सौ होय मृतक ह्वै रहै। स्वार्थ तें गिरै ताप तन दहै॥
विषै में अभिनिबेस जे ठानें। ते आपहिं औरहिं नहिं जानें॥
व्यर्थ वृछ ज्यौं जीवित हैं ते। लेत उसास धोंकिनी से जे॥
फलनि कौ सुनिवौ अर्थ है नाहीं। रुचि उपजावनि कर्मनि माँहीं॥
मंगल हित ही बरनै है यों। औषध में रुचि उपजैयै ज्यौं॥
स्वजन पान पुनि बस्तु जितेक। आपहिं दुख कौ हेत तितेक॥
स्वाभाविक नर की तिन माहीं। प्रीति महा छन छूटत नाहीं॥
निज अर्थहिं जानति नाहिन जन। पुनि पुनि धारत देवतृ जग तन॥
ताकौं फेरि बेद क्यौं अहौ। तिनही माहि लगै है कहौ॥
कोई कुबुद्धी यौ नहिं जानै। स्वर्गादिक रमनीय बखानैं॥
बेद के अर्थहिं जानत हैं जे। तिनकों नित ही निंदति हैं ते॥
कामी कृपन रु लोभी प्रानी। फूलनि ही में फल बुद्धि ठानीं॥
अग्नि मूढ़ बुध धूमा माहीं। अपनै लोकहिं जानति नाहीं॥
ते हिय हू में मोहि न जानै। जो जग रूप कियौ जग जानैं॥
यौं तम में कछू होत न ज्ञान। कर्म सराहत पोषत प्रान॥
हिंसा ही में रति होय जौ पै। जज्ञ बिना पसु हतै न तौ पै॥
यह परोछ मेरौ मत अब आहि। विषई दुष्ट न जानति ताहि॥
बहुर कसाई निज सुख भजै। पसुनि मारि सुर पितरनि जजै॥

नस्वर स्वप्न तुल्य परलोक। सुननि ही मैं प्रिय पुनि दुख ओक॥
सो हिय धरि धन खोवत ऐसें। बहु धन हित बनियां धन जैसें॥
रज सत तमोगुनी प्रानी जे। रज सत तमोगुनी देवनि ते॥
विधि बिन जजै मोहि पुनि नाहीं। धरै बहुर यह हीय के माहीं॥
इहाँ जज्ञ करि देवनि पूजै। स्वर्ग जाय सुख करि है दूजै॥
तहाँ भोग करि धमैं ऐहे। महा कुलीन धनाढ्य सु ह्वै है॥
ऐसें पुष्प तव वचननि द्वार। नरनि के मन विक्षिप्त अपार॥
निपट अनम्र भरे मद माँहीं। बात हू मेरी रुचै सु नाहीं॥
अहो त्रिकांडी वेद हैं जिते। ब्रह्म आत्मा ही पर तिते॥
रिषि हू सबै परोक्ष बखानैं। बहुर परोक्ष हू मो मन मानैं॥
प्रानेंद्रीय मनोमय जोई। सब्द ब्रह्म दुर्बोध है सोई॥
अति गम्भीर अपार महान। दुर्विगाह है समुद समान॥
व्यापक ब्रह्म अनंत हों में जो। तिन करि प्रेरति सब्द ब्रह्म सो॥
सुर सरूप करि सबमें ऐसें। लखियत तंतु नाल में जैसें॥
ज्यौं मकरी हिय तें मुख द्वारा। प्रगट करत है तन्तु पसारा॥
ऐसें ही सुर जुति सिद्धि ब्रह्म जो। हृदाकास ते प्रगट होय सो॥
वेद मूर्त्ति हरि अमृत सरूप। ॐकार तें नाना रूप॥
छंदोमय अपार वैखरी। अपही अज संहारत हरी॥
गायत्री उष्णिग रु अनुष्टप। व्रहती पंक्ति बहुरि इकत्रिष्टप॥
जगती पुनि अति छन्द अतिष्ट। अति जगती रु विराट विसिष्ट॥
धारै कहा रु कहा बतावै। पुनि यह कहिकै कहा छिपावै॥
यह याकों हिय लोकनि माँही। मो बिन कोऊ जनावै नाँही॥
धारै मोहि रु मोहि बतावै। मोही कों कहि सब छिटकावैं॥
वेद हू मेरो आश्रै राखै। अंत में भेदहिं झूठौ भाखै॥
नित्य निवृति ही मार्ग कहै सो। यह हम कह्यौ सब वेद अर्थ जो॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
इकईसमोऽध्यायः ॥२१॥

बाईसवाँ अध्याय

दोहाः—बाईसें अध्याय में, तत्व गगन विख्यात।
प्रकृति पुरुष कौ ज्ञान पुनि, जन्म मरन की बात ॥

उद्धव उवाच—

हे हरि कितनें तत्व कहे मुनि। तुम तौ अठाईस भाखै पुनि॥
कोई सात कोई नौ छवीस। कोई छह कोई चारि पचीस॥
कोई ग्यारह कोई सत्रह भाषै। कोई सोरह कोई तेरह आषै॥
बहु विधि क्यों मुनि कहत हैं अहो। हे हरि नित्य हमें यह कहो॥

श्री भगवानुवाच—

सबनि माहि सब तत्व हैं जातें। सबकों कह्यौ उचित है यातें॥
मो माया आश्रै करि कहै। तामें बुद्ध नहिं अचिरज लहै॥
ज्यौं तू कहत नाहिं यह ऐसें। मैं ज्यौं कहत सांच त्यौं तैसें॥
यौं वादिन के वाद मँझारी। सक्ति दुरत्यय हेतु हमारी॥
जिन सक्तिन के छोभहिं पाय। भेद विवादिन में ह्वै जाय॥
तिनमें सम दम आवैं जबै। भेद विवाद जाय मिटि तबै॥
मिलि रहै तत्व परस्पर जातें। सबकों कह्यौ सांच है यातें॥
पहलौ पिछलौ तत्व एक यौं। करण कार्ज माटी घट ज्यौं॥
या तें जो कोउ वरनति जैसें। निश्चै हम सब मानति तैसें॥
सन्यौ अनादि अविद्या माँहीं। जीवहिं सु तौ ज्ञान होय नाहीं॥
ताहि ज्ञानदाता दूजौ जौ। तत्व छवीसौ ईस्वर है सो॥
जीव ईस में भेद न तन कौ। आन कलपना भ्रम है मन कौ॥
ज्ञान हू एक प्रकृति कौ है गुन। यौं पच्चीस तत्व वरनत मुनि॥
एहो मीत प्रकृति है सोई। गुननि की अहि एकयता जोई॥
सत रज तम गुन माया ही के। थिति उत्पति नासन नहिं जी के॥
सतगुन ज्ञान रु कर्म रजोगुन। तमगुन ही अज्ञान आहि पुनि॥
गुन कौ छोभक काल सु मानौ। महतवहिं स्वभाव पुनि जानौ॥

पुरुष प्रकृति महत्त्वहंकार। पाँच धरादि तत्त्व नौ धार॥
ज्ञानेंद्री कर्मेन्द्री इक मन। यों ग्यारह सु तत्त्व वरनति जन॥
सद्व स्पर्श रूप रस गंध पुनि। ये ई पाँच तत्त्व बरनति मुनि॥
कारज कारन रूप प्रकृति जो। जग थिति उतपति नास मांहि जो॥
तीन गुननि करि गहै बिकार। दुष्टा पुरुष रहै अविकार॥
पुरुष के देखे तें विख्यात। महतत्वादि छुभित भई धातु॥
बलहिं पाय मिलि अण्ड सु कीनौ। तिहिं प्रकृति कौ आश्रै लीनौं॥
ये ई सात धातु कोउ कहै। पाँच भूत इक जीवहिं गहै॥
सातवों है अधार भगवान। इन ही तें होय इन्द्री प्रान॥
आप तें प्रगटैं पाँच तत्त्व जे। छठौ ईस अंगीकृत करि तें॥
रचि ब्रह्माण्ड सु पैठे तामें। छह तत्त्वनि कौ मत है यामें॥
जलधर अगिन ईस ये चार। इनहीं तें सब होंय अपार॥
पाँच भूत तन मात्रा पाँच। बहुर पाँच इन्द्री ये साँच॥
इक मन एक जीव पुनि पाछें। सत्रह तत्त्व कहत यौं आछें॥
सोरह तत्त्वनि के मत माहीं। जीव रु मन मं भेद सु नाहीं॥
पाँच तत्त्व इन्द्री समेत गनि। मन जीय ईस तत्त्व तेरह भनि॥
महा भूत इन्द्री जिय पाछें। ग्यारह तत्त्व कहत यौं आछें॥
या प्रकार इन तत्त्वनि की मुनि। बहु विधि गनती करत अहो सुनि॥
जुक्ति/सों सबही है ये जाग्य। बिदुषनि कों कहा आहि अयोग्य॥

उद्धव उवाच

प्रकृति पुरुष हरि जदिप बिलछन। मिलें भेद लखियत है तनक न॥
प्रकृति में आतमा देत दिखाई। आतमा माहि प्रकृति जदुराई॥
हे सर्बज्ञ महा सन्देह। नीति बचन करि काटयौ एह॥
तुम तें ज्ञान पाय जन फूलें। तुमरी माया तें सो भूलें॥
निज माया गति तुम हीं जानति। औरनहिं न जानति हम मानति॥

श्री भगवानुवाच

अहो मीत उधव सुखकारी। प्रकृति पुरुष में भेद है भारी॥
देहादिक ही प्रकृति विकारी। गुन के छोभनि ही सु सवारी॥
यह मेरी माया गुन धरै। गुन करि भेद बुद्धि बहु करै॥
देह विकारी के त्रय भेव। अध्यात्म अधिभूत अधि देव॥
नेत्र रूप रवि त्रिविधि सु यही। होत परस्पर सिद्धि सु सही॥
सु तै सिद्ध नभ माहि सूर्य ज्यौं। आत्मा कारन स्व प्रकास त्यौं।
ऐसें ही तुचा श्रवन नेत्रादि। त्रिबिधि तें न्यारे हैं हरि आदि॥
काल तें छुभित भइ माया जब। तातें महा तत्व उपज्यौ तब॥
तातें मोह भेद के कारन। अहंकार त्रय वपु किये धारन॥
आत्मा भूलें तें विवाद जो। है नाहीं यह भेद सन्यौ सो॥
जदिप व्यर्थ पै जाय न ताकौ। तजि मोहि चित्त विषै में जाकौ॥

उद्धव उवाच

तुम तें विमुख सु निज कर्मनि करि। ऊँच नीच न गहत तजति नर॥
अज्ञहिं दुर्विभाव्य यह कहौ। माया वंचित लखत न अहौ॥

श्री भगवानुवाच

इन्द्रीन जुत कर्म मय मन जो। देह तें देहांतरहि जात सो॥
जदिप भिन्न आत्मा आछें। पै लाग्यौ डोलै मन पाछें॥
देखी सुनी देह है जिती। मन कर्मिष्ठ सु ध्यावति तिती॥
तिनमें तदाकार ह्वै जाय। अगली पछली सुधि बिसराय॥
अभिनिवेस तन में करि फूलै। कोई हेत करि आपहि भूलै॥
अहो निपट भूल न यह जोई। जीव की मृत्य कहावै सोई॥
देहहिं अपनी करि जो गहै। जीव कौ अहो जन्म है यहै॥
स्वप्न मनोरथ में जैसें नर। पहलौ भूल सोई जानै वर॥
मन्त्र-कृत त्रिविधि सृष्टि यह कही। द्रष्टा आत्मा में पुनि यही॥
दैत है अहो दिखाई कों यौं। रिपु रु मीत सुत के पित में ज्यौं॥

छिन छिन जीव सु उपजै मेरै। सूक्षम काल सों लखि नहिं परै॥
ज्वाला जल प्रवाह फल जैसें। जन की देह अवस्था तैसें॥
वही दीप वही जल वही प्रानी। यह है झूठी बुद्धि रु बानी॥
अजर अमर यह जीव जु तन में। निज कर्मनि करि मरै न जन्में॥
केवल एक भ्रान्त है ऐसें। अगिन में काठ संग तें जैसें॥
जठर प्रवेस बढ़नि अरु जन मन। बहुर बाल्य कौमार रु जोवन॥
वय कौ मध्य बुढ़ापौ मीच। ये नौ दसा आहि तन बीच॥
करि अज्ञान तिनें जन धरै। कोऊ कभूं त्याग हूँ करै॥
अपनौ जन्म मरन जो आहि। पिता पुत्र करि जानैं ताहि॥
जन्म मरन धर्मी तन जैसें। द्रष्टा आतमा है नहिं तैसें॥
तरु उपजनि नासनि द्रष्टा ज्यौं। न्यारौ तन हू तें आतमा त्यौं॥
प्रकृति में अपहिं न लहै मूढ़ जो। विषै सों अटक जगत भटकै सो॥
होय सतोगुन तें यह सुर मुनि। रजगुन तें होय असुर मनिष पुनि॥
भूत प्रेत पसु तम करि होई। भ्रमति कर्म करि यों सब कोई॥
नाचनि गावति कों देखैं ज्यौं। बहुरों आपहू करन लगै त्यौं॥
योनि द्रष्टा आत्मा हू है जो। बुधि गुन के अनुसार चलै सो॥
ज्यौं जल चलति चलति दीसें तरु। द्रग के भ्रमति भ्रमति सी ज्यौं धर॥
झूँठ है आत्मा कौ जग ऐसें। स्वप्न मनोरथ के सुख जैसें॥
विषई कौ झूठौ हू जग यौं। जात नहीं स्वप्न कौ दुख ज्यौं॥
तातें उद्धव विषै आहि जे। असोदन्द्रिन करि जिन सें बहु ते॥
असोदन्द्रिन करि गहियत जितौ। मोतें भिन्न आहि भ्रम तितौ॥
जौ असाधु बहु विधि अवमानें। हाँसी करै इरसा ठानें॥
मारै रोकै वस्तु छिनावै। थूकै मूतै बहुत सतावै॥
भलौ चहै सो मन न विचारै। आपहिं करि आपहिं उद्धारै॥

उद्धव उवाच—

दुसह यह जु अनादर आहि। क्यौं सहियै कहियै प्रभु ताहि॥

तुव जन सांत चरन की छाया। ता बिन बुध हू तरै न माया॥
इति श्री भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
बाईसमोऽध्यायः ॥२२॥

तेईसवाँ अध्याय

दोहा:—तिरस्कार की सहन विधि, तेईसे अध्याय।
भिछु गीत करि सबनि प्रति, वरनी है जदुराय॥

श्री शुकउवाच—

महाभागवत उद्धव नाम। यह हरि सों पूछी अभिराम॥
सुनिबे लायक है गुन जाकौ। सो बोलै आदर करि ताकौ॥

श्री भगवानुवाच—

हे उद्धव या लोक मँझारी। ऐसौ कोउ साधु नहिं भारी॥
जो असाधु के दुसह वचन सुनि। छिदे चित्त कौं जोरि लेय पुनि॥
लगे करेजे में जे बान। तिन करि त्यौं नहिं तयै प्रमान॥
ज्यौं दुर्जन के बचन बान सुनि। कटै करै जौ रात द्यौस पुनि॥
तहाँ एक पुन्य कथा जो आहि। कहत हैं हम सुनि मन दै ताहि॥
कोईक भिछुक धीर्ज धरै। निज कर्मनि कौ सुमिरन करै॥
ताकौं दुष्टनि दुख दीनौ जब। ताने एक गीत गायौ तब॥
कोईक द्विज उज्जैन मँझारी। संपति करि रहै पूर्ण भारी॥
वैस्य वृत्ति सो करै कदर्य्य। कामी क्रोधी लोभी वर्य्य॥
बांधव बहुर अतिथ हू जाने। बचननि हूँ करि नहिं सनमानें॥
धर्म हीन घर में रह्यौ छाय। आप हूँ कछू न पहरै खाय॥
ता कदर्य्य सों घर के जिते। प्रीति न करें लरें पुनि तिते॥
सो धन रछा करै जछ ज्यौं। दोऊ लोक तें भ्रष्ट भयौ यौं॥
धर्म काम करि हीन जु आहि। पंच जज्ञ सुर कोपे ताहि॥
तब सो पुन्य हीन है भयौ। श्रम करि जोरयौ धन पुनि गयौ॥
कछूक धन तो बंधुनि छीन्यौं। कछूक नृप कछू चोरनि हरि लीनौ॥

अग्नि माँहि कछु जरत सु भयौ । कछूक अन्न धरयौ गर गयौ ॥
नष्ट भए धन बंधुनि त्यागयौ । तब सो दुस्तर चिन्ता पागयौ ॥
रोवै तपै खेद करि भारौ । ताकें भयौ निर्वेद सुखारौ ॥
पुनि तिन हाय हाय करि कही । अहो में व्यर्थ देह यह दही ॥
बहुत खेद करि धन जोरयौ जो । धर्म कामहिं तनहिं न लग्यौ सो ॥
धन कदर्य्य कों सुखद न आछें । ह्यां दुख देह नर्क पुनि पाछें ॥
गैवे लायक गुनियनि कौ गुन । सुद्ध जसस्विन कौ जस हू पुनि ॥
तनक लोभ करि बिगरत ऐसें । स्वेत फूल करि सुन्दर जैसें ॥
धन की खरचनि खानि बढ़ावनि । आवनि जानि धरनि उपजावनि ॥
इनमें श्रम भ्रम चिन्ता त्रास । नर कौ लगै रहत दुख रासि ॥
चोरी हिंसा झूठ प्रचण्ड । काम क्रोध संयम दम पाखण्ड ॥
भेद वैर ईर्षा अविस्वास । पर त्रिय जूवा मद्य विलास ॥
नरनि कों यह पन्द्रह जु अनर्थ । इनकों एक मूल हैं अर्थ ॥
तातें धन अनर्थ भरिपूरि । भलौ चहै सो भाजै दूरि ॥
तात भ्रात तिय बंधव जिते । कौड़ी बिन नहिं पूछें तिते ॥
जे जन अति प्यारे रु एक चित । ते रिपु होत बीस कौड़ी हित ॥
प्यारे बन्धु अलप धन हेत । तुरत ही हितवाई तजि देत ॥
करें ईर्षा रिस अति धारें । बेगि ही त्यागि देहिं पुनि मारें ॥
अमर प्यार्थि तन रतन पाय । ताहू में द्विज वर घर आय ॥
अपनै अर्थहिं जानति नाहीं । डूबत ते सु असु भगति माहीं ॥
स्वर्ग मोछ कौ द्वारौ नर तन । ताहि पाय ऐसौ है को जन ॥
जो धन में लै मनहिं लगावै । जातें सब अनर्थ कौं पावै ॥
आत्मा देव पितर प्रानी मुनि । जाति बन्धु हू धन भागी पुनि ॥
इनें दियें बिन नर्क सु परै । जछ ज्यौं जो धन रछा करै ॥
व्यर्थ धनिछा मद में भोयौं । धन बल जौवन सबरौ खोयौ ॥
जिन करि सुबुधि हरिहिं आराधै । बूढ़ौ कहौ कहा अब साधै ॥

व्यर्थ धनिछा करि विद्वान। पुनि पुनि क्यौं दुख सहै महान॥
ऐ पै काहू की माया करि। निश्चै मोहित हैं सब ही नर॥
जन्म के दाता कर्म जु महा। तिन करि मृत्यु गिलैं कों कहा॥
कहा धन सों कहा धनवारे सों। काम सों कामदेन हारे सों॥
सर्व देव मय हरि भगवान। निश्चै मो पै तुष्ट महान॥
जिनि यह दीनी दसा अनूप। पुनि निर्वेद सुनौ का रूप॥
अब में स्वार्थ में मन दैहौं। आप ही माँहि तुष्ट ह्वै रैहौं॥
बाकी कछू आयु है जौ पै। तप करि तन हित पैहौ तौ पै॥
त्रिभुवन ईस देव हैं जिते। मो पर कृपा करौ अब तिते॥
ब्रह्म लोक हू द्वै घटिका में। पाय लियौ खट्वांग सुनामें॥

श्री भगवानुवाच—

द्विज उज्जैन बासी अति सत्तम। मन सों यह विचार करि उत्तम॥
तजि हिय गांठ सांत ह्वै गयौ। मननसील ह्वै भिछुक भयौ॥
बस कीनें मन इन्द्री प्रान। भीख हेत सों फिरै सुजान॥
काहू में आसक्ति न धरै। होय अलछ सु फिरिबौ करै॥
बूढ़ो बहुरों मलिन भिखारी। ताहि दुष्ट देहि पीड़ा भारी॥
कोई आसन पट कन्था माला। कोई कमण्डल दण्ड रसाला॥
छीन कै पुनि दिखाय डहकावै। माथै ऊपर थूक सु जावै॥
भीख कौ अन्न सरित—तट खाय। तामें दुष्ट सु मूतत आय॥
चुपके हू पै सुनि बुलवावै। बोलै नहिं तौ छरी लगावै॥
कोई बहुत विधि देत है गारी। कोउ कहै यह चोर है भारी॥
कोई बाँधि जेवरनि राखै। मारौ मारौ यों पुनि भाखै॥
निन्दा करैं अवज्ञा ठानैं। ठग पाखण्डी ताहि बखानैं॥
कोई कहै इन यह वृति लई तब। निधन भए बधुनि त्यागयौ जब॥
कोई कहै यह गिरिराज समान। धरत है बल अरु धैर्य महान॥
कोई कहै अर्थ सिद्धि के कारन। बगुल ध्यान इन कीनौं धारन॥

ऐसें कोई हास्य कौ करैं। उपर अधोवायु विस्तरैं॥
कोई बाँधति रोकति ऐसें। खेलन हित पंछी कों जैसें॥
ऐसें त्रिविद्धि तपनि करि तयौ। निज अदिष्ट कों मानति भयौ॥
करें धर्म तें भ्रष्ट दुष्ट जे। ताकों यों दुख देत भये ते॥
तिन सात्विकी धारना धारी। रहि सुधर्म में यह उच्चारी॥

द्विज उवाच—

कर्म काल जन तन सुर ग्रह जे। दुख सुख हेत मोहि नाहीं ये॥
मन ही केवल कारन या तें। भ्रमति है जीव जगत में जातें॥
मन अति बली श्रजति गुन आछें। ते गुन कर्म श्रजति पुनि पाछें॥
शुक्ल कृष्ण लोहित जु कहावत। तिनमें बहुत जौनि जन पावत॥
आत्मा जीव मित्र विद्वान। मन संग हू निष्क्रिय सुख खानि॥
सो मन कों गहि कर्मनि करै। विषै सेय पुनि पुनि जग परै॥
दान नियम यम शास्त्र सु धर्म। सदवृत बहुरों उत्तम कर्म॥
सबको फल इक मन बस कैबौ। पर्म जोग सोई लखि लैबौ॥
जाकौ मन इकाग्र भयौ महा। ताकौ दानादिक करि कहा॥
जाकौ मन इकाग्र नहिं आहि। करि दानादि कहा फल ताहि॥
सब बस होय मन के बस माहीं। सब बस में मन बस होय नाहीं॥
मन अति बली भयानक देव। याकों बस कर्त्ता बड़ देव॥
दुर्जय दुसह मर्म भेदी मन। बिन जीतें ता रिपुहिं मूढ़ जन॥
झूठौ बैर और सों ठानै। मित्र उदासी रिपु करि मानै॥
मनौ मात्र तन कों अपनौ करि। हांमें बाँधि अंध बुद्धी नर॥
यह सों यह में यह भ्रम धरैं। तब अपार संसार सु भरैं॥
दुख सुख कौ कारन जो जन ही। तौ कहा आत्महिं होय सु तन ही॥
निज दाँतनि करि रसना कटै। कौन सों क्रोध कीये दुख घटै॥
दुख कारन सुर तौ कहा आपहिं। तिनकों सुर तन सुर कौ तापहिं॥
अंग ही करि जौ अंगहिं लगै। तौ कहौ क्रोध कौन पै जगै॥

आत्मा ही दुख सुख कारन जौ। कापै कोपै निज सुभाव तौ॥
आत्मा बिन दूजौ नहिं कोई। जौ भासै पुनि झूठौ सोई॥
दुख सुख कारन हैं नक्षत्र जौ। दुख सुख तनहिं कहा आत्महिं तौ॥
ग्रह ही कौ सुख बरनें ग्रह करि। कहौ कौंन पै क्रोध करै नर॥
दुख सुख हेत कर्म जौ कहियै। जड़ तन में सो होत न लहियै॥
चिद घन आत्मा हू में नहिं सो। कहौ कौन पै क्रोध करै को॥
दुख सुख हेत काल जो महा। काल रूप आत्महिं तौ कहा॥
अग्निहि तापनहिं महि सिताई। कौन पै क्रोध करै नर भाई॥
प्रकृति तें परै आत्मा आहि। कबहू दुख सुख होत न ताहि॥
दुख अहंकारी जन कों ज्यौं। सो न डरै जा जानि लेय यौं॥
यही आत्म निष्ठा जो आहि। पहलै मुनिन सु सेई ताहि॥
हरि पद सेवा करि सो पैहौं। मैं हूँ दुस्तर जग तरि जैहौं॥

श्री भगवानुवाच—

धन के गयें निर्वेद सु पायौ। बिचरति धरनि पर्म सुख छायौ॥
धर्मन तज्यौ दयौ दुष्टनि दुख। यह गाथा गावति भयौ निज मुख॥
दुख सुख दाता नरहिं न और। मन ही कौ भ्रम है सब ठौर॥
उदासीन रिपु मीत बिचार। यही अज्ञता कृत संसार॥
तातें मो में बुद्धिहिं धरौ। ता करि भलै मनहिं बस करौ॥
हे उद्धव यह सब करि उक्त। इतनौ ई बड़ौ जोग है जुक्त॥
यह जो हरि में निष्ठा आहि। भिछुक नै पुनि गाई ताहि॥
ह्वै एकाग्र जो सुनै सुनावै। ताकौ द्वन्द न कभू सतावै॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
तेईसमोऽध्याय: ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

दोहा:—शांख्य जोग कौं वर्ण करि, सुन्दर श्री जदुराय।
मन के मोहहिं दूरि किय, चौबीसे अध्याय॥

श्री भगवानुवाच

पहलै निश्चै कियौ सांख्य जो। अहो मित्र अब तुमें कहूँ सो॥
जा सांख्यहिं नर जानि लेय जब। भेद त्यागि दुख सुख खोवै तब॥
जुगनि के पहल विवेकी जन जब। निरउपाधि इक हरि ही हे तब॥
पुनि सो नित्य होय विधि भयौ। मन बानी के गोचर ठयौ॥
तिनमें एक सु प्रकृति अनूप। जो है कारण कारज रूप॥
बहुर ज्ञान मय दूजौ आहि। पुरुष नाम करि जानौ ताहि॥
सत रज तम ये तीनौ गुन जे। मो करि छुभित प्रकृति ते भये ते॥
द्वै विधि महा तत्व पुनि तिनतें। मोहक अहंकार भयौ जिनतें॥
सो हंकार तीनि विधि मानौ। सात्वक राजस तामस जानौं॥
तन मात्रा इन्द्री मन कारन। जड़ चैतन्य रूप करैं धारन॥
सब्दादिक कारन तामस पुनि। महाभूत जनमे ताते सुनि॥
राजस तें प्रगटयौ इन्द्री गन। सात्विक तें ग्यारह सुर इक मन॥
ते सब मेरे प्रेरे मिलि करि। रच्यौ अण्ड मेरौ उत्तम घर॥
सो वह अण्ड रह्यौ जल लीन। तामें हम हूँ रहे प्रवीन॥
कमल भयौ मम नाभि मँझारी। तातें विधि भयौ चतुर सुभारी॥
रज गुण जुक्त विधाता आहि। मैंने कृपा करी पुनि ताहि॥
तिन तप करि त्रय लोक बनाए। लोक पालकनि युत छवि छाए॥
स्वर्ग तौ आहि सुरनि कों ओक। नरनि कों ओक आहि भू लोक॥
अन्तरीछ भूतनि की ठौर। सिद्धनि की त्रिभुवन तें और॥
धर के नीची विधि अभिराम। रच्यौ असुर सर्पनि कौ धाम॥
त्रिगुन कर्म के कर्न सु हार। तिनकौं गगन त्रिभौन मँझार॥
जोगी तपसी बहुर सन्यासी। लोक महर्जन तप के वासी॥
जो मम करै भक्ति अभिराम। सो पावै मेरौ ई धाम॥
काल रूप में परमेसुर हरि। कर्म जुक्त यह जक्त सु ता करि॥
गुन प्रबाह संसार मँझारी। पुनि पुनि उछरत डूबत भारी॥

छोटी बड़ी पातरी मौटी। सो सब प्रकृति पुरुष की जोटी॥
जाके आदि अन्त पुनि जो है। बीच हू में पुनि साँचौ सो है॥
पुनि विकार व्यवहार हेत यौं। सोंनै के खडूवा कुण्डल यौं॥
पहलै आपहिं कारन करि जो। औरहिं अजौ सत्य है गौ सो॥
जाकौ आदि अन्त पुनि श्राहि। एहो सत्य सु कहियै ताहि॥
जग कौ हेत प्रकृति विख्याता। पुरुष तास कौ है धिष्टाता॥
गुन कौ छोभक काल नवीनौ। ब्रह्म रूप हम ही ते तीनौं॥
जीव के अर्थ श्रष्टि नित जौलौं। हरि चितवनि थिति अंत है तौलौं॥
मो करि व्याप्त विराट जु नामें। लोकनि की उत्पति लय तामें॥
चौदह भवन समेत महान। सोउ नष्ट होत यह जान॥
अन्न में देह लीन होय आछें। अन्न बीज में लय होय पाछें॥
बीज भूमि में लय ह्वै जाय। भूमि गन्ध में जाय समाय॥
गन्ध लीन होय जल में आछें। जल रस में लय होय सु पाछें॥
ज्यौति माहि रस लय ह्वै जाय। ज्योति रूप में जाय समाय॥
रूप पवन में पवन परस महिं। परस गगन में गगन सब्द महिं॥
राजस में लय ह्वै इन्द्रीगन। सात्विक अहंकार में सुर मन॥
तामस अहंकार में लय धुनि। महा तत्व में त्रिविधि अहं पुनि॥
अति गुनवान है महातत्व जो। गुननि के माँहि समाय जाय सो॥
प्रकृति माहि होय लीन तेई गुन। अव्यय काल में प्रकृति मिलें पुनि॥
काल जीव माया मय भीतर। अज आत्मा मो माँहि जीव वर॥
सुद्ध आत्मा आप ही में थिति। उत्पति लय करि लख्यौ जाय नित॥
ऐसौ नित बिचार है जाकै। मन कौ भ्रम क्यौं रहै सु ताकै॥
जौ हिय होय तौ रहै न ऐसें। उए गगन में रवि तम जैसें॥
सबके कर्त्ता हैं हम श्री हरि। उत्पत्ति बहुरों लय के क्रम करि॥
यह जु सांख्य विधि कही सुनाय। जातें संसय गांठि नसाय॥२६॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
चौबीसोऽध्यायः॥ २४ ॥

पच्चीसवाँ अध्याय

दोहा—निज निर्गुनता सिद्धि कों, चित्त गुननि की वृति।
पच्चीसें अध्याय में, बहु विधि करी प्रवृति ॥ १ ॥

श्री भगवानुवाच

हे उद्धव न्यारे न्यारे गुण। जा करि जैसौ नर होय सो सुनि ॥
छमा विवेक अचाह दया दम। तुष्टि त्याग लज्जा श्रद्धा शम ॥
सत्य दान तप हरि रति ज्ञान। और हू सात्विक वृत्ति महान ॥
तृष्णा गर्व काम ईहा मद। विषै भोग जस माँहिं प्रीति हद ॥
हास स वीर्य्य बल उद्यम दूजा। राजस वृति चाह करि पूजा ॥
क्रोध लोभ हिंसादि दम्भ श्रम। कलह दीनता सोक अनुद्यम ॥
दुःख मोह आसा भय आलस। भीख अनृत ये वृति है तामस ॥
तीनों गुन की वृति कही सब। सन्निपात लछन सुनिये अब ॥
हे उद्धव हों में मति जोई। सन्निपात कहीयत है सोई ॥
सन्निपात कहियै व्यवहार। जो मन इन्द्री प्रानन द्वार ॥
धर्म अर्थ पुनि काम मँझारी। नर की जब निष्ठा होय भारी ॥
गुननि कौ सन्निपात यह भारौ। श्रद्धा रति धन देव सुहारौ ॥
जब प्रवृति में उपजै भक्ति। बहुर ग्रहाश्रम में आसक्ति ॥
पुनि स्वधर्म में थित होय पाछें। गुननि कों सन्निपात सो आछें ॥
बहुर छमादिक गुन जो धरै। सतोगुनी जानौ ता नरै ॥
तृष्णादिक सों रजोगुनी नर। तमोगुनी है क्रोधादिक करि ॥
जो त्रिय पुरुष कामना तजै। भक्ति सों मोहि सुधर्म करि भजै ॥
ताकौं सतोगुनी करि जानौं। और भाँति जिन मन में आनौ ॥
जो सकाम ह्वै निज कर्मनि करि। मोहि भजै सो रजोगुनी नर ॥
हिंसा कौ उद्देस धरै जो। भजें मोहि नर सतोगुनी सो ॥
चित तें जन्मति सत रज तम गुन। जीव ही के ते नहिं मेरे पुनि ॥
बँधै जीव ही तिन गुन करि तब। देहादिक में रति ठाने जब ॥

स्वच्छ सांत देदीप्य सतोगुन। रज तम कों जब जीत लेय पुनि॥
तव धर्मादि ज्ञान सुख जिते। तुरत ही नर पावत हैं तिते॥
संगी भेदी प्रवृत्ति सील पुनि। अस रज जब जीतै दोऊ गुन॥
तब नर निपट दुःख अवगाहै। कर्म करै जस धन कौ चाहै॥
मति भ्रंसक जड़ ढांपि लेय पुनि। अस तम जब जीतै दोऊ गुन॥
तब नर सोक मोह कों पावै। आलस हिंसा में दिन जावै॥
जब चित हरषै मन संग त्यागै। इन्द्री सुखी देह भय भागै॥
तब जानौ सतगुन बढ़वार। जातें होय प्रकास हमार॥
जब क्रियानि करि बुद्धि विनासै। ज्ञान इन्द्रीन में सांति न भासै॥
कर्म इन्द्री व्याकुल चंचल मन। बढ्यौ रजोगुन जानौ तिहि छन॥
दुखित ह्वै चित जब डूब सु जाय। बहुरों सब सुधि देय गमाय॥
पुनि अज्ञान विषाद होय जब। बढ्यौ तमोगुन यह जानौ तब॥
सतगुन बढ़ें अमर बल छावै। रजगुन बढ़ें असुर बल पावै॥
हे उद्धव तमगुन बाढ़ै जब। राछ्स अति बल कौं पावै तब॥
सत गुन करि जागरन सु जानौ। पुनि रज गुन करि सुपनौ मानौ॥
होय सुषुप्ति तमोगुन पाय। चौथौ तीनौ में रह्यौ छाय॥
सतगुन करि वेदज्ञ सु भलें। ऊपर ही ऊपर तें चलें॥
तमगुन करि जड़ जोनि सु पावै। रज गुन करि मनुष्य ह्वै जावै॥
सतोगनी मरि स्वर्गहिं जावै। रजोगुनी नर लोकहिं पावै॥
तमोगुनी नर नरकहिं जावै। निर्गुन जन मोही कों पावै॥
निष्कल मों अर्पित निज कर्म। सो निश्चौ सात्विक नहिं भर्म॥
कर्म सकाम सु जानौ राजस। हिंसा प्राय कर्म है तामस॥
मोछ हेत सो सात्विक ज्ञान। तन निमित्त सो राजस जान॥
वृथा काज हित तामस सो पुनि। बहुर मो विषै ज्ञान सु निर्गुन॥
बन कौ वास सु सात्विक जानौ। गाँव कौ बास राजसी मानौं॥
जूवा घर वसिवौ तामस पुनि। मों मन्दिर कौ बास सु निर्गुन॥

सात्विक कर्त्ता राग रहत जो। राजस कर्त्ता राग सहित सो॥
अविचारी कर्त्ता तामस पुनि। मो आश्रै कर्त्ता सो निगुन॥
ज्ञान में श्रद्धा सतोगनी भनि। कर्म में श्रद्धा रजोगनी गनि॥
पाप में श्रद्धा तमोगनी पुनि। मो सेवा में श्रद्धा निर्गन॥
आछें सुद्ध जतन बिन आवै। सो अहार सात्विकी कहावै॥
इन्द्री हित सो आहि राजसी। असुचि दुखद सो लहौ तामसी॥
आतमा कौ सुख सात्विक जानौं। विषै भोग सुख राजस मानौ॥
मोह दैन्य कों सुख तामस पुनि। मेरे आश्रै कों सुख निगुन॥
द्रव्य देस फल काल रु ज्ञान। कर्म रु कर्त्ता श्रद्धा जान॥
बहुर अवस्था आकृति निष्ठा। सबै तीन गुन में आविष्टा॥
देखे सुने रु ध्याये जे जे। प्रकृति पुरुष जुति गुन मय तेते॥
ये जीवहिं बहु विधि संसार। गुनमय कर्मनि के आधार॥
मो जन भक्ति जोग करि आछें। ह्वै मम निष्ठ मिलै मोहि पाछें॥
चित तें उपजैं गुन ये तीन। जिन जीते ये अहो प्रवीन॥
तातें नरतन पाय सुज्ञाता। जो विज्ञान ज्ञान कौ दाता॥
निपुन होय सो मोकों भजै। बहुरों गुन के संगहिं तजै॥
इन्द्रिन जीत संग त्यागै पुनि। सावधान ह्वै मोहि भजै मुनि॥
सतगुन के सेवन करि पाछें। रज तम जीति लेय मुनि आछें॥
साँत बुद्धि निरपेछ होय मुनि। ता करि सतगुन हूँ जीतै पुनि॥
ऐसें जीव गुननि छिटकावै। लिंग देह तजि मोकों पावै॥
जो जीय लिंग देह कों त्यागै। जित्त जु गुननि माँहिं नहिं पागै॥
पूर्ण होय मो ब्रह्महिं पाय। पुनि बाहर भीतर नहिं जाय॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
पच्चीसमोऽध्याय: ॥२५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

दोहा:—दुष्ट संग करि जोग कों, नास छबीसें ध्याय।
साधु संग करि होय पुनि, यह बरन्यौ जदुराय॥

श्री भगवानुवाच

मोहि मिलावन द्वार हैं नर तन। ताहि पाय मम भक्ति करैं जन॥
मैं परमात्म आनन्द रूप। ताकों तब पावत सु अनूप॥
गुनमय लिंग देह जो आहि। ज्ञान निष्ट ह्वै तजि नर ताहि॥
माया मात्र गननि के माँही। वस्तु बुद्धि कछू ठानी नाँहीं॥
यातें गुननि माहि रहि नित्त। गुननि सों नहिंन बँधै हैं मित्त॥
जे असाधु सिश्नोदर भरें। तिनकों संग साधु नहिं करें॥
तिनकै पाछें नर्क जाय यौं। आँधे के पाछें आँधौ ज्यौं॥
राजा पुरूरवा सुजस धारी। विरह उर्वसी दुःखित भारी॥
सोक गऐं निर्वेद सु पायौ। तब तिन यह प्रसंग इक गायौ॥
आपहिं छोड़ि उर्वसी जात। नृप नांगौ व्याकुल बिलपात॥
होय बावरौ सो कहै अहो। निठर प्रिये छिन ठाढ़ी रहौ॥
चित उर्वसी नें हरि लयौ। छुद्र सुखनि करि तृप्त न भयौ॥
कैई बरस की रात बितानी। आवत जात न तानें जानी॥

पुरुरवा उवाच

अहो देख्यौ मम मोह पसारौ। काम सों मोहित चित्त हमारौ॥
रात द्यौस तिय लपटनि माहीं। आपु गई सो जानी नाहीं॥
अहो इन तिया ठग्यौ मोहि सही। रवि की छिपन उदोन न लही॥
अहो देख्यौ मम मोह अकाजा। जाकरि हम नृप मनि बड़ राजा॥
तियहिं अपनयौ करि दयौ ऐसें। बाजीगर कौं बन्दर जैसें॥
वैभव जुति में नृप जो आहि। तृनि ज्यौं छोड़ि चली तिय ताहि॥
ता पाछें में लाग्यौ रोय। नागौ मतवारौ सौ होय॥
तेज प्रभाव ईसता महा। कहियै तिन्ह प्रानिन की कहा॥
लात खात जे खर की नांहीं। तिय के पाछें लागे जाहीं॥
ताकों तप अरु त्याग सु कहा। कहा चातुरी विद्या महा॥
कहा बनवास मौन कहा ताकौ। मन हरि लीयौ तियनि नें जाकौ॥

धिग मोहि में स्वार्थ नहिं जानो। मूरख ह्वै करि पंडित मानौं॥
ईस होय तिय बस भयौ ऐसें। गधा बैल बश होत हैं जैसें॥
अहो उर्बसी अधरामृत जो। कैई वर्ष लौं पीयौ में सो॥
ऐ पर काम बुझ्यौ नहिं ऐसें। घी के छिटकें अगिन सु जैसें॥
बिभचारनि तिय चित्त हरयौ जो। कौन समर्थ छुटाय सकै सो॥
एक धोछज हरि भगवान। आत्माराम तिन बिना आन॥
अहो उर्वसी नें सुभ बानी। मो समझावन हेत बखानी॥
में अजितेन्द्री दुर्मति ह्र्यौ। तिन करि मेरौ मोह न गयौ॥
अहो इन कहा बिगारयौ नारी। में ही अजितेन्द्री हों भारी॥
ज्यों रजु मांहि सर्प मति ठानें। तौ कहौ कहा बिगारयौ तानें॥
कहा मलीन असुचि तन अहो। दुर्गन्धादि सन्यौ सो कहौ॥
कहा सुगन्धादिक गुन नीके। मानें एक अविद्या ही के॥
यह तन मात पिता कै तीयकौ। गीध स्वान कों कै स्वामी कौं॥
अग्नि कौ अपनौ कै बंधुनि कौ। यौं निश्चै नहीं है या तन कौ॥
अहो ता तुछ कलेवर मांहीं। करें प्रीति छिन छोड़ैं नाहीं॥
कहौ कैसौ तीय नाक है नीकौ। हसनि सहित मुख जीवन जी कौ॥
गूद मेद मज्जा त्वकयास। रुधिर राध मल हड्डी रासि॥
ता तन माहि रमति तिनतें कहु। बिष्ठा कृमि में कहा भेद रहु॥
तिय तियसंगिनि के तन माँहीं। तउ बिबेकी देखै नाँहीं॥
जातें बिषै रु इन्द्री संग। सोई मन कौ करत है भंग॥
देखी सुनी वस्तु नहीं जौ लौं। मन कौ छोभ होत नहिं तौलौं॥
तातें जो इन्द्री बस करै। तिहि मन चंचलता परिहरै॥
तातें तिय तियसंगिन माँहीं। इंद्रिन करि संग करिवै नाहीं॥
विदुष हू इन्द्रिन तें भय मानें। मो सेंकी अब कौन बखानें॥

श्री भगवानुवाच—

ऐसें गावत नृप मनिराज। त्याग उर्वसी पुर सुख काज॥

ज्ञान सौ सिगरौ मोह गँवायौ। आप ही में तिन मोकौं पायौ॥
तातें सुमति कुसंगति तजै। बहुरौं सत्संगति कों भजै॥
साधु ही मन की गांठि जु आहि। कहि सुभवानी काटति ताहि॥
साधु अचाह सान्त समदर्शी। हो मैं तितें तनक नहीं परसी॥
पुनि निद्वन्द्व न संग्रह जिनके। हम ही एक चित्त में तिनके॥
ते महाभाग कथा मम गावें। श्रोतनि के जो पाप मिटावें॥
तिनकौं श्रद्धा करि जो मो जन। गावे सुनै करै अनुमोदन॥
ताकी मो में रति होय अहो। पुनि बाकी कहा रह्यौ सु कहौ॥
मैं अनन्त गुन पर्म अनूप। केवल अनुभव आनन्द रूप॥
अग्नि रूप भगवान जु आहि। जौ कोऊ जन सेवै ताहि॥
ताकौं भय तम सीत जाय ज्यौं। अहो साधु—सेवी—जन कौ ज्यौं॥
जगत समुद्र भयानक भारी। तहाँ डूबत उछरत नर नारी॥
तिनकों साधु आश्रै ऐसें। जल डूबत कों नौका जैसें॥
अन्न ही ज्यौं प्रानी के प्रान। दुखितहिं एक सरन भगवान॥
धर्म ही ज्यौं परलोक माँहि धन। त्यौं जग तें रछक मेरे जन॥
साधु हरें हिय को अंधियारो। रवि बाहर की करै उजारो॥
तातें देव बन्धु आत्मा हम। साधु ही हैं सब जानि लेहु तुम॥
तातें ऐसें पुरूरवा जो। त्यागि उर्वसी के पुर कों सो॥
आत्माराम होय तजि संग। विचरयौ धरनि माँहिं भरि रंग॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
छब्बीसमोऽध्याय: ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

दोहा:—क्रीया जोग अंगनि सहित, सत्ताईसें ध्याय।
देनहार सब काम कों, बरन्यौ है जदुराय॥ १॥

उद्धव उवाच

निज आधारन विधि हरि कहौ। जातें ज्यौं जन पूजति अहौ॥

नारद व्यास बृहस्पति शाही। नगनि के सुख कौ बरनति यही ॥
तुम हूँ निज मुख तें यह भाषी। सिव हू यही सिवा सों आषी ॥
भृग्वादिक सुत मुखीया भारी। तिन सों विधि ने यही उचारी ॥
वर्नाश्रम रु तिया पुनि आन। सबकों यही उत्तम कल्यान ॥
कर्म-बन्ध कौ मोचन हारौ। कमल नैन कहौ भक्तहिं सारौ ॥

श्री भगवानुवाच

क्रिया जोग कौ अन्त न आहि। करि संछेप सुनाऊँ ताहि ॥
वैदिक तांत्रिक मिश्रित तीन। इन विधि सों मोहि जजौ प्रवीन ॥
निज अधिकार वेद करि उक्त। ता करि नर ह्वै द्विजता जुक्त ॥
श्रद्धा सहित भक्ति सों मोहि। जैसें जजौ कहौं सो तोहि ॥
प्रतिमा धर जल रवि हिय आग। बहुर विप्र में हे बड़भाग ॥
निज गुरु मोहि वस्तूनि करि जजौ। भक्ति जुक्त ह्वै कपटहिं तजौ ॥
पहल अंग की शुद्धि निमित्त। दांतुनि करि अन्हाय हे मित्त ॥
पुनि वैदिक तांत्रिक मंत्रनि करि। गृहन मृतिका करि अन्हाय नर ॥
संध्या बन्दन कर्म हैं जिते। वेद कहे नर करि कें तिते ॥
कर्म नासिनी मेरी पूजा। करै भलौ सुमिरैं नहिं दूजा ॥
प्रतिमा आठ भाँति की ठानैं। दारु धातु सिलकी पुनि बानैं ॥
लिपी लिखी रज की करि पूजै। मनोमयी मनिमयी सु दूजै ॥
प्रतिमा हरि के मन्दिर रूप। चलरु अचल ह्वै भाँति अनूप ॥
तिन ही थिर प्रतिमा के मांहीं। आवहन रु बिसर्जन नाहीं ॥
अस्थिर में दोऊ हैं दोउ नाहीं। पुनि दोऊ रज प्रतिमा माहीं ॥
चित्रादिकहिं पौंछ ही डारैं। औरनि के ऊपर जल डारैं ॥
वस्तु प्रसिद्ध लेय मोहि पूजै। मम निष्ठा मम भक्त जो दूजै ॥
सो जो आवै पूजै ता करि। बिन आए हिय में सुभाव धरि ॥
पूनान रु पटभूषण पहरावन। प्रतिमा ही में हे मनभावन ॥
धर में तत्वन्यास करि पूजै। अग्नि में घीव होम करि दूजै ॥

रवि में पूजै अर्घादिक दै। पुनि जल में पूजै जल ही कै॥
श्रद्धा करि जल हू देय जौ पै। मोहि सु अति प्यारौ तौ पै॥
धूप दीप अन्नादि सु महा। इनें देय तौ कहियै कहा॥
देय असाधु बहुत हू जौ पै। में सन्तुष्ट होत नहिं तौ पै॥
सब वस्तुनि लै सुचि ह्वै आछें। कुस आसन पर बैठे पाछें॥
उत्तर कै पूर्व में करि मुख। कै बैठै प्रतिमा के सनमुख॥
तन में प्रतिमा में करि न्यास। कर सों मोहि पोंछें मम दास॥
जल घट दुतिया पात्र पुनि आहि। चन्दनादि करि अर्चै ताहि॥
मंदिर सामिग्री अपनौ तन। ताके जल करि सोध लेय जन॥
पात्र जलादिक सोत्रय भरै। पाद्याचमन अर्घ हित धरै॥
ते गायत्री करि मंतरै। हिय सिर सिखा मन्त्र उच्चरै॥
सोध देह कों पवन अग्नि करि। हिय पंकज थिति में सूक्ष्म हरि॥
ध्यावै ताहि सु पर्म प्रसिद्ध। नाद अन्त जाहि ध्यावति सिद्ध॥
तास कांति करि व्यापित देह। मन कहि ताहि पूजि सु सनेह॥
प्रतिमा में आवाहन करै। तन्मय ह्वै पूजन विस्तरै॥
पाद्य अर्घ आचमनीयादिक। सब ही सिद्ध करै न टरै इक॥
धर्मादिक नौ सक्तिन करि पुनि। आसन मेरौ रचै अहो पुनि॥
आठ दलनि कौ कमल आदिवर। उज्वल जा कर्णिका के शर॥
तामें वेदतन्त्र की विधि करि। भुक्ति मुक्ति हित मोहि जजै नर॥
पाँच जन्य हल मूसल माला। धनक वान अति गदा रसाला॥
कौस्तुभ श्री वत्सांक सुदर्शन। इन हू कौं पूजै प्रसन्न मन॥
चण्ड प्रचण्ड गरुड़ वलनन्द। बहुर महावल कुमुद सु नन्द॥
कुमुदेक्षन दुर्गा रु व्यास गुर। विस्कसेन गणेश और सुर॥
निज निज ठौर रु सन्मुख दूजै। अर्घादिक करि तिन कों पूजै॥
चन्दन केसर अगर उसीर। पुनि कपूर करि वासित नीर॥
मंत्रनि पढ़ि अन्हवावै नित्त। जौ घर में विभूति होय मित्त॥

बहु विधि मंत्रनि पढ़ि सुख पावै। तन रचि चित्र सुगन्ध लगावै॥
मेरी भक्त प्रेम करि आछें। पट भूषन पहिरावै पाछें॥
पाद्य आचमन अछित फूल। धूप दीप भोजन अनुकूल॥
मोदक पूवा खीरि सुहारी। थूली दही दारि अति प्यारी॥
माखन मिश्री अपैं मोहि। जौ धन होय कही में तोहि॥
मर्दन उबटनि दर्पन दांतुनि। पंचामृत सों स्नान सु भाँतिन॥
नृत्य गीत मांमां नित करै। उत्सव के दिन तौ नहिं टरै॥
विधि सों अग्निकुण्ड इक सचै। गर्त्त मेखला वैदी रचै॥
तामें बहुर अग्नि लै धरै। कर तें पुनि इकठौरी करै॥
कुस सों अग्नि छिरकत तदनंतर। विधि सों प्रोछनादिक कर्महिं करि॥
ढिग धरि होंम वस्तु छिरकावै। अग्नि माँहि पुनि मो कौ ध्यावै॥
तप्त कनक तन मन कों हरै। गदा चक्र दर अम्बुज धरै॥
सांत चतुर्भुज मन कों मोहैं। कमल की केसर सम पट सोहै॥
छुद्रघण्टका बाजूबन्द। खडूआ मुकट देत आनन्द॥
सुन्दर उर श्रीवत्स विराजै। कौस्तुभ मनि बनमाल विराजै॥
सारह रिचा कि मूल मंत्र करि। वस्तू लकरिया करि घीसो तरि॥
धर्मादिक हित होंमें आग। विधि सों मन्त्रनि पढ़ि बड़भाग॥
यौं सिर नाय पूजि हरि लेय। पार्षदनि के भेंट सु देय॥
मूल मन्त्र कौ जप पुनि करै। नारायन ब्रह्महिं उर धरै॥
चुरू दिवावै पंकजनेनहिं। दै अवसेश सु विश्वक सेनहिं॥
पान सुगन्ध सने देहि दूजै। पुनि पुष्पा जल करि हरि पूजै॥
पुनि मोहि सुमिरै नाचै गावै। मो कर्मनि के भाव दिखावै॥
सुनै सुनावै कथा हमारी। मगन ह्वै तजै विग्रता सारी॥
आरष पौरुष काव्य सुनावै। हरि प्रसन्न होहु कहि सिर नावै॥
हाथ जोरि सिर पायनि धरें। बहुरों ऐसें विनती करें॥
प्रभु में डरपि अनुसरयौ तोहि। मीच ग्राह तें राखौ मोहि॥

यह कहि सेख बस्तु जो आहि। मो करि दई धरै सिर ताहि॥
करयौ विसर्जन चाहै जौ पै। पहलै ठां पधरावै तौ पै॥
जामें यह जब श्रद्धा होई। तामें तब मोहि पूजै सोई॥
सबके आत्मा हम जो आहि। सब भूतनि में जानौ ताहि॥
वेद तंत्र करि यौं सु जजै जो। दुहू लोक में सिद्ध लहै सो॥
प्रतिमा हित द्रढ़ मन्दिर बानैं। फूलबाग पूजा हित ठानैं॥
हरि की पूजा सदा सु होन। अथवा बड़ उत्सव में जोन॥
देय हाट पुर खेत रु ग्राम। सो विभूति पावै अभिराम॥
बड़ नृप होंय प्रतिमा पधराएं। मिलै त्रलोकी मठ करवाएं॥
ब्रह्म लोक पूजा तें पावै। तीनौं करि मो सम ह्वै जावै॥
काम तजै अरु मोहि भजै जौ। मोही कों नर प्राप्ति होय तौ॥
भक्ति जोग कों पावै सोई। या विधि मोहि भजति है जोई॥
अपनी दई पराई दई। सुर द्विज की सु जीवका नई॥
जो कोई हरै सुकृमि ह्वै जाय। वर्ष हजारनि विष्टा खाय॥
कर्त्ता अनुमोदक रु सहायक। चौथौ बहुर कर्म कर वायक॥
देह तजै ए सबै सभागी। तारतम्य करि फल के भागी॥४८॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

अठाईसवाँ अध्याय

दोहा:—पहलें जो विस्तार सों, बरन्यो हो जदुराय।
ज्ञान जोग सो पुनि कहत, अठाईसें ध्याय॥ १॥

श्री भगवानुवाच—

प्रकृति पुरुष करि एक सरूप। ऐसौ देखै विस्व अनूप॥
और के कर्म सुभाव हैं जिते। नहिं निन्दै न सराहै तिते॥
और कौ कर्म स्वभाव जु आहि। जौ निन्दै रु सराहै ताहि॥
झूठे में सो मनहिं लगाय। ज्ञान तें बहुर भ्रष्ट ह्वै जाय॥

जैसें इन्द्री लीन होंय जब। नष्ट चेतना जीव होय तब ॥
स्वप्नहिं पाय सुषुप्ति समाय। त्यों हीं भेद द्रष्टि नर आय ॥
झूँठौ यह प्रपञ्च जो नामें। भलौ बुरौ कितनो कहौ तामें ॥
देख्यौ सुन्यौ रु ध्यायौ जितौ। मो बिन झूँठौ जानौ तितौ ॥
छाया प्रति धुनि पुनि आभास। झूठे हू अर्थहिं करत प्रकास ॥
यौं देहादिक झूठै जिते। मृत्यु प्रजंत देत भय तिते ॥
याते यह जग हरि ही जानौं। आप ही आपहिं सृजति सु मानौ ॥
आपही आपहिं पालन करै। आपहिं पुनि आपहिं संहरै ॥
आत्मा ते कछु न्यारौ नांहीं। झूठ ही जग आत्मा के माहीं ॥
गुनत्रय त्रिविधि विश्व जो आहि। माया रचि सु जानौं ताहि ॥
यह विज्ञान ज्ञान निष्टा जो। हमनि वही नर जान लेय सो ॥
पुनि काहू निन्दे नाहीं सराहै। रवि की ज्यौं धर मण्डल गाहै ॥
वेद प्रतिक्ष ज्ञान अनुमान। इन करि जग कौं झूठौ जान ॥
बहुरों उपजि बिलात है जातें। संग त्यागि नर विचरै यातें ॥

उद्धव उवाच

आत्मा अग्नि सौं अव्यय निगुन। सुद्ध स्वप्रकास न्यारौ पुनि ॥
जड़ समान यह देह जु आहि। तिनमें हरि संसार सु काहि ॥

श्री भगवानुवाच

जौ लौं देह प्रान इन्द्री पुनि। इनसों आत्मा कों संग है सुनि ॥
तौलौं यह जग झूठौ हू जो। अबिवेकी कों साँचौ सो सो ॥
जद्दिप कछू न वस्तु निधार। तौहू मिटत नाहिं संसार ॥
ज्यौं कोउ विषै ध्यान कौं धरै। झूठ स्वप्न दुख तास न टरै ॥
स्वप्न दुखद ज्यौं सोए ही कों। जागें कछू मोह नहिं जी कौ ॥
जन्म मृत्यु भय सोकादिक जे। आत्महिं नहिं हंकारहिं ही ते ॥
तन मन इन्द्री प्रानभिमानी। गुन कर्मनि में मूरति सानी ॥
सो जीवात्महिं बहु विधि गावति। सो हरि के बस जगमें धावति ॥

मन तन प्रान बचन मय अहो। झूठौ जग बहु रूपी लहौ ॥
गुरुहिं सेय पैनाय ज्ञान मुनि। ताहि काटि निष्काम फिरै मुनि ॥
जगत प्रकासक कार्ण जोई। तिनतें जग न्यारौ नहिं होई ॥
तप श्रुति गुरु प्रतिछ्र अनुमान। इन करि यह विवेक सोइ ज्ञान ॥
ज्यौं बहु रूप कनक अभिराम। भए विवहार हेत बहु नाम ॥
आदि अन्त मधि स्वर्ण ही जैसें। जग के आदि अन्त हम तैसें ॥
कार्ण कार्ज कर्त्ता रूप। त्रिगुन त्रिवस्था जगत अनूप ॥
जा चौथे करि ब्यापित न्यारौ। सोई ज्ञान घन साँचौ भारौ ॥
जो नहिं आदि अन्त मधि मांही। नाम मात्र ही साँचौ नाहीं ॥
जा ते प्रगट प्रकासति जो जो। हमरे मत सोई है सो सो ॥
पहलै यह जग कछू न आहि। भासति बहुर ब्रह्म लखि ताहि ॥
पंच-भूत मन इन्द्रियादि जे। स्वप्रकास ब्रह्मौ भासति ते ॥
ऐसें प्रगट ब्रह्म कौं जानैं। तन में आतम बुद्धि नहिं ठानै ॥
संसै काटि तजै सब काम। आनन्द पाय होय उपराम ॥
पंच तत्व इन्द्री सुर प्रान। मन बुधि चित्त अहंकृति आन ॥
अन्न मात्र तन धरनि विकार। ये नाहिन आत्मा निर्धार ॥
मेरौ रूप विचारयौ जिहिं नर। इन्द्रिन की फैलनि सिमटनि करि ॥
ताहि कछू गुन दोष न ऐसें। आए गए घन रवि कौ जैसें ॥
जैसें चारि तत्व रितु के गुन। आए गए तिन नभहिं कहा पुनि ॥
त्यौं निरहंकारी अछर जो। सत रज तम करि ताहि कहा सो ॥
माया-रचित विषै के माहीं। तउ तब लौं संग करै सु नाहीं ॥
जौ लौं भक्ति जोग दृढ़ पाय। मन की नहिं न मलिनता जाय ॥
ज्यौं जो रोग भलैं नहिं जावै। सो पुनि पुनि ह्वै तबहिं सतावै ॥
यौं जो मन निर्मल नहिं होई। पुनि पुनि जनहिं देत दुख सोई ॥
अंत राय देवनि कृत पाय। जोग तें भ्रष्ट होय जो जाय ॥
सो पहलें अभ्यासहिं धरै। जोग करै न कर्म विस्तरै ॥

संस्कार करि नर निर्धार। कर्म करै पुनि गहै विकार॥
रहि निष्काम विदुष तन माहीं। कर्म विकारहिं पावै नाहीं॥
बैठत उठत चलत पुनि खात। मूतति सोवत जगत अन्हात॥
तन हू कों सो सुमिरै नाहीं। जिन मन लाय दयौ मो माहीं॥
झूठै इन्द्री विषै जु आहि। बुधिमान जौ देखै ताहि॥
तउ बस्तु करि लखै न ऐसें। जागें तें सुपनें कों जैसें॥
ये अज्ञान कि ये देहादिक। गुन कर्मनि करि अचिरज से इक॥
पहल आत्मा करि भर भजौ। बहुरौं ज्ञान पाय सो तजौ॥
आत्मा तौ गहबे में नाहीं। पुनि नाहीं त्यागनि हूँ माँहीं॥
ज्यौं रवि तमहिं निवारि प्रकासै। ऐसें ज्ञान बुधि तम नासै॥
अद्वै एक अवाच्य अपरमित। स्वप्रकास अनुभवी महा नित॥
बचन प्रान जिहं प्रेरे चलौ। सो उतकर्ष आत्मा भलौं॥
एक आत्मा माँहि भेद जो। यह सब मन ही कों भ्रम है सो॥
जातैं इक आत्मा बिन अहो। भेदहिं निज कछू आश्रै लहौ॥
पंच तत्व मय जग जो आहि। नाम रूप करि गहीयतु ताहि॥
ताकों जे नस्वर नहिं जानें। व्यर्थ विदुष ते आपहिं मानें॥
जाकौ जोग सिद्ध नहिं भयौ। बीच ही रोगनि नें ग्रसि लयौ॥
तौ रवि चन्द्र धारना धरै। ता करि ताप सीत कौं हरैं॥
वायु धारना जुति आसन करि। वाय आदि रोगनि डारै हरि॥
तप रु मन्त्र औषद कौं करै। कछुक देह दुख तिनसों हरै॥
कछुक हरै मम ध्यान लगाय। कछुक मोर नाम गुन गाय॥
और असुभ के दाता जिते। जोगिन के सेवन करि तिते॥
कोई करि बिविध उपाय महान। तन कों करैं निरोग रु ज्वान॥
पुनि परकाय प्रवेशादिक जे। तिन सिद्धिन कों जत्न करत ते॥
तिनकों निपुन न आदर करें। व्यर्थ ही ते सु दुखनि कों भरें॥
द्रुम कौ ज्यौं आत्मा अस्थाई। तन तौ फल ज्यौं जाय बिलाई॥

जोग करत तन द्रढ़ होय जौ पै। मत्पर बुद्धिमान नर तौ पै॥
तायौं गहि पुनि छोड़े नाँहीं। मन न लगावै तन के माहीं॥
ह्वै निष्काम सरन मम आयौ। निजानन्द अनुभौ करि छायौ॥
सो जो ऐसें जोगहिं करै। तौ ताहि अन्तराय नहीं परै॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
अष्टाविंशतमोऽध्यायः॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

दोहा—भक्ति जोग निज भक्त कौं, उनतीसे ऽध्याय।
कह्यौ मुख्य करि कै अहौ, सुन्दर श्री जदुराय॥ १॥

उद्धव उवाच—

जिन मन बस नहिं कियौ मुरारी। ताहि जोग यह दुष्कर भारी॥
तातें सिद्धि बिना श्रम पैयै। सो मोहि सुगम उपाय सुनैयै॥
अहो जोगी मन बस कियौ चाहै। ताहिन ते बहु दुख अवगाहै॥
सुख सों निपुन तिहारे पाय। सेवत जे सुख देत अघाय॥
कर्म-जोग करि गर्वहिं पगे। ते प्रभु तुम्हरी माया ठगे॥
जे अनन्य प्रभु दास तिहारे। तिनके तुम आधीन सु भारे॥
यह तुममें अचरज नहिं यातें। बानर मीत किये तुम यातें॥
ब्रह्मादिक सुन्दर मुकटनि करि। तुमरे पाय पलोटति हे हरि॥
तुम हरि सबके आतमा प्यारे। भक्तनि देत अर्थ पुनि सारे॥
को कृतज्ञ प्रभु तुमकों तजै। धन सुख हित पुनि औरहिं भजै॥
जो लोटत तुव पद रज माहीं। तिनकौं कहौ मिलै कहा नाहीं॥
तुम प्रभु सबके बाहर भीतर। गुरु अंतरजामी सरूप करि॥
असुभ टारि निज रूप दिखावत। सुमिरत निपुन महा मुद पावत॥
पै विधि हू की आयुर्दा करि। तुव उपकार करि सकै नहिं हरि॥

श्री शुक उवाच—

प्रेमी उद्धव पूछी ताहि। जगत—खिलौना जाकौ आहि॥

एक कृपा करि मूरति धारी। प्रेम सों बोले हँसत मुरारी॥

श्री भगवानुवाच—

मंगल रूप धर्म मेरे जे। हे उद्धव अब तोहि कहौं ते॥
जिनकौं श्रद्धा करि साधै जब। दुर्जय मृत्यु हू जीत लेय तब॥
तन मन की रति मो में धरै। संकल्प रु विकल्प परिहरै॥
मेरे अर्थ कर्म सब साधै। हरें हरें मोकों आराधै॥
पुन्य देस मम साधु रहै जहाँ। मेरौ जन हू बास करै तहाँ॥
सुर नर असुर जु भक्त हमारे। तिनके कर्म करै पुनि प्यारे॥
मम उत्सव मिल करि कें न्यारौ। नाचि गाय कैं करै सु भारौ॥
सब बाहर भीतर मोहि ऐसें। मो जन लखै गगन कौ जैसें॥
यह धरि भाव सबै सनमानें। केवल ज्ञान द्रिष्टि इक ठानें॥
द्विज सेवी द्विज धन कों हारी। सुखद दुखद द्विज नीच मँझारी॥
रवि में बहुर पतंगा माहीं। पंडित सो जो विषम है नाहीं॥
नर में नित मम भाव धरै जो। स्पर्द्धादिक सों छूटि परै सो॥
निज जन हँसें न तिनें विचारैं। उत्तम नीच द्रष्टि नहिं धारैं॥
काहू तें लज्जा नहिं पावै। गधा स्वान नीचहिं सिर नावै॥
जौ लौं सब भूतनि के माहीं। मेरौ भाव होत है नाहीं॥
तौ लौं मम तन बचननि द्वार। ऐसें बरते नर निर्द्धार॥
ऐसें ईसुर द्रष्टि जु करै। सबै ब्रह्म भासै ता नरै॥
तब तजि संसै अति अभिराम। सबतें होय रहै उपराम॥
सबमें मेरौ भाव जु सत्तम। मेरे मत इक यही सु उत्तम॥
है निष्काम धर्म मम निर्गुन। निश्चै ताकौ नास नहीं पुनि॥
व्यर्थ हू श्रम निष्काम होय जो। अर्पै मोहि तौ धर्म होय सो॥
अहो विबेक चातुरी यहै। छन भंगुर तन करि मोहि लहै॥
बेद सार यह देवनि दुर्लभ। सो हम मीत कह्यौ करि सुल्लभ॥
यह हम तुम सों कह्यौ ज्ञान बर। संसै तजि ताहि छूट जाय नर॥

यह हम तुमरौ प्रश्न जु आहि। भले कह्यौ जो धारै याहि॥
सो परब्रह्म सनातन पावै। जाकौ भेद न बेदहिं आवै॥
मेरे भक्तहिं देय जु याहि। अहो मैं देहूँ अपनपौ ताहि॥
यह अति सोधक पर्म पवित्र। याकौ पाठ करै जो मित्र॥
सो दिन दिन पवित्रता पावै। ज्ञान दीप करि मोहि दिखावै॥
जो श्रद्धा करि सावधान ह्वै। बहुरौं मो में पर्व भक्ति कै॥
निसिदिन याकों सुनें सु आछें। कर्मनि करि सो बँधै न पाछें॥
अहो मीत तुम ब्रह्म लह्यौ अब। मन कौ मोह रु सोक गयौ सब॥
नास्तिक सठ दम्भी श्रद्धा बिन। पुनि अभक्त सों यह कहियौ जिन॥
द्विज सेवी सुचि साधु सचाह। तासों बरन सुनैयौ याहि॥
तिय शूद्रनि के भक्ति लहौ जौ। तिन हूँ सों हे मीत कहौ तौ॥
जानै याहि जानि सब लियौ। अमृत पियै ज्यौं सब ही पियौ॥
ज्ञान कर्म अरु जोग सुखेन। कृष्णादिक पुनि सिछा दैन॥
चारि अर्थ नर कों बिस्तारें। सो हम ही आहि तिहारै॥
जब नर सब कर्मनि कौ तजै। अर्पि अपनपौ मो कौ भजै॥
तब मो करि बिसेष ह्वै जावै। तजि संसारहिं मोकों पावै॥

श्री शुक उवाच

यौं उद्धव हरि की सुनि बानी। जग मार्ग की गति दर्सानी॥
अश्रु पुलक ह्वै गद्गद भयौ। हाथ जोरि जड़ सौ रहि गयौ॥
प्रेम सों छुभित चित्त जो आहि। बहुर धीर्य्य करि थांभ्यौ ताहि॥
मन मैं कृत्यकृत्य ह्वै गयौ। पगनि धारि सिर बोलति भयौ॥

उद्धव उवाच

मोह अँध्यारौ मेरौ छयौ। सो प्रभु तुव ढिग ही तें गयौ॥
ज्यौं प्रभु रवि के निकट जाय जब। जाड़ौ तम भय कहा करै तब॥
अहो विज्ञान दीप जो आहि। भृत्यहिं दयौ कृपा करि ताहि॥
को कृतज्ञ जो तुव पद त्याग। और की सरन जाय बड़भाग॥

सृष्टि बढ़नि हित निज माया करि। वृष्न्यंधक जादवनि माँहि हरि ॥
तुम जो स्नेह पास बिस्तारी। ज्ञान खण्ड करि काटि सु डारी ॥
हम तुमकौं सु नवावति सीस। दासहि कछू सिखैयै ईस ॥
ज्यौं तुव चरन कमल के माहीं। रति उपजै जो नासैं नाहीं ॥

श्री भगवानुवाच

बद्रीनाथ जु धाम हमारौ। हे उद्धव तुम तहाँ पधारौ ॥
मम चरनोदक गंगा तामें। दरस परस अरु न्हाय सु तामें ॥
ह्वै निष्पाप वकुल धारौ तन। फल खावौ सुखते काढ़ौ मन ॥
द्वंद्वनि सहित सुसीलता धरौ। सांत होय इन्द्री बस करौ ॥
पुनि एकाग्र बुधि करि डारौ। नित्य ज्ञान विज्ञानहिं धारौ ॥
मो तें पुनि सीख्यौ है जोई। नित हीं भलौ बिचारौ सोई ॥
मेरे धर्म माहि निष्ठा करि। बानी चित्त मोमें दीजै धरि ॥
तब तुम तीनि अवस्था त्याग। हमकों पैहौ हे बड़भाग ॥

श्री शुक उवाच

सुनि उद्धव पायनि में नयौ। परिकर्मा पुनि करत सु भयौ ॥
है निर्द्वन्द्व तउ तिहिं बार। हरिहिं भिजाय दए द्रग धार ॥
दुस्तज हरि के विरह सु माहीं। कायर छोड़ि सकत सो नाहीं ॥
हरिष राउ सिर पर धरि चल्यौ। पुनि पुनि नवति विरह कलमल्यौ ॥
तेई हरि हिय में धरि लए। बहुर बद्रिकाश्रम कों गए ॥
तहाँ तप करि हरि की गति पाई। जा विधि सों हरि देव बताई ॥
सुख समुद्र जुत ज्ञान अमृत जो। कृष्णचन्द्र दासहि बरन्यौ सो ॥
श्रद्धा करि जो सेवै याहि। ताकें संग तें जग मिटि जाय ॥
जिन विज्ञान ज्ञान श्रुति सार। भव भय हरन कियौ उद्धार ॥
अमृत ज्यौं निज भक्तनि प्यावति। ता प्रभु कृष्णहिं हम सिर नावति ॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
ऊँतीसमोऽध्यायः ॥२६॥

तीसवाँ अध्याय

दोहाः—मुसल श्राप छल करि अहो, यह तीसेंऽध्याय।
निज कुल अंतरहित कियौ, सुन्दर श्री जदुराय ॥१॥

श्री राजोवाच

महाभाग उद्धव गवनें जब। पुर में श्री हरि कहा कियौ तब।
श्राप लगै सबकों सुखदाई। कैसें हरि निज मूर्ति दुराई॥
तियनि के नैंन पगे जा माहीं। बहुर छुटाय सकीं ते नाहीं॥
जो संतनि के काननि सौं लगि। नहिं निकसी मन माँहिं रहीं पगि॥
पुनि ताकौं जो कविजन गावैं। तिह बानी में रति उपजावैं॥
अर्जुन के रथ पै जो जाहि। देखि मरयौ तिन पायौ ताहि॥

श्री शुक उवाच

अन्तरीछ धर गगन मँझारी। होन लगे उत्पात सु भारी॥
कृष्ण सुधर्मा सभा मांहि ते। देखि जादवनि वचन कहे ये॥

श्री भगवानुवाच—

अहौ देख्यौ जम-धुजा समान। ये उत्पात सु घोर महान॥
तातें हे जादव पुर माँही। दोय घरी हू रहिवै नाहीं॥
बालक वृद्ध त्रिया पुनि जितीं। संखोधारहिं जाहु सु तितीं॥
हम सबरे जैहैं प्रभास जहाँ। पच्छिम वाहिनी सरस्वती जहाँ॥
जाय अन्हाय करै व्रत दूजै। अर्गजादि करि देवनि पूजै॥
मंगल माय द्विजनि कौ पाछें। हय गयादि दै पूजै आछें॥
गो द्विज देवनि की पूजा जो। विघन नासनी मंगल निधि सो॥
सुनि सब समुद तरे नावनि करि। गए प्रभासहि चढ़ि रथनि पर॥
तहाँ जदुराय की आज्ञा करी। परम भक्ति सौं मंगल भरी॥
पुनि अदिष्ट करि भ्रष्ट भई मति। मति भ्रंसक मद पियौ मधुर अति॥
मत्त भए हरि माया मोए। गर्वित चित्त क्रोध करि गोए॥
कीनी कलह लरे पुनि पाछें। गदा खड्ग सर सेलनि आछें॥

हय गय रथ भैंसा खर खच्चर। दुर्मद भरे चढ़े इन ऊपर॥
सरनि सों लरत परस्पर ऐसें। दाँतनि सों बन में गज जैसें॥
तहाँ प्रद्युम्न सांब रिस रचे। पुनि अक्रूर भोज रन मचे॥
सात्यकि अरु अनिरुद्ध लरत ज्यौं। पुनि सुभद्र संग्राम जीत ज्यौं॥
हूँ गद नाम महा रिस धरें। बहुर सुमित्र सु रथ त्यौं लरैं॥
औरौ हरि करि मोहि तजि ते। ह्वै मदान्ध मिलि लरत सु तिते॥
माथुर सूरसेन दासर्हक। त्रिष्णि भोज मधु सात्वत अंधक॥
कुकर विसर्जन अर्बुद जिते। तजि सौहृद मिलि लरें सु तिते॥
मित्र कौ मित्र भ्रात कों भ्रात। सुहृद को सुहृद जात कों जात॥
बन्धु कों बन्धु तात कों तात। मारें नेंकु न बूझैं बात॥
निवरे बान धनुष करि परें। सस्त्र भए छै मूकिन लरें॥
लए पटेर वज्र से पाछें। तिनसों लरें परस्पर आछें॥
राम रु स्याम बचावनि आए। मूढ़ तिन्हू कों मारन धाए॥
राम स्याम हू कोपे भारे। मुक्की पटेरनि ही करि मारे॥
विप्रनि करि श्रापित ते आछें। हरि माया करि मोहित पाछें॥
स्पर्द्धा रिस करि छै भए ऐसें। बांस आपनी अग्नि सों जैसें॥
यौं सब निज कुल नष्ट भयौ जब। धर भर उतरयौ हरि मान्यौ तब॥
राम जू जल तट ध्यान लगाय। आप ही अपनै माहिं समाय॥
नरलोकहिं तजि दयौ सुजान। लखि चुप भए कृष्ण भगवान॥
बैठे इक पीपर तर जाय। चारि भुजा रहे तेज सु छाय॥
सब दिसि करत उजारौ ऐसें। बिन धूंवा की अग्नि सु जैसें॥
श्रीवत्सांक सुखद घनस्याम। द्वै पटपीत परम अभिराम॥
तप्त स्वर्ण - सम कान्ति विराजै। बदन कमल मुसिकनि छवि छाजै॥
नील - अलक मकराकृत कुण्डल। छुद्रघण्टिका ब्रह्म सूत्र भल॥
खडुवा अंगद मुकट सु ढार। नूपुर मुदरी कौस्तुभ हार॥
कमल नैंन बनमाला धरै। मूर्तिमान आयुध कर करै॥

कमल सौ अरुन वाम पग आहि। धरयौ दाहने उरू ताहि॥
मुसल सेख लोहे की भाल। सो सर जरा वधिक तत्काल॥
मृग के मुख सम चरन निहारि। ताकों तिन तान्यौं निर्धारि॥
देखि चतुर्भुज प्रभु को डरयौ। कियौ पाप कहि पायनि परयौ॥
बिन जाने में पापी पाप। कीनौ छमा करौ प्रभु आप॥
हे प्रभु पुनि पुनि सुमिरण तेरौ। दूर करै अज्ञान अँधेरौ॥
ता तुमरौ अपराध सु करयौ। मैं मृग लोभी पायनि भरयौ॥
मोहि वेगि ही मारौ याते। पुनि अस पाप होय नहिं जाते॥
जो तुमरौ माया चरित्र जो। सिव ब्रह्मादिक हू न लखै सो॥
तौ हम पापी कैसे जानें। तुमरी माया करि लपटानें॥

श्री भगवानुवाच—

अरे जरा तू उठि डरपै मति। तें तौ कीनौ मेरौ ई मत॥
मो अज्ञा ते तुम जावौ तहाँ। सुकृतिन कौं अस्थान स्वर्ग जहाँ॥
इच्छा रूप मूर्त्ति है जिनकी। जरा वधिक बानी सुनि तिनकी॥
दै परिकर्मा सीस नवायौ। चढ़ि विमान स्वर्गहिं पुनि धायौ॥
दारुक नाम सारथी जाई। कृष्णहिं ढूँढ़त डोलत साई॥
तुलसी की सुगन्ध कौं पाय। हरि के सनमुख आयौ धाय॥
पीपर तर जदुराय विराजैं। कान्ति छए कर आयुध राजैं॥
तिन्हैं देखि मन प्रेम भिगानौ। कूदि रोय पायनि लपटानौं॥

दारुक उवाच—

प्रभु तुव पद पंकज बिन देखें। दृष्टि सु नष्ट भई कहा पेखें॥
सान्ति न होय न सूझति दिसि यौं। निसि में छिपै निसाकर के ज्यौं॥
ऐसें कहत सूत के रथ ज्यौं। अस्व ध्वजा जुति गगन गयौ सो॥
दिव्य अस्त्र हू गए ता पाछें। विस्मित भयौ सूत लखि आछें॥
तब हरि कही सूत तुव जावौ। द्वारापुर सब कथा सुनावौ॥
कुल कौ नास भ्रात की बाता। पुनि मम दसा कहौगे ताता॥

हम करि तजी द्वारिका माहीं। तुम बन्धुनि कौ रहिवै नाहीं॥
समुद्र हू ताहि डुबैहै अबै। ताते निज वस्तुनि लै सबै॥
इन्द्रप्रस्थ अर्जुन संग जावौ। यही मो माता पितहिं सुनावौ॥
तू मम-धर्मनि में रति ठान। यह मो माया रचना जान॥
ज्ञान-निष्ठ ह्वै कामनि त्यागै। वृथा सोक तजि मोकों पागै॥
सुनि परिक्रमा दै सिर नायौ। होय विमन द्वारावति आयौ॥
इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
तीसमोऽध्याय: ॥ ३० ॥

इकतीसवाँ अध्याय

दोहा—गमन कियौ निज धाम हरि, इकतीसें ऽध्याय।
बसुदेवादिक हू गए, तिहिं पाछें हरषाय॥ १॥

श्री शुक उवाच—

तहाँ तब ब्रह्मा जू आए पुनि। इन्द्रादिक मुखिया प्रजेस मुनि॥
पितर, सिद्ध चारन गन्धर्व। जक्ष रक्ष विद्याधर सर्व॥
द्विज अप्सरा रु किन्नर आए। हरि लीला देखन हरषाए॥
हरि के जन्म कर्म को गावैं। प्रीति सहित फूलनि बरषावैं॥
श्री हरि जू ब्रह्मा को पेखैं। निज विभूति इन्द्रादिक देखैं॥
राखि अपुनपौ अपुन मँझारी। नैंन कमल से मूँदि सुरारी॥
निज तन लोकनि कौ अभिराम। ध्यान धारना कौ सुख धाम॥
बिन जारें ताहि जोग अग्नि करि। अपने धाम प्रवेश कियौ हरि॥
स्वर्ग माँहि दुन्दुभि धुनि छई। फूलनि की पुनि वर्षा भई॥
धर्म धीर्ज श्री सत्यकीर्ति पुनि। हरि के संग गई अहो राज मुनि॥
जानी जात जास गति नाहीं। सो पैठत अपने पुर माहीं॥
ब्रंह्मादिक नहिं देखति भए। ते तब अति विस्मै करि छए॥
हरि गति सुरनि लखी नहीं ऐसें। नभ में नर बिजुरी गति जैसें॥
ब्रह्मादिक लखि अचिरज छए। निज निज घरनि सराहत गए॥

सबके परें कृष्ण भगवान। तास प्रगटता अन्तर्ध्यान॥
माया करि अनुकरन मात्र यौं। हे राजन नट की चेष्टा ज्यौं॥
जो आपै रचि जुक्त अपारा। ह्वै प्रविष्ट पुनि करत बिहारा॥
अन्त समें पुनि ताकों दहै। निज महिमा करि आपै रहै॥
जो यमधाम गयौ गुरु सुत जो। याही तन करि लै आए सो॥
पुनि तुम ब्रह्म अस्त्र नें जारे। तातें तिहीं कृपाल उबारे॥
जो अन्तक के अन्तक रूप। ते सिवतिन जीते हे भूप॥
वधिक सदेह स्वर्ग पठयौ जिन। ताकी निज रक्षा में सक्ति न॥
जो इकले सब शक्तिनि धरै। जग थिति उत्पति अप्यय करै॥
दै बाकी निज बपु जो रह्यौ। ताहि प्रगट राखनि नहिं चह्यौ॥
अहो या प्रगट देह करि कहा। भक्तनि यह दिखवत गति महा॥
यह उत्तम हरि पदवी आहि। जो कोऊ परम भक्ति करि याहि॥
ह्वै एकाग्र प्रात नित पढ़ै। सो ताही पदवी कौ चढ़ै॥
दारुक नाम द्वारिका आयौ। कृष्ण विरह करि निपट सतायौ॥
उग्रसेन वसुदेव सु पाय। लपटि आंसुवनि दए न्हवाय॥
पुनि जदुवंस नास कहि दयौ। सुनि सबकौं चित व्यग्र सु भयौ॥
सोक मूर्छित सब नर नारी। कृष्ण विरह करि विह्वल भारी॥
रोवति पीटति आए तहाँ। बन्धु परे बिन प्राननि जहाँ॥
पुनि वसुदेव देवकी तिया। बहुर रोहिनी व्याकुल हिया॥
राम स्याम सुत देखे नाहीं। हाय विसुद्धि बूडीं दुख माहीं॥
जे जन कृष्ण विरह करि तए। ते तहाँ प्रांननि छोड़त भए॥
त्रिय निज निज पिय सों लपटाय। बैठी जाय चितानि बनाय॥
राम तियनि पिय कौ तन लियौ। लपटि प्रबेस अग्नि में कियौ॥
पुनि वसुदेव तिया पिय संग ज्यौं। प्रद्युम्नादिक तिय तिन संग त्यौं॥
रुकमिन्यादिक जे हरि नारी। धँसीं अग्नि तद्रूप सु भारी॥
श्री जदुराय मित्र प्यारे पुनि। तिनके बिरह दुखी भयो अर्जुन॥

सुन्दर वचन कृष्ण उर ल्याय। कछू अपनयौ लियौ सिराय॥
नष्ट बन्धु जे संतति हीन। तिनकी क्रीया सु अर्जुन कीन॥
सुन्दर श्री हरि मन्दिर आहि। हे महाभाग त्याग कैं ताहि॥
समुद नै पुरी बुडाई तब ही। कृष्णचन्द्र ने त्यागी जब ही॥
ता मन्दिर में श्री भगवान। रहत सदा सबही सुख खान॥
जो सब ही मंगल विस्तारै। सुमिरन ही तें असुभनि हारै॥
बाल वृद्ध त्रिय उबरे जे पुनि। इन्द्रप्रस्थ ल्यायौ ते अर्जुन॥
पुनि तहाँ बज्रनाभ जो आहि। राज्यभिषेक कियौ लै ताहि॥
जदुकुल नास आय कह्यौ अर्जुन। तुमरे अहो पितामह सो सुनि॥
तुमकौं सबरौ राज्य सु दियौ। आपुन गवन हिवालैं कियौ॥
हरि कौ जन्म कर्म जो गावै। श्रद्धा करि सो पाप मिटावै॥
या विधि हरि अवतार चरित्र। बहुरों बालचरित्र पवित्र॥
इहाँ कहे रु पुरानन माँहीं। जिनै गाय जो भूलै नाँहीं॥
तौ नर प्रेम भक्ति कौं लहै। पर्महंस गति हरि कौं गहै॥

दोहा:—श्री प्रियादास रस रासि की, पाय कृपा रसजानि।
अगम कियौ निपटै सुगम, एकादशहिं बखानि॥२९॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते परमहंस संहितायां वैयासक्यां मौसल नामैकत्रिंसतमोध्यायः॥३१॥

॥ श्री राधारमणो जयति ॥

द्वादश स्कन्ध:

प्रथम अध्याय

दोहा—रसिक भूप हरि रूप पुनि, श्री चैतन्य सरूप।
हृदै कूप अनुरूप रस, उम्हल्यौ बहै अनूप ॥ १ ॥
मगध बंस के नृप कहे, द्वादस पहले ध्याय।
भए बरन संकर सु ते, कलि प्रभाव कों पाय ॥ २ ॥

श्री परीक्षित उवाच

जदुकुल भूषन कृष्न जु आहि। अपने धाम गए ते ताहि ॥
कोन कों बंस भयौ धर में पुनि। यह हम सों सब कहौ अहो मुनि ॥

श्री शुक उवाच

बंस ब्रहद्रथ के पुनि पाछें। नाम रिपुंजय ह्वै है आछें ॥
ता कौ मंत्री सुनक जु आहि। सो वह अहो मारि कै ताहि ॥
अपनौ सुत प्रद्योत जु नाम। ताहि राज्य दैहै अभिराम ॥
ता कौ सुत ह्वै है पुनि पालक। तास बिसाख जू पतिह राजक ॥
तास नंदिबर्धन अभिराम। पाँचौ ये प्रद्योतन नाम ॥
इक सत बहुर बरष अठतीस। भोगि है धरनि अहो धरनीस ॥
तिन पाछै ह्वै है सिसुनाग। ता कौ काक बर्न बड़ भाग ॥
तास छेमधर्मा सु बिचार। तिंह छेत्रग्य तास बिधिसार ॥
बहुर अजातसत्रु सुत ताकें। ताके दर्भक अजय सु वाकें ॥
तास नंदबर्धन सुत जानौ। महानंदि सुत ताकौ मानौ ॥
ये सब साठ तीन सै बरषनि। पृथ्वी को भोगेगे हरषनि ॥
महानंदि सुत नंद सु जानौ। सूद्री गर्भ भयौ सो मानौ ॥
बड़ौ बली सेना कौ पालक। छत्रिन कौ मारक घर घालक ॥
ता ते सूद्र प्राय नृप ह्वै है। बहुर अधर्म माहिं रति कैहै ॥

तब ही एक छत्र कौ धरिहै । ताकी आग्या कहूँ न टरिहै ॥
सबनि को दंड सु दैहै ऐसें । दूजौ परसराम जनु जैसें ॥
तिहि सुत आठ सु माल्यादिक पुनि । भोगिहें धर सौ बरष राज मुनि ॥
इन नौ कौ कोई द्विज हतिहै जब । मौर्ज नाम राजा ह्वै है तब ॥
चन्द्रगुप्त इक मौर्ज जु आहि । सोई द्विज राज्य देयगो ताहि ॥
बारिसार सुत ह्वै है ताके । पुनि असोकबर्धन सुत वाके ॥
तिह सुजस तिह संगत जानौ । ता के सालिसूक सुत मानौ ॥
पुत्र सोमसर्मा भयौ ताकें । सतधन्वा सुत जनम्यौ वाकें ॥
तास ब्रहद्रथ ये दस ह्वैहैं । सौ तेतीस बरस धर खैहैं ॥
अग्निमित्र पुनि तास सु जेष्ट । पुनि बसुमित्र रु भद्रक श्रेष्ट ॥
तास पुलिंद घोष सुत ताके । तिहि द्विज मित्र भागवत वाके ॥
देवभूति तिह सुंग दसो ये । इक सत दस वर्षनि रहिहे ते ॥
बहुर अल्पगुन कन्व जात जें । हे नृप धरहि भोग करिहैं तें ॥
सुंग जात नृप देवभूति जो । महा अधम पर तिय लंपट सो ॥
कन्व जात बसुदेव महान । बुधिमान सो तास दिवान ॥
तिन ताहि मारि राज्य अपु कीनौ । तास पुत्र भूमित्र नवीनौ ॥
तिहि सुत नारायन सुव चार । तास सुसर्मा भए ये चार ॥
पेंतालीस तीन सै बर्षनि । करिहैं धर कौ भोग सु हर्षनि ॥
कान्व सुसर्मा नाम जु आहि । ताकौ भृत्य मारि कै ताहि ॥
बली नाम पुनि सूद्र असाधु । कछु दिन ह्वै है नृप हे साधु ॥
कृष्न नाम पुनि ताकौ भ्रात । ह्वैहै राजा अति विख्यात ॥
पुनि श्रीसांतकर्न सुत ताके । ह्वैहै पौर्नमास सुत वाके ॥
लंबोदर तिंह चिबिलक जान । मेघ स्वाति तिह तिह अटमान ॥
पुनि अनिष्टकर्मा सुत ताकें । तिंह हालेय तलक सुत वाके ॥
तास पुरीष भीरु सुत जानौ । ता कौ पुत्र सुनन्दन मानौ ॥
तास चकोर नवो सिवस्वात । तास गोमती सुत विख्यात ॥

पुरीमान तिहि भेद सिरा हुव। सिवस्कंद तिह जग्य श्री सुव॥
तास बिजय तिह चन्द्र बिग्य जे। तास सलोमधि भूप तीस यें॥
छप्पन और चार से बर्षनि। करि है धर को भोग सु हर्षनि॥
अवभृतिपुर नृप सात अभीर। ह्वैहें दस गर्दभी सु धीर॥
पाछें सोरह कंक सु ह्वैहै। आठ जवन पुनि राज सु कैहै॥
बहुरौ चौदह आहि चतुष्कर। पाछें दस गुरंड हे नृप बर॥
ये पेसठ नृप ह्वै है हर्षनि। एक घाट ग्यारह से बर्षनि॥
बहुरौ ग्यारह मौन सु ह्वैहें। बर्ष तीन से ते धर खैहै॥
बहुर प्रवीरक पुनि जसनंद। भूनिनन्द बंगिर सिसुनंद॥
ये किलकिला पुरी में ह्वैहैं। इकसत छह बर्षनि धर खैहै॥
तिनके तेरह सुत बाल्हिक हुव। पुष्पमित्र को दौर्मित्र सुव॥
इनतें खंड मंडली नृप ह्वै है। निज पुर नामनि जाने जैहै॥
सात आंध्र पुनि कौसल सात। नैषध पुनि बिदूर्ज पति ख्यात॥
मगध भूप विस्फूर्जि नाम जो। म्लेछ से सबै बरन कहिहै सो॥
दुर्मति बली सु छत्रिन मारि। सूद्रनि पालिहै सु निधारि॥
पद्मवती पति राज तहा लों। हरिद्वार ते प्राग जहाँ लों॥
सोरठ सूर अभीर उजेन। अर्बुद बहुर माळुवौ ऐंन॥
ह्यां के द्विज पुनि राजा जिते। सूद्र प्राय ह्वै जैहें तिते॥
सिंधु चन्द्रभागा कास्मीर। पुनि कौंती हूँ को है धीर॥
बेद क्रिया करि हीन सूद्र जे। म्लेछ से तिनें भोग करिहें ते॥
ये सब म्लेछ प्राय नृप ह्वैहै। झूठ अधर्म माहि रति कैहै॥
थौरौ देह घनी रिस धारें। गो द्विज बाल तियनि को मारें॥
पर तिय पर धन को पुनि हरिहै। लघु बल उपजि बेगही मरिहै॥
संस्कार नहिं क्रियानि भरिहैं। रज तम गुन करि भछन करिहै॥
प्रजा तिन्ही के मत अनुसरिहै। ते मलेछ नृप भच्छन करिहै॥
आपस तें पुनि नृपनि द्वार करि। दुःखित होय प्रजा जैहें मरि॥

इति श्री भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय

दोहा—लखि कलि दोष भए प्रगट, कल्की दूजै ध्याय ।
नष्ट भए पापिष्ट जन, गयौ सत्यजुग आय ॥ १ ॥

सुमिरन सत्य सौच बल धर्म । आयु छमा पुनि उत्तम कर्म ॥
बली काल करि दिन दिन माहीं । हे नृप ये सु छीन ह्वै जाहीं ॥
गुन आचार जन्म अधिकाई । कलि में इक धन ही में छाई ॥
धर्म न्याय के विवरन माहीं । बल ही हेतु और कोऊ नाहीं ॥
रुचि ही तिय पति भाव मँझारी । लेंन देंन में कपट ही भारी ॥
नर नारी में रति सुघराई । द्विज के डोरा की अधिकाई ॥
चिन्ह हीं एक आश्रमनि माहीं । आपस में कहूँ प्यार सु नाहीं ॥
न्याव माहिं नर निधन हारि है । पंडित सो जो गाल मारिहै ॥
पाषंडी को साधु कहैंगे । कहि असाधु निर्धनहि दहेंगे ॥
इक स्वीकार ही व्याह सु नाम । स्नान ही सब भूषन अभिराम ॥
तीरथ दूर के जल सों कहिहैं । पेट भरनि पुरुषारथ लहिहैं ॥
बार राखिबो सुंदरताई । बहुर ढीढ़ता ही सु सचाई ॥
जस के हेत धर्म सब धारें । तेई चतुर कुटंब जे पारें ॥
ऐसी दुष्ट प्रजा सब ह्वै है । धरनी मंडल छाय सु लैहैं ॥
द्विज छत्री बिट सूद्रनि माहीं । बली होय ते राज कराही ॥
लोभी भूप दया नहिं करिहै । नित धन निज प्रजानि कौ हरिहै ॥
ते तब गिर बन में उठि जैहें । कंद मूल फल बीजनि खैहें ॥
भूख प्यास चिंता संताप । सीत व्यार बरषा पुनि ताप ॥
दुख अकाल करि ह्वै है पीड़ित । तीस बरस की आयु बड़ी अति ॥
यों कलिजुग के देस सु छैहैं । तिन करि जबनर छीन सु ह्वैहैं ॥
जब बर्नाश्रम धर्म नसाय । बहुरौ बेद मार्ग मिट जाय ॥

चोर प्राय जब ह्वैहैं नरपति। पुनि पाखंड धर्म ह्वैहै अति॥
जब नर नाना वृत्तिनि करिहैं। चोरी हिंसा झूठ बितरिहैं॥
बर्न तो सूद्र प्राय जब ह्वैहै। गाय बकरिया सी ह्वै जैहै॥
जब तिय बंधु होयगे प्रान। आश्रम ह्वैहे गृही समान॥
जब सब अन्न छीन ह्वै जैहैं। छोकर प्राय बृछ पुनि ह्वै है॥
जब केवल चमकैगी दामिन। खर से ह्वै जैहै नर भामिन॥
तब कलि अंत प्रगटहैं जग पति। धर्म त्रान हित सुध सत्व मति॥
सब के गुरु आत्मा हरि ईस। तिनकौ जन्म अहौ अवनीस॥
साधु धर्म की रच्छा हेत। ता करि बहुर मुक्ति कौं देत॥
कल्कि प्रगटहैं संभलग्राम। द्विजबर विष्नुजसा के धाम॥
आठ ईसता गुननि रहे बढ़ि। बेगि ही देवदत्त हय पै चढ़ि॥
खड्ग सो चोर समान जु भूप। हतिहें कोरनि कल्कि अनूप॥
पुनि सब के मन निर्मल ह्वैहैं। हरि तन राग सुगन्धहि पैहै॥
त्वमूर्त्ति हरि हिय ऐसें जब। सब के बंस पुष्ट ह्वैहैं तब॥
कल्कि प्रगटे सतजुग ह्वैहै। प्रजा सात्विकी सब ह्वै जैहै॥
तब सतजुग जब एक रासि गति। ह्वैहैं रबि ससि पुष्प वृहस्पति॥
भूत भविष्यत वर्त्तमान जे। रबि ससि बंसी भूप कहे ते॥
तुम ते लै नृप नंद जहाँ लौं। पंद्रह सै दस बर्ष तहाँ लौं॥
सप्त रिषिन मधि गगन माहि जो। पहलें उदै होत तारे दो॥
तिन मधि निसि में एक नक्षत्र। लखियत दुहू बरोबर तत्र॥
ताही के संग सप्तरिषी जें। नर के सौ बरषनि सु रहति ते॥
तुमरे आगे ते रिषि सबै। रहत मघा के आश्रें अबै॥
सुध सत्वमय कृष्न दुरे जब। पाप भरयौ कलिजुग आयौ तब॥
हरि पग प्रगट रहे धर जो लौं। कलि भाव कछु कियौ न तौ लौं॥
सातौं रिषि मघानि तजिहैं जब। दिव्य बरष बारह सै कलि तब॥
पूर्बाषाढ़ा प्रति जैहैं तब। नंद तें लै कलिजुग बढ़िहै तब॥

पुनि अप्रगट भए हरि जा दिन। बुधि जानति कलि आयौ ता दिन॥
हे नृप सहस दिव्य बरषें जब। बीतेंगी सतजुग ह्वै है तब॥
नरनि के हिय में झलकेंगे हरि। यह मनु बंस कह्यौ हे नृप वर॥
बिप्र वैस्य सूद्रनि के बंस। यौं ही जुग जुग में सु प्रसंस॥
ये महामना पुरुष जे कहें। नाम मात्र जस ही धर रहे॥
ससि बंसी देवापि सु भूप। रबि बंसी मरु परम अनूप॥
ते दोऊ महा जोग बल धरैं। बास कलाप गाव में करैं॥
ते कलि अंत सीख हरि पै हैं। पहले से सब धर्म चलैं हैं॥
सतजुग त्रेता द्वापर पुनि कलि। या क्रम करि धर वर्तति है बलि॥
हे नृप ये हम राजा कहें। औरौं पुनि बाकी जे रहें॥
तिननि धरनि में ममता करी। पै कहाँ गए खबर नहिं परी॥
नृप हू कौ जो तन निर्धार। अंत समें कृमि बिष्टा छार॥
ता हित दोष जननि सो ठानें। नर्क जाय सो अर्थ न जानें॥
क्यों करि यह जो सब धर आहि। मम पुरुषनि नें राखी ताहि॥
अब मम पुत्र पौत्र जे ह्वै हैं। कैसें या कौ पालन कैहैं॥
अहो परीछित ते अग्यानी। भौतिक देह आत्मा मानी॥
पृथ्वी में ममता करि छए। दुहूँवनि तजि आपै घुर गए॥
हे नृप बल करि राजा जे जे। भोगति भए धरनि कौ ते तें॥
काल नें करी दसा असि तिनकी। कथा मात्र ही सुनियें जिनकी॥३४

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
द्वितीयोऽध्याय: ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय

दोहा:—भूमि गीत करि नृपनि के, दोष तीसरे ध्याय।
बहुर कह्यौ कलि दोष सब, मिटवत हरि के पाय॥१॥

श्री शुक उवाच—

धर जीतनि कों बिप्र जु राजा। तिनें हसति धर हे महाराजा॥
अहौ मोहि जीत्यौ चहत भूप जे। मीच के आप खिलौना हैं जे॥
ग्यानवान हू हैं जे राजा। तिनहू कौ यह काम अकाजा॥
जा करि तन बुदबुदा समान। ता में है बिस्वास महान॥
पहल जीत मन इंन्द्री आछें। जीतें गे नृप मंत्रिन पाछें॥
सचिव महावति बैरिन मारि। जीत हैं सबै धरिनि निर्धार॥
यों कोई अटके आसा माहीं। निकट मीच ताहि देखति नाहीं॥
यों समुद्र लों मैं जो आहि। जीत लेहि कोई नृप ताहि॥
मन इंद्री जीतें कौ अहौ। यह फल नाहिं मुक्तिहि लहौ॥
जो मोहि मनु मनु सुत तजि गए। ताहि मूढ़ जीतनि कौं भए॥
जे असाधु मो में चित धरें। ते मोहित सुत पित सों लरें॥
यह धर मेरी तेरी नाहीं। मूढ़ फसें यों झगरे माहीं॥
पुनि मो हेत परस्पर लरें। मारें मरें ईरषा करें॥
भरत मानधाता पृथु अर्जुन। नहुष गाधि खटांग सगर पुनि॥
पुरुरवा रघु राम जजाति। धुंधमार संतनु सर्याति॥
कुबलयास्व नैषध ककुस्थवर। नृग तृनबिंदु भगीरथ संबर॥
हिरनकसिपु रावन वृत्रासुर। हिरन्याछ तारक नर्कासुर॥
औरौ नृप दानव बल पूर। सबके बेता जेता सूर॥
मो में ममता करि न अघान। बली काल करि सबै बिलान॥
जस बिछाय बड़े राजा जे। गए परलोक कथा तिनकी यें॥
ग्यान विराग निसित्ता बखानी। नहिंन कछु परमारथ सानी॥
सब दुख हारक श्रीहरि के गुन। हरि रति चाहै तौ तें नित सुनि॥

श्रीराजोवाच—

को उपाय करि कलि दोषनि मुनि। जन जीतें सो हमें कहौ पुनि॥
जुगरु जुगनि के धर्म बखानौ। प्रलै कल्प कौ कहौ प्रमानौ॥
ईस्वर रूप काल की गति जो। अहो महा मुनि हमें कहो सो॥

श्रीशुक उवाच

धर्म के सत्य दया तप दान। पाँय चारि सतजुग के जान ॥
सहनसील संतुष्ट सु सांत। करुनावान मित्र पुनि दांत ॥
समदृक आतमाराम रु ग्यानी। सतजुग के सब ऐसे प्रानी ॥
झूठ रु हिंसा असंतोष पुनि। विग्रह ये अधर्म के पग सुनि ॥
हरे हरे तें धर्म सु पाय। त्रेतादिक में देत मिटाय ॥
नर तप क्रिया जुक्त ता माहीं। अति हिंसक लंपट पुनि नाहीं ॥
बहुर त्रिवर्गी बेद त्रयी धर। द्विज ताही में हैं अतिसै करि ॥
द्वापर में अधर्म पायनि करि। धर्म के आधे पाँय गए गरि ॥
सधन कुटंबी जस प्रिय पंडित। छत्री द्विज मुखिया हर्षति नित ॥
कलि में बढ़ि अर्धर्म के पाय। दए धर्म के पग सु घटाय ॥
बहुरो जब कलिजुग बढ़ि जैहै। रह्यौ रहायौ तब छै ह्वैहै ॥
कलि में नर हैं लोभी भारे। सुष्क कलह उपजावन हारे ॥
दुर्भग निर्दै दुरा सुचारी। सूद्र मलाही मुखिया भारी ॥
सत रज तम गुन हरि आधीन। काल के प्रेरे जिय में लीन ॥
जब मन बुधि रु इन्द्री जिती। सतगुन माहि होय थिति तिती ॥
तब ताहि सतजुग जानौ यातें। तपरु ग्यान में रुचि होय जातें ॥
काम्य कर्म में रति उपजै जब। रजगुन जुति त्रेता जानौ तब ॥
मत्सर मान दंभरु लोभ। तृष्ना की हिय उपजें गोभ ॥
काम्य कर्म में रति उपजै जब। रज तम जुति द्वापर जानौ तब ॥
सोक मोह भय दैन्य विषाद। कपट झूठ निद्रा हिंसादि ॥
औरहू पुनि विचार होय जब। तमोगुनी कलि जानौ तबै ॥
जा कलि तें नर कामी ह्वैहै। धनमति भाग हीन बहु खैहै ॥
विभचारनि तिय होत हैं जामें। सब ठां चोर छाय हैं तामें ॥
बेद हूँ तहाँ पाषंड सु छैहैं। बहुर प्रजाभक्षी नृप ह्वैहैं ॥
सिस्न उदर परायन द्विज तहाँ। ब्रत करि हीन ब्रह्मचारी जहाँ ॥

जहाँ कुटंबी होय भिखारी। बसे तपस्वी गाँव मँझारी॥
जहाँ धन के लोभी सन्यासी। बहुरो नारि दोष की रासी॥
बहुत खाय ठेंकने सरीर। चोरी कपट भरी बहु धीर॥
बहु संतान लाज कहु नाहीं। बहुत कटुकता बानी माहीं॥
कपट भरे ब्यवहारी जहाँ। दुख बिन निंद जीवका तहाँ॥
उत्तम पति निर्धन जब ह्वैहै। ता कौ दास तुरत तजि दैहै॥
दुखी भए दासहि पति तजि है। दूध हीन गायहि नहिं भजिहैं॥
पिता भ्रात सुहृदनि तजि दैहैं। तिय संबंधिन सो रति कै है॥
सूद्र तपस्वी भेषहिं धरिहैं। बहुर प्रतिग्रह लेत न डरि हैं॥
ऊँचे बैठि अधर्मी प्रानी। कहिहैं बहुर धर्म की बानी॥
नित उद्विग्न चित्त दुख हारे। कर अकाल करि पीड़ित भारे॥
अन्न हीन भूतल के माहीं। वृष्टि बिना सब दुखी सहाहीं॥
खान पान सब भोगनि हीन। कलि के नर पिसाच सम दीन॥
कलि में बीस कौड़ियनि कारन। लरि मरिहैं तजि प्रीति-बिचारन॥
बूढ़े मात पिता कलि माहीं। तिनकी रछा करिहैं नाहीं॥
निपुनपुत्र हू कौ तजि दैहैं। सिस्नोदर-पर नर सब ह्वैहैं॥
जग के गुरु अच्युत भगवान। त्रिभुवन ईस नवति जाहि आनि॥
पाषंडनि करि कलिजुग माहीं। ताहू कौ नर जजिहे नाहीं॥
गिरति परत पुनि मरत बिकल ह्वै। एक बार हूँ जास नाम लै॥
कर्मनि तें छुटि पर पद पैहैं। ताहू में जन मन न लगै हैं॥
हे नृप कलि के दोष हैं जिते। हरि हिय प्रगट हरति हैं तिते॥
हरि कौ जो जन सुनैरु गावै। पूजा करै आदरै ध्यावै॥
ताके हिय हरि पैठ सु परै। सब जन्मनि के पापनि हरे॥
हरि ही हरति मलिनता ऐसें। कनक मलिनता अग्नि ही जैसें॥
प्रानायाम देव पूजा जप। तीर्थ दान ब्रत पुनि मैत्री तप॥
इन करि सुद्ध होय हिय नाहीं। जैसें हरि आए हिय माँहीं॥

ताते सावधान ह्वै राजा। तुम तन तज्यौ चाहत सुख काजा ॥
भली भाँति हरि कों हिय ल्यावौ। तातं बहुर परमपद पावौ ॥
मरन हार जो ध्यावै ताहि। तौ निज भाव देत प्रभु वाहि ॥
दोष खांनि कलि इक गुन महा। नाम ही करि हरि मिलति सु अहा ॥
सतजुग ध्यान जग्य त्रेता में। जो फल द्वापर परिचर्य्या में ॥
सो सब फल कलि में भ्रम नाहीं। इक श्रीकृष्ण कीर्त्तन माहीं ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
तृतीयोऽध्याय: ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय

दोहा—चौथे ध्याय प्रलै कही, नैमित्तादिक चार।
कृष्न कीरतन करि बहुर, कह्यौ जगत निस्तार ॥

श्री शुक उवाच

सूक्ष्म स्थूल काल है जितौ। हे नृप कहि आए तोहि तितौ ॥
बहुरों जुग प्रमान वरन्यौ सब। कल्परु लय लछन सुनियें अब ॥
सहस चोकरी कौ बिधि बासर। सोई कल्प जहाँ चौदह मनुवर ॥
रात तिती सो प्रलै कहावै। त्रिभुवन जहाँ नास कों पावै ॥
बिधि सोए ते लै जौ आहि। कहत प्रलै नैमित्तिक ताहि ॥
बिधि के द्वै परार्ध बीते जब। सात प्रकृति पुनि आंड कौस तब ॥
लीन होत हैं नृप अभिराम। प्राकृति प्रलै सु याको नाम ॥
सौ बरषनि लौं धर के माहीं। हे नृप मेघ बरषि हैं नाहीं ॥
बिना अन्न नर भूखे ह्वै हैं। तब आपस ही में खै जै हैं ॥
काल सो दुखित प्रजा है जिती। हरें हरे छै ह्वै हैं तिती ॥
घोर किरन कौ रवि तबही हैं। धर समुद्र तन कौ रस पीहै ॥
धर अरु बिबर पवन सों जागि। करिहै भस्म सेष मुख आगि ॥
अंड़ अग्नि रबि करि चहुँ घाँ यों। जरिहै अहौ बड़ौ उपराज्यौ ॥
सौ बरषनि चलि प्रलै बयार। करिहै धूसर नभ निर्धार ॥

तब सौ बरस मेघ बहु ह्वै है। गरज बरषिहै जल ही ह्वै है॥
तब धर गंध जलनि हर लई। गंध हीन धर लै ह्वै गई॥
तेज हर लयौ पानी कौ गुन। नीरस ह्वै सो लीन भयौ पुनि॥
तेज कौ रूप पवन हर लयौ। सो तब पवन माहि लै भयौ॥
ग्रस लीनौ आकास पवन गुन। पौन भयौ आकास लीन पुनि॥
नभ गुन हरयौ तामसाहंकृति। तामें नभ लय भयौ महा मति॥
पुनि राजस हंकार आहि जो। बृत्तिन जुत इंद्रीन हरै सो॥
पुनि सात्विक हंकार जु परै। सो इंद्रिन के देवनि हरै॥
अहंकार कौ महत्तत्व पुनि। महत्तत्व कों सत्वादिक गुन॥
बहुर काल प्रेरी माया जो। तिन तीनौं गुन कौ सु ग्रसै सो॥
माया रात द्यौस के माहीं। हे नृप घटै बढ़ै कछु नाहीं॥
माया नित्य अनादि अनंत। अव्यय कारन कहत सु संत॥
मन बुधि प्रान बचन नहिं जा में। सत रज तम महदादि न ता में॥
नहिं सुर इंद्री जग जा माहीं। जाग्रत स्वप्न सुषुप्तौ नाहीं॥
नभ धर जल रवि अग्नि बयार। जामें येऊ नहिं निर्धार॥
जो अतर्क संसुप्ति सून्य सम। मूल भूत पद सो सूक्षम तम॥
काल पाय सत्वादिक जा में। लै होय प्राकृति प्रलै सु नामें॥
बुधि इंद्री पुनि बिषै रूप करि। भासति ग्यान तिनै आश्रै बर॥
आदि अंत जुत दृस्य आहि जो। नहिं न्यारौ झूठौ जानौ सो॥
जा में दीप नैन अरु रूप। तेज ते भिन्न नहीं है भूप॥
त्यौं बुधि इंद्री बिषै न अहौ। जुदे ब्रह्म तें जुदे न लहौ॥
जागन स्वप्न सुषुप्ति सु तीन। बृत्ति बुधि की अहौ प्रवीन॥
आत्मा में नाना बिधि अहौ। सो तौ तुम सब झूठौ लहौ॥
जैसें मेघ आकास के मांही। कभू होय कभू होय सु नाहीं॥
तैसें उदै नास करि अहौ। ब्रह्म माहिं या बिस्वहि लहौ॥
कारन सत्य कार्ज में ऐसें। भासति तंतु बसन में जैसें॥

कारन कारज मिलें सिध जा। हे राजा भ्रम ही जानौ सो॥
आदि अंत नृप जा कौ आहि। केवल झूठ सु जानौ ताहि॥
बहुर प्रकास मान यह जग जौ। कछु नब्रह्म बिन कह्यौ परे सो॥
पुनि जग स्वप्रकास है जौ पै। कहियै कहा ब्रह्म ही तौ पै॥
नहिं नानात्व सत्य आतमा में। और मूढ़ जौ मानें ता में॥
तौ ता कौ नानात्व सु ऐसें। घटनि माहिं के नभ कौ जैसें॥
ज्यों स्वर्न बहु भाँति बतावै। त्यौं ही नर हरि जू कौ गावै॥
ज्यौ घन रबि ते होय प्रकासैं। ता तें पुनि रवि ही नहिं भासै॥
यों हंकार ब्रह्म ते होई। तिही प्रकास्यौ ढँपति सु सोई॥
ज्यों रबि देखे नैंन गए घन। त्यौं ब्रह्महि हंकार गए जन॥
झूठौ अहंकार बंधनबर। ग्यान सस्त्र सो ताहि काटि करि॥
आत्मा कौ अनुभव जो आहि। आत्यंतिक लय कहत सु ताहि॥
नित ब्रह्मादिक लों सबकी पुनि। उत्पति प्रलै कहत कोई मुनि॥
काल सो छिन छिन देह दसा जो। पलटत नितही जन्म प्रलै सों॥
आदि अंत करि रहत काल जो। बहुरौ ईस्वर की मूरति सो॥
ताकी गति तन लखियत नाहीं। तारनि की ज्यौं नभ के माहीं॥
नैमित्तक प्राकृत आत्यंतिक। चौथी प्रलै कही हम नैत्तिक॥
जग स्रष्टा हरि सब जन धामा। तिनकी ये लीला अभिरामा॥
हम तुम सों कही अहो राज मुनि। सब तौ बिधि हूँ कहि न सकै पुनि॥
बहु दुख दावानल जु जरयौ जन। दुस्तर जग समुद्र तरिबें मन॥
ता कौ हरि लीला बिन और। दूजी नाव नाहिं इह ठोर॥
यह पुरान श्रुति संमत लह्यौ। नारायनि नारद सों कह्यौ॥
वेद व्यस सो कह्यौ तिही मुनि। तिन प्रसन्न ह्वै मोहि कहयौ पुनि॥
नैमिषार में सौनकादि मुनि। तिन सों कहिहें ये जु सूत पुनि॥

इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषा
रसजानि कृते चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

पंचम अध्याय

दोहा:—परब्रह्म उपदेस करि, इह सु पांचए ध्याय।
तछक तें भय भूप कौ, श्री सुक दयौ गमाय ॥१॥

श्री शुक उवाच—

हे नृप या सु पुरान मझारी। बरनें हरि त्रिस्वात्म मुरारी॥
जिह प्रसाद तें ब्रह्मा भयौ। क्रोध ते बहुर रुद्र छबि छयौ॥
हे नृप यह तजियै अग्यान। हम ये अब तजिहें निज प्रान॥
पहलोंई तन उपजि मरै ज्यौं। हे नृप तुम उपजे न मरौ त्यौं॥
बहुरौ तुम पुत्रादि रूप यौं। ह्वै हौ नहीं बीज अंकुर ज्यौं॥
तुम तनादि ते न्यारे ऐसें। हे नृप अग्नि काठ तें जैसें॥
स्वप्न में निज सिर कटयौ लखै ज्यौं। जागनि में तन कौ मरिवौ त्यौं॥
तन मृत्यादिक देखति जा तें। अमर अजन्मा आत्मा ता तें॥
ज्यौं घट फूटें घटाकास जो। महाकास सो जाय मिलै सों॥
त्यौं तन मरें जीव हू पाछें। जाय प्राप्त होय ब्रह्महिं आछें॥
आत्मा कों तन गुन पुनि कर्म। मनहीं सृजति नहिंन कछु भर्म॥
सो मन प्रकृति सृजति निर्धार। ताते होत जियहि संसार॥
तेल सराई बाती आगि। तौ ही लौं दीप बड़ भाग॥
त्यौं ही कर्म मन तन जिय जौ लौं। हे राजा संसार है तौ लौं॥
रज सत तम की वृत्तिनि पाय। तनही उपजै बहुर बिलाय॥
स्थूल सूछम तन तें न्यारौ जो। हे नृप स्वप्रकास आत्मा सो॥
पुनि अकास सौ सबहि अधार। ध्रुव अनंत निरुपम निर्धार॥
यौं आत्मा में आत्मा आहि। आप ही करि बिचार लेहु ताहि॥
जो मति पगी कृष्न के ध्यान। तासों करि लीजै अनुमान॥
द्विज कौ प्रेरयौ तच्छक ऐहें। हे नृप सो तुमकौ न जरैहें॥
मृत्यु हू तुमें न हतिहै यातें। मृत्यु हू के हरि मृत्यु हैं जातें॥
जो मैं सोई ब्रह्म पर धाम। परब्रह्म मो में अभिराम॥

यह बिचार आत्मा जो आहि। धरि निरुपाधि ब्रह्म में ताहि ॥
बिष मुख भरयौ जु तच्छक आहि। काटत पायन लखिहौं ताहि ॥
तन हू लखि हौ नहिंन राज मुनि। आत्मा तें न्यारौ जग हू पुनि ॥
यह हरि चरित कह्यौ मैं अहौ। पुनि कहा सुन्यौ चहौ सो कहौ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादसस्कंधे भाषा रसजानि कृते
पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय

दोहा—भूप मुक्ति अहि होम पुनि छटे ध्याय निर्धार।
साखा बर्नन करि कह्यौ, तीन बेद बिस्तार ॥ १ ॥

सूत उवाच

हरि द्रष्टा सम व्यास पुत्र मुनि। तिनते यह भागवत नाम सुनि ॥
चरननि में माथौ धरि दियौ। हाथ जोरि नृप बोलति भयौ ॥

श्रीराजोवाच

तुम दयाल मोहिं दया करी पुनि। तातें सिद्ध भए हम हे मुनि ॥
आदि अंत करि हीन जु हरी। तास कथा मम श्रवननि धरी ॥
जिनकौ मन श्रीहरि के माहीं। तिनमें यह कछु कौतुक नाहीं ॥
ताप तप्त जे जन अज्ञानी। तिन पै करें दया सुख सानी ॥
तुम ते हम यह सुन्यौ पुरान। जामें उत्तम हरि कौ ज्ञान ॥
तच्छकादि तें मीच जु भारी। तातें मति नहिं डरत हमारी ॥
निर्भै परमानन्द ब्रह्म जो। तुमनि दिखायौ हमनि लख्यौ सो ॥
अब मोहि आज्ञा दीजै मुनि। तौ तजि काम रोकि बानी पुनि ॥
प्रान तजौं हरि में मन कों धरि। सुख निधि दियौ परम पद तुम करि ॥
बहुर ज्ञान विज्ञान जु भयौ। तन अज्ञान दूर करि दयौ ॥

श्रीसूत उवाच

यह सुनि मुनि नृप की आज्ञा लै। चले भिछुकनि जुत पूजित ह्वै ॥
सुधि सों नृप हरि में मन धरयौ। ताही कौ पुन ध्यान सु करयौ ॥

इन्द्री निश्चल भए रह्यौ यौं। बिना पौन करि वृच्छ ठूंठ ज्यौं ॥
गंगा तट उत्तर मुख कीनौं। संसै गयौ ब्रह्म रंग भीनौं ॥
नृप कौ तच्छक मारन आयौ। क्रुधित ह्वै द्विज पुत्र पठायौ ॥
बिष हारी जो कस्यप आहि। पुनि तिन मग में देख्यौ ताहि ॥
धन दै ताहि बिदा करि आयौ। द्विज ह्वै नृप के तन लपटायौ ॥
ब्रह्म सरूप राजरिषि कौ तन। बिष सों भस्म भयौ देखति जन ॥
धरनी गगन दिसान सँझारी। हाहाकार भयौ अति भारी ॥
सुर नर बहुर असुर हैं जितें। अचिरज पाय थकति भए तितें ॥
देवनि नें दुंदुभी बजाई। पुनि गंधर्व अप्सरा गाई ॥
बहुरों अमर महा मन हरषें। धन्य धन्य कहि फूलन बर्षें ॥
जनमेजय निज पिता जु आहि। तच्छक डस्यौ सु सुनि करि ताहि ॥
अति रिस भरि कै बिप्र बुलाए। नाग जग्य में होम कराए ॥
बड़े बड़े सर्प जरन लागे जब। इंद्र सरन गयौ डरि तच्छक तब ॥
जनमेजय तच्छक न निहारयौ। तब बिप्रनि सों बचन उचन उचारयौ ॥
तच्छक नीच क्यौं नहिं परयौ। राख्यौ इंद्र तिननि उच्चरयौ ॥
सुनि जनमेंजय कही सु यही। इंद्र समेत होमिये सही ॥
सुनि तिन होम्यौ इंद्र समेत। बेगि गिरौ दोऊ अगिन निकेत ॥
ये द्विज बचन कठोर महान। चल्यौ इंद्र तच्छकरु बिमान ॥
भ्रांत बुधि ह्वै गिरन लग्यौ जब। देखि वृहस्पति नृपहि कही तब ॥
हे नृप यह बड़ सर्पनि माहीं। तुम करि बध कौ जौग है नाहीं ॥
या नें अमृत पियौ है जा तें। हे नृप अजर अमर यह ता तें ॥
जीबौ मरिबौ उत्तम गति पुनि। निज कर्मनि ही करि पैयै सुनि ॥
पुनि जाजन कौ या जग माहीं। दूजौ दुख सुख दाता नाहीं ॥
बिजुरी सर्प अगिन तन रोग। इन सों मीच कर्म कौ भोग ॥
ता तें यह मख तजियै आप। जरे सु बहुत सर्पनिस्पाप ॥
यह सुनि बचन मानि लीनौ पुनि। जग्य त्याग आछें पूज्यौ मुनि ॥

सो यह हरि की माया है मुनि। बाधा रहत अतर्क सदा पुनि॥
आ कारे हरि हू के प्रानी जे। क्रोधादिक में डूब रहैं तें॥
मुनिन के तत्व बिचार सु माहीं। निर्भै ह्वै माया रहै नाहीं॥
मायाश्रित बिबाद नहिं तहाँ। मन संकल्प बिकल्प न जहाँ॥
जहाँ कारन कारज फल नाहीं। हंकारी जीवन जा माहीं॥
जहाँ दुख दाता दुखित नाहिं पुनि। अहंकार तजि तहाँ रमे मुनि॥
आत्मा तें व्यतिरिक्त जु आहि। नेति नेति कहि त्यागें ताहि॥
सह त्यागि हिय माहिं बिचारें। बिष्नु परमपद ताहि उचारें॥
यह सु परमपद तेई भजें। जे हों मैं दुर्जनता तजें॥
बुरी बात हू कान न धरै। काहू की न अवग्या करै॥
तन हित बैर करै नहिं कहूँ। ग्यानवान ब्यासहिं मैं नऊँ॥
जिनके चरन कमल कौ ध्यान। ताते मैं यह पढ़्यौ पुरान॥

शौनिक उवाच

सिष्य व्यास के पैलादिक जे। बेदाचार्ज महा मना तें॥
तिनानि बेद के किते बिभाग। किए कहौ हम सों बड़ भाग॥

श्री सूत उवाच

जिन बिधि मन इकाग्र कियौ भारी। ताके हिय आकास मझारी॥
प्रथम भई उत्पन्न नादि धुनि। जो काननि मूँदे सुनियें मुनि॥
जे जन तिंह उपसना जुक्त। मन मल त्रिबिधि धोय होय मुक्त॥
ता धुनि तें ऊँकार भयौ सों। स्वप्रकास अब्यक्त त्रिवृत जो॥
परमात्मा कौ रूप जु आहि। काननि के सोए हूँ ताहि॥
सुनें ग्यान घन हरि निर्धार। जाते बानी कौ बिस्तार॥
अपनौ आश्रै ब्रह्म जु आहि। साछात दरसावति ताहि॥
सब मंत्रनि कौ सूछम रूप। बेद बीज जो एक सरूप॥
ताके अकारादि त्रय अछर। तीन लोक गुन बेद वृत्ति धर॥
तिन तें बिधि पुनि सरजे तितें। ह्रस्व दीर्घ स्वर अच्छर जिते॥

तिन करि चातुर्होत्र सु हेत। ऊँकार पुनि छंद समेत॥
चारौ मुख ते बेद सु चार। ब्रह्मा नें बरनें निर्धार॥
ते ब्रह्मा निज सुतनि पढ़ाए। जे श्रुति निपुन ब्रह्म रिषि गाए॥
ते धर्मोपदेष्टा पाछे। अपनें सुतनि पढ़ाए आछें॥
तिनके सिष परम ब्रत धारी। पढ़त भए चहू जुगनि मझारी॥
काल सो छीन सक्ति नर देखे। बहुरों अल्प बुधि बल पेखे॥
हरि के प्रेरे द्वापर अंत। वेद के किए बिभाग अनंत॥
या ही मन्वंतर में हे मुनि। सिव ब्रह्मादि लोकपालक पुनि॥
धर्म की रछ्या हित हरि बरें। अंस कला करि तब अवतरें॥
पारासर ते सत्यवती में। चार बेद कीनें धरती में॥
हे मुनि रिग अथर्व जजु सांम। ये हैं मंत्र रासि अभिराम॥
तिन तें मनि ज्यों मंत्र उधार। मुनि नें करी संहिता चार॥
पुनि मुनि चार सु सिष्य बुलाय। इक इक तिनकों दई पढ़ाय॥
बहुर रिचा जुति रिग जो आहि। पैल कों लै सु पढ़ाई ताहि॥
निगद नाम पुनि जजुर्वेद जो। बैसंपायन कौं दीनौ सो॥
पुनि छंदोग नाम सो साम। जैमिन को दीनौ अभिराम॥
पुनि अथर्व की आंगिरसी जो। दई सुमतहि संहिता सु सो॥
इंद्रप्रमितरू वाष्कलहि पुनि। दई स्व संहिता पैल अहो मुनि॥
वाष्कल नें स्वसंहिता जोई। चारि टूक लै कीनी सोई॥
बोध्य परासर जाग्यवल्क पुनि। अग्निमित्र इनकों दीनी मुनि॥
पुनि स्वसंहिता इंद्रप्रमित जो। सुत मांडूकहि पढ़वत भयो सो॥
देवमित्र हैं तास सिष्य पुनि। सौभरादि सों तिन भाषी मुनि॥
मांडुक सुत साकल्य नाम जिह। पांच टूक संहिता करी तिह॥
मुद्गल बात्स्य सिसिर गोखल पुनि। पांचौ साली तिनें दई मुनि॥
जातुकर्न साकल्य सिष्य जो। करि स्वसंहिता के सु टूक सो॥
पैज बलाक बिरज बैताल। इनकों दीनी परम दयाल॥

बाष्कल सुत सब साखा ते लैं। बालखिल्य संहिता नाम कै॥
बालायनिरु भज्य कासार। इन तीननि दीनी निर्धार॥
बहुरिक नाम संहिता जोई। इन ब्रह्मर्षिन धारी सोई॥
सुनि यह छंदनि कौ बिस्तार। पापनि तें छूटै निर्धार॥
बैसंपायन के जु सिष्य जें। चरक नाम अधुर्ज भए ते॥
जा तें गुरु कौ पाप निवारन। कियौ तिननि महा ब्रत धारन॥
सिष्य हो जाग्यवल्क दूजौ जो। बैसंपायन सो बोल्यौ सो॥
ये निर्बल प्रभु करिहैं कहा। मैं करिहौं दुस्चर ब्रत महा॥
सुनि गुरु कुपित होय ताहि कही। द्विजनि की करी अवग्या सही॥
तू ह्या तें उठि जा निर्धारि। बेग मोर विद्या दै डारि॥
सुनि सो जजुर्वेद जो आहि। उगल कें बेगि जात रह्यौ ताहि॥
तिनकों मुनि लखि लोभित भए। पुनि ते तीतर ह्वै चुनि लए॥
ता तें ते साखा छबि छाई। तैत्तरीय नामनि करि गाई॥
बेदहि चाहत जाग्यवल्क पुनि। अस्तुति करी ईस रबि की मुनि॥

जाग्यबल्क उवाच—

तुमें नमो आदित्य अनंत। बिधि तें लै तिनुका परजंत॥
नभ से सबके भीतर बाहर। अंतर्यामी काल रूप करि॥
बरष बरष में एक ही आप। सोख बरषि मिटवत संताप॥
जा नित तीन बार श्रुति बिधि करि। तुमें उपासति हे सूरज बर॥
तिनकौ पाप दुख अग्यान। दूर करत तुम श्रेष्ट महान॥
तुमरो मंडल करत प्रकास। ता कौ हम ध्यावति तुव दास॥
थिर चर तुव निकेत भगवान। तिनके जड़ मन इंद्री प्रान॥
तुम अंतर्जामी सरूप करि। तिनकों करन प्रवृत्ति अहो हरि॥
दुखदाई अग्यान जु अजगर। ता करि गिल्यौ मरयौ सो यह नर॥
ताहि दया करि तुम सु दयाल। देखि उठाय लेत तत्काल॥
बहुर स्वधर्म रूप कल्यान। नित ता में ताहि राखति जानि॥

तुम दुष्टनि दुख देत सु ऐसें। डोलति हैं प्रभु राजा जैसें ॥
तहा तहाँ लोकपाल तोहि पूजें। कमलनि करि अंजुल करि दूजै ॥
त्रिभुवन गुरु वंदित तुव पद नित। सरन भए हम जजुर्वेद हित ॥

श्रीसूत उवाच—

अस्व रूप धरि हरि भगवान। यों तिन किए प्रसन्न महान ॥
सुंदर जजुर्बेद हरि जु आहि। तब तिन सूरज दीनौ ताहि ॥
जजुर्बेद संख्या करि हीन। ता की पंद्रह साखा कीन ॥
करि कारबादिक मुनिन पढ़ाई। बाजसनी नामनि करि गाई ॥
जैमिन साँमबेद कौ ग्याता। ता कौ सुत सुमंतु बिख्याता ॥
ता को सुत सुन्वान अहो मुनि। दुहुंबनि द्वै संहिता दई पुनि ॥
जैमिन सिष्य सुकर्मा नाम। बहु बिधि तिन कीनौ श्रुत साम ॥
हिर नाभ पौष्यंज अवंत। इन तीनौ सो पढ़्यो अनंत ॥
तिनके सिष्य पाँच सै गए। ते उदीच्य पुनि प्राच्य कहाए ॥
कुल्य कुसीद कुक्षि अभिराम। लांगलि पुनि लौकाक्षि सु नाम ॥
ये पौष्यंज सिष्य हैं हे मुनि। सौ सौ पढ़ी संहिता तिन पुनि ॥
सिष्य हिरन्यनाभ कौ अहौ। कृत यह नाम तास कौ लहौ ॥
तिन चौबीस संहिता जेई। निज सिष्यनि प्रति बरनी तेई ॥
पुनि प्रसिध साखा जे रही; ते अवंत निज सिष्यनि कही ॥

इति श्री भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते

षष्ठमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय

दोहा—ध्याय सातएं में कह्यौ, श्रुति अथर्ब बिस्तार।
पुनि पुरान हू के कहे, लच्छन नाम बिचार ॥

श्री सूत उवाच

पुनि अथर्ब बेता सुमंतु जो। सिष्य कबंधहि पढ़वत भयौ सो ॥
बेद दर्स अरु पथ्य नाम मुनि। इन दुहुवनि कौ तिन पढ़ई पुनि ॥

बेददर्स सिष इक पिपलायन। ब्रह्मबलिरु मुदोषे सुल्कायन॥
कुमुद सुनक बहुरौ जाजलि मुनि। ये अथर्वबित पथ्य सिष्य पुनि॥
सुनक के दोय सिष्य अभिराम। बभ्रु सैधवायन ये नाम॥
तिनके आँगिरसादि सिष्य मुनि। साँतकल्प नछत्रकल्प पुनि॥
ये अथर्व आचार्ज वहे सब। पुनि पुरानवक्ता सुनियें अब॥
कस्यप अकृत ब्रन त्रयारुनि। पुनि हारीति सिसपायन मुनि॥
छठे एक सबर्नि सु नाम। ये छह पौरानिक अभिराम॥
व्यास सिष्य मम पित तें अहौ। इक इक पढ़ी संहिता लहौ॥
सब कौ सिष्य भयौ मैं जातें। मैं सब पढ़ी संहिता तातें॥
कस्यप मैं सावर्नि नाम सुनि। राम सिष्य अकृतब्रन हूँ पुनि॥
हम ये व्यास सिष्य हैं चार। मूल संहिता पढ़ी बिचार॥
पुनि पुरान लछन जु कह्यौ मुनि। श्रुत अनुसार ताहि मन दै सुनि॥
सर्ग बिसर्ग स्थान पोषन मुनि। आरगरु मन्वंत्र कथा पुनि॥
प्रलै हेत आश्रय दस लछन। इन जुति कहत पुरान बिचछन॥
बहुर पाँच लछन जुति जो पुनि। अल्प पुरान ताहि बरनति मुनि॥
प्रकृति गुननि में भए बिकार। भयौ महत्तत्व त्रिबिधि हंकार॥
पाँच भूत तन्मात्रें द्री पुनि। इनकी सृष्टि सर्ग कहियै मुनि॥
पुनि प्रबाह सौ यह जु चराचर। सो बिसर्ग कहियत है मुनिवर॥
चर रु अचर जीवका चरनि की। हे मुनि तिनमें बहुर नरनि की॥
कछु सुभाव करि कछु सास्त्र करि। सोई स्थान जानि हिय में धरि॥
हे मुनि सुर नर पसुनि मँझारी। प्रगटें जुग जुग माहिं मुरारी॥
श्रुति द्रोहिन हति लीला करें। तिनकों मुनि पोषन उच्चरें॥
मनु मनु सुत हरिदेव इंद्र मुनि। इन छहोंन जुति मन्वंतर पुनि॥
सुध नृपनि कौ बंस बंस सो। बंस कथा तिनकी जु कथा जो॥
मायिक जग की प्रलै सु चार। बरनी तेई प्रलै निर्धार॥
गहि अग्वानहिं कर्म करै जो। सृष्ट्यादिक को हेतु जीव सो॥

ताहि अनुसयी कहत कोऊ मुनि। अव्याकृत कोऊ ताहि कहत पुनि॥
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति सु तीन। जीव वृत्ति ये माया लीन॥
जो तिन माहिं मिल्यौ न्यारौ पुनि। सोई ब्रह्म आश्रै जानौ मुनि॥
ज्यों घट में रज मिली रु न्यारी। सत्ताईस नामरु रूप मँझारी॥
त्यों सबरी तन दसानि माहीं। सो न्यारौ हू न्यारौ नाहीं॥
आप ही कै कोई जोग साधि पुनि। तीन वृत्ति जब चित्त तजै मुनि॥
तब यह सुध आत्मा पाय। जग चेष्टानि देय छिटकाय॥
इन लछन लछित जु पुरान। छोटे बड़े अठारह जान॥
ब्रह्म बिष्नु सिव लिंग पद्म सुनि। गरुड़ भागवत नारदीय पुनि॥
अग्नि स्कंध भविष्य रु बावन। मत्स्य ब्रह्मबैवर्त्त सु पावन॥
अर्कंड ब्रह्मांड कूर्म पुनि। एक बराह अठारह ये मुनि॥
ब्यास सिष्य साखा बिस्तार। बरन्यौ तेज बढ़ावन हार॥

इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
सप्तमोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अष्टम अध्याय

दोहा—मोहित भयौ न काम करि, तुष्ट करे हरि राय।
यही मारकंडेय कौ, चरित आठए ध्याय॥

शौनक उवाच—

अहो सूत तुम जीवहु भारी। बक्तनि माहि महा सुखकारी॥
जगत अपार भ्रमति जे यामें। तुमही पार करत हौ तामें॥
अहो मारकंडेय जु आहि। चिरंजीव जन कहत हैं ताहि॥
कल्प अन्त सो उबरत भयौ। जिह सुकल्प सब जग ग्रस लयौ॥
इंही कल्प में सो भृगुवंसी। हमरे कुल जन्म्यौ सु प्रसंसी॥
तब तें लै अब लौं जग माहीं। कोऊ प्रलै भई है नाहीं॥
भ्रमति सु इकलौ समुद मँझारी। देख्यौ जन इक अद्भुत भारी॥
सोवत बट के पात सुखारौ। तुम वह संसै हरौ हमारौ॥

सूत उवाच

यह भ्रम नासक प्रश्न अहो मुनि। जहाँ कलि मल हारक हरिके गुन॥
बहुर मारकंडेय जु गाए। पित ते संस्कार सब पाए॥
धर्म सों सबै बेद पढ़ि लए। तप अध्ययन माहिं नित छए॥
धरै बड़ौ ब्रत सांत रहैं मुनि। बकला पहरै जटा सीस पुनि॥
धरै मेखला दंड कमंडल। कमल गटा मृगछाल सूत्र भल॥
धर्म हेत कुस राखै दूजै। अग्नियादिक में हरि कौ पूजै॥
सांझ सबारे भिच्छा करै। मौन गहे गुरु आगै धरै॥
गुरु की आज्ञा सों पुनि खाय। बिन आज्ञा बरती रहि जाय॥
बर्ष हजारनि यों ब्रत यों धरि। जीती दुर्जय मीच पूजि हरि॥
सिव बिधि बिधि सुत सुरनर जितें। देखि ताहि बिस्मै भए तितें॥
यों व्रतधारी तप संजम करि। सुखी भए मन सों ध्याए हरि॥
यों हरि में मन जोरति भए। छह मन्वंतर बीत सु गए॥
इंह सातें मन्वन्तर में पुनि। लखि तप डरप्यौ इन्द्र अहो मुनि॥
तहाँ गन्धर्व अप्सरा काम। मलयानिल बसन्त अभिराम॥
रज गुन के सुत लोभरु गर्व। तप मिटवन ये पठए सर्व॥
उत्तर ओर हिमालै की तब। ता रिषि के आश्रम गमने सब॥
नदी पुष्यभद्रा है जहाँ। चित्रा नाम सिला पुनि तहाँ॥
अति पवित्र ता रिषि को धाम। पुन्य लता द्रुम करि अभिराम॥
पुन्य मत्त खग बर जहाँ कूजै। पुन्य अमल जल सरबर दूजै॥
मत्त भ्रमर पुनि गावति जहाँ। नाचति मत्त मयूर सु तहाँ॥
तहाँ मलयानिल पवन सु आयौ। फूलनि मिल सुगंध अति छायौ॥
सबके हिये काम उपजावति। सीतल जल के कनका ल्यावति॥
ससि के उऐं काम तहाँ आयौ। संग गंधर्व अप्सरा ल्यायौ॥
पल्लव फूल लता द्रुम सनें। कर में धनुक बान पुनि बनें॥
अग्नि होम करि आँखि मूंद पुनि। बैठयौ लख्यौ अग्नि सौ सो मुनि॥

तहाँ अप्सरा पुनि गंधर्व। लगे बजावनि गावनि सर्व॥
धनुष में काम पाँच सर धारे। मनहिं कंपावनि लागे सारे॥
तीय पुंजि कस्थली सु नाम। गेंदनि करि खेलति अभिराम॥
कंदुक ही के संग दृग चलें। कुच भर सों कटि लचकति भलें॥
मीहीं बसन हर लयौ बयार। कांची टूटी खुलि रहे वार॥
मुनि जीत्यौ यों मन्मथ मान्यौ। बहुरों ताहि बान लै तान्यौ॥
बिफल भई सब क्रिया सु ऐसें। भाग हीन कौ उद्यम जैसें॥
यों अपकार करत आए जे। पुनि मुनि तेज जरन लागे ते॥
तब तहाँ ते सब भजि गए ऐसें। सर्प जगाय बाल कोऊ जैसें॥
यह सब तिननि सु उद्यम कियौ। पै मुनि कौ पिघल्यौ नहिं हियौ॥
गर्व हू भयौ न मुनि मन माहीं। यह बड़ेन में अचिरज नाहीं॥
सबनि समेत काम जो आहि। लख्यौ इंद्र निस्तेज सु ताहि॥
इंद्र परम अचिरज पायौ पुनि। बड़ौ ब्रह्म रिषि कौ प्रभाव सुनि।
ता मुनि पै बहु कृपा सु करी। प्रगटे नर नारायन हरी॥
सुक्ल स्याम तन पुन मृगछाल। कमल नैन भुज चार रसाल॥
धरें जनेऊ दंड कमंडल। बहुर पबित्री हाथन में भल॥
पंजा कमल गटनि की माला। धरे बेद तप रूप रसाला॥
तपति बिजुरी से सु तेज करि। बिबुधनि करि पूजित दीरघ हरि॥
नर नारायन हरि सरूप पुनि। तिनें देखि दंडोत करी मुनि॥
देखे मन इंद्री हरषाए। पुलक भए तन असुवा आए॥
देखि हु सक्यौ न हाथ जोरि कै। गद्गद ह्वै गयौ नारि रही नै॥
मिलि जैहै जनु उत्कंठा करि। बोल्यौ नमौ नमौ हे श्रीहरि॥
धूप दीप सब सों जसु ल्याय। धोए पग आसन बैठाय॥
अति प्रसन्न सुख सों बैठे जब। पुनि पग नाय सीस बोलैं तब॥

श्री मार्कंडे उवाच

कहा तुव जस बरन्यौ भगवान। ब्रह्मा लौं सबके तन प्रान॥

तुमरे प्रेरे फिरत मुरारी। तऊ तुम भजनी कै हितकारी॥
त्रिभुवन मंगल यें तुमरे तन। ताप हरे पुनि मीच तरे जनि॥
औरौ तन धरि गज कौ ऐसें। रचि संहारौ मकरी जैसें॥
हे जगपालक तुव पद भजैं। तिनकों कर्म कालगुन तजैं॥
पावनि तिनें बेद बेत्ता मुनि। गावें जजें नवें ध्यावें पुनि॥
मुक्ति रूप हो तुव पायनि बिन। सुख नहिं भै भीनें नर कौ छिन॥
काल रूप तुम तें बिधि हू जो। डरति है हमरी बात कहा सो॥
तातें हे आत्मा गुरु हरी। तुव पद माहि भक्ति जिन करी॥
नस्वर तुछ तनादिक त्याग। तुम सब ताहि देत बड़ भाग॥
थिति लय उदै हेत माया गुन। सत रज तम तुमहीं धारे पुनि॥
पै तुम सत्व सरूप मुक्ति हित। और मोह भय ब्यसन देत नित॥
भजति हैं सत्व रूप ही तुव जन। सत्व ही कौ बरनति हरि कौ तन॥
सत्व ही तें होय लोक अभै सुख। नर कों रज तम तें केवल दुख॥
सुर नरेस जग गुरु जग रूप। बेद प्रवर्त्तक सुध सरूप॥
मौन सील ब्यापक नारायन। तोहि नवति मैं जग पारायन॥
जो तुव माया मोहित प्रानी। झूठ बिषैन माहिं मति सानी॥
हे प्रभु ता करि तू नहि लागै। जदिप रहत हिय आँखिन आगै॥
तुमनें बेद प्रवृत्त कियौ जो। ताहि पाय तोहि पाय लेत सो॥
तुव दर्सन तुव रहस प्रकासें। सो प्रभु एक बेद में भासै॥
ब्रह्मादिक बहु जतन सु करैं। पै तिन कों तुव दर्सन परैं॥
निर्गुन सगुन जितौ है बादि। सब प्रति तुम अनुसरौ अनादि॥
तन रागी कों नहिं तुव ग्यान। तुमें नवति हैं पुरुष महान॥

इति श्री भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते

अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम् अध्याय

दोहा—लखी मार्कंडेय जू, माया नौमें ध्याय।
सोवत सिसु बट पत्र परि, तिंह उर निकसि समाय॥

सूत उवाच

यों अस्तुति करी बुधिमान मुनि। नर नारायन हरषि कही पुनि ॥

श्रीभगवानुवाच—

ब्रह्म रिषिन में तुम मुखिया मुनि। मन इकाग्र करि भए सिद्ध पुनि ॥
तप स्वाध्यायरु संजम साधै। भली भक्ति सों मोहि अराधे ॥
तुष्ट भए हम तुमरे ब्रत करि। मैं बरदेस लेहु बांछित बर ॥

ऋषिरुवाच—

हे अच्युत जन के दुख हारी। तुम उत्कर्ष दिखायौ भारी ॥
जो तुम मो नेंननि ढिग आए। याही बर करि हम सु अघाए ॥
ब्रह्मादिक तुव पद पंकज जे। जोग सिध मन सों गहि के तें ॥
आपहि धन्य कहत हरषाए। सो तुम मो नेंननि ढिग आए ॥
तऊ हे पुन्य सिखावनि हरी। कमलनेंन यह में मन करी ॥
हरि की मैं माया देखौ सो। ब्रह्मादिक कौ मोहति है जो ॥

सूत उवाच—

यों अस्तुति करि पूजे स्याम। हसि कहि भलें गए निज धाम ॥
सो चिंतत निज आश्रम में मुनि। रविससि अग्नि जलादिक में पुनि ॥
ध्यान धारि मुनि हरि कौ पूजै। कभूं प्रेम करि भूलति दूजै ॥
इक दिन सांझ नदी तट सो मुनि। बैठयौ बड़ी बयार चली पुनि ॥
मेघ भयानक आए पाछें। चमकति बिजुरी गरजति आछें ॥
पहिया सम धारा बरषावति। चहूँ दिसि सु डुबावति आवति ॥
बड़े भोंररु ग्राह झकोरें। महा भयानक घन ज्यौं घोरें ॥
तिन करि जग बूड़त देख्यौ मुनि। आप हू बिमन भए डरपे पुनि ॥
बरषा भरे समुद घिर आए। दीप खंड गिरि सबै बुड़ाए ॥
त्रिभुवन डूब्यौ बच्यौ सोई मुनि। जटा बखेर भ्रमति जड़सौ मुनि ॥
लागी भूख प्यास तन ताठै। पोंन लहर तिमि ग्राह सतावै ॥
अमित भयौ अंधियारी छई। धर नभ दिसा न सूझति भई ॥

कबहूँ बड़े भोर में परै। कभूं तरंगनि कें दुख भरें ॥
कबहू लरत परस्पर आय। जल के जंतु जात हैं खाय ॥
कभूं सोक भय मृत्यु कभूं दुख। कभूं मोह कभूं व्याधि कभूं सुख ॥
हरि माया करि भ्रमति तहाँ मनि। कई हजार बरष बीतें पुनि ॥
तहाँ भ्रमति इक दिन टापू पर। देख्यौ इक फल पल्लव जुति बर ॥
तास ईसान दिसा कौ पात। तहाँ इक सिसु मरकत मनि गात ॥
सोवत कमल नैंन मुनि हेरयौ। जास कांति करि जात अंधेरौ ॥
ग्रीव संख सी उर सु बिसाल। सुंदर भृकुटी नाक रसाल ॥
स्वास सों हलति अलक सुख सार। धरें कान पर फूल अनार ॥
मूंगनि की छबि अधरनि छाई। अमृत हास में तास ललाई ॥
पद्म गर्भ से अरुन सुलोचन। हास चितौन सबै दुख मोचन ॥
पीपर के दल सौ उर हे मुनि। नाभि गंभीर बनी त्रिबली पुनि ॥
पीवत चरन कमल मुख में धरि। लखि मुनि चकित भयौ बिस्मै करि ॥
मुनि कौ देखति ही श्रम गयौ। हियें नैंन आनंद सु छयौ ॥
तन रोमांचित संकित हू मुनि। पूछन कों सिसु निकट गयौ पुनि ॥
तौ लौं सिसु के स्वांस संग यों। चल्यौ गयौ भीतर माछर ज्यौं ॥
तिहूँ पहल सौ बिस्व लख्यौ मुनि। मोहित ह्वै अचिरज पायौ पुनि ॥
धर गिरि स्वर्ग नछत्र सुरासुर। खरिक खानि बन देस ग्राम पुर ॥
नदी दीप दिसि खंड समुद पुनि। बर्नाश्रम की वृत्ति लखी मुनि ॥
नाना जुग करि कलित काल जो। पंचभूत भौतकनि सहत सो ॥
औरौ सब व्यवहार हू देख्यौ। झूठौ जग साँचौ सौ पेख्यौ ॥
और लखी निज नदी हिमालै। पुनि सब रिषि बहुरों निज आलै ॥
बाहर के समुंद्र माहीं पुनि। सिसु स्वासा संग आय परयौ मुनि ॥
तहाँ सोई सिसु सोवत देख्यौ। तिनहूँ हाँस चितौन करि पेख्यौ ॥
बाललगौहौं नेंन निहारि। मिलनि कौ मुनि दई भुजा पसारि ॥
तौ लौं जोग ईस हरि प्यारे। सब के हिय में रहन सु हारे ॥

देखति अंतर्हित भए ऐसें। भाग हीन की क्रीड़ा जैसें॥
सो सब गयौ बिलाय छिन में पुनि। पहल ज्यौ आश्रम में बैठ्यौ मुनि॥

इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषा
रसजानि कृते नवमोऽध्यायः॥ ९॥

दशम अध्याय

दोहा:—धाम मारकंडेय के, दसें ध्याय सिव आय।
तुष्ट होय कै बर दए, गए बहुर सुख पाय॥ १॥

सूत उवाच

यों हरि की माया लखि के मुनि। ता हरि ही की सरन भयौ पुनि॥

मारकंडे उवाच

तुव पग दासनि के भयहारी। तिनकी मैं हों सरन मुरारी॥
बुध हू तुव माया करि मोए। ज्ञानवान हम इह मद गोए॥

सूत उवाच

फिरत बैल चढ़ि सिव सिवा गन। बैठ्यौ मुनि देख्यौ इकाग्र मन॥
ताहि सिवा लखि सिव ही कही पुनि। अहौ यह लख्यौ इकाग्र मना मुनि
निश्चल जल ज्यौं बिना ब्यार करि। तुम तप सिद्धि दैंन हारे हरि॥

श्री शिव उवाच

अव्यय पुरुष माँहि रति भई। मुक्ति लौं इन फीकी करि दई॥
तऊ इन सौं करिहैं बतरान। साधु संग ही लाभ महान॥

श्री सूत उवाच

यह कहि तिह ढिग गए महेस। विद्यानिधि सदूगति सर्वेस॥
दोऊ जग आत्मा घर माहीं। आए पै मुनि जानें नाहीं॥
बुधि वृत्ति सब रोकी तानें। जगरु अपनपौ हू नहिं जानें॥
लखि हिय ईस पैठ गए ऐसें। ब्यार छेद के भीतर जैसें॥
दस भुज पीरी जटा त्रिनैंन। उदित होय रबि से सुख दैंन॥
व्याघ्र चर्म अरुछनि की माल। फरसा डौंरू धरे कपाल॥

धनुक बान असि चर्म सूल पुनि । लखि हिय तुरत भयौ बिस्मै मुनि॥
यह कहा कित आयौ यौं बोले । पुनि मुनि तजि समाधि दृग खोले॥
देखे सिवरु सिवा गन हू पुनि । त्रिभुवन गुरुहिं नयौ सिर करि मुनि॥
आसन दै सब जुत पूजे हर । पाद्य अर्घ स्त्रग धूप दीप करि॥
कही भलें आए मम धाम । तुम आपै प्रभु पूरन काम॥
जिन करि जगत सुखी है महा । तिन तुमरौ हम करें सु कहा॥
सत्व रूप तुम सब सुख कारी । रज तम करि भय दायक भारी॥
तुम निगुन रु सांत अबिकार । तुमें नवत मैं हे सुखसार॥
यौं अस्तुति मुनि कीनी सही । ह्वै प्रसन्न हँसि हर तब कही॥
बर मागौ तुम हे मुनि प्यारे । हम तीनौं बर दाता भारे॥
हमरौ दरस सफल है भारी । जिनतें अमृत लहत नर नारी॥
जे द्विज साधु साँत समता हिय । हमरे भक्त असंग दया जिय॥
तिनको लोकरु लोकपाल जें । अर्चति नवति उपासति हैं तें॥
मैं बिधि बहुर स्वयं भगवान । तिनकौ सोऊ करत सन्मान॥
जलनि माहिं कहा तीरथ नाहीं । देव नहीं कहा प्रतिमनि माहीं॥
बड़ी बेर ते सुध करत मुनि । दरसहीं तें तुम सूध करत पुनि॥
बेद त्रयी जे हमरें रूप । धरति तिनें हम नवति अनूप॥
बहुर चित्त एकाग्र सु करें । तप स्वाध्याय संजमनि धरें॥
तुमरें देखें सुनें अहो मुनि । बड़ पापी हू सूध होत पुनि॥
तुमसों मिलि बैठै बतराय । कहनौ कहा सुध जो जाय॥

सूत उवाच—

अमृत रूप यह सिव की बानी । सुनि मुनि काननि तृप्ति न मानी॥
हरि माया लखि दुखित भयौ मुनि । सुनि सिव बचन हरषि बोल्यौ पुनि॥

श्री मारकंडेय उवाच

अहो ईस्वरनि कौ चरित्र जो । तन धारी नहिं जानि सकें सो॥
जाते आधीननि जगदीस । अस्तुति करति नवावति सीस॥

अपु कहि करि अनुमोदें गावै। निश्चै सबकौ धर्म सिखावैं॥
तुम मायावी हे भगवन हरि। तव प्रभाव माया वृत्तिनि करि॥
नाहिन दूषित होत है ऐसें। कपटनि करि कपटी कौ जैसें॥
तम जग कों गुन द्वारा मन करि। रचि के बहुर प्रविष्ट होत हरि॥
तहाँ कर्त्ता से भासति ऐसें। स्वप्न में पुर बनाय नर जैसें॥
अद्वय इक गुरु ब्रह्म सरूप। नविति हों गुन नेता गुन रूप॥
हे भूमा बर मागौ कहा। तुमरौ दर्सन ही बर महा॥
तव दर्सन तें काम हैं जिते। होत सत्य पुनि पूरन तिते॥
तऊ तुम पूर्न काम बरषति हर। तिनतें मैं माँगति सु एक बर॥
हरि में भक्तनि में रु होहु रति। पुनि भक्तनि की सी तुम में अति॥

सूत उवाच

सुन्दर बानी करि अरचें मुनि। उमा सराहे सिव को ले पुनि॥
पूर्न कामना होहु तिहारी। हरि में तुमरी भक्ति है भारी॥
ब्रह्म तेज त्रैकालिक ग्यान। जस बैराग होहु बिग्यान।
कल्प प्रजंत होहु अजरामर। सब पुरान के आचारज बर॥

श्री सूत उवाच

तिय सों मुनि की बात कहत हर। गए सराहत घर दै कै बर॥
भक्ति अनन्य जोग महिमा पुनि। पाय अजौं धर बिचरति सो मुनि॥
चरित सुबुधि मुनि कौ यह कह्यो। ज्यों हरि माया में भव लह्यो॥
यह हरिमाया को अनुभव जो। सहसा तिहि मुनि ही कों भयौ सो॥
अबुध सु बहुत काल ताहि कहैं। माया के बेत्ता छिन लहैं॥
जो या चरितहि सुनैं सुनावें। सो न बहुर या जग में आवें॥

इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते

दसमोऽध्याय: ॥ ३ ॥

एकादश अध्याय

दोहा—पूजा हित महा पुरुष कौ, बरनति है सुख पाय।
मास मास रवि व्यूह कौ, चरित ग्यारहे ध्याय ॥ १॥

शौनक उवाच

अहो साधु हम पूछति बाता। तुम सब तंत्रनि के हो ग्याता ॥
हरि सेवा में ताँत्रिक लरनि। अंग उपांगायुध आभरनि ॥
जो जिह रचे सु हमें सुनावौ। हम जान्यौ चाहत सुख पावौ ॥
जिनमें होय निपुन जब प्रानी। लहै अमरता सब सुख सानी ॥

सूत उवाच

पहल गुरुनि को मस्तक नाऊँ। हरि की तुमें बिभूति सुनाऊँ ॥
जिनें वेद तंत्रनि करि बरनें। ब्रह्मादिक उत्तम सुख करनें ॥
तत्व पचीसनि रच्यौ बिराट। चेतन में त्रिभुवन कौ ठाट ॥
पुरुष रूप यह धर पग जानौ। स्वर्ग सीस नभ नाभि सु मानौ ॥
रवि द्रग बायु नाक दिसि कान। सिस्नु प्रजापति मृत्यु अपान ॥
भुज लोकेस भौंह जम ससि मन। लज्जा होठरु अधर लोभ गनि ॥
दंत चाद्नी भ्रम मुसिक्यान। मेघ केस द्रुम रोमा जान ॥
नर कर चरनादिक सो जैसें। महा पुरुष लोकनि करि तैसें ॥
हरि कौस्तुभ मनि कौ मिस धरें। सुध जियनि कौ धारन करें ॥
ताकी व्याप रही जो कांत। सोई उर श्रीबत्स सुहाति ॥
नाना गुनमय माया है जो। हरि के गर बनमाला है सो ॥
वेद ही पीत बसन छबि छाजै। ब्रह्मसूत्र ओंकार बिराजै ॥
जोग सांख्य सोई कुंडल है दो। मुकट है उत्तम ब्रह्म लोक जो ॥
माया सोई अनंत नामासन। धर्म ग्यान सत्व है कमलासन ॥
मन तन इंद्री सक्तिरु प्रान। येई तास की गदा महान ॥
जलनि के तत्वहि संख सु मानौ। तेज कौ तत्व सुदर्सन जानौ ॥
नभ है खड्ग अंध्यारौ ढाल। तरकस कर्म धनुष है काल ॥

इंद्री सर मन कों रथ जानौ। तन्मात्रा रथ की गति मानौ॥
अभयद बर कों मुंद्रा जान। रबि मंडल पूजा अस्थान॥
संस्कार गुरुदिछा हें मुनि। पाप हारनी हरि सेवा पुनि॥
छह प्रकार ईस्वरता जोई। कर में कमल फिरात्रत सोई॥
धर्मरु जस ये चोर बिजन दो। निर्भै पुर बैकुंठ छत्र सो॥
तीन बेद हैं गरुड़ सुखेन। तंत्रमूर्त्ति है बिष्वकसेन॥
पुनि साछात लछमी है जो। हरि की अनपायिनी सक्ति सो॥
आठ द्वार पालक नंदादिक। ते हरि के गुन है अनिमादिक॥
बासुदेव प्रद्युम्ननिरुध। संकर्षन ये तिह बपु सुध॥
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुरीय। इन करि लखियतु है सो हीय॥
अंग उपांगायुध भूषन पुनि। चारों मूर्त्ति धरत हैं हे मुनि॥
बेद योनि परिपूर्न स्वदृक हरि। जिन माया करि तीन रूप धरि॥
ग्यान भरे रचि पालें हरे। तत्पर इक आत्मा उर धरे॥
अहो जदूत्तम अर्जुन प्रिय हरि। दुष्ट दहन हे महा बीर्ज धरि॥
ब्रज तिय भृत्य पुन्य जस बरनें। दासनि राखि लेहु सुख करनें॥
महापुरुष लछन यह हे मुनि। ह्वै पवित्र हरि में मन धरि पुनि॥
प्रात ही उठि करि याहि जपै जो। हियें माहि ब्रह्महि देखै सो॥

शौनक उवाच

नृपहि कहे जे सुक मुनि प्यारे। मास मास रबि के गुन न्यारे॥
तिनके नाम कर्म सब कहो। हमरे अति श्रधा है अहो॥

सूत उवाच—

सब तन धारिन के आतमा हरि। ताही की अनादि माया करि॥
यह रबि लोकनि में बिचरति सुनि। सबरी क्रिया करावति है पुनि॥
एक ही सर्वात्मा स्त्रष्टा जो। कृष्नचंद्र ही सूर्ज रूप सो॥
सब श्रुति कर्म मूल यह जा ते। बहु भाँतिनि मुनि बरनति ता तें॥
कर्त्ता करन क्रिया कारज पुनि। द्रव्य देस फल मंत्र काल सुनि॥

हे मुनि यों प्रभु की माया करि। नौ प्रकार कहियतु सूरज हरि॥
काल सरूपी रबि भगवान्। लोक पवित्रक परम महान॥
चैत्रादिक बारह मासनि में। बिचरति जुदो जुदो रासिन में॥
धाता हेति बासुकी हू मुनि। रथकृति कृतस्थली तुंबुरु पुनि॥
सात ऐ मुनि पुलस्त्य उचारे। चैत्रमास यें बितवत सारे॥
कछ नीर अर्जमा पुलहमुनि। पुंजिकस्थली नारद जू पुनि॥
बहुर प्रहेति अथौजा लहौ। यै बैसाखहि बितवत अहौ॥
मित्ररू पौरुषेय तछक पुनि। हाहा रथस्वन बहुर अत्रि मुनि॥
सातईं इक मेनका लहौ। ये जेठहि बितवत अहौ॥
हूहू सुक्र बरुन रंभा पुनि। चित्रस्वन सहजन बसिष्ट मुनि॥
यें असाढ कौ मास जु अहौ। सातों मिल बितवत है लहौ॥
इला पत्र इंद्र श्रोता पुनि। बिस्वाबसु अंगिरा नाम मुनि॥
बर्जा बहुर प्रम्लोचा लहौ। ये मिल सावन बितवत अहौ॥
विवस्वान आसारन भृगु मुनि। संखपाल अरु उग्रसेन पुनि॥
ब्याघ्र अनुम्लोचा द्वै लहौ। भादौ ये बितवत हैं अहौ॥
पूषा बात सुरुचि गौतम मुनि। बहुर सुषेन धनंजय जू पुनि॥
सातईं बहुर घृताची लहौ। माह मास ये बितवति अहौ॥
एरावत क्रतु भरद्वाज मुनि। बर्चा बिस्व सेनजित जू पुनि॥
अरु पर्जन्य नाम रबि लहौ। फागुन को ये बितवत अहौ॥
असु उर्बसी महासंख पुनि। विद्युत सत्रु तार्छ कस्यप मुनि॥
इक रितसेन नाम करि लहौ। ये अगहन कौं बितवत अहौ॥
भग कर्कोटक पूर्बचित्ति पुनि। स्फूर्ज अरिष्टनेमि आयसु मुनि॥
ऊरन नाम सातवो लहौ। पूष मास ये बितवत अहौ॥
त्वष्टा कंबल जामदग्नि मुनि। ब्रह्मषेत तिलोत्तमा सु पुनि॥
रितजित पुनि धृतराष्ट्रहि लहौ। क्वार मास ये बितवत अहौ॥
बिष्न अस्वतर मखापेत पुनि। सतजित बिस्वामित्र अहो मुनि॥
रंभा सूर्ज सु वर्चा लहौ। कातिक ये बितवत हैं अहौ॥
यें बिभूति सूरज की हें मुनि। सुमिरत नर के पाप हरें पुनि॥
इन छहौंन जुत नित रबि फिरै। दुहूँ लोक सुभ मति बिस्तरै॥

रिषि सूरज की अस्तुति करें। रिग जजु साम बेद उच्चरें॥
पुनि ताको गावति गंधर्व। आगें नाचति अप्सरा सर्व॥
नाग हैं रथ बंधन दृढ़ भारे। जछ है रथ के जोरनि हारे॥
बहुर बली राच्छस हैं जिते। पाछें रथहिं ढकेलति तिते॥
साठ हजार जु बालखिल्य मुनि। अस्तुति करत चलति सन्मुख पुनि॥
यौं अनादि अज हरि जग प्यारे। कल्प कल्प में यें बपु धारे॥

इति श्री भागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषा रसजानि कृते
एकादशोऽध्यायः॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

दोहा—द्वादस तें लै प्रथम लौं, जो जो कियौ बखान।
सो सूचन का करि कहत, ध्याय बारहें जान॥ १॥

सूत उवाच

स्रष्टा हरि द्विज महा धर्म फिर। धर्म कहों इनकों नवाय सिर॥
नरहिं उचित यह हरि चरित्र जो। तुम पूछयौ मुनि हमनि कह्यौ सो॥
जदुपति हृषीकेस हरि भाए। सर्व पाप हरतें ह्यां गाए॥
जग उत्पति थिति लय कारन जो। इहाँ गूढ़ पर ब्रह्म कह्यौ सो॥
बहुरौ तास ज्ञान विज्ञान। सोऊ बरन्यौ हे मुनि जानि॥
भक्ति जुक्त वैराग्य बखान्यौ। चरित परीछित कों सुख सान्यौ॥
नारद कौ आख्यान कह्यौ पुनि। दियौ परीछित कौ सराप मुनि॥
गंगा के तट अनसन लयौ। तहाँ सुक सों संवाद सु भयौ॥
जोग सों तन तजिबौ कह्यौ हे मुनि। बिधि नारद संवाद कह्यौ पुनि॥
अवतारनि की लीला गाई। पुनि विराट उत्पत्ति सुनाई॥
विदुरौधव संवाद कह्यौ मुनि। बिदुर मैत्रे मिलन कह्यौ पुनि॥
प्रश्न पुरान संहिता भारी। महापुरुष की थिति उच्चारी॥
महतत्वादि सात कारन जें। पहलें माया तें उपजे तें॥
तिनतें यह ब्रह्मांड कह्यौ पुनि। हरि के रहिबे कौ स्थान मुनि॥
बरनी छोटी बड़ी काल गति। बहुरौ कही कमल की उत्पति॥
समुद तें धर उधार कह्यौ पुनि। हिरन्याछ कौ बध हू हे मुनि॥
जड़ जंगम की उत्पति बरनी। बहुरौं रुद्र सृष्टि दुख करनी॥

स्वायंभू मनु द्वै तन धारी। तिय सतरूपा उत्तम नारी॥
धर्म तियनि कौ बंस अपार। कद्दम कें सु कपिल अवतार॥
देवहूती माता संवाद। सुबुध कपिल सो अति ही स्वाद॥
मरीचादि नौ की संतान। दच्छ जग्य कौ नास बखान॥
ध्रुव पृथु नृप प्राचीनबर्ह पुनि। इनहू के सब चरित कहे मुनि॥
नारद प्रियव्रत को संवाद। पुनि प्रियव्रत चरित अति स्वाद॥
रिषभदेव अरु नाभि भरत पुनि। इनहू के सब चरित कहे मुनि॥
दीप समुद्र खंड सरिता गिरि। इनहूँ को बरनन कीनौ फिरि॥
ज्योतिश्चक्र हू बरनौ सही। पुनि पाताल नर्क थिति कही॥
दच्छ कौ जन्म प्रचेतनि तें मुनि। ताकी बेटिन की संतति पुनि॥
ताते सुर नर असुर जितेक। नग खग तिर्यक भए कितेक॥
बृत्रासुर कौ जन्म नास मुनि। दिति के दोऊ पुत्रनि कौ पुनि॥
दैत्यराज जो परम पवित्र। बहुरों तिंह प्रहलाद चरित्र॥
पुनि मन्वंतर चरित सुहायौ। गजराजहिं भगवान छुटायौ॥
मन्वंतरनि माहि सुख सार। हय सिरादि हरि के अवतार॥
कूर्म मच्छ बावन नरहरि पुनि। अमृत हेत छीरोद मथन मुनि॥
सुर असुरनि कौ जुध महान। बहुरौ नृप बंसनि कौ गान॥
पुनि जनम्यौ इछ्वाक पवित्र। महामन सुद्युम्न चरित्र॥
इलारु तारा कौ चरित्र मुनि। नृप ससादि रबि बंसनि कौ पुनि॥
बहुर सुकन्या चरित्र पवित्र। पुनि सर्जातिक कुत्स्थ चरित्र॥
पुनि खट्वांग मानधाता कौ। सौभरि बहुर सगर ख्यात कों॥
रघुवर चरित्र पुन्य प्रसंस। निमि तन त्याग जनक को वस॥
परसराम कौ चरित महान। ऐल जजाति नहुष कौ गान॥
पुनि दुष्यंत भरत संतनु सुत। ये गाए जदुबसिन के जुत॥
जा जदुवंस माहि प्रगटे हरि। जगत ईस श्रीकृष्न नाम करि॥
जनमें श्रीबसुदेव सु धाम। गोकुल माहिं बढ़े घनस्याम॥
ताके कर्म अपार महान। पियें पूतना के पय प्रान॥
बहुरौ सकट पाव सो डारयौ। तृनावर्त्त वक बच्छहि मारयौ॥
धेनुक अरु प्रलंब संहारे। दावानल तें गोप उबारे॥

बहुरौ कालीनाथ कहाए। महा सां ते नंद छुटाए ॥
कन्यनि के ब्रत करि पायों सुख। तियनि तु ह्रै द्विजनि दियो दुख ॥
गिरि गोधन राख्यौ कर एक। सुरभी इंद्र कियौ अवषेक ॥
तियनि संग निसि कियौ बिहार। दुबुध संखचूड संहार ॥
पुनि अरिष्ट केसी सु बिछाए। दुहुन लेन अक्रूर सु आए ॥
ब्रज बिलाप पुनि मथुरा जैबौ। हाथी मल्ल कंस बध कैबौ ॥
गुरु कौ मरयौ पुत्र दयौ ल्याय। उधव राम सहित सुख पाय ॥
जदुबंसिन कौ भलौ जु आहि। मथुरा में बसि कीनौ ताहि ॥
जरासंध सेना बहु मार। कालजमन मारयौ नृप द्वार ॥
सभा सुधर्मा पारजाति पुनि। द्वारावति बस हरि ल्याए मुनि ॥
रिपु हत रुक्मिन हरी मुरारी। सिवहि मोहि भुज बान बिदारी ॥
कन्या ल्याए हेत नरकासुर। दंतबक्र सिसुपाल पीठ मुर ॥
संबर द्विबिद साल्व लौं जिते। मारि पार हरि कीनें तिते ॥
हे मुनि पुनि कासी दई जारि। धर भर हरयौ पांडवनि द्वार ॥
बिप्र साप मिस कुल संहरयौ। उधव सों संबाद सु करयौ ॥
आत्मा तत्व अरु धर्म कह्यौ मुनि। निज प्रभाव करि लोक तज्यौ पुनि ॥
जुग लछन जुग बृत्ति हू कही। कलि के नरनि उपाधि सु सही ॥
प्रलै सु बरनी है बिधि चार। उत्पति बरनी तीन प्रकार ॥
सुबुधि परीछित कौ तन त्याग। बेदन की साखा बड़ भाग ॥
बहुर मारकंडेय चरित्र। महापुरुष कौ चरित्र पवित्र ॥
रबि सर्वातम की रचना पुनि। तुम पूछी हमनि कही मुनि ॥
ह्यां सब ठां लीला अवतार। तिनके कहें कर्म सुख सार ॥
गिरत परत छीकति जो हे मुनि। रोग के बस तें होय बिबस पुनि ॥
हरे नमः इतनौ उच्चारै। सो सब पापनि कौ धो डारै ॥
गावै सुनै कृष्न गुन जो जन। श्रीजदुराय पैठि ता के मन ॥
सब पापनि को दूर करत यों। रबि तम पवन मेघ गन कौ ज्यों ॥
हरि गुन नहिं गावै बानी जो। निपट बुरी अरु झूठी है सो ॥
सोई सांच मंगल पवित्र पुनि। हरि के गुन गावति जे हे मुनि ॥
सोई रुचिर रमनीय नवीन। सोई मन कों सुखद प्रवीन ॥

सोक समुद कौ सोखै सोई। उत्तम जस गुन गावै जोई॥
सुंदर पद रचना है जा में। जगत पवित्र न हरि जस ता में॥
तौ वह काव्य गरत जूठनि कौ। बिषयी जन कागनि के रमन कौ॥
निर्मल साधु रहत हैं तहीं। सुंदर हरि जू कौ जस जहीं॥
जा में अलंकार नहिं छंद। पै पर कृष्न चरित सुखकंद॥
हरि के नामानि कौ बर्नन पुनि। सो जग कौ अघ नासक है मुनि॥
साधु हूँ ताही काव्यहि सुनें। गावें अरु ताही को गुनें॥
ब्रह्म ग्यान निर्मल पुनि जोई। हरि के भाव बिना जौ होई॥
जदिप कर्म हूँ नहिं ता माहीं। तौ हूँ अहो सु सोहत नाहीं॥
उत्तम हूँ दुख रूप कर्म जो। हरि अरपें बिन क्यौं सोहे सो॥
तप बर्नाश्रम के आचार। धन जस हित ही खेद अपार॥
हरि गुन गान श्रवन के माहीं। हरि पद पंकज भूलै नाहीं॥
हरि पद सुमिरन दुखनि बिदारै। हियौ सोध मंगल बिस्तारै॥
देय कृष्न में प्रेम महान। पुनि बैराग ग्यान बिग्यान॥
ईस सुरोत्तम सर्बोत्तम हरि। ता कौं तुम मुनि हिय माहिं धरि॥
नित ही भजति प्रेम करि जा तें। तुमही भूरि भाग अति यां तें॥
मैं नृप ढिग सुक मुनि सों पायौ। आतम तत्व सो तुम सुधि द्यायौ॥
कहबे लायक हरि के गुन जे। सब दुख हरनें हम बरनें ते॥
श्रद्धा करि छिन सुनै सुनावै। सोऊ आप कौ पाप मिटावै॥
एकादसी द्वादसी को जो। सुनैं बहुत दिन लौं जीवै सो॥
ह्वै इकाग्र पहलें भोजन के। पढ़ै पाप नासें ता जन के॥
हरि पुर में ब्रति करि इकाग्र ह्वै। पाठ करै तिहि जात रहै भै॥
सिंध पितर मनु भूप देव मुनि। कहत सुनत सब अर्थ देत पुनि॥
रिग जजु साम पाठ कौ जौ फल। मधु घृत दूध नदी कौ सो फल॥
जौ पवित्र ह्वै या कौ गावै। हरि कौ कह्यौ परम पद पावै॥
बिप्र पढ़ें होय बुधि अनूप। छत्री पढ़ैं होय बड़ भूप॥
बैस्य पढ़ै तौ धन अति पावै। सूद्र पढ़ै तौ पाप मिटावै॥
कलिमल नासन जगत ईस हरि। और ठौर नहिं गाए अति करि॥

ह्यां तौ सब की मूर्त्ति मुरारी। पद पद माहिं सु गाए भारी॥
जो अनंत अज अच्युत परै। थिति उत्पति लय सक्तिनि धरै॥
ब्रह्मादिक अस्तुति जा की पुनि। जानति नहिं हों ताहि नवति मुनि॥
नौ सक्तिनि करि आप मझारी। जड़ जंगम रचि रहत मुरारी॥
ग्यान सरूप सनातन आहि। सुरनि में श्रेष्ट नवति मैं ताहि॥
हरि सुख करि पुरन चित जिनकौ। और में तनक भाव नहिं तिनकौ॥
हरि के रुचिर चरित करि बिह्वल। दया भीज बरन्यौ पुरान भल॥
तत्व प्रकासक सब अघ हारी। तिह सुक मुनि कौ नमो हमारी॥

इति श्री भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदश अध्याय

दोहा—संख्या सबै पुरान की, करी तेरहैं ध्याय।
श्रीसुभागवत दान फल, कह्यौ बहुर हषाय ॥

श्री सूत उवाच

इंद्र रुद्र बिधि बरुन बयार। ये दिव्य स्तुति करत अपार॥
बहुर सामबेदी जाहि गावैं। बेद रहस्यनि करि सुख पावैं॥
ध्यान धारि तामें मन लावै। तब जोगी तिह दरसन पावै॥
देवरु दैत्य अंत नहिं पावै। ता देवहि हम सीस नवावैं॥
फिरत पीठ मंदिर गिरि भारौ। मानौ आहि खुजावनि हारौ॥
ता करि सोवत कमठ मुरारी। स्वाया रछ्या करौ तिहारी॥
जिन स्वासनि के लेस मात्र करि। जल समुद्र के छोभ मिसहि धरि॥
नित ही घटनि बढ़नि कौ धरैं। अबलौं हूँ बिश्राम न करैं॥
अहौ महामुनि मन दै कै अब। सुनौ पुराननि की संख्या सब॥
वाच्य प्रयोजन पाठ दान फल। सुनौ भागवत कौ अति निरमल॥
ब्रह्म पुरान सहस दस जान। पचपन सहस सु पद्म पुरान॥
विष्नु पुरान सहस तेईस। सैव पुरान सहस चौबीस॥
श्रीभागवत सहस अष्टादस। है पुरान बावन सहस्रदस॥
नारदीय है सहस पचीस। पुनि बाराह सहस चौबीस॥

बहुर मारकंडेय सहस नौ। वान्ह पंचदस सहस चार सौ ॥
ब्रह्मवैवर्त्त सहस अठारह। लिंग पुरान सहस हैं ग्यारह ॥
चौदह सहस भविष्य पाँच सौ। स्कंध इकासी सहस एक सौ ॥
चौदह सहस है मच्छ पुरान। सत्रह सहस कूर्म कौ जान ॥
गरुड़ सहस उन्नीस सु हे मुनि। हैं ब्रह्मांड सहस बारह पुनि ॥
चार लाख सब हैं उत्तम जस। श्री भागवत सहस अष्टादस ॥
पहलें बिधि के भव भय भयौ। तब हरि ताहि दया करि दयौ ॥
सब ठां इक बैराग्य समेत। हरि लीलामृत अति सुख देत ॥
परब्रह्म बेदाँत सार जो। अद्वितीय या कौ आश्रै सो ॥
बहुरौ एक मुक्ति जो सुनौ। या कौ सोई प्रयोजन गुनौ ॥
भादौं पूरनमासी के दिन। हेम सिंहासन पै धरि कें जिन ॥
दीनौ श्रीभागवत पुरान। सो पावै गति परम महान ॥
और पुरान सुनें जन तौ लौं। अमृत समुद यह सुन्यौ न जौ लौं॥
इह बेदाँत सार अति परें। यह रस तृप्त कहूँ न रति करै ॥
ज्यौं नदियनि में गंगा नाम। बेदनि में अच्युत अभिराम ॥
भक्तनि में पुनि सिव जू जैसें। यहौ पुराननि में है तैसें ॥
छेत्रनि में कासी उत्तम ज्यौं। श्रीभागौत पुराननि में त्यौं ॥
यह निर्मल भागवत पुरान। हरि भक्तनि कौ पिय महान ॥
यामें अमल ग्यान एक गायौ। जो सब परमहंस मन भायौ ॥
भक्ति ग्यान बैराग समेत। भगवत तत्व प्रकास सु देत ॥
भक्ति सों सुनैह पढ़ै बिचारै। सो संसार रोग निरवारै ॥
जिन यह अतुल ग्यान दीयो जो। पहलें बिधिहिं प्रकास दियौ सो ॥
बिधि सरूप करि नारद कों दिय। नारद ह्वै करि धरयौ ब्यास हिय ॥
ब्यास हांय सुक मुनि हिय राख्यौ। सुक दयाल ह्वै नृप सो भाष्यौ ॥
साँचौ सुध बिसोक बिमल तम। अमृत रूप तिहि ध्यान करैं हम ॥
बासुदेव साछी भगवान। जिन बिधि पर करि कृपा महान ॥
मुक्ति के हित पुरान यह भाष्यौ। हम तिह पायनि में सिर राख्यौ ॥
ब्रह्मरूप जोगी सुकदेव। तिनें नवति मैं सब सुख सेव ॥

जिन जग सर्प डस्यौ सुख रूप। लयौ छुटाय परीछित भूप॥
जन्म जन्म प्रभु तुव पग में ज्यों। भक्ति होय दासहिं कीजै त्यौं॥
जा कौ नाम कीर्त्तन प्यारौ। सबै पापनि कौ नासनि हारौ॥
जाहि प्रनाम सकल दुख हारी। ताहि इण्डाहि दंडौत हमारी॥

दोहा—श्रीजुत श्रीचैतन्य कौ, कृपा बीज हिय आहि।
दया दृष्टि सो सीचियौ, श्रीगुरु रस धुर ताहि॥
तास सुबास सन्यौ अहौ, फूल्यौ है यह फूल।
बादी मेडुक अलि रसिक, ये द्वै स्वादी मूल॥
श्रीरूप सनातन रसिक रस, इकठां कियौ निचोय।
तिन बिन चूसत छूछ कों, तिनें न पूछ निगोय॥
रसिक बरनि मन हरन के, श्रीप्रियादास जस बास।
तास हिये रस रास कौ, कृपा बिलास प्रकास॥
श्रीहरि की जीवन सदा, हरि ही जीवन नित्त।
दै रस राधा रूप कौ, हरि हि जिवावति मित्त॥
तिननि लखी मम नाटिका, पुनि यह हरि रस दीन।
चहियैं जाहि बराढिका, खावौ सबै प्रवीन॥
तुक अमिलनि मात्रा अधिक, अर्थ बनावनि हेत।
तुक मिलवन संछेप हित, कहूँ अर्थ संकेत॥
तुक अमिलन में दोष नहिं, कवि प्रयोग को देख।
घटि बढ़ि मात्रा को निपुन, पढ़ि लैहैं सु बिसेष॥
कहूँ और को और पुनि, जो अर्थहिं लखि लेहू।
पाठ भेद सो जानियौ, मोहि दोष निज देहू॥

भोंर ढेढ़ पसु हू रस पागै। जो रस पगै न सोता आगै॥
संबत अष्टादस सत सात। जेठ बदी छठ मंगल गात॥

इति श्रीभागवते महापुराणे परमहंस्यां संहितायां बैयासिक्याँ द्वादशस्कन्धे भाषा रसजानि कृते त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

द्वादशस्कन्ध सम्पूर्ण

गौडीयग्रन्थगौरवः—

व्रजभाषा में प्रकाशित प्राचीन पुस्तकें—

१—गदाधरभट्टजी की वाणी
२—सूरदास मदनमोहनजी की वाणी
३—माधुरीवाणी (माधुरीजी कृता)
४—वल्लभरसिकजी की वाणी
५—गीतगोविन्दपद (श्रीरामरायजी कृत)
६—गीतगोविन्द (रसजानिवैष्णवदासजीकृत)
७—हरिलीला (ब्रह्मगोपालजीकृता)
८—श्रीचैतन्यचरितामृत (श्रीसुबलश्यामजीकृत)
९—वैष्णववन्दना (भक्तनामावली) (वृन्दावनदासजीकृता)
१०—विलापकुसुमाञ्जलि (वृन्दावनदासजीकृता)
११—प्रेमभक्तिचन्द्रिका (वृन्दावनदासजीकृता)
१२—प्रियादासजी की ग्रन्थावली
१३—गौराङ्गभूषणमञ्जावली (गौरगनदासजीकृता)
१४—राधारमणरससागर (मनोहरजीकृत)
१५—श्रीरामहरिग्रन्थावली (श्रीरामहरिजीकृता)

सानुवाद संस्कृतभाषा में—

१—अर्चाविधिः (संगृहीत)
२—प्रेमसम्पुटः (श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजीकृत)
३—भक्तिरसतरङ्गिणी (श्रीनारायणभट्टजीकृता)
४—गोवर्द्धनशतक (विष्णुस्वामी संप्रदायाचार्य्य श्रीकेशवाचार्य्यकृत)
५—चैतन्यचन्द्रामृत और संगीतमाधव (श्रीप्रबोधानन्दजीकृत)
६—नित्यक्रियापद्धति (संगृहीत)
७—ब्रजभक्तिविलास (श्रीनारायणभट्टजीकृत)
८—निकुञ्जरहस्यस्तव (श्रीमद्रूपगोस्वामिकृत)
९—महाप्रभुग्रन्थावली (श्रीमन्महाप्रभुमुखपद्मविनिर्गता)
१०—स्मरणमङ्गलस्तोत्रं (श्रीमद्रूपगोस्वामिजीकृत)
११—नवरत्नं (श्रीहरिरामव्यासजीकृत)

यह पुस्तक तथा प्रकाशित अन्य पुस्तकें मिलने का पता—

★

१—कृष्णदास बाबा, कुसुमसरोवर,
पो० राधाकुण्ड, जि० मथुरा।

२—कृष्णदासबाबा, डीगवालीहवेली,
लालदरवाजा, मथुरा।

सूचना—

हम इस ग्रन्थरत्न को दो खंड में प्रकाशित कर रहे हैं। सुविधा के लिये पहिले दशम, एकादश, द्वादश स्कन्ध–दूसरे खंड के नाम से प्रकाशित हुए हैं। अवशिष्ट महात्म्य के साथ प्रथम से नव स्कन्धः तथा विस्तृत भूमिका प्रथम खंड में प्रकाशित करने की शीघ्र आशा रखते हैं।

मुद्रक—रामनारायण अग्रवाल, लोकसाहित्य प्रेस, मथुरा।